संत दरिया

(बिहार वाले)

राधास्वामी सत्संग ब्यास

संत दरिया
(बिहार वाले)

डॉ. काशीनाथ उपाध्याय

राधास्वामी सत्संग ब्यास

समर्पण

साहब मैं गुलाम हौं तेरा।
लिखि लीजे एह कागज कोरे जनम जनम का चेरा॥
जैसे पूत कपूत जो होवै पिता करै प्रतिपाला।
बहुत प्रेम मोद मन भरि के नजरन्हि कीन्ह निहाला॥...

जीव के गुन ऐगुन जनि खोजियै ऐसी रहनि न आई।
ऊठत बैठत नाम तुम्हारा सरन सरन गोहराई॥
एही अरज सुनो सरवन में हंस बिगोइ न जाई।
कहें दरिया ले नाम तुम्हारा मुक्ति सदा फल पाई॥

दरिया ग्रन्थावली, भाग 1, पृ. 117

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 11
प्रस्तावना 13

प्रथम खंड
दरिया साहिब का जीवन 25
दरिया साहिब का संदेश 50

द्वितीय खंड
1. मानव-जीवन 123
मुक्ति-प्राप्ति का दुर्लभ अवसर 123
काल और माया के जाल 133
संसार में सजग रहने की आवश्यकता 153
संसार का क्षणभंगुर जीवन 165
गर्व का गर्द में मिलना 176
भक्ति-विहीन मानव-जीवन की निरर्थकता 182

2. काया में परमात्मा का निवास 193
दिल दर्पण में प्रकट परमात्मा 193
शब्द-धुन द्वारा आत्मा की आंतरिक चढ़ाई 206
आंतरिक चढ़ाई की कुछ झलकें 220

3. जीवित सतगुरु की आवश्यकता 229
सतगुरु: परमात्मा के प्रकट रूप 229
सतगुरु: जीवों के एकमात्र उद्धारक 241

सतगुरु का शब्द जीवों के उद्धार का एकमात्र साधन 255
सतगुरु के लक्षण 266
सतगुरु-भक्ति 285
सतगुरु की शरण के बिना जीवों की दशा 297
पाखंडी गुरुओं के धोखे 304

4. सत्संग की आवश्यकता 321
सत्संग की महिमा 321
सत्संग के लाभ 327
सत्संग-त्याग का फल 336

5. नाम-भक्ति 340
नाम की श्रेष्ठता 340
सार शब्द या नि:अक्षर नाम 349
सुमिरन का प्रभाव 356
प्रकाश और शब्द रूप में नाम का प्रकट होना 368
नाम के प्रकट होने की कुछ उपमाएँ 376
नाम-विहीन जीवों का हाल 386

6. सच्चा प्रेम 391
सतगुरु का बताया सच्चा प्रेम-पंथ 391
नाम-भक्ति से सच्चे प्रेम की प्राप्ति 402
सच्चे प्रेम का स्वरूप 413
प्रेमी का प्रियतम के स्वरूप में मिलना 423
प्रेम की साँकरी गली में केवल शूरवीर का प्रवेश 428
प्रीतम के प्रेम में रंगी सच्ची सुहागिन 435

7. मन 445
त्रिलोकी को नचानेवाला करामाती मन 445
मन के कठिन फंद 452
मन जीते जग जीत 467
मन को जीतने का उपाय 474

8. कर्म 481
कर्म का अटल नियम 481
बुरे कर्मों का भयानक परिणाम 488
कर्मों के विनाश की युक्ति 496

9. शाकाहार 504
जीव-हिंसा का महापाप 504
मांस, मछली, शराब आदि का निषेध 514

10.कर्मकांड और जातिवाद का खंडन 527
कर्मकांड, हठधर्म, मूर्ति पूजा तथा बनावटी वेष-भूषा की व्यर्थता 527
जाति और धर्म के निरर्थक झगड़े 549

संदर्भ सूची 563
संदर्भ ग्रंथ 583
पदानुक्रमणिका 586
परमार्थ संबंधी पुस्तकें 589

प्रथम खंड

दरिया साहिब का जीवन

सुखद संत गुन पर दुख हीता। जेंवो दुर्म सरिता जल थल हीता॥
परमारथ करि स्वारथ नाहीं। जेंवो जल बुड़त उबारहिं बाहीं॥[1]

आज से लगभग दो सौ साल पहले जीवों के कल्याण के लिए एक महान् संत, दरिया साहिब ने भारत में जन्म लिया था, पर उनके बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है। संत सच्चे उपकारक के रूप में संसार में आते हैं, फिर भी लोग अक्सर उन्हें निरादर की दृष्टि से देखते और उनसे द्रोह करते हैं। सौभाग्य से दरिया साहिब के कुछ ऐसे निकट शिष्य थे जो उनके प्रति असीम श्रद्धा रखते थे। उन शिष्यों को उपदेश देते समय दरिया साहिब कभी-कभी उन्हें अपने जीवन की कुछ घटनाएँ सुनाया करते थे। दरिया साहिब के एक-दो शिष्य उनकी वाणी को श्रद्धापूर्वक लिख लिया करते थे। संभवत: दरिया साहिब ने स्वयं बहुत कम ही लिखा है। उनकी मृत्यु के बाद शिष्यों द्वारा उनमें लिखी गई कुछ बातों को छोड़, उनकी प्राय: समस्त रचनाएँ उनके निजी वचनों के ही संग्रह हैं। उनके जीवन का निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण उनकी इन रचनाओं पर ही आधारित है जिनमें से अधिकांश अभी भी हस्तलिखित रूप में ही पाई जाती हैं।

दरिया साहिब की कुछ रचनाओं के अंत में उनकी मृत्यु की तिथि का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। (द.ग्र., भाग 2, पृ.244, 326; सहस्रानी, ह.ग्र. पृ.71) इनके आधार पर निर्विवाद रूप से यह माना जाता है कि दरिया साहिब की मृत्यु संवत् 1837 (1780ई.) के भादों महीने के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को शुक्रवार के दिन सवा घड़ी रात बीतने पर हुई थी।

हस्तलिपियों में लिखी हुई इस तिथि पर संदेह का कोई कारण नहीं है। दरिया साहिब के बारे में यह कहा जाता है कि वे 106 वर्षों तक जीवित रहे। तदनुसार उनका जन्म-काल संवत् 1731 (1674ई.) निर्धारित किया गया है। धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री और बेलवीडियर प्रेस के *सन्तबानी पुस्तकमाला* के संपादक भी इस विचार से सहमत हैं (द.ग्र., भाग 1, पृ.5 *दरिया सागर*, इलाहाबाद, बेलवीडियर प्रिटिंग वर्क्स, 1970, पृ.9)। कुछ दरियापंथी साधु दरिया साहिब का जन्म-काल संवत् 1691 (1634ई.) मानते हैं। पर ऐसा मानने पर दरिया साहिब का जीवन-काल 146 वर्षों का हो जाता है जो विश्वसनीय नहीं मालूम पड़ता।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि संत दरिया ने अपनी रचनाओं में जिन अनेक संत-महात्माओं का उल्लेख किया है – जैसे, कबीर साहिब (1398-1518ई.), धर्मदास जी (कबीर साहिब के शिष्य), गुरु नानक (1469-1539ई.), नामदेव जी (1270-1350ई.), मीराबाई (1498-1546ई.) और गोस्वामी तुलसीदास (1532-1623ई.) – वे सभी उनके उपर्युक्त जीवन-काल के पूर्ववर्ती हैं। इस समय के बाद आनेवाले किसी भी संत-महात्मा का उनकी रचनाओं में उल्लेख नहीं पाया जाता। इससे 1674-1780ई. को संत दरिया का जीवन-काल मानना उचित प्रतीत होता है। इससे यह स्पष्ट है कि आगरा के सुप्रसिद्ध संत, सेठ शिवदयाल सिंह जी (स्वामी जी) के, जिनका जीवन-काल 1818-1878ई. है, जन्म से केवल 38 वर्ष पहले दरिया साहिब ने इस संसार से विदा ली।

संत दरिया की *मूर्ति उखाड़* नामक रचना में दरिया के जन्म-स्थान, उनके पिता के नाम और पेशे के संबंध में निम्नलिखित उक्ति पाई जाती है:

पीरु दर्जी धरकंधा के वासी ताहि घर जन्म उदासी उ रे जी।[2]

इससे पता चलता है कि दरिया साहिब का जन्म धरकंधा में हुआ था, उनके पिता का नाम पीरु था और वह दर्ज़ी का काम करते थे।

धरकंधा गाँव बिहार के रोहतास ज़िले में पड़ता है जो आरा से क़रीब 52 मील, डुमराँव से 26 मील और सूरजपुरा से 6 मील दूर है। दरिया साहिब का

जन्म-स्थान होने के कारण यह दरियापंथी साधुओं का प्रमुख केंद्र है। बिहार, उत्तर प्रदेश और नेपाल में कुल मिलाकर प्राय: 150 दरियापंथी मठ हैं।

1809-1810ई. में फ्रान्सिस बुकानन ने शाहाबाद ज़िले का (जो अब भोजपुर और रोहतास ज़िलों में बँट गया है) दौरा करके जो *शाहाबाद रिपोर्ट* लिखी थी, उसमें उन्होंने दरिया साहिब को एक मुसलमान दर्ज़ी कहा है (शब्द, रिपोर्ट, पृ.220)। डॉ.बी.बी. मजूमदार ने बिहार के अंग्रेज़ी दैनिक समाचार पत्र *सर्चलाइट* में 11 सितंबर, 1935 को 'दरियादास-बिहार के दर्ज़ी सन्त' शीर्षक जो लेख लिखा था, उसमें भी इस बात का समर्थन किया गया है। इस प्रकार दरिया साहिब को पीरु नामक मुसलमान दर्ज़ी का पुत्र माना जाता था।

यह पीरु कौन थे तथा वह मुसलमान घराने के थे या नहीं – इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। पंडित सुधाकर द्विवेदी के अनुसार दरिया एक मुसलमान माँ के गर्भ से पैदा हुए थे जो औरंगज़ेब की प्रिय बेग़म की दर्जिन की पुत्री थी। दरिया के पिता पूरनशाह (पीरनशाह) को अपने भाइयों को फाँसी से बचाने के लिए विवश होकर उससे विवाह करना पड़ा था (द.ग्र., भाग 1, पृ.8)। एक दूसरा मत यह है कि दरिया अपने पिता की प्रथम पत्नी से पैदा हुए थे जो हिंदू थी। दरियापंथी साधु मुख्यत: हिंदू हैं। अत: दरिया साहिब के माता-पिता को मुसलमान मानने में उन्हें कठिनाई होती है। धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री को दरियापंथी साधु चतुरीदास ने बताया था कि "दरिया साहिब के पिता पीरनशाह उज्जैन के एक संभ्रांत क्षत्रिय थे और उनके पूर्वज बहुत पहले बक्सर के निकट जगदीशपुर में राज्य करते थे (द.ग्र., भाग 2, पृ.9)।" चतुरीदास ने डॉ.शास्त्री को दरिया साहिब की वंशावली भी दी थी जिसके अनुसार दरिया साहिब के पिता का नाम पहले पृथुदेव सिंह, उर्फ़ पूरनशाह था। बाद में इस्लाम धर्म ग्रहण करने के कारण यह नाम पीरन या पीरु में बदल गया। पृथुदेव सिंह के पिता का नाम सुमेर सिंह, पितामह का नाम सुरत चन्द्र सिंह और प्रपितामह का नाम रणजीत नारायण सिंह था। ये सभी नि:संदेह हिंदू नाम हैं।

डॉ. शास्त्री का कहना है कि वह दरिया साहिब के तत्कालीन वंशज मेघबरन दास जी से भी मिले थे और उनसे उनकी वंशावली पूछी थी। पर मेघबरन दास जी केवल चौथी पीढ़ी तक के पूर्वजों के ही नाम बता सके, जो सभी हिंदू नाम थे (द. ग्र., भाग 2, पृ. 11)।

कहा जाता है कि दरिया साहिब के पूर्वज राजपुर ग्राम के निवासी थे जो धरकंधा से क़रीब 10 मील की दूरी पर स्थित है। धरकंधा में दरिया साहिब का ननिहाल था जहाँ उनकी पैदाइश हुई। जो भी हो, इसमें संदेह नहीं कि दरिया साहिब का जन्म धरकंधा में हुआ, यहीं उनका पालन-पोषण हुआ और यहीं उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय बिताया। संत दरिया हिंदू परिवार में पैदा हुए या मुसलमान परिवार में – यह बात उनके लिए विशेष महत्त्व नहीं रखती थी, क्योंकि वह जाति और धर्म के भेदों से सर्वथा ऊपर थे। वह हिंदू और मुसलमान दोनों को एक दृष्टि से देखते थे। जैसा कि उन्होंने कहा है:

जाति पांति नाहिं पूछिए, पूछहुं निर्मल ग्यान।
संत की जाति अजाति है, जिन्हि पायो पद निर्बान॥[3]

हिंदु तुरुक हम एके जाना। जो एह मानै सब्द निसाना॥
सभै जीव साहब कर अहई। बूझि विचारि ग्यान एह कहई॥[4]

संत दरिया ने बिना किसी भेदभाव के हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को अपना शिष्य बनाया। उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट पता चलता है कि वे दोनों की धर्म-पुस्तकों से भली-भाँति परिचित थे।

दरिया के ग्रंथों में संत दरिया को सत्पुरुष के पुत्र (अंश) जोगजीत (जिन्हें सुकृत भी कहते हैं) का अवतार कहा गया है। सत्पुरुष ने उन्हें जीवों को मन और माया के चंगुल से छुड़ाकर अपने निजधाम सतलोक या छपलोक बुलाने के लिए इस संसार में भेजा। दरिया साहिब का कहना है कि उन्होंने इस दुनिया में अठारह बार जन्म लिया था – कभी गुप्त और कभी व्यक्त रूप में (ज्ञान दीपक, ह. ग्र., पृ. 395; द. यो. द., पृ. 242)।

दरिया साहिब का यह जीवन-चरित्र मुख्यत: उनके ग्रंथ ज्ञान दीपक पर आधारित है। दरिया सागर, भक्तिहेतु, मूर्ति उखाड़ आदि दरिया के अन्य ग्रंथों से भी कुछ बातें यहाँ ली गई हैं। ज्ञान दीपक के अनुसार दरिया सत्पुरुष के आदेश से माता के गर्भ में आए और दस महीने गर्भ में सत्पुरुष का ध्यान कर संसार में प्रकट हुए। दरिया साहिब के जन्म पर इनके परिवार में बहुत ख़ुशी मनाई गई।

सत्य पुर्ष अस कीन्ह बिचारा। सुकृत बहुरि लेहु अवतारा॥
हुकुम भये तब गर्भ में अयऊ। दस मास तहां ध्यान लगयऊ॥
भया जन्म बालक तब रहेऊ। आनंद मंगल सब मिलि गयऊ॥[5]

जब वह एक महीने के हुए तो एक महात्मा इनके घर पर आए। इनकी माँ बालक को महात्मा जी के सामने ले आईं। उस महात्मा ने बालक को सिर से पैर तक बड़े ध्यान से देखा और उसे बहुत सँभालकर रखने तथा बहुत प्यार से उसका पालन-पोषण करने की हिदायत दी। उन्होंने उसी समय बालक का नाम-करण भी किया और उसे 'दरिया' नाम से पुकारने को कहा। यह महात्मा कोई और नहीं, बल्कि दरिया के सतगुरु ही थे जिनका भेद बहुत वर्षों बाद तब खुला जब उन्होंने दरिया को दीक्षित किया और अंत में उन्हें अपनी गद्दी पर बिठाया। दरिया अपनी रचनाओं में उन्हें सदा 'संत साहिब' या 'सत्पुरुष' कहकर याद करते हैं:

मम माता कहे फकीर कोई अएऊ। बालक ले निकट चलि गयऊ॥
नख सिख नीके निरखि निहारी। नहिं किछु ऐगुन लक्षन बिचारी॥
बालक सेवा बहुत तत्त्व लइहो। दरिया नाम पुकारन करिहो॥[6]

दरिया जब केवल नौ वर्ष के थे तभी उनके परिवार की प्रचलित प्रथा के अनुसार उनके माता-पिता ने उनकी शादी कर दी। दरिया साहिब लिखते हैं कि उस बाल्यावस्था में अपने विवाह की चहल-पहल को वह समझ

नहीं सके। यह विधि का विधान था कि कोई पूर्वजन्म में तपस्या करनेवाली अपने पुण्य-प्रताप से विवाह-सूत्र में बँधकर उनके घर पहुँच गई:

नव वर्ष जवें गत भयऊ। मातु पिता मिलि ब्याह जो ठयऊ॥
कीन्ह विवाह विलम ना लाई। यह कौतुक हम लखि नहिं पाई॥
कीन्ह तपेस्या पहुँची आई। मन करता यह बिधि बनाई॥[7]

दरिया का कुछ समय बाल्यावस्था के भोलेपन में बीता। पर जब वह कुछ बड़े हुए, तब उन्होंने अनुभव किया कि संसार का माया-मोह उन पर कुछ असर कर रहा है। इसका कारण यह था कि शब्द अभी उनके अंदर गुप्त था अर्थात् सतगुरु ने अभी उन्हें शब्द का भेद नहीं दिया था। जैसा कि वह कहते हैं:

कछु दिन बालक रूप चलि गएऊ। किछु दिन सब्द संसै महं रहेऊ।
किछु दिन माया मोह बिसतारा। किछु दिन ममिता सभै हमारा॥[8]

जब वह 15 वर्ष के हुए तो वह अंदर से बहुत उदास रहने लगे। अक्सर सपने में उन्हें लगता कि वह पदों को कह रहे हैं और वे पद जागने पर भी उन्हें याद रहते। अपने अंदर उन्हें प्रकाश दिखाई पड़ता और फिर वह प्रकाश बुझ जाता। पिछले जन्मों की स्मृतियाँ उनके सामने आकर खड़ी हो जातीं और वह उनके विचारों में डूब जाते (ज्ञान दीपक, ह.ग्र., पृ.398-399)।

पंद्रह वर्ष जवें बीति गयऊ। बहुत उदास तब दिल में भयऊ॥
सपने सोवत पद इमि कहेऊ। जागत फेरि बिसरि नहिं गयऊ॥...
फिरि बरे फिरि जाए बुझाई। भयो प्रकाश दृष्टि में आई॥

पुरा कीर्त सब सूझि परे, कहे कवन पतिआय।
पछिला बात बिचारि के, रैनि गुनत दिन जाय॥[9]

कुछ दिन इस तरह से बीतने के बाद उनके ऊपर सतगुरु की कृपा हुई और उन्हें शब्द का भेद प्राप्त हो गया। सतगुरु से शब्द का भेद मिलने पर उनके अंदर हृदय को शीतल करनेवाली शब्द की मधुर धुन या सुरीली अनहद वाणी प्रकट हो गई। तब से वह प्रेम-भक्ति के साथ सच्चे नाम के सुमिरन में लग गए।

प्रेमपूर्ण अभ्यास से उनके हृदय की विचारधारा निर्मल हो गई और सतगुरु की बताई युक्ति से उनका आंतरिक ज्ञान उभर आया। इस प्रकार सच्चे नाम की उन्हें पूरी समझ हो गई। इन बातों का संकेत दरिया साहिब ने इन शब्दों में किया है:

किछु दिन बीते भौ तब ग्याना। क्रिपा कीन्ह सत साहब जाना॥
कीन्ह क्रिपा अति सीतलि बानी। प्रेम भगति सत सुमिरन ठानी॥
भयो प्रेम निकलंक बिचारा। गुर गमि ग्यान नाम निजु सारा॥[10]

जिस समय यह असीम आध्यात्मिक ज्ञान का भंडार उनके अंदर खुला, उस समय उनकी अवस्था बीस वर्ष की थी। जैसा कि वह कहते हैं:

वर्ष बीस बीतेव जानि। इमि खुले घट में खानि॥...
सब भौ अनभौ ज्ञान। भव रहित पद निर्बान॥[11]

दरिया ने अपने परिवार के लोगों को अपने इस गूढ़ ज्ञान का रहस्य बताया और उन्हें दृढ़ विश्वास दिलाया कि सतगुरु की शरण में आने पर जीव आवागमन से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है। पर उन्होंने इसके लिए मांस-मछली खाने से परहेज़ करना आवश्यक बताया। देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर उन्होंने परमात्मा-स्वरूप साधु या संत की पूजा करने और आंतरिक साधना में लगने पर ज़ोर दिया (ज्ञान दीपक, ह.ग्र., पृ.404)।

दरिया साहिब की पत्नी, उनके भाइयों और माता-पिता—सब ने उनके उपदेश को आदर के साथ ग्रहण किया। इसी समय के क़रीब दरिया साहिब ने अपने प्रथम ग्रंथ दरिया सागर की रचना की (ज्ञान दीपक, ह.ग्र., पृ.405)।

दरिया साहिब को अपने गाँव तथा अन्य पड़ोसी गाँवों के कट्टर तथा अंधविश्वासी हिंदुओं के कठिन विरोध का सामना करना पड़ा। उनके गाँव के सम्मानित पंडित गणेश उपाध्याय विरोध करनेवालों में सबसे आगे थे। शुरू में गणेश पंडित से दरिया साहिब का अच्छा संबंध था। पर जब दरिया साहिब ने मूर्ति पूजा की आलोचना की और ख़ासकर गाँव के नज़दीक के देवी-मंदिर में पशुओं की बलि चढ़ाने की प्रथा का विरोध किया, तब गणेश पंडित आपे से बाहर हो गए, क्योंकि वह उस देवी की मूर्ति की पूजा किया करते थे और उस मूर्ति को आदि शक्ति मानते थे। दरिया साहिब के मूर्ति उखाड़ ग्रंथ में दरिया और गणेश पंडित के वाद-विवाद का बड़ा ही सजीव वर्णन किया गया है। इस विवाद के कुछ प्रारंभिक पद नीचे दिए जा रहे हैं जिनसे यह पता चलता है कि दरिया साहिब की बातों से गणेश पंडित का क्रोध किस तरह एकाएक भड़क उठा:

गणेश वचन:

ब्रह्मा विष्णु महेसर देवा, कीन्हो जोति कर सेवउ रे जी।
आदि जोति है अंत जोति है, जोति सकल जग सिरजेउ रे जी॥

दरिया वचन:

तब हम कहा पुर्ख है आदि, यह तो लौंडी चेरीउ रे जी।
पत्थल गढ़ि गढ़ि मूरति बनाया, आदि केहु नाहिं पायेउ रे जी॥

गणेश वचन:

तब उन्ही कहा ऐसन जनि कहहू, गहहु चरन लपटानेउ रे जी।

दरिया वचन:

तब हम कहा मूरति है पत्थल, चाहो तो फोरि डारेउ रे जी।
हाथ पांव मुख सभै बनाया, बोलता बिना नकारेउ रे जी॥

गणेश वचन:

ऐसन बचन कोढ़ी करि डरिहै, आँखि दीहैं दुनो फोरिउ रे जी॥
जाहु जाहु अब किछु जनि कहहु, नगर रहनि जो चाहहु रे जी॥[12]

गणेश पंडित ने लोगों को दरिया साहिब के विरुद्ध उकसाना शुरू किया। उन्होंने लोगों को बताया कि परमार्थ का मर्म जाने बिना दरिया पहले भक्ति करने चले और बाद में उनका दिमाग़ ठिकाने नहीं रहा। गणेश पंडित ने कहा कि दरिया एक म्लेच्छ है जो सबका नाश करने के लिए काल के रूप में इस जगह पैदा हुआ है। यह तीर्थ-व्रत का भी विरोध करता है। इसे गाँव से निकाल देने में ही कल्याण है, नहीं तो आगे चलकर यह बहुत बड़ा उपद्रव खड़ा करेगा (ज्ञान दीपक, ह.ग्र., पृ.406)।

देवी की मूर्ति के विषय में इस बढ़ते हुए विरोध को देखकर दरिया साहिब के एक भक्त बीरबल नामक ब्राह्मण ने, जो उन्हीं के गाँव का था, एक रात देवी की मूर्ति को उखाड़कर उसे कहीं ज़मीन में गाड़ दिया। मूर्ति के एकाएक ग़ायब हो जाने से पूरे इलाक़े में तहलका मच गया। लोग इसके संबंध में अनेक प्रकार के अनुमान लगाने लगे। कोई कहता कि गहनों से पूरी तरह सुसज्जित न किए जाने के कारण देवी रूठकर कहीं चली गईं। किसी का ख़याल था कि छूआछूत पर पूरा ध्यान न देने के कारण वह नाराज़ होकर या तो स्वर्ग में या भूमि फोड़कर पाताल में चली गईं। किसी की राय थी कि उनकी खोज विंध्याचल में की जानी चाहिए जहाँ उनकी बहन का निवास-स्थान है। तीन महीने तक लोग देवी के लिए दुःखी रहे, पर उनका पता न चला।

दरिया के एक क्षत्रिय भक्त बलि सिंह को इस बात का पता था। एक दिन बातों ही बातों में उसने व्यंग्यात्मक रूप से किसी से यह कह दिया कि पत्थर की मूर्ति भला अपने आप कहाँ आ-जा सकती है, उसे कोई उखाड़कर कहीं ले गया होगा। इस बात से लोगों को उस पर शक हो गया और उन्होंने उसे डरा-धमकाकर इस रहस्य को खोलने के लिए बाध्य किया। अंत में उसने यह कहा कि आप लोग अपना ज़ोर दरिया साहिब

जैसे समर्थ पुरुष पर क्यों नहीं आज़माते जिन्हें सब कुछ पता है। अब क्या था? लोगों ने आकर चारों ओर से दरिया साहिब को घेर लिया और उनसे कहा कि यदि वह अपनी जान बचाना चाहते हैं तो उनके साथ चलकर देवी को तुरंत दिखाएँ। दरिया साहिब ने निर्भीकता-पूर्वक देवी का पता बताने से तब तक इनकार किया, जब तक लोगों ने गाँव के मुखिया के सामने जाकर देवी पर फिर कभी बलि न चढ़ाने का लिखित संकल्प नहीं किया। लोगों द्वारा मूर्ति पर बलि न चढ़ाने का लिखित संकल्प कर दिए जाने पर उन्होंने देवी का पता बता दिया। पर बात यहीं पर ख़त्म नहीं हुई। लोगों ने जब देवी की मूर्ति को ज़मीन में से खोदकर निकाला और उसे पानी से धोकर साफ़ किया तो उन्होंने पाया कि मूर्ति की नाक कटी हुई थी।

लोग तो पहले से ही क्रुद्ध थे। अब तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। उन लोगों ने यह तय किया कि देवी की नाक कटने और तीन महीने तक इन्हें भूखी रखने के प्रायश्चित्त में देवी पर दरिया की बलि चढ़ाना ही ठीक है। इस क्रूर कर्म के निमित्त लोगों ने दरिया साहिब के घर को चारों ओर से घेर लिया और उन्हें ज़बरदस्ती देवी के पास ले जाने की कोशिश की। पर इसी बीच दरिया साहिब के भाई, भतीजे और अन्य सेवक तलवारें, बर्छे आदि हथियार लिए ललकारते हुए आ पहुँचे जिससे सारी भीड़ तितर-बितर हो गई। दरिया के माता-पिता इस घटना से बहुत ही डर गए। पर दरिया साहिब ने इन शब्दों में उन्हें साहस और विश्वास दिलाया:

डरे डराए जीव कबहिं ना डरीए, गहिए नाम सहायउ रे जी।
एहि जग आय जीव सब तरिहों, डलिहों शब्द निसानीउ रे जी॥
वोए जिंदा है सदा सहाये, गर्वभंजन अघ मोचन रे जी।
तुम जनि रहो अब इमि डेराई, सरन धरिहें जीव आयेउ रे जी॥[13]

लोगों के भय दिखलाने या डराने से कभी नहीं डरना चाहिए। हमें तो दृढ़ता से नाम की शरण लेकर रहना चाहिए जो सदा ही जीव का सहायक होता है। मैं इस संसार में आकर शब्द यानी नाम की निशानी लगाकर

अर्थात् इसका भेद देकर शरण में आनेवाले सभी जीवों का उद्धार करूँगा। सदा जीवित रहनेवाला वह परमात्मा ऐसे जीवों की सदा सहायता करता है। वह गर्व को चूर-चूर करनेवाला और पापों से मुक्ति दिलानेवाला है। तुम लोग अब इस प्रकार डरे हुए न रहो। ये (विरोध करनेवाले) जीव स्वयं हमारी शरण में आएँगे।

गाँववाले फिर भी दरिया साहिब को दंड देने पर तुले हुए थे। उसी दिन शाम को सारा गाँव मुखिया के पास इकट्ठा हुआ। गाँव के मुखिया ने सबके सामने दरिया को अपने गढ़ पर बुलवाया और उनसे मूर्ति को तोड़ने का कारण पूछा। मूर्ति तोड़ने के बदले उन्होंने दरिया को अंग-भंग कर डालने की धमकी दी। दरिया ने निर्भीकता-पूर्वक उस पत्थर की मूर्ति को निर्जीव और निःसार बताया। इस पर मुखिया क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसने अपनी तलवार खींच ली और उनको मार डालने की धमकी दी।

दरिया साहिब जान-बूझकर तलवार उठाए मुखिया की ओर बढ़े। पर जैसे ही वह मुखिया की ओर बढ़े, वैसे ही अचानक वहाँ एक भयंकर सिंहनाद हुआ जिससे सारा गढ़ काँप उठा और मुखिया तथा सभी विरोधी डरकर भाग खड़े हुए। दरिया साहिब वहाँ से शांतिपूर्वक अपने घर लौट आए (*मूर्ति उखाड़, ह.ग्र.*, पृ. 18)।

कुछ दिन अपने घर पर बिताने के बाद दरिया साहिब एक बार भ्रमण के लिए निकले। वह गंगा के किनारे स्थित बहादुरपुर गाँव पहुँचे। वहाँ निहाल सिंह ने उनके ठहरने का प्रबंध किया। एक दिन जब दरिया अभ्यास में बैठे हुए थे, तभी गणेश पंडित वहाँ आ पहुँचे। उनको गंगा के पास दृढ़ आसन में बैठे देख वे खिलखिलाकर हँसे और व्यंग्यात्मक रूप से कहा कि दरिया तो बड़े भक्त बनकर बैठे हुए हैं। गंगा की पूजा के लिए उनके हाथ में पान-फूल आदि कोई सामग्री न देखकर वह बोले कि यों ही चुपचाप बैठने से भला कौन-सी पूजा होती है। हाँ, यदि इस स्थान तक दरिया गंगा को बुला दें तो मैं समझूँगा कि इनकी भक्ति में कुछ सचाई है। *मूर्ति उखाड़* ग्रंथ में दरिया साहिब ने इस घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है:

देखी दरस बहु गद्गद हंसेवो, भगत बड़ा इन्हीं जानिउ रे जी॥
का तुम आसन कसिके बैठे, हाथ किछु नाही देखेउ रे जी।
जो इहाँ गंगा आन बोलैहों, तब सत्या किछु जानेउ रे जी॥[14]

दरिया साहिब ने विनम्रता-पूर्वक कहा कि समस्त जल-थल परमात्मा के हुक्म के अंदर है, उनका जहाँ हुक्म होगा वहाँ ही गंगा की धारा जाएगी:

जल थल सब है हुकुम साहेब का, हुकुम होय तहाँ धायउ रे जी।[15]

लोगों के सामने दरिया साहिब की हँसी उड़ाने के लिए गणेश पंडित उस गाँव में घूम-घूमकर कह आए कि दरिया इस प्रतिज्ञा के साथ गंगा के पास आसन लगाकर बैठे हैं कि उनके चरणों की दासी गंगा जब तक वहाँ आकर उनका पैर नहीं पखारती, तब तक वह आसन से नहीं उठ सकते। कोई महात्मा-वेषधारी पुरुष (संभवत: दरिया के सतगुरु) इसी बीच दरिया के सामने प्रकट हुए और दरिया को आसन से न उठने के लिए कहकर चले गए। थोड़ी ही देर में वहाँ उस गाँव के बहुत-से लोग इकट्ठे हो गए। उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि एक भारी लहर गंगा में से उठकर बड़े ही सुंदर ढंग से दरिया साहिब की ओर चली आ रही है। इसे देखते ही लोगों ने शोर मचाया और पूरा गाँव मुखिया सहित इकट्ठा हो गया। तब तक गंगा की लहर लौट चुकी थी। पर लोगों ने दरिया साहिब के चरण, उनके आसन और आसपास की ज़मीन को भीगा हुआ पाया। सब लोगों ने भक्तिपूर्वक दरिया साहिब के आगे सिर झुकाया और अपनी पिछली ग़लतियों के लिए उनसे क्षमा माँगी। इस घटना से उस गाँव के लोग बहुत ही प्रभावित हुए। गाँव के मुखिया और गणेश पंडित भी इसके बाद से उनके प्रशंसक और समर्थक बन गए।

दरिया साहिब के गाँव के कुछ लोग फिर भी उनका विरोध करते ही रहे। उनके लगातार विरोध के कारण उन्हें भजन करने में बाधा होती थी। इसलिए वह एक दिन अपने विश्वासपात्र ब्राह्मण भक्त, बीरबल के साथ

उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। नाव से गंगा को पार कर वह बलिया ज़िले के हरदी नगर में पहुँचे जहाँ के मुखिया और उनके ब्राह्मण पुरोहित ने उनकी आवभगत की। बाद में उन सब ने दरिया साहिब से विनती की कि वह अपने गाँववालों की अज्ञानजनित ग़लतियों पर ध्यान न देकर अपने घर लौट जाएँ और उन लोगों पर दया करें। उनके गाँववाले भी दरिया साहिब के चले जाने से दु:खी हुए और उन्हें पश्चात्ताप हुआ। उनके मन में यह बात आई कि हो सकता है कि वह सचमुच में कोई सिद्ध पुरुष या महात्मा हों, जिन्हें वे लोग पहचान न पाए हों (ज्ञान दीपक, ह.ग्र., पृ.417)।

कुछ दिनों तक जहाँ-तहाँ भ्रमण करने के बाद दरिया साहिब गंगा को पार कर अपने इलाक़े में आए। पर वह अपने गाँव से बाहर ही अपना डेरा डाले रहे। बाद में वे मगहर (जहाँ कबीर साहिब ने चोला छोड़ा था) गए जहाँ से उनका विचार अयोध्या की ओर जाने का था। पर उनको घर छोड़े पाँच महीने हो गए थे जिससे उनकी पत्नी और माता-पिता बहुत दु:खी थे। इसलिए वे लोग आकर उन्हें घर लौटा ले गए। आधा महीना घर पर रहने के बाद क्वार के महीने में जब आसमान में निर्मल चाँद उगा हुआ था, दरिया के सतगुरु (जिन्हें दरिया सत्पुरुष का रूप मानते थे) उनके घर पधारे। उनकी पत्नी थाल में जल भरकर लाई और सतगुरु के चरण पखारकर चरणामृत लिया:

मम दासी यह महल ते, थरिया भर जल कीन्ह।
पाँव पखारि दरशन कियो, चरना अमृत लीन्ह॥[16]

दरिया और उनकी पत्नी की भाव-भक्ति से अतिशय प्रसन्न होकर सतगुरु कुछ दिनों तक वहाँ ठहरे और उन्होंने दरिया को परमार्थ की सभी गूढ़ बातें समझाईं।

उन्होंने उस अजर-अमर लोक का भेद दरिया को बताया जिसे 'अकह' कहा जाता है और जहाँ नाम का पूर्ण प्रकाश देखने में आता है। इस घटना का उल्लेख दरिया साहिब इन शब्दों में करते हैं:

दयानिधी अस कहा बुझाई। करहु भक्ति निजु प्रेम लगाई॥...
असल अकूफ करहु तुम्ह दासा। देखत जम कंह उपजी त्रासा॥
मूल अकह है ऐनक सारा। चहु ओर दीसे रंग करारा॥
अरज करहिं चरन सिर नाई। अजर लोक सभ कहि समुझाई॥

अकह मूल निजु नाम है, जोग जुक्ति परवान।
चेतनि रहे जीव जानिके, मरदो जम कै मान॥[17]

दरिया साहिब कहते हैं कि गुरु ने समझाया कि प्रेमपूर्वक भक्ति करने से सच्चे ज्ञान का प्रकाश होता है और यम दूर चला जाता है। 'अकह' में ज्ञान का पूर्ण सार है जो आंतरिक दर्पण में झलक रहा है और चारों ओर ज्योति जगमगा रही है। दरिया ने गुरु के चरण-कमलों में सिर झुकाकर विनती की। गुरु ने उन्हें अजर लोक के बारे में समझाया कि सच्चे योग की युक्ति को अपनाकर ही जीव, 'अकहलोक' में जाकर यम के बंधन से मुक्त होता है।

सारे आंतरिक रहस्य को समझाकर सतगुरु ने इस बात की हिदायत दी कि इस गूढ़ रहस्य को किसी दूसरे के सामने कभी भूलकर भी प्रकट नहीं करना चाहिए, अन्यथा काल का दाव लग जाता है:

अकूफ कहेव समुझाई के, गहिर गुँगा होय जाय।
फहस कतहीं नहिं किजिए, काल निमेरा आय॥[18]

एक बार जब दरिया के सतगुरु उनके घर पर ही थे, उस इलाक़े में बहुत समय तक पानी न पड़ने से भीषण सूखा पड़ा और सारी फ़सल झुलसने लगी। दरिया के मन में यह विचार आया कि वह अपने सतगुरु से वर्षा बरसाने के लिए विनती करें। पर दरिया के कुछ कहे बिना सतगुरु अपने आप बोल उठे कि लगातार गर्मी से फ़सल सूख रही होगी, कुछ पानी पड़ जाता तो ठीक था। बस, कुछ ही क्षणों में पानी की झड़ी लग गई और सारा इलाक़ा हरा-भरा हो गया। लोग ख़ुश हो गए। दरिया अपने सतगुरु की दयालुता और अंतर्यामिता को देख आनंद-विभोर हो गए।

सतगुरु ने बाद में दरिया को बताया कि जिस यत्न और प्रेम से सतगुरु अपने सेवकों की सदा सँभाल करते हैं, उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। उन्होंने दरिया को सारी बात बताई कि जब दरिया केवल एक महीने के थे तो वह किस तरह उनके घर आए, किस प्रकार मगहर में गुप्त रूप से उन्होंने उनको दर्शन दिए और किस प्रकार पिछले तीस वर्षों से वह उनकी सँभाल करते आ रहे हैं:

सतपुर्ष सत बचन जो कहेऊ। मगहर में दरसन तुम पयऊ॥
चीन्हें बिना करता नहिं कहेऊ। अकुफ किये तब सब सुख पयऊ॥
जब तुम जन्म जक्त मंह पाई। तब हम इमि तोहरे गृहि आई॥
माय तुहार निकट लै अएऊ। इमि करि नाम तुम्हारा कहेऊ॥
दरिया इनके सब मिलि कहेऊ। देइ दरश पिछे चलि गएऊ॥
बरिस तीस तुम्हें देखत भएऊ। जहँ जहँ फिरेउ तहाँ हम गएऊ॥[19]

इस बात का पता नहीं चलता कि दरिया के सतगुरु कौन थे। पर वह जो भी रहें हों, थोड़े-थोड़े दिनों के अंतर पर उन्होंने कई बार दरिया को दर्शन दिए और अंत में अपने सामने दरिया को सतगुरु की गद्दी पर बिठाया। इस गद्दी-नशीनी के अवसर का वर्णन दरिया इन शब्दों में करते हैं:

इमि करि साहब बचन सुनैऊ। कपड़ा एक सफेद मंगएऊ॥
इमि करि मोल तुरंत ले अएऊ। अच्छा करि आगे तब दिएऊ॥
हुकुम हुआ तख्त पर डारी। करि सरपोस सब युक्ति संवारी॥
ऐसन बचन साहब ने कहेऊ। बैठु तख्त तुम के यह दिएऊ॥[20]

तब सतगुरु ने एक सफ़ेद कपड़ा लाने का आदेश दिया, तुरंत एक कपड़ा लाया गया और सतगुरु के सामने रख दिया गया। सतगुरु के आदेश के अनुसार कपड़े को साफ़-सुथरा कर सिंहासन पर बिछा दिया गया और बहुत श्रद्धा के साथ सिंहासन के ऊपर शामियाना लगाया गया। सतगुरु ने

फिर दरिया साहिब से कहा कि आओ और इस सिंहासन पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें यह पद सौंपता हूँ।

दरिया साहिब अपने सतगुरु को बड़े भक्ति-भाव से माथा टेककर (कोर्निस कर) तख़्त पर विराजमान हो गए और उनके सतगुरु ने उनको सबके सामने अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, जैसा कि ज्ञान दीपक में उन्होंने कहा है:

कोर्निस करि तख्त पर गएउ। धन साहब तुम सब किछु किएउ॥ ...
साहब बचन कहा समुझाई। सहिजादा तुम मनसफ पाई॥[21]

दरिया साहिब को अपना उत्तराधिकारी बनाकर सतगुरु ने उन्हें निडर होकर संतमत का प्रचार करने के लिए कहा:

का तुम डर से रहो डेराई। अदल कीन्ह हम हद पर आई॥
सुबा अमीर जो राव कहावै। दीहों अदब जो अदल मेटावै॥[22]

दरिया से विदा लेने के पूर्व उन्होंने बड़े ही प्यार और उदारता से दरिया को अपनी इच्छा अनुसार उपहार माँगने के लिए कहा। उन्होंने दरिया को सभी प्रकार की धन-संपत्ति और सुख-सुविधा देने की इच्छा प्रकट की। उनका कहना था कि संतजन ही निराभिमान और निष्काम भाव से इन सबका उपभोग कर सकते हैं। दरिया ने विनम्रता-पूर्वक कहा कि उन्हें अपने सतगुरु के प्रति प्रेम और भक्ति के अतिरिक्त और किसी भी चीज़ की, किसी भी सांसारिक धन-संपत्ति या ऐश्वर्य की कामना नहीं है। फिर भी अपने सतगुरु का वचन रखने के लिए उन्होंने उनसे केवल यही दया माँगी कि वह मन-माया और इंद्रियों के प्रलोभन से सदा ऊपर रहें, उन्हें कभी दूसरों के आगे हाथ न फैलाना पड़े और उनके शिष्यों को कभी अन्न-वस्त्र का अभाव न खले:

दयानिधि हम दास तोहारा। कहों बचन सुनो एक बारा॥
त्यागों काम माया कर फांसा। अदल करों तेजों जमत्रासा॥

जिभ्या इंद्री स्वाद सब मारों। कामिनि कनक न हाथ पसारों॥
ना मांगों ना जाचों जाई। जो भेजहु सो तुमहिं बड़ाई॥
जो दफा संग जमा कीजै। अन्न कपड़ा इन्ह सब कंह दीजै॥[23]

सतगुरु ने दरिया की विनती स्वीकार करते हुए उन्हें यह पूर्ण दिलासा दिया:

अन्न कपड़ा हम देहिं भेजाई। जो दाफा सामिल होय जाई॥
जो जीव लागे तुमको जानी। ताको मेटे नर्क की खानी॥
ताहि लेई छपलोक बसावों। पुहुप पलंग पर ताहि बेलसावों॥[24]

सतगुरु ने कहा कि जो भी जीव तुम्हारा शिष्य होगा उसके खाने और कपड़े की आवश्यकता मैं पूरी करूँगा। जो भी जीव प्रेमपूर्वक संतमत के रास्ते पर चलेगा, उसे नरक के भोग से छुटकारा मिल जाएगा। वह जीव सतलोक का वासी होगा अर्थात् जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

उन्होंने दरिया को खुले शब्दों में यह वचन दिया कि जिस किसी जीव को भी वह सतशब्द या सतनाम का भेद देंगे, उसका उद्धार अवश्य होगा और वह निश्चित रूप से सतलोक (छपलोक) पहुँचेगा। जैसा कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है:

तब साहब अस बोले बानी। तुह सुक्रित हहु निर्मल ग्यानी॥
तोहरे नजीक जम नहिं जाई। ले उड़ो छपलोक समाई॥
तुम्ह कंह का डर एह संसारा। असल बचन यह अजर हमारा॥

तुम्ह कंह दीन्हों छापा मोहर, सत्तनाम टकसार।
तोहरि बांहि जो जिव आवहीं, लेइ उतारों पार॥

तोहरी बांहि जो जिव आवहीं। सत्त शब्द परवाना पावहीं॥
करे तत्तु प्रेम लव लाई। तन छूटे छपलोक समाई॥[25]

दरिया ने गृहस्थ और साधु दोनों को अपना शिष्य बनाया। उनका कहना था कि सच्चे नाम की छाप या दीक्षा के बिना कोई संसार-सागर को पार नहीं कर सकता:

गृहस्थ फकीर दोउ दफा हमारा। छापा बिन किमि उतरे पारा॥
छोड़े कपट गिरह नहिं डारी। बिमल प्रेम भव कबहिं ना हारी॥[26]

वह केवल इस बात पर ज़ोर देते थे कि सब को ईमानदारी से अपनी जीविका चलानी चाहिए। उन्होंने जाति और धर्म का कोई भेदभाव नहीं रखा। इसी प्रकार चाहे कोई सिर पर पगड़ी या टोपी पहने या अपना सिर खुला रखे, दरिया के लिए इन बातों का कोई महत्त्व नहीं था:

सिर खुला सिर जमा जो राखा। असल ज्ञान दुनहूँ के भाखा॥[27]

उनकी वास्तविक शिक्षा आंतरिक अभ्यास की थी जिसमें किसी बाहरी दिखावे या रस्म-रिवाज की आवश्यकता नहीं थी। परमार्थी साधक के लिए वह सादा पहरावा और सादगी का जीवन पसंद करते थे।

कुछ लोगों की यह धारणा थी कि गृहस्थ के लिए परमार्थी साधना को पूरी सचाई और पवित्रता के साथ निभाना संभव नहीं है। इसी लिए गृहस्थ रूप में रहनेवाले संत या महात्मा के प्रति उनकी पूरी आस्था नहीं होती थी। इस भ्रामक धारणा को दूर करने के लिए दरिया ने इस विषय को एक प्रश्न के रूप में अपने सतगुरु के सामने रखा ताकि इसका स्पष्ट उत्तर स्वयं उनके सतगुरु के मुख से सभी सुन लें। दरिया ने इस प्रकार प्रश्न किया:

साहब इमि कहिये समुझाई। गृहि मे नर किमि भक्ति बचाई॥...
काल फंद यह किमि मुक्तावै। छप्प लोक मंह किमि करि जावै॥[28]

दरिया साहिब अपने सतगुरु से प्रश्न करते हैं—हे मेरे सतगुरु, कृपा करके मुझे यह समझाएँ कि गृहस्थ जीवन में परमार्थ-साधना किस तरह निभाई जा सकती है। किस तरह से गृहस्थ साधक काल और माया के जाल से मुक्त होकर सतलोक को प्राप्त हो सकता है?

सतगुरु ने इस तरह उत्तर दिया:

साहब बचन जो कहा बिचारा। सतपुरुष है नाम हमारा॥
एहि तत्व गहे लौ लाई। ताके काल निकट नहिं जाई॥
उठत बैठत सुरति समावै। दिव्य दृष्टि में प्रेम लगावै॥
छापा सनद मोहर टकसारा। इमि करि उतरे भवजल पारा॥
देवा देइ धोखा सब त्यागे। सत्त बिचारि सोई निजु जागे॥
तेजे भरम भाव सत गहई। निज गहि प्रेम तुमहिं से लहई॥

उठत बइठत सत्त पुर्ष में, रहे शब्द लवलीन।
देइ दोहाई सत्य के, इमि करि काल मलीन॥[29]

दरिया साहिब के प्रश्न को सुनने के बाद सतगुरु विचारपूर्वक कहते हैं कि हमारे अर्थात् सतगुरु द्वारा दिए गए नाम को सत्पुरुष का प्रकट रूप समझो। यही नाम सत्पुरुष से मिलाता है। नाम अनमोल ख़ज़ाना है। जो जीव पूरी श्रद्धा और विश्वास से नाम को अपने हृदय में रखता है, काल उसके नज़दीक नहीं आ सकता। जो उठते-बैठते अंदर की तरफ़ ध्यान एकाग्र कर शब्द-धुन को पकड़े रखता है और मूर्ति पूजा और देवी देवताओं के ध्यान को त्यागकर अपने भीतर यह विश्वास जाग्रत किए रहता है कि नाम की भक्ति ही सत्य है; वह अवश्य ही काल के जाल से छूटकर मुक्ति-पद को प्राप्त करता है।

सतगुरु के पद की ज़िम्मेदारी लेने के बाद दरिया साहिब ने निर्भीकता-पूर्वक जीवों को दीक्षा देने का कार्य शुरू किया। शीघ्र ही उनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। धरकंधा के समीप स्थित नोखागढ़ के प्रसिद्ध ज़मींदार शुजाशाह दरिया के शिष्य बन गए। दरिया का ज्ञान रतन ग्रंथ, शुजाशाह के ही प्रश्नों के उत्तर में कहा गया है। इसमें दरिया साहिब ने सच्चे राम का स्वरूप समझाते हुए उन्हें दशरथ-पुत्र राम से भिन्न बताया है।

दरिया की बढ़ती हुई प्रसिद्धि को देखकर अड़ोस-पड़ोस के परंपरावादी हिंदू जलने लगे। उन्हीं दिनों भगवानदास नामक, धर्मदास का एक वंशज धरकंधा आया। दरिया के सतगुरु ने उन्हें इसकी पूर्व सूचना दे रखी थी। भगवानदास कबीर साहिब के शिष्य धर्मदासजी का वंशज तो था, पर वह मानो काल का रूप था जो कबीर साहिब और धर्मदास जी की शिक्षा की ऊटपटाँग व्याख्या करता तथा लोगों को गुमराह करता था। भगवानदास को कट्टर परंपरावादी हिंदुओं ने बताया कि दरिया लोगों को हिंदू धर्म के विरुद्ध बातें सिखाकर गुमराह करते हैं। वह वेद तथा राम-कृष्ण की निंदा करते हैं और देवी-देवताओं पर फूल-पत्र चढ़ाना व्यर्थ बताते हैं। एक साधारण मनुष्य होते हुए भी वह अपने आप को कबीर साहिब का रूप समझते हैं और कहते हैं कि उनसे सतनाम की दीक्षा लेने पर ही जीव इस संसार से मुक्त हो सकते हैं (द.यो.द., पृ.302; ज्ञान दीपक, ह.ग्र., पृ.506-507)। भगवानदास ने इन कट्टर हिंदुओं की बातों में हाँ में हाँ मिलाई। लोगों ने आपस में तय किया कि गाँव के मुखिया और भगवानदास के सामने सारा गाँव दरिया से इस बात की सफ़ाई माँगे कि वे ऐसा ग़लत प्रचार क्यों करते हैं। उन्होंने विचार किया कि इस प्रकार झूठे धर्म का प्रचार करनेवाले को दंड देने में कोई हानि नहीं है।

सारा गाँव एकत्र हुआ और दरिया साहिब को बुलवाया गया। गाँव के मुखिया ने दरिया साहिब से पूछा कि वह भगवानदास के सामने, जो धर्मदास के वंशज हैं, बताएँ कि राम और कबीर को वह एक दूसरे से भिन्न क्यों कहते हैं, जब कि कबीर ने अपने मत में राम-नाम का ही प्रचार किया है। दरिया साहिब के कुछ कहने के पहले ही भगवानदास मुखिया के समर्थन में बोल उठे:

कहन सुनन के दुह यह अहई। राम कबीर तौं एकै कहई॥[30]

भगवानदास की बात को सुनकर दरिया ने निर्भीक भाव से कहा कि इस डरपोक व्यापारी बनिये की झूठी बात में न पड़ें, आप कबीर साहिब का ग्रंथ मँगवाकर इस बात का निर्णय करें:

यह बनिया बैपारी अहई। डरे डराय झूठ यह कहई॥
ले आवहु ग्रंथ देहु इहं डारी। राम कबीर लेहु निरुवारी॥[31]

कबीर साहिब के पदों की व्याख्या कर दरिया ने यह सिद्ध कर दिया कि दशरथ-पुत्र राम और कबीर एक नहीं है। जब गाँव के मुखिया ने देखा कि दरिया के सामने सभी पराजित हो रहे हैं तो वह बात को काटते हुए क्रोध से बोले:

उनके डर तोहरे डर नाहीं। हो तुम कवन कहो एहि पाहीं॥
तुमके देऊ बाँधि जल डारी। कवन तुमहिं के करे उबारी॥
फिरि फिरि हाथ खर्ग पर लावै। ऐसन प्रभुता हमहिं देखावै॥[32]

अर्थात् उनको डर है और तुम्हें कोई डर नहीं? तुम अपने को क्या समझते हो? मैं तुमको बाँधकर पानी मे फेंक देता हूँ, देखता हूँ तुम्हें वहाँ से कौन निकालता है? मुखिया क्रोध में बार-बार अपना हाथ तलवार पर ले जाते हुए अपनी प्रभुता दिखाने लगे। तब दरिया ने कहा:

हमहिं दुइ भुजा तुम्हहि है चारी। ऐसन गर्व करहु अधिकारी॥...
हौ तुम गर्व बहुत तन फूला। उपारों डाढ़ पेड़ धरि मूला॥
सत्यपुरुष के अदल चलाऊ। रइयत करिके तुम्हहिं बसाऊ॥[33]

मेरे तो दो हाथ हैं, क्या तुम्हारे चार हैं? किस बात पर तुम इतना घमंड करते हो? अगर तुम्हें इतना घमंड है तो इस पेड़ की डाल को पकड़कर जड़ से उखाड़कर दिखाओ।

इस तनावपूर्ण वातावरण में एकाएक किसी फ़ौज के आने जैसा शोर हुआ और सभी विरोधी डर के मारे वहाँ से जैसे-तैसे भागे। इस कौतुक की चर्चा दरिया इस प्रकार करते हैं:

सत्य पुरुष गुन प्रगटे भएऊ। होइ गौ गुल फौज जनु अयऊ॥

सुनत सोर सरद भयो, बदन जो गया सुखाय।
आपन दफा बटोरि के, पहुँचा गढ़ में जाय॥

बिना फौज सोर सब भयऊ। यह लीला केहु लखि नहिं पयऊ॥[34]

इस घटना के बाद फिर किसी ने दरिया साहिब को छेड़ने की हिम्मत नहीं की। आठ वर्षों तक दरिया धरकंधा में रहे और बहुत-से लोगों को शब्द (नाम) की दीक्षा दी। अपने पारमार्थिक कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए उन्होंने अपने कुछ प्रमुख शिष्यों के बीच ज़रूरी कामों की ज़िम्मेदारियाँ बाँट दीं। मुरलीदास को उन्होंने दीवान बनाया, मणिदास को लेखक, दलदास को क़ानूनगो (डेरे की संपत्ति का हिसाब रखनेवाला) और वज़ीरदास को छरीदार (निजी सेवक) का काम सौंपा। इस प्रकार धरकंधा के अपने डेरे का प्रबंध विश्वासी सेवकों को सौंपकर दरिया देश-भ्रमण के लिए पूर्व दिशा की ओर निकल पड़े। रास्ते में लहठान ग्राम के भीखम दूबे से उनकी भेंट हुई जो उन्हें बड़े विनय और प्रेम के साथ अपने घर ले गए। कुछ समय के विचार-विमर्श के बाद जब भीखम दूबे को यह विश्वास हो गया कि दरिया एक पूर्ण संत हैं तो वह अपने चार सहोदर और दो चचेरे भाइयों सहित दरिया साहिब के शिष्य बन गए।

फ़्रान्सिस बुकानन की *शाहाबाद रिपोर्ट* से पता चलता है कि उस समय के बिहार और बंगाल के नवाब मीरक़ासिम ने दरिया साहिब को 101 बीघा लगान-मुक्त ज़मीन दी थी (*शाहाबाद रिपोर्ट*, पृ.78)।

मीरक़ासिम ने शाहाबाद के प्रभावशाली जमींदारों को दबाने के लिए एक बहुत बड़ी सेना के साथ 1761ई. में उन पर धावा बोला था। उसी समय एक बार उसने धरकंधा से कुछ मील दूर दिनारा थाने में ख़ेमा गिराया। यह सुनकर कि धरकंधा में कोई फ़क़ीर रहते हैं, मीरक़ासिम दरिया साहिब के दर्शन के लिए आया। दरिया साहिब को उसने, उनके न चाहते हुए भी, एक बहुमूल्य पत्थर भेंट किया। मीरक़ासिम के चले

जाने पर दरिया ने उस पत्थर को समीप के पोखरे में फेंक दिया। जब मीरक़ासिम को इस बात का पता चला तो उसने इसमें अपना अपमान समझा और दरिया साहिब के पास आकर अपना पत्थर वापस माँगा। कहा जाता है कि उन्होंने पोखरे के जल में हाथ डालकर वैसे अनेक पत्थर एक साथ ही निकाले और मीरक़ासिम को अपना पत्थर चुन लेने के लिए कहा। एक जैसे अनेक पत्थरों को देखकर मीरक़ासिम हक्का-बक्का हो गया। इस घटना से प्रभावित होकर उसने दरिया साहिब को 101 बीघा लगान-मुक्त ज़मीन देने की इच्छा प्रकट की। दरिया ने इसके लिए भी उसे स्वीकृति नहीं दी, पर उनके किसी शिष्य ने दान की सनद उससे बनवा ली।

किसी ऐतिहासिक उल्लेख के अभाव में दरिया के जीवन की अधिक विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं होती। पर सभी यह निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि दरिया लंबी उम्र तक जीवित रहे तथा अनेक कठिनाइयों और विरोधों के बावजूद उन्होंने निर्भीकता-पूर्वक संतमत के प्रचार का अथक प्रयास किया। उनके *शब्द* नामक ग्रंथ में वर्णित 'रामेश्वर गोष्ठी' से पता चलता है कि काशी के रामेश्वर पंडित से उनका परमार्थ पर वाद-विवाद हुआ था। जैसा कि पहले कहा गया है, दरिया ने कुल 22 ग्रंथों की रचना की थी। उनकी शिक्षा कहाँ तक हुई थी, इसका कुछ पता नहीं चलता, पर उनकी रचनाओं में हमें अलौकिक वर्णनात्मक प्रतिभा, हृदयग्राही चरित्र-चित्रण, विविध रसों और भावों का सुंदर विन्यास, अनेक छंदों और रागों का सहज प्रयोग तथा रूपक, उपमा, अनुप्रास आदि अलंकारों से युक्त प्रभावकारी और मुहावरेदार भाषा का स्पष्ट रूप से अनुभव होता है। इससे यह स्पष्ट है कि दरिया एक उच्च कोटि के संत-कवि थे।

संभवत: अपने जीवन-काल में ही दरिया साहिब ने अपने मत के प्रचार के लिए मुख्य केंद्र, धरकंधा के अतिरिक्त कुछ अन्य उपकेंद्र भी स्थापित कर लिए थे। अपने चोला छोड़ने के कुछ महीने पहले संवत् 1836 (1779ई.) में उन्होंने अपने उत्तराधिकारियों, गुनादास और टेकादास के नामों की भी घोषणा कर दी। इन दोनों उत्तराधिकारियों पर दरिया साहिब

की समान भाव से दया थी और वह इन दोनों को अपना धर्मपुत्र कहते थे। दरिया ने यह भी स्पष्ट किया कि इन उत्तराधिकारियों को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार होगा और इस प्रकार यह पंथ आगे चलता जाएगा (मूर्ति उखाड़, ह.ग्र., पृ. 29-30)।

अपने भाई फक्करदास के यह पूछने पर कि इस रीति से यह पंथ कब तक चलेगा, दरिया साहिब ने बताया कि जब तक एकनिष्ठ भाव से शब्द की साधना होती रहेगी, तब तक यह पंथ क़ायम रहेगा। पर जब इसमें बाहरी दिखावे और कर्मकांड का मिश्रण हो जाएगा, तब शब्द की शक्ति इससे विलग हो जाएगी। शब्द-साधना से ख़ाली होने पर जीव काल के मुख में जाएँगे। दरिया साहिब ने बताया कि तब वह फिर संत के रूप में संसार में आकर नए सिरे से शब्द का प्रवाह शुरू करेंगे। उन्होंने बताया कि युग-युग से शब्द या नाम की दीक्षा का यही क्रम चला आ रहा है। मूर्ति उखाड़ पुस्तक में फक्करदास और दरिया साहिब के इस वार्तलाप का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है:

कब लगि अदल चलै जग माँही, सो निजु बचन सुनावहु रे जी।
तुम जो पूछा अदल की बातें, सोई भेद तोहि भाखेउ रे जी॥
जब लगि शब्द रहै एकमंता, तब लगि अदल चलाइउ रे जी।
भेख कर्म में मिली जब जइहैं, बिलगिहें शब्द हमारउ रे जी॥
अंश हमार उठि कै जइहैं, काल मुख जीव जाइउ रे जी।
तब तब मम फिरि के इह जग अइहौं, करिहौं शब्द पुकारेउ रे जी।
करी प्रचार अदल फेरि रोपौं, हंस मुक्ताय लेइ जाइहौं रे जी।
जुगन्ह जुगन्ह से हम चलि आये, सार शब्द गोहराएउ रे जी॥[35]

इस प्रकार संतमत का खुला प्रचार और जीवों के उद्धार का अपना उद्देश्य पूरा कर दरिया भविष्य के लिए अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके विक्रम संवत् 1837 (1780ई.) में ज्योति ज्योत समा गए।

इसमें संदेह नहीं कि दरिया का जीवन एक सच्चे संत का जीवन था। अपना पूरा जीवन उन्होंने पारमार्थिक सेवा और जीवों के कल्याण में लगाया। कठिन से कठिन विरोध के सामने भी वह कभी झुके नहीं और अपनी जान को जोख़िम में डालकर भी सचाई और जीव-कल्याण के मार्ग पर डटे रहे। अपने विलक्षण व्यक्तित्व, अलौकिक अनुभूति और प्रभावशाली उपदेश द्वारा उन्होंने परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कर्मकांड की व्यर्थता सिद्ध की तथा संतमत के विशुद्ध संदेश को दूर-दूर तक फैलाया। बिहार और उत्तर प्रदेश का एक बहुत बड़ा इलाक़ा उनके उपदेश से लाभान्वित हुआ तथा अनेक जीव उनसे शब्द यानी नाम की दीक्षा पाकर अंधविश्वासों और बाहरी कर्मकांडों के जाल से मुक्त हुए। उस समय जब कि समाज जाति-धर्म की कट्टरता का शिकार था और अनेक प्रकार की संकीर्ण परंपराओं से बँधा हुआ था तथा उपदेश के प्रचार का पैदल यात्रा के सिवा कोई अन्य साधन नहीं था, दरिया ने सचमुच एक असाधारण सफलता प्राप्त की। ऐसी सफलता दरिया जैसे परमात्मा के दिव्य अंश या सच्चे शब्द-स्वरूपी संत के लिए ही संभव थी। अपने जीवन के इस सूक्ष्म भेद को दरिया साहिब ने अपने अंतरंग अनुज और शिष्य फक्करदास के आगे इस प्रकार खोला है:

पुर्ख हुकुम अदल जाय रोपेउ, हुकुमी अदल चलायेउ रे जी।
शब्द-सरूप चली आये जगत में, मानुख तन धरि गुन बल गायेउ रे जी।
सुनहु फक्कर यह वचन हमारा, सूक्ष्म भेद तोहि भाखेउ रे जी।
अगम कथा जुग जुग ले कहिया, जब लगि सत निसानीउ रे जी॥[36]

दरिया साहिब का संदेश

कहे दरिया जग आयेवो, सन्तन्हि के हित लागि।
जिन्ह जिन्ह शब्द बिचारिया, त्रिगुण माया त्यागि॥[1]

जो वास्तव में सत्य है, वह कभी बदलता नहीं; वह कभी नष्ट नहीं होता। वह सदा एक-सा रहता है। इसलिए जिन संतों या महात्माओं ने सत्य का साक्षात्कार किया है, उनका संदेश सदा एक ही रहा है। वे चाहे किसी भी जाति, धर्म या समय में क्यों न आए हों, उनके अनुभव और उपदेश में कभी कोई अंतर नहीं होता। उनके अनुभव और उपदेश की समानता को देखकर उनकी शिक्षा में सहज ही हमारा विश्वास दृढ़ हो जाता है।

कुल-मालिक संतों को संसार में जीवों पर दया करने के उद्देश्य से भेजता है। उनका एकमात्र उद्देश्य भटकी हुई जीवात्माओं को चिताना और उन्हें वापस अपने निजधाम ले जाना होता है। शब्द ही परमात्मा का सार है और इसी शब्द यानी नाम का अभ्यास करवाकर सच्चे संत-महात्मा जीवों को त्रिगुणात्मक माया के संसार से पार ले जाते हैं और उन्हें परमात्मा से मिलाते हैं। दरिया साहिब भी इसी उद्देश्य से इस संसार में आए थे।

संतों का निजी अनुभव संतमत का आधार

संतों की शिक्षा के एक होने का कारण यह है कि वे अपने निजी अनुभव के आधार पर ही उपदेश करते हैं। दरिया साहिब ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वे किसी की सुनी-सुनाई बात के आधार पर उपदेश नहीं करते, बल्कि जो कुछ उन्होंने अपनी दिव्य आंतरिक दृष्टि से देखा है, जो कुछ आंतरिक

ज्ञान स्वयं उन्होंने प्राप्त किया है, उसी के आधार पर वह कुछ लिखते या कहते हैं। इसी लिए वह अपनी शिक्षा को प्रमाणित बताते हैं। वह कहते हैं:

कहि सुनी सभ कहत है, सुनि पाए जेहि कान।
दरिया देखि जो कहे, सो बदिये प्रमान॥[2]

निजी अनुभव से रहित लोग कानों से जो भी सुनते हैं, उसी सुनी-सुनाई बात को दूसरों से कहते फिरते हैं। इस प्रकार संसार में अंधपरंपरा चली आ रही है और लोग सच्चे ज्ञान की खोज किए बिना अंधविश्वास में पड़े रहते हैं। पर दरिया साहिब स्वयं अपनी आंतरिक आँख से देखकर उपदेश करते हैं। ऐसे निजी अनुभव के आधार पर दिए गए उपदेश को ही प्रामाणिक कहना चाहिए।

जो कछु देखा लिखा सोइ भाखा। ज्ञान दीपक उर अन्तर राखा॥...
सत्त वचन लिखा निजु ज्ञाना। सन्त समुझि लेहु पद निर्बाना॥[3]

दरिया साहिब कहते हैं कि अपने अंदर के ज्ञान-दीपक के प्रकाश में जो कुछ मैंने देखा, केवल उसे ही लिखा या कहा। संतों के हृदय पर से मन-माया का परदा हट चुका होता है तथा उनका हृदय सच्चे ज्ञान से प्रकाशित रहता है। इसलिए अपने निजी ज्ञान के आधार पर वे केवल सत्य बातें लिखते हैं। संत दरिया ने भी अपने निजी ज्ञान के आधार पर केवल सत्य बातें ही लिखीं। निर्वाण पद को प्राप्त करानेवाली इन सत्य बातों को परमार्थ के सच्चे खोजी या संतजन ही समझेंगे।

देखेवो सम्पूरन प्रेम गति, पुरुष पुरान अमान।*
लीला अजर अनूप है, को करि सकै बखान॥[4]

आदि पुरुष या परमात्मा प्रेममय है। वह अजर और अनूप है। पर दरिया साहिब बताते हैं कि मैंने उस परमात्मा की संपूर्ण प्रेम-गति को

* **अमान**=असीम, अपरिमित

देखा है। उस परमात्मा की लीला अपार है। यह हमारी बुद्धि की पहुँच से बाहर है। तब भला ऐसा कौन कवि हो सकता है जो परमात्मा की इस अगम और अपार लीला का बखान कर सके?

अन्य संतों ने भी इसी प्रकार अपने निजी अनुभव को अपनी शिक्षा का आधार बताया है। उदाहरण के लिए गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

संतन की सुण साची साखी॥ सो बोलह जो पेखह आखी॥[5]

गुरु नानक देव जी कहते हैं:

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआन वे लालो॥[6]

इसी प्रकार तुलसी साहिब (हाथरसवाले) कहते हैं:

निज नैना देखा हिये आँखी। जस जस तुलसी कहि कहि भाखी॥[7]

इसी प्रकार दादू दयाल जी कहते हैं:

दादू देखा अदीदा, सब कोई कहत सुनीदा॥[8]

ईसा मसीह ने भी कहा है:

'मैं तुझसे सच कहता हूँ कि हम जो जानते हैं, वही कहते हैं और जो हमने देखा है, उसी की गवाही देते हैं।'[9]

संतों का संसार में आने का उद्देश्य

संत परमात्मा यानी सत्पुरुष के अंश या रूप होते हैं और सत्पुरुष का ही संदेश लेकर जीवों को काल-जाल से मुक्त करने और उन्हें अपने निजधाम (सतलोक) वापस ले जाने के लिए इस संसार में आते हैं। तीनों लोकों में फैले हुए काल के कठिन जाल की विकरालता को बताते हुए, वे उससे परे के चौथे लोक यानी सतलोक की अवर्णनीय शोभा और सुख की ओर जीवों का ध्यान दिलाते हैं। इस प्रकार वे उन्हें चिताकर सतलोक ले जाते हैं और परम दयालु परमात्मा यानी सत्पुरुष से मिलाप

करवा देते हैं। संत दरिया सत्पुरुष के एक ऐसे ही संदेशवाहक थे। जैसा कि वह कहते हैं:

तीनि लोक जम दारुन अहई। चौथा लोक पुर्ख एक रहई॥
अजर अमर हंसा तंह होई। अम्रित झरि चाखै सभ कोई॥
सो सुख मुख नहिं जात बखानी। बूझै सो जो निरमल ग्यानी॥
सत्त लोक सत्त का बंधा। बिनु सतगुर जस जड़मति अंधा॥[10]

वह फिर कहते हैं:

सतगुरु वहां से आइया, सतपुरुष को अंश।
हंस वंश कुल राज मनि, इहां कहां वो वंश॥[11]

तीनों लोकों में कठोर यमराज का शासन है जो सबको जन्म-मरण के चक्र में फँसाए रखता है। सत्पुरुष का निवास चौथे लोक में है जहाँ की रूहें या पवित्र आत्माएँ अमर और अविनाशी होती हैं। वहाँ पहुँचकर आत्मा सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाती है। वहाँ सदा अमृत बरसता रहता है और सभी उस अमृत का स्वाद चखते और उसका आनंद लेते हैं। जिसे निर्मल ज्ञान की प्राप्ति हुई है, केवल वही अपने अंदर इस आनंद का अनुभव कर सकता है।

अजर नाम सतपुरुष अनूपा। दया सिन्धु सुख अविगति रूपा॥*
शील सागर सुन गहिर गंभीरा। अति अथाह गति सब मति थीरा॥
अमृत सागर सुख की खानी। रूप राशि किमि कहौं बखानी॥[12]

आगे संकेत करते हैं:

सोभा अगम अपार, हंस बंससुख पावहीं।
कोइ ग्यानी करै बिचार, प्रेम तंतु जाके बसै॥[13]

---

* **अविगति**=जो जाना न जाए, अज्ञात; जो कभी समाप्त न हो, अविनाशी।

स्वामी जी ने भी अपने को ऐसा ही संदेशवाहक माना है। सतगुरु वास्तव में तीसरे लोक से परे चौथे लोक (सतलोक) का निवासी होता है। वह कहते हैं:

निज घर तुम्हरा हमरे देश। अब मैं कहूं देश सन्देश॥
सत्तनाम सत्तपुरुष कहाई। चौथा लोक संत कहें भाई॥[14]

स्वामी जी सत्पुरुष और उनके अवर्णनीय लोक की शोभा तथा वहाँ के अपूर्व सुख का संकेत इन शब्दों में करते हैं:

चौथा लोक तीन के पारा। सत्तनाम सतगुरु दरबारा॥
संत सुरत वहाँ करे बिलास। सत्तपुरुष सत शब्द निवास॥[15]

स्वामी जी फिर से संकेत करते हैं:

तीन लोक में बसता काल। चौथे में रहे नाम दयाल॥
सोई नाम संतन से पावे॥ बिना संत नहिं नाम समावे॥[16]

जीव का सच्चा स्वरूप

सत्पुरुष की अपार महिमा तथा सतलोक की अनुपम शोभा और सुख का उल्लेख कर दरिया साहिब संसार के दु:खी जीवों को उनके वास्तविक आनंदमय स्वरूप की याद दिलाते हैं। वह बताते हैं कि यह जीव जो अज्ञानवश आवागमन के चक्र में फँसा हुआ है, वास्तव में सत्पुरुष का अंश या तेज है। जीव के साथ उसका स्वामी परमात्मा भी इस शरीर के अंदर ही है और वह हम सब के अंदर धुनकार-धुन के रूप में सदा हमें आवाज़ देता रहता है। आंतरिक अभ्यास द्वारा हम अपने अंदर जाकर इस आवाज़ को सुन सकते हैं और अपने सच्चे स्वरूप को पहचान सकते हैं। वह कहते हैं:

पुर्ख एक सभन्हि ते न्यारा। जाको तेज बरत संसारा॥
ताके अंस जीव सभ अहई। बोलनिहार बोले घट कहई॥[17]

सत्पुरुष सबसे निराला है। इसी के तेज से समस्त संसार प्रकाशित है। सभी जीव इसी के अंश हैं और वह सभी के अंदर रहकर अपनी आवाज़ दे रहा है अर्थात् सबके अंदर उसकी धुनकार-धुन उठ रही है।

सुनहू पंडित हंस के आदी। झूठ बात कहै जो बादी॥...
प्रतिबेंबु घट परगट अहई। पुर्ख तेज इमि करि जग लहई॥
देखहु ग्यान एह काया बिलोई। अपने आपु में जाए समोई॥[18]

व्यर्थ की झूठी बातें करनेवाले पंडित को दरिया साहिब आत्मा की उत्पत्ति के संबंध में सच्ची बात बताते हुए कहते हैं कि आत्मा वास्तव में सत्पुरुष का प्रतिबिंब है। इस प्रतिबिंब के रूप में ही संसार सत्पुरुष के तेज को प्राप्त करता है। इस शरीर को मथकर अर्थात् आंतरिक साधना द्वारा अपने आप में प्रवेश करके ही हम इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

अन्य संतों ने भी जीव को सत्पुरुष यानी परमात्मा का अंश माना है। कबीर साहिब कहते हैं:

कहो कबीर इह राम की अंस॥[19]

तुलसी साहिब फ़रमाते हैं:

चौथे महल पुरुष इक स्वामी। जीव अंस वहि अन्तरजामी॥[20]

गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं:

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥[21]

गुरु नानक साहिब का उपदेश है:

आतम मह राम राम मह आतम चीनस गुर बीचारा॥[22]

बंधन और मुक्ति

सतलोक का रहनेवाला और सत्पुरुष का अंश यह अविनाशी जीव इस संसार में आकर जन्म-मरण के चक्र में फँस गया है। संक्षेप में यह कहानी

इस प्रकार है—काल सत्पुरुष का अंश है, काल ने सत्तर चौकड़ी युगों तक सत्पुरुष की अति संयम और लगन से सेवा की, उसकी सेवा से प्रसन्न होकर सत्पुरुष ने वरदान माँगने के लिए कहा। काल ने प्रार्थना की कि उसे तीनों लोकों का कार्य-भार सँभालने की इजाज़त दें। सत्पुरुष ने तीन लोक की रचना की और कार्य-भार काल को सौंप दिया। यद्यपि जीव उसी सत्पुरुष का अंश है जिन्होंने काल और माया की उत्पत्ति की है, फिर भी काल और माया ने अपने लुभावने जाल में जीवों को बाँधकर उन्हें अपने अधीन कर लिया और जीव काल के हाथ, जीवन-मृत्यु के चक्र में फँसकर रह गया। क्या राजा क्या रंक, सभी इनके जाल में उलझे हुए हैं। जैसा कि दरिया साहिब कहते हैं:

सत्तपुर्ख के पुत्र जो अहई। सत्तरि जुग सेवा जो करई॥
कीन्ह सेवा पुर्ख के आगै। बहुते जूग जोग जो जागै॥
तब पुर्ख अस बोले बानी। निंरजन सेवा बहुत बखानी॥
पुर्ख कहा मागहुं कछु दीजै। सत्त बचन माथा नाए लीजै॥
तीनि लोक यह हम कंह दीजै। जहवां हाट बसावन कीजै॥[23]

सत्पुरुष के पुत्र निरंजन ने सत्तर युगों तक सत्पुरुष की सेवा की। सत्पुरुष के आगे सेवा करके अनेक प्रकार से योग-साधना की। तब सत्पुरुष निरंजन की सेवा का बहुत बखान करके बोले कि कुछ माँगो। निरंजन ने कहा कि आपका वचन सत्य है, आपके आगे मस्तक नवाकर मैं आपसे यह माँगता हूँ कि मुझे तीन लोक प्रदान कीजिए जहाँ पर रहकर मैं कारोबार कर सकूँ।

काल ने तीनों लोकों में अपना जाल फैला दिया। दरिया साहिब कहते हैं:

तीनि लोक का रचना कीन्हा। पुहुमी सर्ग पाताल जो लीन्हा॥
परदा डारि आपु होए बैठा। आपुहिं तीनि लोक मंह ऐंठा॥
जाकर जीव यह सकल पसारा। सत्त पुर्ख से छोड़ा करारा॥

छपलोक छपाए जो दीन्हा। तीनि देव परिपंच जो कीन्हा॥
उपजे बिनसे इहवहिं डारै। इहवहिं लेइ फिरि इहवहिं मारै॥[24]

निरंजन ने पृथ्वी, स्वर्ग तथा पाताल—इन तीन लोकों की मायावी रचना की और सत्पुरुष पर पर्दा डालकर अपने को तीनों लोकों का स्वामी बताते हुए सबके बीच अकड़कर बैठ गया। जीव-जंतुओं की सारी रचना जिस सत्पुरुष की है उनसे उसने किनारा कर लिया। उसने त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) के साथ मिलकर संसार में प्रपंच (मायावी छलावा) खड़ा कर दिया और जीव से सतलोक को छिपा लिया। तीन लोकों में काल सभी जीवों को जन्म देता है तथा यहीं पर वे सब मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वह जीवों को इसी त्रिलोक के अंदर जन्म-मरण के जाल में उलझाए रखता है:

एह सुख अमरापुर, सत सब्द पहचानिये॥
प्रेम निकट नहिं दूरि, जहां देखो तहां साँच है॥

जहां से जोति निरंजन आई। तहां से जीव सब जग फैलाई॥
ताके दीन्ह जक्त को भारा। प्रजा जीव सब भए बेचारा॥...
अइसन कीन्ह भरम को साजा। तामें अरुझे रंक और राजा॥[25]

सच्चे शब्द की पहचान कर लेने पर ही जीव अविनाशी सतलोक को प्राप्त कर सकता है और तभी यह जीव सुखी हो सकता है। यह सच्चा शब्द हर जगह व्याप्त है और केवल प्रेम के द्वारा ही इसके निकट जाया जा सकता है, अन्यथा यह जीव के लिए दूर ही है। उस सतलोक से ही ज्योति और निरंजन आए हैं। वहीं से सभी जीवों को संसार में फैलाया गया है। उसी निरंजन को संसार का भार सौंपा गया है तथा सभी जीव उसकी प्रजा बने हुए हैं। इस प्रकार काल ने भ्रम पैदा कर रखा है जिसमें अमीर और ग़रीब एक समान रूप से उलझे हुए हैं।

यहाँ जीव मन और माया के शिकंजे में जकड़े हुए थे, जन्म और मरण के चक्र में फँसे हुए थे, अपने असल घर की उन्हें कोई याद नहीं थी।

जीवों की यह दशा देखकर दयालु सत्पुरुष को दया आई। उन्होंने जीवों को काल-जाल से छुड़ाने के लिए, उनको सतलोक वापस बुलाने के लिए अपने अंश को सतगुरु के रूप में इस संसार में भेजा। परम दयालु सत्पुरुष द्वारा भेजे गए सतगुरु अनादि काल से जीवों के उद्धार के लिए इस संसार में आते रहे हैं। जब वे अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर सत्पुरुष के पास वापस लौटने लगते हैं, तो वे जीवों के उबार का कार्य जारी रखने के लिए अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाते हैं। प्राय: ऐसा समय कभी नहीं होता जब जीवों को चितानेवाला और उन्हें सतलोक को ले जानेवाला कोई सतगुरु इस संसार में न रहे। युग-युग से जीवों के उद्धार का यह सिलसिला चला आ रहा है कि दयालु परमात्मा अपनी मौज के अनुसार जिन-जिन जीवों को बंधन से मुक्त करना चाहता है, उनके लिए वह सतगुरु को संसार में भेज देता है।

संत दरिया भी सत्पुरुष द्वारा भेजे गए एक ऐसे ही सतगुरु थे। जैसा कि उन्होंने कहा है:

कहै दरिया जग आयेवो, सन्तन्हि के हित लागि।
जिन्ह जिन्ह शब्द बिचारिया, त्रिगुण माया त्यागि॥[26]

सतगुरु इस संसार में अधिकारी जीवों की भलाई के लिए यानी उन्हें उबारने के लिए आते हैं। जो जीव उनके बताए शब्द के मार्ग पर चलते हैं वे सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण वाली माया के जाल से छूट जाते हैं।

सतगुरु द्वारा नियुक्त किए जानेवाले उत्तराधिकारियों का सिलसिला कब तक चलता है, क्यों इसका अंत होता है और फिर क्यों किसी दूसरी जगह किसी दूसरे संत का आगमन होता है, इन सब का स्पष्टीकरण दरिया साहिब स्वयं अपने ही उदाहरण द्वारा इस प्रकार करते हैं:

जब लगि शब्द रहै एकमंता, तब लगि अदल चलाइउ रे जी।
भेख करम में मिली जब जइहै, बिलगीहे शब्द हमारउ रे जी॥
अंस हमार उठि कै जइहै, काल मुख जीव जाइउ रे जी।

तब हम फिरि के यह जग ऐहौं, करिहों शब्द पुकारिउ रे जी॥
करि पुकार अदल फेरि रोपों, हंस मुक्ताय लेइ जावही रे जी।
जुगन्ह जुगन्ह से हम चलि आये, सार शब्द गोहरायेउ रे जी॥[27]

जब तक शब्द यानी नाम का अभ्यास एकनिष्ठ भाव से, बिना किसी बहिर्मुखी साधनों की मिलावट के विशुद्ध रूप से चलता रहेगा, तब तक यह पंथ जारी रहेगा। पर जब इसमें बाहरी दिखावे और कर्मकांड की मिलावट आ जाएगी, तब हमारा निर्मल शब्द इस पंथ से विलग हो जाएगा। हमारे शब्द-स्वरूपी अंश के उठ जाने से यह पंथ नि:सार या खोखला हो जाएगा और तब बाहरी दिखावे और कर्मकांड में लगे इस पंथ के जीव काल के मुख में जाएँगे। दरिया साहिब कहते हैं कि ऐसी स्थिति में सत्पुरुष मनुष्य-रूप धारण कर सतगुरु के रूप में फिर इस संसार में किसी अन्य जगह अवतार लेते हैं और फिर नए सिरे से शब्द का प्रवाह जारी करते हैं। इस प्रकार युग-युग से संत-सतगुरु संसार में आते रहे हैं और सच्चे शब्द यानी नाम के प्रचार का सिलसिला चलता रहा है। जीवों के कल्याण के लिए एक न एक सतगुरु सदा ही संसार में विद्यमान रहते हैं।

यह स्पष्ट है कि केवल देहधारी सतगुरु ही जीवों को शब्द यानी नाम की दीक्षा दे सकते हैं। जो सतगुरु जीवों के उबार का अपना काम पूरा कर परमात्मा में समा गए और परमात्मा के साथ एकरूप हो गए, उनसे जीवों को फिर दीक्षा नहीं मिल सकती। उनसे फिर दीक्षा प्राप्त करने की आशा रखना स्वयं परमात्मा से ही दीक्षा प्राप्त करने की आशा रखने के समान है। पर परमात्मा, जिसे न हम देख सकते हैं और न जिसकी बात सुन या समझ सकते हैं, वह भला कैसे हमें दीक्षा दे सकता है? यदि वह स्वयं हमें दीक्षा दे सकता, तो उसे मनुष्य का शरीर धारण कर सतगुरु के रूप में आने की कभी आवश्यकता ही नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा केवल मनुष्य के रूप में अर्थात् केवल सतगुरु के रूप में ही मनुष्य को दीक्षा दे सकता है और उसकी सँभाल कर सकता है। गुज़रे हुए

संत या सतगुरु की टेक लेना अदृश्य और अज्ञात परमात्मा की टेक लेने के ही समान व्यर्थ और निष्फल है। इससे कभी भी हमारा काम नहीं चल सकता। या तो हमें जीवित गुरु की आवश्यकता स्वीकार करनी पड़ेगी या हमें यह मानना होगा कि कभी किसी को किसी गुरु की ज़रूरत ही नहीं है। पर हम जानते हैं कि गुरु के बिना न हम दीक्षा पा सकते हैं और न हमारी सँभाल ही हो सकती है। जीवों की दीक्षा और उनकी सँभाल का कार्य जारी रखने के लिए ही सतगुरु अपना चोला छोड़ने के पहले अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाते हैं। जब संत या सतगुरु जीवित गुरु की आवश्यकता मानते हैं, तब हम किसी गुज़रे हुए संत या सतगुरु की टेक लेकर सचमुच ही एक भारी भूल करते हैं। जीवों को परमात्मा के पास ले जाने का आज्ञापत्र या हुक्मनामा केवल जीवित सतगुरु के ही पास होता है। इसी लिए दरिया साहिब जीवित गुरु को धारण करने का स्पष्ट आदेश देते हुए कहते हैं:

जिंदा गुरु निश्चय गहो, वा गुरु सनदी हजूर।
वाहि सनदी के देखते, जम भागे बड़ी दूर॥[28]

निश्चित रूप से जीवित गुरु को धारण करो। क्योंकि वह जीवित गुरु ही परमात्मा का हुक्मनामा रखनेवाला अधिकारी है। उस अधिकारी को देखते ही यमराज बहुत दूर भाग खड़ा होता है।

अन्य संतों ने भी सच्चे जिज्ञासुओं या साधकों के पथ-प्रदर्शन के लिए सतगुरु के हमेशा संसार में विद्यमान रहने की बात कही है। वक़्त का सतगुरु ही हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकता है। पिछले सतगुरु जो अपना कार्य पूरा कर परमात्मा में समा गए, हमारी सँभाल नहीं कर सकते। वक़्त का सतगुरु ही पिछले सभी सतगुरुओं का रूप होता है। इसी प्रकार युग-युग से जीवों की सँभाल होती आई है। इसी लिए गुरु नानक साहिब कहते हैं:

जुग जुग संत भले प्रभ तेरे॥[29]

हर जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी॥
जुग जुग पीड़ी चलै सतगुर की जिनी गुरमुख नाम धिआइआ॥[30]

स्वामी जी ने भी खुले रूप से इस सत्य को हमारे सामने रखा है। वह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि वक़्त का सतगुरु ही पिछले सतगुरुओं का रूप होता है। इसलिए पिछले गुरुओं की टेक छोड़कर वक़्त के सतगुरु की ही शरण लेनी चाहिए। वह कहते हैं:

पिछलों की तज टेक तेरे भले की कहूं॥
वक्त गुरु को मान तेरे भले की कहूं॥[31]

और भी अधिक स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं:

दया मेहर से बचन सुनावें। वे हैं पूरन पुरुष अनाम॥
धरी देह मानुष की गुरु ने। ज्यों त्यों तेरा करें कल्यान॥
सेवा कर पूजा कर उनकी। उनही को गुरु नानक जान॥
वोही कबीर वोही सतनामा। सब संतन को वहीं पिछान॥*
तेरा काज उन्ही से होगा। मत भटके तू तज अभिमान॥[32]

संत और सत्पुरुष की एकरूपता

यह बात ध्यान देने की है कि संत या सतगुरु जो परमात्मा के अंश कहे जाते हैं, वास्तव में परमात्मा के प्रकट रूप होते हैं। उनमें और परमात्मा यानी सत्पुरुष में कोई अंतर नहीं होता। सत्पुरुष संसार में मनुष्य के रूप में इसलिए प्रकट होते हैं कि वे मनुष्यों को उनके ही स्तर पर आकर समझा सकें। मनुष्य को केवल मनुष्य ही समझा सकता है। सतगुरु परमात्मारूपी सागर की लहरें होते हैं। वे परमात्मारूपी सागर में से आते हैं और अपना उद्देश्य पूरा करके वापस जाकर उसी सागर में समा

* पिछान=पहचानो

जाते हैं। संत या सतगुरु की परमात्मा से एकरूपता बताते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

ऐसो पारस संत समाना। संत साहब कह एकै जाना॥[33]

सच्चा परमात्मा सर्वशक्तिमान् और सब कुछ जाननेवाला है। उस परमात्मा के रूप सतगुरु का ध्यान करने से दुर्बुद्धि दूर हो जाती है। लोहे को सोना बनानेवाले, पारस के समान दुष्ट को सज्जन बनानेवाले संत-सतगुरु, परमात्मा के ही समान हैं। संत और परमात्मा को एकरूप जानना चाहिए।

तन मन अर्पन कीजिए, सतगुर आगे शीस।
अमर मूरति लखाइहैं, सो सतगुरु जगदीस॥[34]

अपने सतगुरु के आगे तन, मन और सिर को भी अर्पित कर देना चाहिए, अपने आपाभाव को बिल्कुल मिटाकर अपने आप को सतगुरु के हवाले कर देना चाहिए, क्योंकि सतगुरु साक्षात् परमात्मा के अविनाशी रूप का दर्शन करवा देते हैं।

परमात्मा में से प्रकट होने के कारण ही सतगुरु को सत्पुरुष का अंश या पुत्र कहा जाता है, पर सतगुरु वास्तव में स्वयं सत्पुरुष ही होते हैं। सच्चा नाम यानी शब्द ही परमात्मा का वास्तविक स्वरूप है और उसी शब्द से संत प्रकट होते हैं। केवल मनुष्य का शरीर धारण करने के कारण वे शब्द-स्वरूपी संत या सतगुरु, परमात्मा से भिन्न दीख पड़ते हैं। पर इस मनुष्य-रूपधारी परमात्मा के सहारे ही जीव सतलोक पहुँचकर परमात्मा से मिल सकता है। दरिया साहिब कहते हैं:

जहां बसे सतगुर सतपुर देशवा, भेषवा धरीय पगुढारही रे जी।
आए जगत में जीव समुझावही, गावही निजु पद जानिउ रे जी॥[35]

सतगुरु वास्तव में सतपुर यानी सतलोक के निवासी होते हैं। मनुष्य का रूप धारण कर वे इस संसार में आते हैं। यहाँ आकर वे अपने निज-स्थान (सतलोक) की महिमा का गुणगान करके जीवों को चिताते हैं।

अजर अमर पुरुष वह अहई। हम देह धारी सब गुन कहई॥
सत सुकृत के अतने भेदा। वो अमर हम ज्ञान निखेदा॥
सुकृत सीढ़ी सत तब पावै। बिना सीढ़ी लोक नहिं जावै॥
सीढ़ी छोड़े तौ जाय बोहाई। ताके लोक लिखा नहिं भाई।[36]

दरिया साहिब कहते हैं कि सत्पुरुष, अविनाशी तथा अमर हैं और मैं मनुष्य शरीर धारण कर, उनके सभी गुणों का बखान करता हूँ। सत्पुरुष और सुकृत-रूप मुझ में केवल इतना ही भेद है कि वह अमर हैं और मैं इस विनाशी चोले में आकर उनके ज्ञान को प्रकट करता हूँ। जब सतगुरुरूपी सीढ़ी प्राप्त होती है, तभी उसके सहारे जीव सत्पुरुष को प्राप्त कर सकता है। इस सीढ़ी के बिना कोई भी सतलोक नहीं जा सकता। जो इस सीढ़ी को छोड़ देता है, वह इस भवसागर में बह जाता है। ऐसा समझना चाहिए कि उसके भाग्य में सतलोक जाना लिखा ही नहीं था।

अन्य संतों ने भी सतगुरु और सत्पुरुष (परमात्मा) को एक ही माना है। हज़रत ईसा परमात्मा से मिलानेवाले संतों को 'देहधारी शब्द' कहते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है:

मैं और मेरे पिता एक ही हैं।[37]

शब्द देहधारी हुआ और हमारे बीच में आकर रहा।[38]

गुरु नानक साहिब ने भी सतगुरु को मनुष्य-रूपधारी परमात्मा माना है। जब तक परमात्मा मनुष्य का रूप धारण कर सतगुरु के रूप में हमारी सतह पर नहीं आता, तब तक वह हम मनुष्यों के साथ अपना संबंध पैदा नहीं कर सकता। सतगुरु के शरीर के अंदर बैठकर ही परमात्मा हमसे बोलता है। जैसे कबीर साहिब कहते हैं:

बिन काया ब्रह्म कैसे बोले। ब्रह्म बोले काया के ओले॥[39]

अपने आंतरिक अभ्यास द्वारा जिस अनुपम सत्य का उन्होंने दर्शन किया, उसे गुरु अर्जुन देव इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

हर का सेवक सो हर जेहा॥ भेद न जाणहो माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठह बहु भाती फिर सललै सलल समाइदा॥[40]

परमात्मा के सच्चे सेवक यानी संतजन की उपमा वह समुद्र से उठकर समुद्र में ही विलीन होनेवाली लहरों से करते हैं तथा इस प्रकार वह संत और भगवंत को एक बताते हैं:

वह फिर कहते हैं:

समुंद विरोल सरीर हम देखिआ इक वसत अनूप दिखाई॥
गुर गोविंद गुोविंद गुरू है नानक भेद न भाई॥[41]

गुर मह आप रखिआ करतारे॥[42]

गुर परमेसर एको जाण॥[43]

इसी सत्य की पुष्टि करते हुए कबीर साहिब कहते हैं:

राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दोय।
दो करि सोई जानई, सतगुरु मिला न होय॥[44]

नामदेव जी कहते हैं:

आतम राम देह धरि आयो, तामै हरि कौ देखौ।
कहत नामदेव बलि बलि जैहो, हरि मनि और न लेखौ॥[45]

दादू दयाल जी प्रभु के सेवक और परमात्मा की एकता इन शब्दों में व्यक्त करते हैं:

साहिब का उनहार सब, सेवग माहैं होइ।
दादू सेवग साध सो, दूजा नाहीं कोइ॥[46]

बुल्लेशाह खुले रूप में फ़रमाते हैं:

मौला आदमी बण आया।[47]

गोस्वामी तुलसीदास जी भी अपने गुरु को परमात्मा का रूप मानकर उनकी वंदना करते हैं:

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।[48]

पलटू साहिब परमात्मा से अपनी एकता का कथन इस रूप में करते हैं:

पलटू देह के धरे से वे साहिब हम दास।
आदि अंत हम हीं रहे सब में मेरो बास॥[49]

स्वामी जी ने भी बड़े ही स्पष्ट रूप से यह बताया है कि दयालु परमात्मा दयावश जीवों के उबार के लिए संसार में मनुष्य-रूप में प्रकट होते हैं:

पुरुष दयाल दया उमगाई। संत रूप धर जग में आई॥[50]

राधास्वामी धरा नर रूप जगत में। गुरु होय जीव चिताये॥[51]

मुक्ति के लिए सतगुरु की आवश्यकता

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सतगुरु जीवों के उबार के लिए ही इस संसार में आते हैं। सतगुरु की दया और मेहर के बिना जीव का काल-जाल से मुक्त होना और अपने निजधाम लौटना संभव नहीं है। दरिया साहिब इस तथ्य को बड़े ज़ोरदार और स्पष्ट शब्दों में हमारे सामने रखते हैं। वह कहते हैं:

जौं लगि सतगुर मिले न दाता। तौं लगि काल करे उतपाता॥
खोजहुं सतगुर जो जिव बांचै। नाहिं तौ काल सदा सिर नाचै॥[52]

जब तक शब्द यानी नाम की दात देनेवाले सतगुरु नहीं मिलते तब तक काल का उपद्रव चलता रहता है। इसलिए काल के चंगुल से छुटकारा

पाने के लिए हमें सतगुरु की खोज करनी चाहिए, नहीं तो काल सदा सिर पर मँडराता ही रहेगा।

जो लेहु सतगुरु की बानी। लांघि सके तब भव जल पानी॥
बिना साच नहिं होए उबारा। बिनु सतगुरु नहिं उतरहिं पारा॥[53]

सतगुरु से नाम यानी शब्द-धुन का भेद प्राप्त करने पर ही जीव इस भवसागर को पार कर सकता है। सतगुरु और शब्द (सत्य) के बिना जीव का उद्धार नहीं हो सकता।

जो जो हंसा बोधो जाई। सो सो हंसा पहुँचै आई॥

दरिया भवजल अगम है, सतगुर करो जहाज।
तेहि पर हंसा चढ़ि के, जाए करो सुखराज॥
पहुंचे हंसा सत सब्द ते, सतगुर मिले जो मीत।
कहै दरिया भव भरम तेजी, बसै चरन महं चीत॥[54]

सतगुरु जिन-जिन जीवों को चिताते यानी नाम-दान देते हैं, वे सब अवश्य सतलोक पहुँचते हैं। सतगुरु वह जहाज़ हैं जिसके द्वारा जीव इस अथाह भवसागर को पार करता है। सतगुरु सच्चे शब्द यानी नाम का अभ्यास करवाकर जीवों को सतलोक ले जाते हैं। यह सतलोक सुख का भंडार है जहाँ आत्मा सदा आनंद में रहती है। इसलिए हमें सभी संशय और भ्रम दूर कर सच्चे हृदय से सतगुरु के चरणों से प्रेम कर उनकी बताई हुई शब्द-साधना पूरी करनी चाहिए।

मेटि संसै सत सब्द से, जो गुर मिलै करार।
सतगुर बिना पार नहीं, भरमि रहा संसार।[55]

यदि हमें सच्चा गुरु मिल जाए तो वह हमसे शब्द का अभ्यास करवाकर सभी संशयों को दूर कर देता है। बिना सतगुरु के कोई भी इस

भवसागर को पार नहीं कर सकता। संसार के जीव व्यर्थ ही बहिर्मुखी साधनों के पीछे भटकते फिर रहे हैं।

गुरु बिनु भव नहिं भंजनि हारा। सत तरनी गुरु ज्ञान करारा॥[56]

दरिया साहिब के ही समान अन्य संतों ने भी मुक्ति के लिए गुरु को अनिवार्य माना है। गुरु अर्जुन साहिब खुले रूप से कहते हैं:

मत को भरम भुलै संसार॥ गुर बिन कोए न उतरस पार॥[57]

गुरु अर्जुन देव इसी विचार को प्रकट करते हुए आगे कहते हैं:

कहो नानक प्रभ इहै जनाई॥ बिन गुर मुकति न पाईऐ भाई॥[58]

जीवों की मुक्ति के लिए सतगुरु की दया और सहायता अनिवार्य होने के कारण दरिया साहिब उन जीवों के सौभाग्य की सराहना करते हैं, जिन्हें सतगुरु की शरण प्राप्त हो गई है और जो सतगुरु की सेवा में लग गए हैं। साथ ही वह उन जीवों को धिक्कारते हैं जो मनुष्य का जीवन पाकर भी सतगुरु की सेवा-भक्ति में नहीं लगते। वह कहते हैं:

धन्य सोइ सतगुरु पदलागा। जन्म पदारथ जग में जागा।[59]

वह जीव धन्य है जो सतगुरु के चरणों की शरण में आ जाता है। ऐसा जीव ही संसार की अज्ञान-निद्रा से जगकर मनुष्य-जीवन में प्राप्त होनेवाले सर्वोत्तम पदार्थ, परमात्मा को प्राप्त करता है।

फिर उन जीवों की ओर संकेत कर जो सतगुरु के ज्ञान से वंचित रहकर संसार के जंगल में भटकते रहते हैं, वह कहते हैं:

सखि हे ध्रिग ध्रिग जिवन जिवेला जग मांह।
बिनु गुर ज्ञान फिरेला बन मांह॥[60]

ऐसे मनुष्य के जीवन को धिक्कार है जो गुरु के ज्ञान के बिना संसार के जंगल में व्यर्थ ही भटकता फिरता है।

जो नर सतगुर सब्द ना माना।
सो जढ़ स्वान सुकर जग माहीं कर्म अनेक लपटाना।...
जम जालिम धरि मरिहैं जरिहैं उर्धमुख सदा झुलाना॥[61]

जिस मनुष्य ने सतगुरु के नाम यानी शब्द को ग्रहण नहीं किया, उस नादान का जन्म लेना व्यर्थ है। वह अनेक कर्मों में लिपटा रहता है। निष्ठुर यमराज उसे पकड़कर मारता और जलाता है तथा अनेक योनियों में जन्म देकर उलटे मुँह गर्भ में झुलाता है।

जब लगि सतगुरु ना मिले, कतनो कथे विराग।
हंस वंश नहिं मिलिया, रहा काग का काग॥[62]

कोई चाहे कितनी भी विरक्ति की बातें क्यों न करता फिरे, जब तक उसे सतगुरु नहीं मिलते, वह कभी भी निर्मल होकर उच्च मंडलों में जाकर हंसों (पवित्र आत्माओं) की मंडली में शामिल नहीं हो सकता। गंदगी खानेवाले काग के समान वह विषय-भोगों में ही पड़ा रहता है।

स्वामी जी ने भी उस जीव को बड़भागी कहा है जिसे सतगुरु की शरण प्राप्त हो जाती है, क्योंकि ऐसे जीव को सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। वह कहते हैं:

बड़े भाग जानो अब उन के। जिनको सरन परापत गुरु की॥[63]

जिन जिन संग करा गुरु पूरे। छुटा जन्म और मरननियाँ॥[64]

स्वामी जी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जब तक सतगुरु से मिलाप प्राप्त नहीं होता तब तक पापों से छुटकारा नहीं मिल सकता। वह कहते हैं:

जब लग सतगुरु मिलें न पूरे। पड़े रहोगे अघ में॥*[65]

* अघ=पाप

गुरु रामदास जी भी ऐसे जीवों को जिन्हें सतगुरु से मिलाप प्राप्त नहीं हुआ 'भाग्यहीन' बताते हुए कहते हैं:

जिना सतगुर पुरख न भेटिओ से भागहीण वस काल॥[66]

सतगुरु की पहचान

सतगुरु की सहायता के बिना जीव अपने घर की राह नहीं पा सकता। पर संसार में गुरु-चेले का नक़ली व्यवहार इस प्रकार फैला हुआ है कि जीव के लिए असली सतगुरु को पहचानना बहुत कठिन है। इसलिए दरिया साहिब सच्चे गुरु की पहचान के लिए कुछ मुख्य संकेत देते हैं। उनके अनुसार—

1. सतगुरु सदा आंतरिक अभ्यास की शिक्षा देते हैं।
2. शब्द-धुन को अपने अंतर में सुनना ही सतगुरु की आंतरिक शिक्षा का सार होता है और
3. सतगुरु कभी भी भिक्षा माँगकर अपनी जीविका नहीं चलाते।

जीव जब प्रेमपूर्वक सतगुरु से अपने निज-घर जाने का मार्ग पूछता है, तब सतगुरु उसे उसके अंदर ही उसका निज-घर दिखा देते हैं। इस आंतरिक अभ्यास का संकेत करते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

जब हो प्रकट प्रेम दिल माहीं। तब मगु पूछहँ सतगुरु पाहीं।
सोई देखावहिं सकल ठिकाना। आपु में आपु मकान अपाना॥[67]

जब हृदय में परमार्थ के लिए प्रेम उत्पन्न हो, तो सीधे सतगुरु के पास जाकर उनसे परमार्थ का मार्ग पूछना चाहिए। वही सभी पारमार्थिक स्थानों को दिखा सकते हैं। वही हमें हमारे शरीर के अंदर ही हमारा निजधाम दिखा देते हैं।

अपने अंदर नाम यानी शब्द-धुन को सुनने का अभ्यास सतगुरु द्वारा बताई गई आंतरिक शिक्षा का सार है। इसके द्वारा ही हम अपने अंतर में

अपने निजधाम को प्राप्त करते हैं। सतगुरु शब्द का अभ्यासी और शब्द का अनुरागी होता है और शब्द यानी नाम का ही भेद वह अपने शिष्यों को देता है। जैसा कि दरिया साहिब कहते हैं:

सतगुरु सोइ सत शब्द द्रिढ़ावे। जीव मुक्ताय पाप सब जावे॥[68]

सतगुरु वही है जो सच्चे शब्द यानी नाम का अभ्यास दृढ़ करवाकर जीवों के पापों को दूर करता है और उन्हें मुक्ति दिलाता है।

सतगुर सो सत सब्द सनेही निगम नेति कहि गावै।
कहें दरिया दर सभते न्यारा जो कोइ भेद बतावै॥[69]

सतगुरु सच्चे शब्द यानी नाम का अनुरागी होता है। वेद इस सच्चे शब्द की महिमा का पार न पाकर 'नेति नेति' (इतना ही नहीं, यही नहीं) कहकर चुप हो जाते हैं और उसका पूरा गुणगान नहीं कर पाते। दरिया साहिब कहते हैं कि यदि कोई सतगुरु हमें शब्द का भेद बताए, तभी हम इस शब्द के सहारे उस पद को प्राप्त कर सकते हैं जो सबसे अनोखा है।

यह बताते हुए कि साधु, संत या सतगुरु भिक्षा माँगकर अपनी जीविका नहीं चलाते, अपना गुज़ारा अपनी कमाई से करते हैं, दरिया साहिब कहते हैं:

साधु जन मांगे नहिं, माँग खाय सो भाँड।
सती पिसावनी ना करे, पिसि खाय सो राँड॥[70]

साधु या संत सच्चे दाता होते हैं। वे किसी से कुछ माँगकर अपना जीवन बसर नहीं करते। जो दूसरों से माँगकर खाता है, वह तो नाचने-गाने का पेशा करनेवाला नक़लची भाँड़ है। पतिव्रता स्त्री अपने पति की सेवा में लगी रहती है। वह विधवा औरत की तरह घर-घर जाकर दूसरों की पिसावनी या बेगारी नहीं करती। संतजन भी पतिव्रता स्त्री के ही समान होते हैं; वे सर्वसमर्थ परमात्मारूपी पति की सेवा में लगे रहते हैं। उन्हें परमात्मा पर पक्का भरोसा होता है। वे किसी दूसरे के सामने कभी अपना हाथ नहीं फैलाते, बल्कि हक़-हलाल की कमाई के सहारे अपना जीवन बसर करते हैं।

बेबाहा के मत में संत बिराजित, आदि औ अंत सदा सुख वोई।...
अमृत अमर साथ सो सामर्थ, हाँथ पसारि ना माँगत रोई॥[71]

संत उस परमात्मा के पंथ को सुशोभित करनेवाले होते हैं जिसे अनमोल कहा जाता है। यह पंथ आदि से अंत तक सुखदायी होता है। अमर बनानेवाला अमृत सदा संतों के पास होता है और सर्वसमर्थ परमात्मा भी सदा उनके साथ ही होते हैं। इसलिए संत कभी दूसरों के आगे हाथ फैलाकर नहीं माँगते।

दरिया साहिब द्वारा बताए गए सतगुरु के उक्त लक्षणों की ओर अन्य संतों ने भी ध्यान दिलाया है। उदाहरण के लिए गुरु नानक साहिब कहते हैं कि जो हमारे अंदर ही हमारे असली घर को दिखा दे, वही सतगुरु है:

घर मह घर देखाए दे सो सतगुर पुरख सुजाण॥[72]

स्वामी जी भी यही कहते हैं:

घर में घर गुरु दिखलावें।[73]

सतगुरु उस आंतरिक अभ्यास की शिक्षा देते हैं जिसके द्वारा अपने अंदर नाम यानी शब्द-धुन को प्रकट किया जाता है। जैसा कि पलटू साहिब कहते हैं:

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव॥[74]

वह फिर कहते हैं:

संत सनेही नाम है नाम सनेही संत।
नाम सनेही संत नाम को वही मिलावैं॥[75]

स्वामी जी भी शब्द या नाम का भेद देनेवाले को ही सतगुरु कहते हैं:

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा॥[76]

वह फिर कहते हैं:

शब्द रता सतगुरु पहिचानो। हम यह पूरा पता दई॥[77]

तीसरे गुण के बारे में भी सभी संतों का एक मत है। सभी अन्य संतों ने भी बताया है कि सतगुरु कभी भिक्षा-वृत्ति नहीं अपनाते। सभी संत-सतगुरु अपनी हक़-हलाल की कमाई से अपना जीवन बसर करते हैं।

गुरु नानक साहिब कहते हैं:

गुर पीर सदाए मंगण जाए॥ ता कै मूल न लगीऐ पाए॥
घाल खाए किछ हथहो दे॥ नानक राह पछाणह से॥[78]

कबीर साहिब का भी बचन है:

मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज॥[79]

यह जानने के लिए कि सतगुरु मनुष्य-रूप में अवतार लेकर शब्द यानी नाम की आंतरिक शिक्षा क्यों देते हैं, हमारे लिए इन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

1. केवल मनुष्य को ही भले-बुरे या पाप-पुण्य के बीच विचार करने की शक्ति प्राप्त है। इसलिए केवल मनुष्य ही सतगुरु की पारमार्थिक शिक्षा का लाभ उठाकर परमात्मा से मिल सकता है। इसी लिए सतगुरु मनुष्य-रूप धारण कर संसार में आते हैं। इसलिए मनुष्य-जीवन ही एक ऐसा दुर्लभ अवसर है जिसमें मुक्ति हासिल की जा सकती है।

2. घट-घटवासी परमात्मा को हम केवल अपने शरीर के अंदर ही पा सकते हैं। इसलिए सतगुरु हमें आंतरिक साधना सिखाते हैं, साथ ही बहिर्मुखी साधना से हटाते हैं।

3. परमात्मा का वास्तविक स्वरूप शब्द यानी नाम है और इसी रूप में वह हमारे अंदर विराजमान है। इसलिए सतगुरु हमें शब्द यानी नाम का भेद देते हैं और शब्द यानी नाम का अभ्यास करवाकर परमात्मा से मिलाते हैं। जैसे हम आगे देखेंगे, दरिया साहिब ने बड़े स्पष्ट रूप से इन बातों को हमारे सामने रखा है।

मानव-जीवन

मानव-जीवन परमात्मा से मिलने का दुर्लभ अवसर है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद हमें यह अनमोल अवसर प्राप्त होता है। सतगुरु की शरण लेकर यदि हम अपना जीवन परमात्मा की भक्ति में लगाते हैं तो हम जीते-जी परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं, अन्यथा यह मानव-जीवन बेकार चला जाता है। जैसा कि दरिया साहिब कहते हैं:

मानुख जन्म दुर्लभ जग अहई। बड़े भाग मुक्ति फल लहई॥
भरमि भवन चौरासिहिं राता। जग में ग्यान मिले गुर ग्याता॥[80]

संसार में मनुष्य-जीवन प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद बड़े भाग्य से मुक्ति का फल देनेवाला यह जीवन प्राप्त होता है। इस जीवन की सफलता इसी में है कि हम इस संसार में किसी ज्ञानी सतगुरु से मिलकर ज्ञान की प्राप्ति कर लें।

करहू प्रेम सन्तन्हिं से, सेवहु सतगुरु पाव।
मानुष जन्म दुर्लभ है, फेरि नहिं ऐसो दाव॥[81]

संत से प्रेम करने और सतगुरु के चरणों की सेवा करने में ही मानव-जीवन की सार्थकता है। यह मानव-जीवन बड़ा ही दुर्लभ है। फिर ऐसा अवसर हाथ नहीं आता।

पसु के होत है पनही, नर के कछु नहिं होय।
जो नर भजे नरायन, आपु नरायन होय॥[82]

पशु के मरने पर उसके चमड़े से जूतियाँ बनाई जा सकती हैं, पर मनुष्य के मरने पर उसके शरीर से कोई भी काम नहीं लिया जा सकता। या तो उसे ज़मीन में गाड़ देते हैं या आग में जला देते हैं। पर वही मनुष्य यदि परमात्मा के भजन में लग जाए तो वह स्वयं परमात्मा बन सकता है।

अन्य संतों ने भी मानव-जीवन को परमात्मा की भक्ति करने और आवागमन के चक्र से छुटकारा पाने का अनमोल अवसर माना है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

लख चउरासीह जोनि सबाई॥ माणस कउ प्रभ दीई वडिआई॥
इस पउड़ी ते जो नर चूकै सो आए जाए दुख पाइदा॥[83]

कबीर साहिब कहते हैं:

कबीर मानस जनम दुलंभ है होए न बारै बार॥
जिउ बन फल पाके भुए गिरह बहुर न लागह डार॥[84]

दादू साहिब कहते हैं:

बार बार यहु तन नहीं, नर नारायण देह।
दादू बहुरि न पाइये, जनम अमोलिक येह॥[85]

इसी प्रकार स्वामी जी भी हमें चिताते हैं:

अब यह देह मिली किरपा से। करो भक्ति जो कर्म दहा॥[86]

यह तन दुर्लभ तुमने पाया। कोटि जन्म भटका जब खाया॥
अब या को बिरथा मत खोवो। चेतो छिन छिन भक्ति कमावो॥[87]

मानव-जीवन क्षणभंगुर है। संसार की शान-शौक़त और तड़क-भड़क थोड़े ही दिनों में फीकी पड़ जानेवाली है। इसलिए दरिया साहिब हमें इसकी चकाचौंध में न आकर, सतगुरु की खोज करने और परमात्मा की भक्ति में लगने का उपदेश देते हैं। वह कहते हैं:

कच्चा पिन्ड महल है कच्चा, कच्चा रंग बनायी।
या जग जनमी जिये ना कोई, काया अमर नहिं पायी॥
क्षार सोना भै, क्षार रूपा भै, क्षार सुपेति खाटा।
भक्ति बिना सब क्षार नजरि में, खोजहु सतगुरु बाटा॥[88]

हमारा शरीर, हमारे महल आदि सभी नाशवान् हैं। जो भी संसार में जन्म लेता है, उसे मरना पड़ता है। किसी का भी शरीर अमर नहीं है। सोना, चाँदी, शानदार पलंग आदि सभी सांसारिक वस्तुएँ भक्ति के बिना राख के समान दीख पड़ती हैं। इसलिए हमें सतगुरु के मार्ग की खोज करनी चाहिए।

भक्ति बिना सब गए बिहाई। राज काज कछु साथ ना जाई॥
एहि महि केते भए रजधानी। उपजी बिनसि बुला जनु पानी॥[89]

भक्ति के बिना सब कुछ यों ही नष्ट हो जाता है। राजाओं की शान-शौक़त भी उनके साथ नहीं जाती। इस धरती पर कितनी राजधानियाँ बनीं और पानी के बुलबुले के समान विनष्ट हो गईं।

कोठा महल अटारिया, सुनै स्रवन बहु राग।
सतगुर सब्द चिन्है बिना, जेंव पंछिन्ह महं काग॥[90]

भले ही हमारे पास ऊँचे-ऊँचे मकान, राजभवन और अटारियाँ हों और हम अपने कानों से अनेक प्रकार की राग-रागिनियों को सुनकर उनका आनंद लेते हों, पर सतगुरु के नाम यानी शब्द का ज्ञान प्राप्त किए बिना विषय-भोग में लीन हमारा जीवन गंदगी खानेवाले कौए के जीवन के समान व्यर्थ और घिनौना है।

अन्य संतों ने भी अनेक प्रकार से जीवन और जगत् की क्षण-भंगुरता की ओर हमारा ध्यान दिलाया है। शरीर की उपमा जल से भरे हुए कच्चे घड़े से देते हुए दादू दयाल जी कहते हैं:

(दादू) यहु घट काचा जल भर्‌या, बिनसत नाहीं बार।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गँवार॥[91]

रविदास जी कहते हैं:

दुलभ जनम पुंन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेकै॥
राजे इंद्र समसर ग्रिह आसन बिन हर भगति कहहो किह लेखै॥[92]

इसी लिए स्वामी जी स्वप्न जैसे इस झूठे संसार में लिप्त न होने और मानव-जीवन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें चिताते हैं:

मिली नर देह यह तुम को। बनाओ काज कुछ अपना॥
पचो मत आय इस जग में। जानियो रैन का सुपना॥[93]

अब यह देह मिली किरपा से। करो भक्ति जो कर्म दहा॥[94]

काया अंदर परमात्मा का निवास

जब तक हम यह नहीं जानते कि परमात्मा कहाँ है, तब तक हम उसकी तलाश में इधर-उधर भटकते फिरेंगे। इसलिए दरिया साहिब हमें समझाते हैं कि जिस परमात्मा को हम पाना चाहते हैं, वह कहीं बाहर नहीं है। वह हमारे शरीर के अंदर ही निवास करता है। इसलिए उसे पाने के लिए हमें आंतरिक अभ्यास की जानकारी प्राप्त कर अपने अंदर जाना चाहिए और उससे मिलना चाहिए। वह स्पष्ट कहते हैं:

काया अंदर ब्रह्म निजु बासा। ताहि चिन्हहु प्रेम परगासा॥...
देखहु ग्यान एह काया बिलोई। अपने आपु में जाय समोई॥[95]

इस शरीर के अंदर ही सच्चा परमात्मा निवास करता है। अपने अंदर प्रेम को प्रकाशित कर उस परमात्मा को पहचानो। इस शरीर को मथकर अर्थात् आंतरिक अभ्यास द्वारा, अपने आप में प्रवेश कर यह ज्ञान (अनुभव) प्राप्त करो।

दरिया तन से ना जुदा, सभ किछु तन के माहिं।
जोग जुग्ति करि पाइए, बिना जुग्ति किछु नाहिं॥[96]

वह परमात्मा इस शरीर से अलग नहीं है। सब कुछ शरीर के अंदर ही है। योग की सच्ची युक्ति द्वारा हम उसे पा सकते हैं। बिना इस युक्ति के हम कुछ भी नहीं पा सकते।

यार मेरा महबूब है, आशिक दिल के पास।
या दिल वा दिल देखिए, महल बना एक रास॥[97]

परमात्मा हमारा प्रियतम है। वह प्रेमी के दिल के पास ही रहता है। प्रेम से अपने दिल के अंदर उसके दिल को देखो। हम सबके दिल के अंदर सदा एकरूप रहनेवाले उस परमात्मा का महल बना हुआ है।

सरबंगी सदा प्रगट है भाई। लखि न जाए मन मइलि समाई॥
हममें तुममें देखु बिचारी। ज्यों दरपन में प्रतिमा डारी॥[98]

सभी के अंग या शरीर में व्याप्त रहनेवाला परमात्मा सदा हमारे अंदर प्रकट है, पर हमारे मन में कर्मों की मैल समाई हुई है जिससे हम उसे देख नहीं पाते। विचारपूर्वक आंतरिक अभ्यास द्वारा देखने पर वह हम सब के अंदर उसी प्रकार दीख पड़ता है जैसे दर्पण में हमारा प्रतिबिंब दिखता है।

अन्य सभी संतों ने भी इस सत्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

इस गुफा मह अखुट भंडारा॥ तिस विच वसै हर अलख अपारा॥[99]

परमात्मा को बाहर ढूँढ़नेवाले भ्रम में पड़कर भटक रहे हैं, गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

सभ किछ घर मह बाहर नाही॥ बाहर टोलै सो भरम भुलाही॥[100]

परमात्मा के खोजने का सही तरीक़ा बताते हुए गुरु अमरदास जी कहते हैं:

गुरमुख होवै सो काइआ खोजै होर सभ भरम भुलाई॥[101]

कबीर साहिब भी कहते हैं:

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि॥[102]

बार बार संतों के समझाने पर भी अज्ञानी जीव बहिर्मुखी साधनों में लगे रहते हैं। इसी लिए स्वामी जी बहिर्मुखी साधना में लगे हुए जीवों को 'अंधा' कहते हैं:

गुरु कहैं जगत सब अंधा। कोइ गहै न घट की संधा॥
बाहरमुख भरमें सारे। अंतरमुख शब्द न धारे॥[103]

कर्मकांड और बाहरी आडंबर का खंडन

अज्ञानवश तीर्थ-व्रत तथा पत्थर-पानी की पूजा में लगे हुए लोगों को इन बाहरी साधनों से हटाकर सच्ची अंतर्मुखी साधना में लगाने के उद्देश्य से दरिया साहिब बहिर्मुखी साधनों का घोर विरोध करते हैं। वह कहते हैं:

आतम तेजि पूजे जढ़ पाहन, प्रेम सी मूरति है घट माहीं।
वेद विचार अचार चतुरदिश, खोजत है इहई सभ आहीं॥[104]

अपने अंदर रहनेवाले परम चेतन परमात्मा को छोड़कर अज्ञानी लोग निर्जीव पत्थर की पूजा करते हैं। परमात्मा की प्रेममयी मूरत हमारे शरीर के अंदर ही है। वेद पढ़कर और कर्मकांड की अनेक बाहरी क्रियाओं में लगकर लोग परमात्मा को चारों दिशाओं में खोजते फिरते हैं, जब कि सब कुछ हमारे शरीर के अंदर ही है।

जेहि कारन सठ तीरथ जाई। रतन पदारथ इंह वहि पाई॥[105]

जिसके लिए नादान जीव तीर्थ को जाता है, वह परमात्मारूपी बहुमूल्य रत्न तो यहीं इस शरीर में ही मिलता है।

ना कछु बोलै ना कछु खाई। ताके पुजै मिलै का भाई॥[106]

जो पत्थर की मूर्ति न बोलती और न खाती है, उसके पूजने से भला क्या मिल सकता है?

पंडित घट-घट बोलनिहारा।
अनबोले से कैसे बनिहें, शब्दहिं करो विचारा॥
पाहन काटि मूरति जो किन्हों, को तुम काटनिहारा।
हाथ पाँव तुम सभे बनाया, बोलता बिना नकारा॥
तासो विनय करो कर जोरे, तुम मेरो करतारा।
वोय मौनी तुम बोलनिहारा, भलि मति गई तुम्हारा॥[107]

हे पंडित! वह परमात्मा तो प्रत्येक के अंदर आवाज़ दे रहा है अर्थात् धुनकार-धुन उठा रहा है। अनबोलते पत्थर की मूर्ति से तुम्हारा काम कैसे बनेगा? तुम्हें शब्द की साधना करनी चाहिए। निर्जीव पत्थर को काटकर मूर्ति बनाई गई है। सोचो तो सही कि पत्थर को काटनेवाला कौन है? कम से कम वह तो सजीव और बोलनेवाला है। उसने मूर्ति में हाथ, पाँव, मुख और नाक सब कुछ बना दिया है। फिर भी यह मूर्ति बोल तो नहीं सकती। इसलिए इससे भला क्या मिल सकता है? ऐसी मूर्ति के सामने तुम हाथ जोड़कर विनती करते हो और कहते हो कि यही तुम्हारी सृष्टि करनेवाली है, यही परमात्मा है। तुम बोलनेवाले हो और यह मूर्ति गूँगी है। यह बोल नहीं सकती। फिर भी तुम इसे परमात्मा मानते हो! सचमुच ही तुम्हारी बुद्धि मारी गई है!

संझा तरपन करहु बनाई। कर्म अनेक कथा फैलाई॥
मूंदहि आंख नाक धरि सोई। ज्यों बग ध्यान धरे नर लोई॥...
वेद गर्व ते पंडित भूला। चढ़ी चरख चौरासी झूला॥[108]

काल ने संध्या, तर्पण आदि अनेक प्रकार के कर्मकांड का विस्तार कर रखा है। लोग नाक पकड़कर आँखें बंद करते हैं और बगुले की तरह ध्यान करते हैं अर्थात् अनेक बहिर्मुखी क्रियाएँ करते हैं। वेदों के ज्ञान के अहंकार में विद्वान् भी भूले हुए हैं जिससे सभी चौरासी लाख योनियों में चक्कर काट रहे हैं।

जब लगि पद नहिं उलटि समाना। पंडित पढ़े का वेद पुराना॥[109]

हे पंडित! जब तक तुम अपने बाहर फैले हुए ध्यान को अंतर में उलटकर आंतरिक मंडल में नहीं समाते, तब तक वेद-पुरान पढ़ने का भला क्या लाभ है?

इसी प्रकार अनेक प्रकार की बाहरी वेष-भूषा धारण कर धार्मिकता का दिखावा करनेवालों का भी दरिया साहिब ज़ोरदार विरोध करते हैं। वह कहते हैं:

करि बैराग तिलक औ माला एता भेख भिखारी।
जटा बढ़ाए बघंमर वोढ़े उन भी बात बिगारी॥
माथ मुड़ाय घोटावहि नीके ग्रिह त्यागहि औ नारी।
मन के कारन डींभ ना छूटा बोझ लिये सिर भारी॥
तपसी मौनी दुधा धारी ऐहु कलपना कारी।
पाखंड छुटे ना मिले गोपाला जन्म जुआ उन्हिं हारी॥[110]

घर छोड़कर विरक्त होना, तिलक और माला लगाना—यह सब भिखारियों का स्वाँग है। जटा बढ़ानेवाले और बाघ का चमड़ा ओढ़नेवाले भी अपने परमार्थ को बिगाड़ लेते हैं। जो लोग सिर मुँड़ाते और उसे अच्छी तरह चिकना करते रहते हैं तथा अपने घर और स्त्री को त्याग देते हैं, वे भी मन के फेर में पड़े अहंकार से छुटकारा नहीं पाते और कर्मों का भारी बोझ अपने सिर पर लाद लेते हैं। तपस्या करना, मौनव्रत रखना और केवल दूध के आहार पर रहना—ये सब भी व्यर्थ की कष्टदायी साधनाएँ हैं।

जब तक इन बाहरी कर्मों का पाखंड नहीं छूटता, परमात्मा नहीं मिल सकता। बहिर्मुखी कर्मों में फँसे जीव अपने जीवन को बहिर्मुखी साधना के दाव पर लगाकर अपनी जीवन की बाज़ी हार जाते हैं। वे नाहक़ ही अपने अमूल्य मानव-जीवन को बरबाद कर डालते हैं।

पाखंड सै प्रभु मिलै न काहू। कहौं सुभाव सांच पतियाहू॥[111]

पाखंड से किसी को भी परमात्मा नहीं मिल सकता। परमात्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह पाखंड को पसंद नहीं करते। दरिया साहिब कहते हैं कि इस बात को सच मानो और इस पर विश्वास करो।

दरिया साहिब के अनुसार अनेक प्रकार के हठकर्मों द्वारा अपने शरीर को कष्ट पहुँचाने से कोई लाभ नहीं होता। वह कहते हैं:

तन के त्रास जो बहुत देखावै। पंच अगिनि में तनहिं जरावै॥
ऊरध मुख झूले दिन राती। जल के निकट सएन बहु भांती॥
पय पीवहि फल करहिं अहारा। लंगा फिरे तन रहे उघारा॥
प्रगट भभूति भरी मुख छारा। काम क्रोध निस दिन बैपारा॥
म्रिगत्रिसुना मद माया ना त्यागे। अंतहु कपट बिखै रस लागे॥
पाखंड कर्म करहिं सभ जानी। ताते जीवन जन्म भव हानी॥[112]

पंचाग्नि में शरीर को तपाना, रात-दिन उलटे मुँह झूलना, जल के बीच खड़े रहने की तपस्या करना, केवल दूध पीकर या केवल फल खाकर रहना, बिना वस्त्र के नंगे घूमते फिरना, शरीर के ऊपर भस्म लगाना और चेहरे पर राख मलना आदि क्रियाओं द्वारा जो शरीर को भयंकर कष्ट देने का प्रदर्शन करते हैं, वे भी रात-दिन काम-क्रोध के वशीभूत होकर आचरण करते हैं। जैसे तेज़ धूप के कारण हिरन को रेगिस्तान में जल की लहरों का भ्रम होता है और वह अपनी प्यास बुझाने के लिए बेतहाशा दौड़ता रहता है, वैसे ही अंधविश्वास के कारण लोगों को इन हठकर्मों से परमार्थ की प्राप्ति की आशा होती है और वे इनमें निरर्थक जूझते रहते हैं।

ऐसे लोग लोभ और अहंकार का त्याग नहीं करते, बल्कि कपटपूर्वक अंत तक विषयों के रस में लिप्त रहते हैं। सबको यह जानना चाहिए कि ये पाखंड कर्म हैं और इनसे मानव-जीवन को हानि पहुँचती है।

का भौ भक्ति किये सिर भारी। का तुम प्रगट काया पखारी॥
का भौ फिरे दिगम्बर नंगा। का भौ उलटि आपु कंह टंगा॥
पानी रहे मच्छ औ दादुर। टाँगे रहे बने मँह गादुर॥
पसु पंछी नंगे नंगे सब खड़ा। रहा कुम्हार भस्म सो भरा॥

जब लगि विरह न उपजे, हिये न उपजे प्रेम।
तब लगि हाथ न आवहिं, धरम किये व्रत नेम॥[113]

स्नान द्वारा शरीर को केवल बाहर से धोने और अनेक प्रकार की बाहरी क्रियाओं की भक्ति करने से भला क्या होता है? इनमें लगे रहना सिर पर कर्मों का भारी बोझ लेना है। दिगंबर बनकर नंगे फिरने, अपने को उलटे पाँव टाँगने, जल-शयन करने और भस्म लगाने आदि की क्रियाओं से भी भला क्या लाभ हो सकता है? मछली और मेंढक जल में ही रहते हैं। चमगादड़ जंगल में उलटे पाँव टँगा रहता है। सभी पशु-पक्षी नंगे खड़े रहते हैं और बर्तनों को आवाँ से निकालते समय कुम्हार का भी शरीर भस्म से भरा रहता है। पर इससे क्या ये धर्मात्मा बन जाते हैं? जब तक हृदय में प्रेम नहीं उत्पन्न होता और विरह की पीड़ा नहीं उभरती, तब तक केवल विविध बहिर्मुखी धर्म-कार्य तथा नियमों और व्रतों का पालन करने से परमात्मा नहीं मिल सकता।

शब्द या नाम

दरिया साहिब हमें सच्चे शब्द यानी नाम की आंतरिक साधना में लगाने के उद्देश्य से ही बहिर्मुखी साधनों की खरी आलोचना करते हैं। शब्द की आंतरिक साधना ही उनकी शिक्षा का सार है। इसी शब्द के सहारे जीव क्रमशः ऊपरी मंज़िलों में चढ़ता हुआ अंत में अपने निजधाम सतलोक में

पहुँचकर सत्पुरुष यानी परमात्मा से मिलता है। इसी लिए दरिया साहिब अपनी प्रायः सभी रचनाओं में शब्द यानी नाम की साधना पर ज़ोर देते हैं और अनेक तरह से इसकी महिमा का बखान करते हैं।

दरिया साहिब के इस मूलभूत उपदेश को समझने के लिए हमें उनकी निम्नलिखित बातों को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए:

1. सच्चा शब्द (नाम) ही, जिसे दरिया 'सतशब्द' या 'सतनाम' कहकर याद करते हैं, परम सत्ता है जिससे समस्त विश्व की रचना हुई है। सतगुरु से दीक्षा लिए बिना इस परम सत्ता की जानकारी संभव नहीं है।
2. यह शब्द (नाम) प्रत्येक मनुष्य के अंदर शब्द-धुन के रूप में सदा धुनकारें देता रहता है। इसे वर्णों या अक्षरों द्वारा कभी नहीं लिखा जा सकता है और न कभी जिह्वा द्वारा इसका उच्चारण किया जा सकता है। इसी लिए इसे निःअक्षर या धुनात्मक शब्द या नाम कहा जाता है।
3. यह धुनात्मक शब्द या अनहद नाद ही जीव को भवसागर से पार ले जाने और परमात्मा से मिलाने का एकमात्र साधन है।

सतगुरु की दीक्षा से प्राप्त होनेवाले सतनाम या सत शब्द की सर्वोच्चता बताते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

सत्तनाम सबको सिरताजा। आदी अंत मधो है छाजा॥[114]

सच्चा नाम ही सबका सिरमौर है। सृष्टि के आदि, मध्य और अंत में इसी की महिमा छाई हुई है।

सत्तनाम सभ ते अधिकारा। पूजहु देव का करहु बिचारा॥[115]

सच्चा नाम सबसे बड़ा है। तुम किस विचार में पड़े हो? बस इसी प्रभु की पूजा करो।

सत चीन्हा वैसो गुर ग्यानी। सत्त सब्द छप लोक की बानी॥
बिनु सतगुर नहिं सत पहचानी। बिनु पद परचे कवनि गति ठानी॥[116]

इस सत् को कोई सच्चा ज्ञानी गुरु ही पहचानता है। शब्द ही यह सत् है। यह वह धुन है जो गुप्तलोक (सतलोक) से निकलती है। सतगुरु के बिना इस सत् की पहचान नहीं हो सकती और इसकी पहचान किए बिना जीव भला किस तरह किसी ठिकाने लग सकता है?

सब्दे धरती सब्द अकासा। सब्दे भगति प्रेम परकासा॥
सब्दे रचा सकल संसारा। सब्दे बंधन लोक बिस्तारा॥
चौथा लोक सब्द की बानी। सब्द समुंदर बांधल ग्यानी॥
सब्द बिना नहिं होखै पारा। सब्दे पंडित करो बिचारा॥[117]

शब्द ने ही धरती और आकाश की रचना की है। इसी से भक्ति और प्रेम प्रकाशित होते हैं। शब्द ने ही सारे संसार की रचना की है। शब्द की डोर से बँधकर ही समस्त संसार फैला हुआ है। चौथे लोक में भी शब्द की ही धुन गूँजती है। शब्द द्वारा ही ज्ञानीजन संसार-समुद्र पर पुल बाँधकर इसे पार कर जाते हैं। शब्द के बिना कोई भवसागर को पार नहीं कर सकता। इसलिए ऐ पंडितो और पुजारियो! आप भी एकमात्र शब्द की ही साधना करें।

नाम प्रताप जुग जुग चलि आवै। सकल संत गुन महिमा गावै॥[118]

युग-युग से नाम की महिमा चली आ रही है। सभी संतजन नाम की ही महिमा का गुणगान करते आए हैं।

अन्य संतों ने भी सच्चे शब्द या नाम को सर्वोपरि माना है। उदाहरण के लिए दादू साहिब कहते हैं:

नाँउ रे नाँउ रे, सकल सिरोमणि नाँउ रे॥[119]

गुरु नानक साहिब कहते हैं:

सारी स्रिसटि सबद कै पाछै। नानक सबद घटै घटि आछै॥
सबदै धरती सबदै अकासु। सबदै सबद होआ परगासु॥[120]

गुरु अर्जुन देव जी के वचन हैं:

नाम के धारे सगले जंत॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥...
नाम के धारे आगास पाताल॥ नाम के धारे सगल आकार॥[121]

कबीर साहिब भी शब्द की साधना पर ही ज़ोर देते हैं जिससे समस्त संसार उत्पन्न हुआ है। वह कहते हैं:

साधो सब्द साधना कीजै।
जेहिं सब्द तें प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै॥[122]

स्वामी जी भी शब्द को ही सृष्टिकर्ता कहते हैं:

शब्द ने रची त्रिलोकी सारी।[123]

इस सच्चे शब्द या नाम का स्वरूप बताते हुए दरिया साहिब स्पष्ट रूप से कहते हैं कि यह नाम मुँह से बोला जानेवाला अथवा वर्णों या अक्षरों में लिखा जानेवाला नाम नहीं है, बल्कि यह सतलोक से निकलनेवाला धुनात्मक या नि:अक्षर शब्द है जो सहज-योग की साधना से प्रकट होता है। वह कहते हैं:

सहज जोग निजु सब्द बिबेखा। निरछर नाम सुरति सत देखा॥[124]

सहज-योग द्वारा सच्चे शब्द का ज्ञान होता है। शब्द की कमाई से ही सहज-अवस्था प्राप्त होती है। सहज का अर्थ है, आसान या स्वाभाविक। आत्मा जब ऊपरी मंडलों में पहुँचती है, तब यह आसानी से अपने आप परमात्मा की ओर खिंची चली जाती है। यह सहज-अवस्था पारब्रह्म से शुरू होकर सतलोक में पूर्ण होती है। तभी आत्मा को सुरत (आत्मा की अंदर सुनने की शक्ति) द्वारा सच्चे नि:अक्षर नाम का अनुभव होता है।

वह तो भेद अगम है मूला। सत्त गहे सो हो असथूला।
वह तो मुख रसने नहिं कहिया। गहै सत्त परगट हो रहिया॥[125]

जिस मूल शब्द यानी नाम का भेद सतगुरु देते हैं वह अगम है अर्थात् हमारे मन और बुद्धि की पहुँच से बाहर है। इस सच्चे नाम को पकड़नेवाला अचल पद को प्राप्त कर लेता है। इस नाम को मुँह या जिह्वा से नहीं बोला जा सकता। सतगुरु के बताए सच्चे नाम के अभ्यास से यह अपने आप प्रकट होता है।

नाम नि:अक्षर निर्मल डोरी। तासे काल करे नहिं चोरी॥[126]

जो नि:अक्षर नाम की निर्मल डोर को पकड़ लेता है, काल उसकी चोरी नहीं कर सकता अर्थात् काल उसे अपने धोखे में नहीं डाल सकता।

अन्य संतों ने भी लिखने, पढ़ने या बोलने के काम में आनेवाले वर्णात्मक या अक्षरात्मक शब्दों से भिन्न धुनात्मक या नि:अक्षर शब्द या नाम की महिमा गाई है। जब हम शरीर के नौ दरवाज़ों से बाहर जानेवाले ध्यान को समेटकर उसे दसवें दरवाज़े यानी तीसरे तिल में एकत्र करते हैं, तब हम धुनात्मक नाम या अनहद शब्द से जुड़ते हैं। इस शब्द यानी नाम की डोरी को पकड़कर ही हम इसके मूल स्रोत सतलोक में पहुँचते हैं। इस शब्द यानी अनहद नाद की ओर संकेत करते हुए गुरु अमरदास जी कहते हैं:

नउ दर ठाके धावत रहाए॥ दसवै निज घर वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजह दिन राती गुरमती सबद सुणावणिआ॥[127]

इसी शब्द या नाम को 'हुकम' भी कहा जाता है जिसे समझाते हुए गुरु अंगद देव जी कहते हैं:

अखी बाझहो वेखणा विण कंना सुनणा॥
पैरा बाझहो चलणा विण हथा करणा॥

जीभै बाझहो बोलणा इउ जीवत मरणा॥
नानक हुकम पछाण कै तउ खसमै मिलणा॥[128]

कबीर साहिब कहते हैं:

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जो आवै॥
बिन मुखड़ा से जप करो, नहिं जीभ डुलावो॥[129]

दरिया साहिब ने इस शब्द या नाम को ही भवसागर से पार जाने का एकमात्र साधन माना है। वह कहते हैं:

भवजल अगम अपार, नाम बिना नहिं बाचहीं।
नौका नाम अधार, जौं चाहो भव तरन कहं॥

गुप्त सब्द जो पावै कोई। ताहि देखि चला जम रोई॥[130]

नाम के बिना इस अगम और अथाह भवसागर में से कोई निकल नहीं सकता। जो भवसागर से पार जाना चाहता है, उसके लिए एकमात्र नाम की नौका ही सहारा है।

सब्दे तारै सब्दे उबारै। सब्दे चढ़ि छपलोक सिधारै॥
सब्दे घोर हंस असवारा। सब्दे चाभुक ग्यान करारा॥
कहे दरिया जिन्हि सब्द निमेरा। ताको हंसा पहुंचु सबेरा॥

सब्द सरासन बान है, सत्ते सब्द निसान।
कहे दरिया नर बाचिया, सतगुर की पहचान॥[131]

शब्द ही जीव को मुक्त करता और उसका उद्धार करता है। शब्द पर चढ़कर ही जीव गुप्त लोक (सतलोक) के लिए प्रस्थान करता है। शब्दरूपी घोड़े पर आत्मा सवारी करती है और शब्द से प्राप्त विशुद्ध ज्ञान चाबुक का काम करता है। शब्द जिस आत्मा का बंधन काट देता है,

वह शीघ्र अपने मूल धाम में पहुँच जाती है। शब्द ही धनुष है और शब्द ही बाण है तथा शब्द ही सत् या परमात्मा की निशानी है। सतगुरु द्वारा शब्द का भेद मिलने पर ही मनुष्य इस संसार के जाल से बचता है।

एक नाम जो हिरदै लावै। जनम जनम के पाप कटावै॥[132]

एकमात्र नाम को हृदय में बसाने से जन्म-जन्म के पाप कट जाते हैं। इसी लिए दरिया साहिब हमें उपदेश देते हैं कि शब्द की साधना को हम किसी भी स्थिति में न छोड़ें। वह कहते हैं:

कुल कुटुंम सब निंदिहै, निंदिहिं यह संसार।
सब्द हमारा जनि छोड़ो, उतरहु भव जल पार॥[133]

कुल, परिवार या सारा संसार ही क्यों न निंदा करे, पर सतगुरु के दिए हुए शब्द यानी नाम के अभ्यास को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। तभी जीव भवसागर को पार कर सकता है।

अन्य संतों ने भी शब्द यानी नाम को मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन माना है।

कबीर साहिब कहते हैं:

जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास॥[134]

गुरु रविदास जी कहते हैं:

भौ सागर रा तरन कूं, एकौ नाम अधार।
रविदास कभउं नहिं छांड़िये, राम नाम पतवार॥[135]

इसी सचाई की पुष्टि करते हुए स्वामी जी कहते हैं:

शब्द लगावे तुझ को पार। बिना शब्द चौरासी धार॥[136]

दरिया साहिब ने बताया है कि शब्द (नाम) की कमाई के लिए सुमिरन, ध्यान और भजन की आवश्यकता पड़ती है। सतगुरु द्वारा बताए गए पवित्र वर्णात्मक नामों के जाप को 'सुमिरन' कहते हैं और अंतर में सतगुरु के स्वरूप को एकाग्र भाव से देखने को 'ध्यान' कहते हैं। पवित्र नामों का प्रेमपूर्वक जाप करने से जब सुमिरन का अभ्यास पक जाता है, तब अंदर प्रकाश प्रकट होता है तथा अमृत के समान मीठी और सुरीली शब्द-धुन सुनाई पड़ती है। अंतर में इस शब्द-धुन को सुनने को ही 'भजन' कहते हैं। सुमिरन जितना अधिक दृढ़ होता है और सतगुरु के स्वरूप पर जितना अधिक अंतर में ध्यान टिकता है, शब्द-धुन उतनी ही अधिक स्पष्ट और आकर्षक होती जाती है। इस प्रकार वर्णात्मक नाम की प्रारंभिक साधना द्वारा धुनात्मक नाम प्रकट हो जाता है, जिसे पकड़कर हम आंतरिक मंडलों में ऊपर चढ़ते हैं तथा अंत में अपने निजधाम पहुँच जाते हैं। चूँकि सुमिरन हमारी परमार्थी साधना की नींव है और इसमें दृढ़ता आए बिना ध्यान और भजन का अभ्यास करना कठिन है, इसलिए दरिया साहिब सुमिरन पर सबसे अधिक ज़ोर देते हैं। पर साथ ही वह यह भी बताते हैं कि हमारे कर्मों की आंतरिक मैल अंत में भजन द्वारा ही साफ़ होती है।

सुमिरु ग्यान सतगुर चित लाई। का भूलहु एही दुनिआई॥...
सुमिरहु सुख संपति बिसराई। दिना चारि का रंग बड़ाई॥...
एक नाम छत्र सिर साजै। अनहद धुनी ग्यान तहं गाजै॥[137]

सतगुरु ने जिस नाम का भेद दिया है उसका मन लगाकर सुमिरन करो। दुनियादारी में क्यों भूले हुए हो? संसार की धन-संपत्ति केवल चार दिनों की चकाचौंध है। इसे भुलाकर सुमिरन के अभ्यास में लगो। जिसके सिर पर एक नाम की छत्र-छाया हो जाती है, उसके अंदर अनहद धुन बजने लगती है और ज्ञान का प्रकाश हो जाता है।

यह अक्षर मांह नि:अक्षर पावे। ग्यान भक्ति तव दृढ़ता लावे॥
पल पल रहे चरण लव लाई। सत साहब सामर्थ सहाई॥
भक्त वत्सल संतन सुखदाई। काटि पाप जन निजु पुर जाई॥
निर्भय नाम तब होहिं सहाई। सुमिरत नाम सुधा सम पाई॥
तुम नाम गति अलख लखाई। ताते रहो चरण लौ लाई॥
तुम नाम गति अगम अपारा। केते अधम तरे संसारा॥[138]

ज्ञान और भक्ति में दृढ़ता आने पर अभ्यासी वर्णात्मक नाम के सुमिरन द्वारा धुनात्मक नाम को प्राप्त कर लेता है। सतगुरु, जो सर्वसमर्थ और सच्चे स्वामी या परमात्मा के रूप होते हैं, वह अभ्यासी के सदा सहायक होते हैं। शिष्य को प्रत्येक क्षण उनके चरणों में प्रेम बनाए रखना चाहिए। भक्तों पर दया-भाव रखनेवाले और संतों को सुख देनेवाले परमात्मा, पापों को नष्ट कर देते हैं और प्रेमी साधक अपने निजधाम में चला जाता है। अमृत के समान मीठे नाम को अभ्यासी सुमिरन द्वारा प्राप्त करता है। भय को दूर करनेवाला वह नाम शरीर के अंदर प्रकट होकर अभ्यासी की सहायता करता है। दरिया साहिब कहते हैं कि नाम ही तुम्हें अलख लोक दिखाता है, इसलिए तुम्हें नाम देनेवाले सतगुरु के चरणों में ध्यान लगाना चाहिए। नाम की गति अथाह और अपरंपार है। नाम के प्रताप से कितने पापियों का उद्धार हो गया।

भाव भगति जो दिढ़ता लावै। हीरा नाम सो परगट पावै॥
भूले फिरहिं बिना गुर ग्यानी। सत सबद नहिं पावहिं बानी॥...
भगति हेतु प्रगट होए जाई। जब सुमिरै दृढ़ प्रेम लगाई॥[139]

अभ्यासी के प्रेम और भक्ति में जब दृढ़ता आती है, तब वह अपने अंदर नामरूपी हीरे को प्रकट रूप से प्राप्त कर लेता है। ज्ञानी गुरु के बिना जीव भटकते फिरते हैं। वे सच्चे शब्द या नाम-धुन को प्राप्त नहीं कर सकते। जब दृढ़ प्रेम के साथ अभ्यासी सुमिरन करता है तो उसकी भक्ति के कारण नाम-धुन प्रकट हो जाती है।

इसलिए दरिया साहिब सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूरी लगन और दृढ़ता के साथ सुमिरन का अभ्यास करने पर ज़ोर देते हैं। वह कहते हैं:

रगरत रगरत रगर करु, मल के कीजै दूर।
मल गये निर्मल हुआ, ग्यान बसा भरपूर॥[140]

हमें हठपूर्वक बार-बार सुमिरन का अभ्यास करते जाना चाहिए और इस निरंतर सुमिरन द्वारा हृदय की मैल को दूर करना चाहिए। मैल निकल जाने पर जब निर्मलता आ जाती है तब हृदय पूरी तरह ज्ञान से भर जाता है।

ध्यान और भजन की साधना का उल्लेख करते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

केवल निरभै नाम सहाई। भजन मैलि काटे सभ जाई॥
साहब ध्यान धरै चित लाई। रूप अनूप जोति छबि छाई॥[141]

भय मिटानेवाला नाम ही हमारी सहायता करता है और भजन द्वारा (अंतर में शब्द-धुन को सुनने से) अंदर की सारी मैल धुल जाती है। चित्त को केंद्रित कर हमें अंदर अपने सतगुरु के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। इससे सतगुरु के अनुपम स्वरूप के प्रकाश की छटा अंतर में फैल जाती है।

दरिया साहिब के अनुसार मूल शब्द यानी नाम, दिव्य प्रकाश और मधुर शब्द-धुन के रूप में साधक के अंदर प्रकट होता है, जिससे साधक का हृदय अनुपम शांति और सुख से भर जाता है। इस शब्द-धुन की डोर को पकड़कर ही आत्मा उस सतलोक में पहुँचती है जहाँ से शब्द-धुन उठती है। जैसा दरिया साहिब कहते हैं:

मूल सब्द धुनि होत अंजोरा। सुरति बांधि राखे एक ठौरा॥
सुरति डोरि चेतै चित लाई। मूल सब्द के एहि उपाई॥[142]

मूल शब्द-धुन से अंतर में प्रकाश उत्पन्न होता है। सुरत (आत्मा की अंतर में शब्द सुनने की शक्ति) को एक जगह केंद्रित करके शब्द-धुन में

जोड़ना चाहिए। सुरत को शब्द-धुन की डोर में चेतनता के साथ लवलीन करना चाहिए। मूल शब्द को प्राप्त करने का यही उपाय है।

आगे मारग झीन अति है सब्द सुरति बिचारहीं।
अजर जोति अनूप बानी देखि तहं सुख पावहीं॥

अजरा जोति बराए, मूल सब्द निजु सार है।
गहो सुरति चित लाए, कहे दरिया भवरहित है॥[143]

आगे की राह अत्यंत सूक्ष्म है। वहाँ सुरत द्वारा शब्द का अभ्यास किया जाता है। वहाँ की अविनाशी ज्योति और अद्‌भुत धुन को अनुभव कर, आत्मा आनंदित हो जाती है। मूल शब्द ही सार पदार्थ है जिसकी अविनाशी ज्योति सदा जलती रहती है। ध्यान को एकाग्र कर सुरत द्वारा मूल शब्द को पकड़ना चाहिए। ऐसी साधना ही साधक को संसार से पार ले जाती है।

छन छन होखै अनहद बानी। देखि सरूप भवन रहु ठानी।
गुरु ग्यानी जो होखै कोई। सत्तनाम निजु पावै सोई॥
सब्द पास दीढ करि धरई। जाए छप लोक नरक नहिं परई॥[144]

अंतर में हर घड़ी अनहद धुन होती रहती है। अंदर सतगुरु के दिव्य स्वरूप को देखते हुए ध्यान को स्थिरता से टिकाओ। जिसे कोई ज्ञानी गुरु मिला होता है, वही सतनाम को प्राप्त करता है। जो शब्द का पल्ला दृढ़ता से पकड़ता है, वही सतलोक जाता है। वह कभी नरक में नहीं जाता।

अन्य संतों ने भी आंतरिक प्रकाश और शब्द-धुन के रूप में नाम के प्रकट होने का उल्लेख किया है।

पलटू साहिब कहते हैं:

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।

छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥...
निकसै एक अबाज चिराग की जोतिहिं माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं॥
पलटू जो कोई सुनै ता के पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥[145]

स्वामी जी भी इस आंतरिक प्रकाश और शब्द-धुन का बार-बार उल्लेख करते हैं। जैसे:

सीतल शब्द जोत लख पाई। गगन मँडल में सुरत समाई॥[146]

देखियो जोत उजाला चमचम।
रहो फिर धुन में छिन छिन रम रम॥[147]

दरिया साहिब हमें चिताते हैं कि इस आंतरिक ज्योति और अनहद धुन के अनुभव को हमें अपने अंदर गुप्त रखना चाहिए। वह कहते हैं:

सुनै स्रवन अभिअंतर राखै। लोचन ललचि नाम रस चाखै॥
रसना रसि बसि अम्रित पीवै। या जग महिं सोई जन जीवै॥[148]

ललचाई हुई आँखों से अंतर में नाम का रस लेना चाहिए और आंतरिक कान से शब्द-धुन को सुनना चाहिए। पर इस अनुभव को अपने अंदर ही पचाना चाहिए, कभी बाहर प्रकट नहीं करना चाहिए। इस संसार में उसी मनुष्य का जीना सफल है जिसकी आंतरिक जीभ अपने अंदर नामरूपी अमृत को पीकर उसके रस के वश में हो जाती है अर्थात् नाम-रस को पीकर तृप्त हो जाती है और फिर यह जीभ इस भेद को बाहर प्रकट नहीं करती।

वास्तव में जिस नाम का भेद सतगुरु देते हैं, अत्यंत ही गूढ़ होता है। इसलिए दरिया साहिब हमें चिताते हैं कि हमें कभी भूलकर भी उस गूढ़ रहस्य को किसी दूसरे के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए; अन्यथा हम

काल के वश में आ जाएँगे और हमारी आध्यात्मिक प्रगति रुक जाएगी। वह स्पष्ट कहते हैं:

गोप गुपुत छापा कर भाऊ। गहिर गूंगा निश्चय लै लाऊ॥
कतनो छल बल काल जो करई। छापा सनदि गोप करि धरई॥[149]

गुरु द्वारा दी गई नाम की छाप या शब्द-भेद गोपनीय है, इसे गुप्त रखना चाहिए। निश्चित रूप से गंभीरता-पूर्वक मौन धारण कर अपने अंदर नाम की साधना में लवलीन रहना चाहिए। मन चाहे कितना भी ज़ोर लगाए और धोखे से अंदर के भेद को प्रकट कराने की कोशिश करे, अभ्यासी को नाम और आंतरिक मार्ग का भेद गुप्त ही रखना चाहिए।

अकुफ कहेव समुझाइ के, गहिर गुंगा होय जाय।
फहस कतही नहिं कीजिए, काल नोमेरो आय॥[150]

दरिया साहिब कहते हैं कि मैंने तुम्हें समझाकर नाम का भेद बता दिया है। तुम्हें इस संबंध में अब बिल्कुल गंभीर और मौन रहना चाहिए। इस भेद को भूलकर भी किसी को नहीं बताना चाहिए, नहीं तो अभ्यासी काल के चक्कर में फँस जाता है।

शब्द यानी नाम का रहस्य अतिशय गहन और गूढ़ होने के कारण दरिया साहिब केवल जिज्ञासुओं को संकेत देने के लिए शब्द-मार्ग की यात्रा की कुछ झलकियाँ प्रस्तुत करते हैं। साधकों की पहचान के लिए वे आंतरिक मार्ग में आनेवाले प्रमुख केंद्रों का भी उल्लेख करते हैं। वे बताते हैं कि प्रेमपूर्वक मन को एकाग्र करने से आत्मा की अंदर देखने और सुनने की शक्तियाँ, जिन्हें क्रमशः 'निरत' और 'सुरत' कहते हैं, जाग्रत हो जाती हैं। सूई के सुराख़ के समान अत्यंत सूक्ष्म द्वार से आत्मा अपनी निरत और सुरत की शक्तियों के सहारे अंदर प्रवेश करती है। अंतर में एक से एक सुंदर और आकर्षक प्रकाश और धुन को अनुभव करती हुई आत्मा अनेक आंतरिक लोकों को पार करके अपने निजधाम सतलोक पहुँचती है और परमात्मा यानी सतनाम में समा जाती है। सतलोक की प्राप्ति के

पहले आंतरिक मार्ग में आनेवाले प्रमुख केंद्रों जैसे, बंकनाल, सहस्रदल कमल, त्रिकुटी, दसवाँ द्वार, भँवरगुफा का दरिया साहिब उल्लेख करते हैं। पर वह यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि इस शब्द-मार्ग के अत्यंत गहन और सूक्ष्म भेद को केवल सतगुरु ही अपने शिष्य को पूरी तरह खोलकर समझा सकता है। उक्त बातों का संकेत करते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

मन थिर होए तो भगति द्रिढ़ावै। सार सब्द का परचै पावै॥[151]

मन के स्थिर होने पर भक्ति में मज़बूती आती है और तभी असली शब्द यानी नाम का परिचय प्राप्त होता है।

सुइ अग्र तहां द्वार संवारी। झलके मनि तहां जोति उजियारी॥[152]

वहाँ सूई के सुराख़ जैसा सूक्ष्म द्वार बना हुआ है जिसमें मणियों के दिव्य प्रकाश की झलक आती है।

अग्र नख हंसा बैठावै। अपने निरति तब सुरति समावै॥...
निअछर निरखि प्रेम पद पावै। छुटि जाए तिमिरि गगन झरि लावै॥...
अक्खर भेद कहै सभ जाई। अच्छर माँह निहच्छर पाई॥
कहे दरिया सो संत सुजाना। एह भेद बिरला केहु माना॥[153]

पहले ध्यान को पूरी तरह एकाग्र कर, आत्मा को स्थिरता से टिकाना चाहिए। तब आत्मा की अंतर में देखने और सुनने की शक्तियाँ, जिन्हें क्रमशः 'निरत' और 'सुरत' कहते हैं, अपने आप अंदर चली जाती हैं। निःअक्षर या धुनात्मक नाम के अनुभव से प्रेम उमड़ आता है, अंधकार दूर हो जाता है और आंतरिक आकाश से अमृत की वर्षा होने लगती है। सभी लोग अक्षरात्मक या वर्णात्मक नाम का ही भेद कहते हैं, पर इस मार्ग में अक्षरात्मक नाम से निःअक्षर नाम की प्राप्ति की जाती है। इस निःअक्षर नाम को जाननेवाला ही ज्ञानी या अनुभवी संत कहलाता है। इस नाम के भेद को कोई विरला ही जानता है।

चन्द सूर दोउ झलके आई। दुइ पवनारी नीचे चलि जाई॥
सिखरा चढ़े सुखमन अहई। इंगला पिंगला नीचे बहई॥
गंधारी वृग से गंध सुबासा। अमि कमल प्रेम परगासा॥
एह में मुंद्रा एहि में मूला। एहि में सहस्र कमल दल फूला॥[154]

आंतरिक मार्ग में चाँद और सूर्य दोनों दिखाई देते हैं। जब सुरत ऊपर की ओर सिमटने लगती है तब ये दोनों नीचे की ओर चले जाते हैं। ऊपर चोटी पर चढ़ने पर तीसरे तिल में सुषुम्ना मिलती है। इड़ा और पिंगला की धाराएँ उसके नीचे बहती हैं। सुगंधित फूल के विकसित होने से सुगंध आती है और प्रेम के प्रकाशित होने से आंतरिक कमल अमृत से भर जाता है। आध्यात्मिक फल को प्राप्त करने का यही मूल स्थान है। इसमें हज़ार पँखुड़ियों वाला (सहस्रदल) कमल खिला हुआ है।

झीनि घाट यह बाट हमारी। दिव्य दृष्टि करै उजियारी॥[155]

बंक कमल मधे करु प्रकाशा। देखहु दृष्टि सुगंध सुबासा॥
अमि पत्र भरि प्रेमहि पीजे। त्रिबेनि घाट सुघट भरि लीजे॥[156]

फिर अभ्यासी बंक कमल नामक स्थान के बीच प्रवेश कर अपनी आँख से प्रकाश को देखता है और सुगंधि का आनंद लेता है। त्रिवेणी के संगम पर वह अपने पवित्र हृदय के घड़े को भर लेता है और घड़ा भर-भरकर प्रेम से अमृत पीता है।

कहि कहि कवि सब बहुत बनाई। दसवें द्वार की मर्म न पाई॥
दसवें द्वार मीन जहं जाई। गहिर भेद बिरला केहु पाई॥[157]

कवियों ने अनेक प्रकार से परमार्थ की राह का वर्णन किया है, पर दसवें द्वार या पारब्रह्म का रहस्य उन्हें मालूम नहीं है। जैसे मछली आनंदपूर्वक धारा से उलटी दिशा में जाती है, वैसे ही दसवें द्वार में अभ्यासी

मीन-गति (मछली के समान उलटी गति) से ऊपर चढ़ता है। कोई विरला जन ही इस गहरे रहस्य को जानता है।

त्रिवेनी त्रिकुटी भंवर गोफा में द्वादस उलटि चलावंता।
छव चक्र का (भेद) प्रगट है सुखमनि सुरति जगावंता॥[158]

पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ, मन और बुद्धि – इन बारहों को बाहर से उलटकर तथा इन्हें अंदर मोड़कर अभ्यासी त्रिवेणी, त्रिकुटी और भँवरगुफा नामक आंतरिक मंडलों की यात्रा करता है। अपनी सुरत द्वारा सुखमन के शब्द-धुन को सुननेवाले को अपने आप नीचे के छः चक्रों का रहस्य प्रकट हो जाता है, क्योंकि पिंड के ये छः चक्र अंड या सूक्ष्म मंडल के छः चक्रों की परछाईं मात्र हैं।

भंवर गोफा तहाँ घुमे निसाना। यह छवि देखहिं संत सुजाना॥[159]

भँवरगुफा की यह निशानी है कि वहाँ एक सुंदर हिंडोलना चक्कर लगाता रहता है। आंतरिक अनुभव में निपुण संतजन ही इस शोभा को देखते हैं।

मुरली टेरि गगन में आवै। बोलनिहार सो एह बजावै॥...
सोहंग सुरति सून्य महं पेखै। अजपा मूल द्रिष्टि महं देखै॥...
सुरति सोहंग मूल में जाई। दरसन देखि कमल ब्रिगसाई॥
बिनु सतगुर को भेद बतावै। गुपत नाम एह प्रगट देखावै॥[160]

आंतरिक गगन से मुरली की सुरीली आवाज़ उठती है। यह आवाज़ परमात्मा की दरगाह से आती है। शून्य मंडल में सुरत सोऽहं का अनुभव प्राप्त करती है और अपनी आंतरिक आँख से उस मुक़ाम को देखती है जो अपने आप चलनेवाले सुमिरन का मूल है। उस मंडल के धनी (सत्पुरुष) को देखकर आत्मा का हृदय-कमल ख़ुशी से खिल उठता है। सतगुरु के

बिना इस रहस्य को भला कौन बता सकता है? एकमात्र वही गुप्त नाम को प्रकट करके दिखाता है।

'नाम' मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन है। दरिया साहिब इसी ओर संकेत करते हुए कहते हैं:

जाके पूंजी नाम है, कबहिं ना होखै हानि।
नाम बिहूना मानवा, जमके हाथ बिकान॥[161]

जिसके पास नाम की पूँजी होती है उसकी कभी हानि नहीं होती। परंतु नाम-विहीन जीव यम के हाथ बिक जाते हैं अर्थात् ऐसे जीव आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सच्चे नाम के अभ्यास द्वारा ही जीव जन्म-जन्मांतर के कर्मों से छुटकारा पाकर अपने आनंदमय धाम लौट सकता है। कर्म के नियम के अधीन ही जीव आवागमन के चक्र में पड़ा हुआ है। मन के वश होकर जीव जो कर्म करता है, उसका नतीजा भुगतने के लिए इसे बार-बार संसार में जन्म लेना पड़ता है। जब से जीव ने मन का साथ लिया है, तब से यह अपने स्वरूप को भूलकर संसार में भटक रहा है और इसे अपने आनंदमय धाम की सुध बिसर गई है। जीव इतनी बुरी तरह मन के चंगुल में फँस गया है और यह इतना अधिक गंदा हो चुका है कि यह मन के बहकावे में आकर प्राणियों की हिंसा करने से भी नहीं हिचकता और उनका मांस खाने और शराब आदि नशीले पदार्थों का सेवन करने में आनंद का अनुभव करता है। ऐसा करने से यह काल के कठिन जाल में और भी अधिक उलझता जाता है।

इसी लिए दरिया साहिब कर्म के कठिन नियम की ओर हमारा ध्यान दिलाते हैं। मांस, मछली, शराब आदि से परहेज़ करने के लिए हमें सख़्त हिदायत देते हैं और मन के धोखे से हमें सावधान कर इसे वश में करने और इसके चंगुल से निकलने का उपाय बताते हैं।

कर्म का नियम

कर्म के अटल नियम की ओर हमारा ध्यान दिलाते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

जो जस करे सो पावे सोई। यह संसार जात सब रोई॥[162]

जो जैसा करता है, वैसा ही पाता है। कर्मों के कारण ही संसार में सबको रोना पड़ता है।

पाप पुन्य मन कारन अहई। दुख सुख भोग दुवो एह करई॥
पुन्य के फल सुख होय शरीरा। पाप के फल कठिन दुख पीरा॥[163]

मन ही हमें पाप-पुण्य में लगाता और दु:ख तथा सुख दोनों का भोग करवाता है। पुण्य के कारण शरीर को सुख मिलता है जब कि पाप के कारण कठिन दु:ख और कष्ट भोगने पड़ते हैं।

काया करम कहं थापिया, पाप पुन्य जेहि साथ।
सतगुरु मत नहि जानहि, सोइ परा जम हाथ॥[164]

शरीर प्राप्त करके हम कर्मों का संग्रह करते हैं। इन कर्मों में पाप और पुण्य दोनों शामिल होते हैं। सतगुरु के चरणों की शरण लिए बिना हमें इन कर्मों के कारण यमराज के पास जाना पड़ता है।

टेरि टेरि बहु बचन कहि, बहु बिधि कहेव पुकार।
धर्मराय कागद देखा, दीहें कोड़न की मार॥[165]

दरिया साहिब कहते हैं कि मैंने बार-बार ऊँची आवाज़ में पुकार-पुकारकर अनेक प्रकार से लोगों को समझाया है। धर्मराज कर्मो का हिसाब देखता है और पापियों पर कोड़ों की मार पड़ती है।

कर्मों का यह कठिन जाल एकमात्र सतगुरु के बताए शब्द-धुन के अभ्यास द्वारा ही काटा जा सकता है, जैसा कि दरिया साहिब कहते हैं:

मंजन मैलि जो जात है, सज्जन जन की रीति।
अघ पातक जरि जायेगा, कर सतगुरु से प्रीति॥
कर्म पहाड़ यह ना टरे, टारेगा कोई संत।
ग्यान छेनी से काटिये, यह सतगुर का मंत॥[166]

भले पुरुषों को यह नियम मालूम है कि जिस प्रकार स्नान करने से शरीर की मैल उतरती है, उसी प्रकार सतगुरु की संगति से हमारे अंदर की मैल नष्ट होती है। इसलिए हमें सतगुरु से प्रेम करना चाहिए। कर्मों का पहाड़ केवल अपने प्रयास से नष्ट नहीं हो सकता। इसे संत ही टाल सकते हैं। सतगुरु हमें उपदेश देते हैं कि हमें उनसे ज्ञानरूपी छेनी प्राप्त कर, कर्मों के पहाड़ को काटना चाहिए।

सतगुरु आप छोड़ाइया, छूटे शब्द के साथ।
कहे दरिया तब बाँचिहों, ग्यान रतन लियो हाथ॥[167]

कर्मों के बंधन से हमें सतगुरु स्वयं ही शब्द यानी नाम का अभ्यास करवाकर छुड़ाते हैं। सतगुरु से ज्ञानरूपी रत्न प्राप्त कर, हम कर्मों के बोझ से बच जाते हैं।

काटि कर्म सत सब्द से, मिले गहिर गुर ग्यान।
भरम करम सभ नासि के, भवो अमरपुर धाम॥[168]

गुरु से उनके गहरे ज्ञान को प्राप्त कर, हमें सच्चे शब्द यानी नाम के अभ्यास द्वारा कर्मों को काटना चाहिए। तभी हम संसार के भ्रम को दूर कर और सभी कर्मों को नष्ट कर अपने अमर-धाम को प्राप्त कर सकते हैं।

स्वामी जी भी हमें गुरु से शब्द का भेद लेकर शब्दरूप परमात्मा से मिलने का उपदेश देते हैं:

शब्द कर्म की रेख कटावे। शब्द शब्द से जाय मिलावे॥[169]

मांस, मछली और मादक पदार्थों का निषेध

दरिया साहिब ने मांस, मछली और शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन का बड़ा ज़ोरदार विरोध किया है। वह बताते हैं कि मांस-मछली खाने से हम कर्मों के बहुत भारी बोझ से लद जाते हैं। शराब आदि के सेवन से हमारी नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति मारी जाती है। इसलिए अन्य संतों की तरह उन्होंने भी इन सब का परित्याग पारमार्थिक साधना के लिए अत्यंत आवश्यक बताया है। वह मांस, मछली और शराब जैसे दुर्गंधित पदार्थों के सेवन करनेवालों की संगति से हमें सदा दूर रहने का उपदेश करते हैं, जैसा कि वह स्पष्ट कहते हैं:

मीन मांस मदिरा कर संगा। अहे अपावन पाप उतंगा॥
फल औ फूल अंकुर जत अहई। यह सुख संत सदा गुण कहई।[170]

मांस, मछली और शराब का सेवन करना घोर पाप है और यह हमें अपवित्र बना देता है। फल, फूल और अंकुर से उत्पन्न होनेवाली जितनी भी साग-सब्ज़ियाँ और अन्न हैं, वे सुखकारक हैं। संत सदा से इनका गुणगान करते आए हैं।

बग बाउर निकट न जावे। मीन मांसु रसना जो पावे॥
तेजे बिकार बिगिंध बिरोगा। निरलेप निरमल होय योगा॥[171]

जो लोग बगुले के समान ढोंगी हैं, उनके समीप नहीं जाना चाहिए। ये लोग अपने लोभ से मांस और मछली का स्वाद लेते हैं। इन दुर्गंधयुक्त, दुःखदायी और विकारवर्धक पदार्थों को त्यागने पर ही निर्लिप्त भाव से निर्मल योग की साधना की जा सकती है।

नानक औ कबीर है, कहहि आपनों पंथ।
मांस सगौती खात हैं, यह सब बात अकंथ॥[172]

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि वे गुरु नानक और कबीर साहिब के पंथ को माननेवाले हैं। पर वे बकरे और अन्य जीवों का

मांस खाते हैं। यह तो इतनी बुरी बात है कि इसे ज़बान पर भी लाना ठीक नहीं।

दरिया साहिब हमें समझाते हैं कि यह संसार काल का देश है जहाँ जीव, जीव को खाता है। काल ने यहाँ ऐसी ही व्यवस्था कर रखी है जिसमें लोग जीवों का वध करके और मांस-मछली खाकर अपने आप आसानी से काल के जाल में फँस जाएँ। हमें इस बात को कभी भी भूलना नहीं चाहिए कि सबको अपनी जान प्यारी होती है।

इसलिए किसी भी जीव का वध करने या करवाने से हमें सदा बचना चाहिए। जो लोग जीवों का वध करते और उनका मांस खाते हैं, वे नरक के अधिकारी बनते हैं। इसी प्रकार शराब आदि नशीले पदार्थों से भी हमें परहेज़ करना चाहिए। इन बातों को समझाते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

काले या जग पालिया, पलक करे नहिं भोर॥
मीन मांस पोषन दिया, घैंचि आपनी ओर॥[173]

जैसे क़साई मांस के लिए बकरे को पालता है, वैसे ही काल संसार के जीवों का आहार करने के लिए इन्हें पालता है। अपने जाल में फँसाए रखने में तत्पर काल एक क्षण के लिए भी जीवों को नहीं भूलता और उन्हें मांस-मछली का भोजन देकर अपनी ओर खींच लेता है।

जस पियार जिव आपनो, तस जिव सभै पियार।
जानहिं सत सबुद्धि जन, जाके विमल बिचार॥[174]

संतजन सुबुद्धि वाले होते हैं और उनके विचार निर्मल होते हैं, वे यह जानते हैं कि जैसे हमें अपनी जान प्यारी है, वैसे ही अन्य प्राणियों को भी अपनी जान प्यारी है।

खून खराब एहि मंह भूला। दोजक द्वार जीव सो भूला॥
पकरि जीव खून करि खाई। सो सिताब दोजक के जाई॥[175]

जो लोग ख़ून-ख़राबा (हत्या या मार-काट) करने में लगे रहते हैं, उनके लिए नरक का दरवाज़ा खुला हुआ है। जो जीवों को पकड़ते और उन्हें मारकर खाते हैं, वे जल्दी ही नरक में जाते हैं।

जिन लोगों को जीव-वध करने और शराब पीने की आदत पड़ी हुई है, उनके लिए दरिया साहिब वध करने और पीने की उपयुक्त सामग्री बताते हुए कहते हैं:

जौं तोहि खून सांच मन भावा। करहु खून हम तुमहिं बतावा॥

ग्यान खरग द्रिढ़ कर गहो, कामादिक भट मारि।
पांच पचीसहिं जीति कै, करम भरम सभ झारि॥[176]

दरिया साहिब कहते हैं कि यदि तुम्हारे मन को सचमुच मार-काट में मज़ा आता है तो मैं तुम्हें मारने की चीज़ बताता हूँ। तुम ज्ञान की तलवार को दृढ़ता से पकड़ो तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार नामक योद्धाओं को क़त्ल करो। फिर पाँच इंद्रियों और पच्चीस प्रकृतियों को जीतकर सभी प्रकार के भ्रम और कर्म से छुटकारा पा जाओ।

जौं चाहसि मदपान, रहहु बेहोश भव सोग सै।
तेजि पाखंड अभिमान, नाम अमल मतवार रहो॥

महा प्रलै की डर नहिं आवै। जा कहं सतगुर ढारि पिलावै॥[177]

यदि तुम्हारी शराब पीने की इच्छा है और तुम बेहोश होकर संसार के दुःखों को भूलना चाहते हो तो तुम पाखंड और अहंकार को छोड़कर नाम के नशे की मस्ती प्राप्त करो। सतगुरु जिसे प्याले में नाम का रस डालकर पिलाते हैं, उसे फिर महाप्रलय का भी डर नहीं रह जाता। भाव यह है कि भँवरगुफा तक की सृष्टि महाप्रलय में नष्ट हो जाती है। पर सतगुरु नाम का रस पिलाकर अपने शिष्य को भँवरगुफा से भी ऊपर सतलोक में ले जाते हैं जो कभी नष्ट नहीं होता।

अन्य संतों ने भी जीव-हत्या करने और मांस खानेवालों को नरक का अधिकारी बताया है। कबीर साहिब कहते हैं:

हिन्दु की दया मेहर तुर्कन की, दूनों घट से त्यागी।
ये हलाल वै झटका मारैं, आगि दूनों घर लागी॥[178]

दादू साहिब भी कहते हैं:

(दादू) कोई काहू जीव की, करै आतमा घात।
साच कहूँ संसा नहीं, सो प्राणी दोजगि जात॥[179]

गुरु रविदास जी का भी कथन है:

'रविदास' जीव कूं मारि कर, कैसो मिलंहि खुदाय।
पीर पैगंबर औलिया, कोउ न कहइ समुझाय॥[180]

अपनह गीव कटाइहिं, जौ मांस पराया खांय।
'रविदास' मांस जौ खात हैं, ते नर नरकहिं जांय॥[181]

मन के फंद

मन के साथ साँठ-गाँठ होने के कारण ही जीव आवागमन के चक्र में पड़कर इस संसार में अनंत काल से भटक रहा है। इसलिए दरिया साहिब मन के फंदों में पड़े जीव की दुर्दशा की ओर हमारा ध्यान दिलाते हैं, मन को वश में लाने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं और इसे वश में लाने या जीतने का उपाय बताते हैं।

मन के जाल में उलझे जीवों का हाल बताते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

मन के फंद परा संसारा। जाल मीन ज्यों करै अहारा॥
ऐसे काल सकल जिव मारै। उपजनि बिनसनि नरकहिं डारै॥[182]

संसार मन के जाल में फँसा हुआ है। मन जीवरूपी मछलियों को अपने जाल में फँसाकर उनका आहार करता है। इस तरह काल सभी

जीवों को मारता है तथा उन्हें बार-बार उत्पन्न करता, नष्ट करता और नरकों में डालता है।

यह मन आदि अन्त चलि आवे। यह मन सुर नर मुनिहिं नचावे॥
मन चिन्हला बिनु बड़ दुख पावे। मन चिन्हला बिनु मूल गंवावे॥[183]

यह मन शुरू से आख़िर तक जीव के साथ क़ायम रहता है। देवता, मनुष्य और मुनिजन – सभी को यह अपने इशारे पर नचाता है। इस मन की पहचान न करने के कारण जीव बहुत दुःख पाता है। वह अपने मूल परमात्मा को भुला देता है।

मन मकरंद माथे बसे, त्रिकुटी संगम तीर।
पल पल छन छन बुद्धि रचे, काम क्रोध का वीर॥[184]

हमारे माथे के अंदर जहाँ तीन पर्वतों की चोटियाँ मिलती हैं वहाँ उस त्रिकुटी के तट पर, दूसरे रूहानी मंडल में, मनरूपी भौंरे का निवास-स्थान है। वहाँ से वह क्षण-क्षण अपनी चाल चलता रहता है। काम और क्रोध उसके दो प्रधान योद्धा हैं।

मन के रंग बुझै जन कोई। निरमल होए निरंतर सोई॥
एह मन जाल जंजाल जहाना। सो मन चीन्हि होखहु निजु ग्याना॥[185]

जिसे मन की कलाबाज़ियों की परख हो जाती है, वही सदा निर्मल रह सकता है। संसार में इस मन के जाल का ही झमेला है। इस मन को पहचानने पर ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

मन को जीतना ही परमार्थ की साधना का मूल है। इसलिए दरिया साहिब मन को वश में लाने पर ज़ोर देते हुए कहते हैं:

कहें दरिया मन कैद करू, जौं चाहो सतनाम।
कर्म काटि जन निजुपुर, जाय बसे निजु धाम॥

मन के जीते जीतिया, मन के हारे भौ हानि।
मनहिं बिलोय ग्यान करू मथनी, तब सुख उपजे जानि॥[186]

दरिया साहिब कहते हैं कि यदि तुम सतनाम या परमात्मा की प्राप्ति करना चाहते हो तो मन की भाग-दौड़ को रोककर इसे स्थिर करो। तभी जीव कर्मों को नष्ट कर, अपने सच्चे धाम में निवास पा सकता है। मन को जीतने में ही हमारी जीत है और मन से हारने में ही हमारी हार है। गुरु के बताए हुए ज्ञान को मथानी बनाकर मन को मथने पर ही अर्थात् गुरु के बताए हुए अभ्यास द्वारा मन का संयम करने पर ही सच्चे सुख का अनुभव प्राप्त होता है।

ऐसा ही विचार प्रकट करते हुए स्वामी जी भी कहते हैं:

मन इन्द्री कुछ बस कर राखो। पियो घूँट गुरु जाम से॥
लगे ठिकाना मिले मुक़ामा। छूटो मन के दाम से॥[187]

मन सदा सुख की तलाश में रहता है और इसी लिए यह सांसारिक विषयों की ओर दौड़ता है। जब तक सांसारिक विषयों के स्वाद से कहीं अधिक ऊँचा और मीठा स्वाद इसे नहीं मिलता, तब तक इस मनरूपी हाथी को रोका नहीं जा सकता। एकमात्र शब्द यानी नाम में ही वह ऊँचे से ऊँचा और मीठे से मीठा स्वाद है जिसे पाकर यह मन सदा के लिए तृप्त और शांत हो जाता है। अत: नाम के प्रेम रस का स्वाद चखाना ही मन को पूरी तरह वश में करने का एकमात्र साधन है। जैसा कि दरिया साहिब कहते हैं:

चिन्हहुं ग्यान निजु सब्द हमारा। जौ चाहो निजु मुक्ति करारा॥[188]

दरिया साहिब कहते हैं कि यदि तुम अपनी सच्ची मुक्ति चाहते हो तो उस ज्ञान को पहचानो, उस अनुभव को प्राप्त करो जो हमारे दिए हुए शब्द (नाम) के अभ्यास से प्राप्त होता है।

सब्द हमारा मानहु, करो बिबेक बिचारि।
सत्त सब्द यह चीन्हहु, उतरहु भौ जल पार॥[189]

दरिया साहिब कहते हैं कि गुरु के दिए हुए शब्द (नाम) को मानो, इस पर गहराई से विचार करो अर्थात् इसका दृढ़ता से अभ्यास करो और सच्चे शब्द को अपनाकर इस भवसागर को पार कर लो।

मन गयंद ग्यान आंकुस, उलटी जंजीरे बांधु।
मस्त हुआ माता फिरे, बिरला जग में साधु॥[190]

मनरूपी हाथी को गुरु से प्राप्त ज्ञान का अंकुश लगाना चाहिए, बाहरी विषयों में लगे हुए मन को अंदर की ओर मोड़कर एकाग्र करना चाहिए। इसे ही उलटी ज़ंजीर में बाँधना कहते हैं। कोई विरला साधु ही मन को इस प्रकार वश में कर सकता है।

मन को अंतर में मोड़कर ही वश में किया जा सकता है, तभी पूर्णता की प्राप्ति होती है। दरिया साहिब कहते हैं:

भरम छोड़ि सब्द कंह लागे। कहे दरिया प्रेम रस पागे॥
मन के चीन्हि राखै एक ठांई। जरा मरन कबहीं नहिं पाई॥[191]

अर्थात् जो संसार के भ्रम को छोड़कर शब्द (नाम) की साधना में लगता है, वह प्रेम के रस में सराबोर हो जाता है। मन को पहचानकर वह इसे एक स्थान पर एकत्र करता है। ऐसा अभ्यासी फिर कभी आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता।

धरू मन धीरा ग्यान गंभीरा, नाम हिरंमर सो कहिअं।
बिबेक बिचारो शब्द संभारो, हारेव जम सब इमि लहिअं॥[192]

दरिया साहिब हमें बताते हैं कि युगों-युगों से भटके हुए मन को नाम का अनुभव जल्दी प्राप्त नहीं होता। इसलिए वह मन को समझाते हुए कहते हैं कि ऐ मन! धीरज धारण कर उस गंभीर ज्ञान को प्राप्त कर जिसे नामरूपी उत्तम हीरा कहते हैं। सूझ-बूझ के साथ शब्द (नाम) की साधना कर। यह तय है कि यमराज की अंत में हार होगी और तू सब कुछ प्राप्त कर लेगा।

स्वामी जी ने भी सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार शब्द की कमाई करने को ही मन को वश में करने का एकमात्र उपाय कहा है:

कोटि जतन से यह नहिं माने। धुन सुन कर मन समझाई॥[193]

बिना शब्द यह मन नहिं जागे। करो चाहे कोइ अनेक विधान॥[194]

सत्संग

अनंत काल से मन के साथ लगे रहने के कारण आत्मा के ऊपर कर्मों की बहुत भारी मैल चढ़ी हुई है। कर्मों की मैल को धोकर आत्मा को मन के प्रभाव से मुक्त करने और निर्मल बनाने के लिए इसे किसी संत-महात्मा या सतगुरु की संगति में लाना आवश्यक है। मन संगति का बहुत जल्दी असर लेता है। जैसे पारस के संपर्क से लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही संत या सतगुरु की संगति में आकर दुष्ट भी सज्जन बन जाता है। सत्संग के प्रभाव से कर्मों की मैल उतर जाती है, भक्ति और प्रेम का रंग चढ़ जाता है और शब्द प्रकट हो जाता है। इस प्रकार सतगुरु के प्रति प्रेम और शब्द की साधना द्वारा आत्मा अंत में परमात्मा से जा मिलती है। सत्संग के इस प्रभाव और महिमा का वर्णन करते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

साधु संगति सभ कुमति बिहाई। सुनि गुन ग्यान अम्रित फल पाई॥
संत समाज सदा सुख राजू। भक्ति महातम सिर पर छाजू॥[195]

साधु-संत की संगति में आकर मनुष्य कुबुद्धि को त्याग देता है तथा ज्ञान और भक्ति का ख़ज़ाना प्राप्त कर लेता है।

करहु प्रेम संतन्हि से जाई। दरसन प्रेम म्रिथा नहिं भाई॥[196]

दरिया साहिब हमें संत से प्रेम करने का उपदेश देते हैं, क्योंकि संत से प्रेम करना और उनका दर्शन करना कभी व्यर्थ नहीं जाता।

जो पगु संत दरस कंह परई। कोटि पुन्य अघ पातक हरई॥[197]

संत के दर्शन के लिए एक-एक क़दम चलने पर करोड़ों पुण्य प्राप्त होते हैं तथा अनेक अपराध और पाप दूर होते हैं।

संत दरस गुन सभ ते नीका। जेवों मस्तक विच मनि का टीका॥

गुर पद पदुम मन भंमर करु, आनंद मंगल मूल।
लै लपटि रहा बिमल रस, काटि कर्म कलि सूल॥[198]

मनरूपी भौंरे को गुरु के चरण-कमलों में बिठाना चाहिए, जो आनंद और मंगल का मूल हैं। जब उन चरण-कमलों के पवित्र रस में यह मनरूपी भौंरा लवलीन हो जाता है, तब कलिकाल के कर्मों का कठिन कष्ट दूर हो जाता है।

सत्संग के प्रभाव से कर्मों की मैल उतर जाती है, भक्ति और प्रेम का रंग चढ़ जाता है। इस प्रकार सतगुरु के प्रति प्रेम और शब्द की साधना द्वारा आत्मा अंत में परमात्मा से जा मिलती है। सत्संग के इस प्रभाव और महिमा का वर्णन करते हुए दरिया साहिब कहते हैं:

जो मिले सतसंग सुभागा। होये बिबेक भक्ति बैरागा॥
नदी मिले सरिता में जाई। खारो जल संगति सो पाई॥
पारस मूल शब्द जो पावे। चकमक चित्त चुमुकि लव लावै॥[199]

यदि अच्छा भाग्य हो तो सत्संग मिलता है जिससे भक्ति, विवेक और वैराग्य की उत्पत्ति होती है। समुद्र के खारे जल में मिलने से नदी का मीठा जल भी खारा हो जाता है। पर मूल शब्दरूपी पारस से मिलने पर चित्त निर्मलता से चमक उठता है और चुंबक के आकर्षण की तरह शब्द में लवलीन हो जाता है।

पारस परसे कंचन होई। सो कुधातु कहि सके ना कोई॥
रहे असंत संत भौ ऐसे। सेंधु सीप मुकुता मनि जैसे॥[200]

पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है। फिर उसे कोई घटिया धातु नहीं कह सकता। इसी प्रकार संत की संगति में आकर दुष्ट भी संत बन जाता है। स्वाति की बूँद पाकर समुद्र में पड़ी सीप भी मोती वाली बन जाती है।

जो जीव सांसारिक भ्रमों में भटकते रहते है और जिन्हें सतगुरु की शरण प्राप्त नहीं होती, वे जीव मुक्ति प्राप्ति के इस सुनहरे अवसर को खो देते हैं। दरिया साहिब कहते हैं:

बिखै भाव रस मांगत, त्यागत संत सनेह।
चउरासी के भवन में, फिरि फिरि धरिहैं देह॥[201]

जीव इंद्रिय-संबंधी भोगों के लालच में मग्न होकर संतों के संग को छोड़ देते हैं। ऐसे जीव को चौरासी के चक्र में आकर बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

अमी सरोवर त्यागि के, विष सरोवर वास।
साधु संगति सभ त्यागि के, कियो मुक्ति का नास॥[202]

ऐसे जीव मानो अमृत के सरोवर को छोड़कर विष के सरोवर में रहते हैं। साधु की संगति त्यागकर वे अपनी मुक्ति का दुर्लभ अवसर खो देते हैं।

स्वामी जी सत्संग की महिमा और प्रभाव का गुणगान इन शब्दों में करते हैं:

सतसंग महिमा कहा बखानूं। अस सम यत्न और नहिं मानूँ॥[203]

बिन सतसंग बूझ नहिं आवे। भाग बिना सतसंग न पावे॥[204]

वह फिर कहते हैं:

कर सतसंग मलिनता नासी। घट में चेतन कीन्ह प्रकासी॥[205]

कर सतसँग सार रस पाया। पी पी तृप्त अघाये॥
गुरु सँग प्रीत करी उन ऐसी। जस चकोर चन्दाये॥[206]

सच्चा प्रेम

सत्संग के द्वारा संत-सतगुरु हमारे अंदर भक्ति और प्रेम जगाते हैं तथा इस भक्ति और प्रेम के मार्ग पर चलकर ही हम परमात्मा से मिल पाते हैं। इस संबंध में दरिया साहिब हमें खोलकर समझाते हैं:

1. भक्ति और प्रेम ही प्रियतम परमात्मा से मिलने का एकमात्र साधन है।
2. प्रभु के प्रति प्रेम सतगुरु द्वारा बताई गई नाम-भक्ति के अभ्यास से ही प्रकट होता है। इस प्रेम के उभरने पर विरही प्रेमी अपने प्रियतम के दर्शन के लिए अपनी जान तक सहर्ष न्योछावर करने को तैयार रहता है।
3. इस प्रेम-मार्ग में कोई सच्चा सूरमा ही टिक सकता है जो जीते-जी मरना जानता है।
4. प्रेम-मार्ग की कठिनाइयों को तय कर सच्चा प्रेमी ही प्रियतम के मिलन का सुख प्राप्त करता है।

दरिया साहिब कहते हैं कि सतगुरु द्वारा जगाया गया सच्चा प्रेम ही परमार्थ का मूल और मुक्ति का एकमात्र साधन है:

प्रेम युक्ति निज मूल है, गुरु गमि करो सुधार।
दया दीपक जबहीं बरै, दरशन नाम अधार॥[207]

प्रेम की युक्ति ही परमार्थ का सच्चा मूल है। गुरु के बताए हुए अभ्यास से प्रेम को प्राप्त कर अपने को निर्मल करना चाहिए। सतगुरु की दया से जब आंतरिक दीपक जलता है, तब ही नाम का दर्शन होता है जो हमारी आंतरिक तरक़्क़ी का आधार है।

बिना प्रेम नहिं भक्ति बिबेखा। होए प्रेम एह गुरगमि पेखा॥
प्रेम हि प्रेम मिलै निजु बैना। ज्यों जल कमल रहै सुख चैना॥
ऐसो प्रेम प्रीति गहि लावै। नाम सजीवनि ता सुख पावै॥[208]

प्रेम के बिना न विवेक होता है और न भक्ति ही होती है। पर प्रेम होने पर गुरु की बताई बातों का अनुभव हो जाता है। प्रेम की प्रबलता से ही सच्ची शब्द-धुन की प्राप्ति होती है, जिसे पाकर जीव उसी तरह शांत हो जाता है जैसे जल में कमल सुख-शांति से रहता है। जैसा प्रेम कमल का जल से होता है, वैसा ही प्रेम यदि शिष्य का गुरु के प्रति हो, तभी शिष्य नामरूपी संजीवनी बूटी (जो मृतक को जिला देती है) का सुख प्राप्त कर सकता है।

प्रेम ग्यान जब ऊपजे, चले जगत कंह झारी।
कहे दरिया सतगुरु मिले, पारख करे सुधारी॥[209]

जब प्रेम से ज्ञान की उत्पत्ति होती है तब अभ्यासी संसार के मोह को त्यागकर निर्लिप्त हो जाता है। पर सतगुरु के मिलने पर ही साधक को प्रेम की अच्छी तरह पहचान हो पाती है।

प्रेम प्रीति करु नाम से, भव जल जाहि न हारि।
बिना प्रेम नहिं भक्ति है, कमल सुखा बिनु बारि॥[210]

दरिया साहिब कहते हैं कि नाम से ही प्रेम और प्रीति लगाओ। ऐसा करने पर तुम संसार-सागर से कभी हार नहीं सकते। प्रेम के बिना भक्ति नहीं हो सकती। आध्यात्मिकता का कमल प्रेमरूपी जल के बिना सूख जाता है।

गुरु जौहरी जो भेद बतावे। शीतल शब्द प्रेम सो पावे॥[211]

शब्द का पारखी गुरु जब शब्द यानी नाम का भेद बताता है, तब प्रेम के साथ अभ्यास करने पर हृदय को शीतल करनेवाला शब्द यानी नाम अंदर प्रकट होता है।

जब लगि प्रेम दिया नहिं बरई। भवन कूप अंधियारे परई॥
ज्ञान ज्योति जब निर्मल बरई। सकल पाप किलविखि सब हरई॥...
सतनाम प्रेम निजुलागा। प्रेम प्रीति सोई सन्त सुभागा॥[212]

जब तक प्रेम का दीपक नहीं जलता, तब तक हृदय के अंदर घोर अँधियारा छाया रहता है। जब हृदय में ज्ञान का सच्चा उजाला होता है, तब सभी पाप और कलुष विनष्ट हो जाते हैं। ऐसा होने पर जीव के हृदय में नाम से सच्चा प्रेम और प्रीति उपजते हैं जिनके द्वारा उसे संत पद प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

दरिया साहिब हमें नाम से प्रेम करने को कहते हैं, क्योंकि नाम का प्रेम ही सच्चा प्रेम है और यही हमें सतनाम या सत् शब्द से मिलाता है जो परमात्मा का स्वरूप है। अत: वह कहते हैं:

सतगुरु शब्द परतीति करि, रहो प्रेम लवलीन।
दरिया दर्पण देखिये, कबहीं न होय मलीन॥[213]

सतगुरु के शब्द यानी नाम में विश्वास कर अपने को उसमें प्रेमपूर्वक लवलीन करो और तब अपने हृदयरूपी दर्पण में परमात्मा के दिव्य प्रकाश को देखो जो कभी धूमिल नहीं होता।

जाके प्रेम बसे दिन राती। सो जन कबहीं न परे कुभांती॥
जाके नाम मूल उजियारा। बरे ज्योति तहं निर्मल सारा॥[214]

जिसके हृदय में दिन-रात प्रेम का निवास है, वह प्रेमी कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं करता। जिसके अंदर मूल शब्द का प्रकाश हो जाता है, उसके हृदय में सदा निर्मल ज्योति जलती रहती है।

निस्चै नाम प्रेम लौ लावै। सो हंसा छपलोक सिधावै॥
जाइहिं लोक बहुरि नहिं अवना। जन्म जन्म के मेटै कलपना॥[215]

जो जीव दृढ़ विश्वास के साथ नाम से प्रेम लगाता है, वह अवश्य सतलोक को जाता है। वहाँ जाकर वह फिर कभी इस संसार में वापस नहीं आता। उसके अनंत जन्मों के दु:खों का अंत हो जाता है।

जब प्रेमी प्रेम की गहराई में पहुँचता है, तब उसके अंदर विरह की तीव्र वेदना जाग उठती है। प्रेमी के प्रेम की इस तड़प को दरिया साहिब

ने कई उदाहरणों द्वारा समझाया है। प्रेम की बलिवेदी पर प्रेमी अपने प्राणों को न्योछावर करने को सदा तैयार रहता है। विरही प्रेमी का प्रेम दिन-दिन बढ़ता जाता है, यह कभी घटता नहीं। जब तक प्रेमी अपने प्रियतम से मिलाप नहीं कर लेता, उसे चैन नहीं आता। अपने प्रियतम के प्रेम में वह इस प्रकार खो जाता है कि उसे अपने आप की सुध नहीं रहती। अपने आपाभाव को खोकर वह प्रियतम का ही रूप बन जाता है। ऐसा प्रेमी ही प्रेम की साँकरी गली को पार कर सकता है; क्योंकि प्रेम गली में दो के लिए स्थान नहीं होता। इसलिए दरिया साहिब कहते हैं:

जब लगि विरह न उपजे, हिये न उपजे प्रेम।
तब लगि हाथ न आवहिं, धरम किये व्रत नेम॥[216]

विरह की पीड़ा ही सच्चे प्रेम की पहचान है। जब तक विरह उत्पन्न नहीं होता, तब तक समझना चाहिए कि अभी हृदय में सच्चा प्रेम पैदा नहीं हुआ। इस सच्चे प्रेम के बिना केवल बाहरी धर्म-कर्म और तीर्थ-व्रत करने से परमात्मा नहीं मिल सकता।

जैसे मृगा नाद लव लाई। सुनत श्रवन ध्वनि प्रेम समाई॥
प्रेम बसी होय प्राणहिं दीन्हा। सन्मुख जीव हाथ कै लीन्हा॥...
चातृक प्रीति स्वाती लागा। जीवन जन्म सो भया सुभागा॥
औरि सृष्टि सभे जल तीता। प्रेम प्रीति नाम निजु हीता॥[217]

हिरन को सुरीली ध्वनि से प्रेम होता है, इसलिए शिकारी द्वारा बजाए गए बाजे की सुरीली ध्वनि को सुनते ही हिरन का हृदय प्रेम से भर जाता है। इस प्रेम के वश होकर हिरन अपनी जान को हथेली पर लिए हुए शिकारी के सामने आ जाता है और शिकारी उसकी जान ले लेता है। पपीहे का प्रेम स्वाति की बूँद से लगा होता है। इसे पाकर ही वह अपने जीवन को सफल मानता है। किसी भी और वर्षा के जल को वह तीता या तीखा समझता है। सच्चे नाम के लिए ऐसा ही अनन्य प्रेम और प्रीति होनी चाहिए।

चकोर प्रीति पावक से कीन्हा। चुगत अग्नि प्रेम रस भीन्हा॥...
प्रेम पतंग दीपक महं हूला। तन सभ जरि गयो लागु न शूला॥[218]

चकोर अग्नि से प्रेम करता है, इसलिए प्रेम में मग्न होकर वह अपनी चोंच के जलने की परवाह किए बिना आग को चुग लेता है। प्रेम में पड़कर ही पतंगा चिराग़ पर टूट पड़ता है। उसका सारा शरीर जलकर भस्म हो जाता है, पर प्रेम में मग्न होने के कारण वह कष्ट अनुभव नहीं करता।

जल बिनु मीन न जीवन हारा। अहो प्राणपति प्रेम अधारा॥[219]

मछली पानी के बिना जी नहीं सकती, क्योंकि पानी के प्रति प्रेम ही उसके जीवन का आधार है और पानी ही उसका प्राणपति है।

प्रेम न घटे बढ़े निति अंगा। ज्यौं सागर जल होत न भंगा॥[220]

जैसे समुद्र का जल कभी नहीं घटता वैसे ही सच्चा प्रेम भी कभी नहीं घटता। वह दिन-दिन बढ़ता जाता है।

प्रेम गली अति सांकरि सुन्दरि तामें बात न दूह गते।
चाखन चाहत भूखि ना लागत मांगत बासन छूंछ जते।[221]

सच्चे प्रेम में अपने आप को बिल्कुल मिटा देने की आवश्यकता बताते हुए दरिया साहिब आत्मा से कहते हैं कि ऐ सुंदरी! प्रेम की तंग गली में दो के साथ जाने की तो कोई बात ही नहीं हो सकती। तू प्रेम-रस चखना चाहती है, पर तुम्हारे अंदर विरह की पीड़ा तो उठती नहीं। ऐसी हालत में प्रेम की भीख माँगने पर भी तुम्हारा बर्तन ख़ाली का ख़ाली ही रहेगा।

दरिया साहिब स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि प्रेम के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है। कोई शूरवीर ही इस मार्ग पर चल सकता है। जो जीते-जी मरना जानता है, वही इस मार्ग में सफल हो सकता है। वह कहते हैं:

प्रेम मारग बांको बड़ो, समुझि चढ़े कोइ जानि।
ज्यों खांड़ो की धारि है, सतगुरु कहा बखानि॥[222]

सतगुरु ने यह समझाकर कहा है कि प्रेम का मार्ग तलवार की धार के समान बहुत ही पैना या तेज़ होता है। इस पर सोच-समझकर क़दम रखना चाहिए।

आशिक है तबि डर कहां, डरते आशिक जाय।
लज्या चली लजाई के, तब पिया प्रेम लोभाय॥[223]

जब प्रेमी बन गया तो भला उसे डर कहाँ हो सकता है? प्रेम से डर दूर हो जाता है। इसी तरह प्रेमी को अपने प्रियतम से कोई लाज नहीं रहती। लाज मानो स्वयं लजाकर प्रेमी से दूर हट जाती है। तभी प्रेमी का प्रेम प्रियतम को भाता है।

ऐसी भक्ति है पन्थ निनारा। या तन त्यागि जो पन्थ सुधारा॥...
पहिले तन मन या जीव वारे। पीछे प्रेम पन्थ पगु डारे॥[224]

भक्ति की राह इतनी विचित्र है कि शरीर को त्यागकर ही कोई इस राह पर चल सकता है। पहले अपने तन, मन और प्राणों को न्योछावर करना पड़ता है। उसके बाद ही प्रेम के मार्ग पर क़दम रखा जा सकता है।

अपने तन, मन और प्राण को न्योछावर करने को ही जीते-जी मरना भी कहते हैं। अपने ध्यान को शरीर के नौ दरवाज़ों से हटाकर, दसवें दरवाज़े (तीसरे तिल) में एकत्र करने के अभ्यास को ही जीते-जी मरना या तन, मन और प्राण को न्योछावर करना कहते हैं। जिस तरह मरने के समय शरीर से चेतना का सिमटाव होता है, ठीक उसी तरह इस अभ्यास में भी होता है, पर अभ्यास के समय यह सिमटाव जीते-जी चेतन अवस्था में होता है।

मरना मरना सब कहे, मरिगौ बिरला कोय।
एक बेरि एह ना मुआ, जो बहुरि ना मरना होय॥[225]

मरने की बात तो सब कहते हैं, पर कोई विरला मनुष्य ही सही युक्ति से मरता है। जो एक बार इस युक्ति से मर जाता है अर्थात् जीते-जी मरने का अभ्यास पूरा कर लेता है, उसे फिर संसार में जन्म लेकर मरना नहीं पड़ता। वह सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा जाता है।

जो आत्मारूपी दुलहिन प्रेम की वेदी पर अपना तन-मन न्योछावर कर देती है, उसे ही अपने प्रियतम से मिलने और सच्ची सुहागिन बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। प्रेम की आग में जलकर प्रेमी, प्रेममय हो जाता है। बूँद समुद्र में मिलकर समुद्र बन जाती है। अपने अमर सुहाग को प्राप्त कर आत्मारूपी सुहागिन सदा के लिए निहाल हो जाती है। दरिया साहिब कहते हैं:

जिन्ह तन मन अरपेवो सीस, सोई सोहागिनि जगत में।
कर्म भरम सभ पीस, पिया पर प्रेम लगाइया॥[226]

जो अपने तन, मन और शीश तक को अपने स्वामी के लिए अर्पित कर दे, वही संसार में सच्ची सुहागिन है। संसार के भ्रम और कर्मकांड की सभी क्रियाओं को छोड़ हमें केवल परमात्मारूपी प्रियतम से ही प्रेम करना चाहिए।

अपने प्रियतम के गहरे प्रेम में निमग्न सुहागिन की प्रेमावस्था का वर्णन दरिया साहिब इन शब्दों में करते हैं:

प्रीतम प्रीति बसे दिल मेरो, सो सुन्दर सोभा सुगंध विराजै।
गये सब लाज समाज संकोच सो, चात्रिक होय चित बुन्द में गाजै॥
हौं पतनी पति हो तुम लायक, लोचन लाल चिते दृग राजै॥
'दरिया' जो कहे पिया प्रीति भली,
ललनी बीच चंद है चारु जो छाजै॥[227]

मेरे हृदय में मेरे प्रियतम का प्यार बस गया है जिसकी शोभा और सुगंध सर्वत्र फैल चुकी है। मेरी सब लज्जा दूर हो गई, समाज-संकोच मिट गया और जैसे एक प्यासा चातक स्वाति की बूँद के लिए तड़पता है, ठीक वैसे ही मेरा हृदय पिया-मिलन के लिए तड़प रहा है। मैं तुम्हारी

पत्नी हूँ और तुम मेरे पति हो। दरिया साहिब कहते हैं कि तुम्हारी दृष्टि मेरी अंदरूनी आँख में वैसी ही शोभा दे रही है जैसी प्रिया के हृदय में प्रियतम, चंद्रमा के समान शोभा देता है।

रहे जुगल तब पिया के साथा। भक्ति प्रेम से भइ सनाथा॥[228]

तब वह सुहागिन सदा परमात्मारूपी प्रियतम के साथ रहती है। अपनी भक्ति और प्रेम के द्वारा वह सदा के लिए अपने स्वामी का संग प्राप्त कर सनाथ हो जाती है।

अगिनि में जाए काठ जो परई। जरि कै अगिनि होए सौ रहई॥
भएउ अदग सो लाल अंगोरा। कहै आगि में अगिनि अंजोरा॥
को अब काठ कहै तब आई। चीन्है कवन काठ तेहि भाई॥
कवनो जल समुद्र में परई। दूजा नाम नाहिं कोई धरई॥
सभ कोइ जानै सिंधु अपारा। सो जल को बिलगावनिहारा॥[229]

जो भी लकड़ी आग में पड़ती है, वह जलकर आग ही बन जाती है। लकड़ी दहकते हुए अंगार का रूप ले लेती है। आग में पड़ने के कारण इसे भी प्रकाश-युक्त आग ही कहते हैं। इसे अब लकड़ी कौन कह सकता है और कौन इसे लकड़ी के रूप में पहचान सकता है? इसी तरह कोई भी जल समुद्र में पड़कर समुद्र ही बन जाता है, उसे कोई दूसरे नाम से नहीं पुकारता। सभी उसे अथाह समुद्र ही समझते हैं। उस जल को अब कोई समुद्र से भला अलग कैसे कर सकता है?

आत्मारूपी बूँद परमात्मारूपी समुद्र में समाकर समुद्र ही बन जाती है। आत्मा-परमात्मा के इस मिलाप की ओर संकेत करते हुए स्वामी जी भी कहते हैं:

जड़ चेतन की गाँठ खुलानी। बुन्दा सिन्ध मिलावे॥[230]

सतगुरु की दया से ही प्रेमी अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने का यह अवर्णनीय आनंद प्राप्त करता है। इसलिए दरिया साहिब उस स्थान को, जहाँ संत या सतगुरु निवास करते हैं, प्रियतम से मिलने की फुलवारी कहते हैं। इस फुलवारी में सतगुरु, प्रेमीजनों को प्रियतम से मिलाने और नाम का वह रस पिलाने के लिए बुलाते हैं जिसे पीकर प्रेमीजन सदा के लिए आनंद मग्न हो जाते हैं। जैसा कि दरिया साहिब कहते हैं:

महाप्रलै की डर नहिं आवै। जा कहं सतगुर ढारि पिलावै॥
बैठहिं साधु संत जेहि बारी। इयार मिलन की सो फुलवारी॥[231]

जिसे सतगुरु नाम का प्याला पिलाते हैं उसे महाप्रलय का भी डर नहीं रह जाता। वह परमात्मा से जा मिलता है। इसलिए कहा जाता है कि जिस स्थान या वाटिका में साधु या संत बैठते हैं, वह मानो परमात्मारूपी प्रियतम से मिलाप प्राप्त करने की फुलवारी है।

लेहु प्रेम करि ढारि पिलावों। प्रीति रीति करि पियहिं मिलावों॥[232]

दरिया साहिब कहते हैं कि मैं तुम्हें नाम का रस पिलाता हूँ, तुम इसे प्रेम से लो और पीओ। इसको पिलाकर मैं तुम्हें प्रेमपूर्वक तुम्हारे प्रियतम से मिलाऊँगा।

पियहु नाम मद असल करारा। रहहु मस्त कल्पन्हि मतवारा॥[233]

सच्चे नाम की खरी मदिरा को पीओ और सदा-सदा के लिए मस्त बने रहो।

द्वितीय खंड

1

मानव-जीवन

मुक्ति-प्राप्ति का दुर्लभ अवसर

मानव-जीवन परमात्मा की एक दुर्लभ देन है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद बड़े भाग्य से यह जीवन प्राप्त होता है। परमात्मा से मिलने या मुक्ति प्राप्त करने का यही एकमात्र अवसर है। मानव-जीवन के इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है, जब हम सतगुरु की शरण लेकर उनकी सेवा और भक्ति में लगें तथा उनके उपदेश के अनुसार नाम की कमाई करें। सतगुरु-सेवा और नाम-भक्ति के बिना मानव-जीवन व्यर्थ है।

यह जीव वास्तव में परमात्मारूपी अक्षय-वृक्ष पर बसेरा करनेवाला पक्षी है। माया के वश होकर यह संसार में जन्म-मरण के चक्र में पड़ा हुआ है तथा सपने जैसे क्षणिक और तुच्छ सांसारिक सुख के पीछे दौड़ रहा है। परमात्मा से मिलने और अमर सुख प्राप्त करने के अनमोल अवसर को यह विषय-वासनाओं के पीछे दौड़ने में बरबाद कर रहा है। ऐसा मनुष्य पशु से भी गया-गुज़रा है; क्योंकि पशु के मरने पर उसके चमड़े से जूते आदि बनाए जा सकते हैं; पर मनुष्य का शरीर मरने पर किसी भी काम में नहीं आता। इसलिए हमें अपने मानव-जीवन में सतगुरु की शरण लेकर तथा नाम-भक्ति कर, संसार के आवागमन से छूटने और परमात्मा से मिलने का पूरा प्रयास करना चाहिए। इसी में मानव-जीवन की सार्थकता है। भक्ति-विहीन मनुष्य का जीवन निष्फल है। वह अंत में यमराज के हाथों कष्ट भोगता है तथा रोता-बिलखता और पश्चात्ताप करता है।

मानुख जन्म दुर्लभ जग अहई। बड़े भाग मुक्ति फल लहई॥
भरमि भवन चौरासिहिं राता। जग में ग्यान मिले गुर ग्याता॥
सभ तेजि करो भक्ति निजु धर्मा। पाप पुन्य नहिं ब्यापे कर्मा॥
बड़े पुन्य सत गुर पद पावे॥ जाके सुर नर मुनि सभ गावे॥[1]

मानुख=मनुष्य; **अहई**=है; **लहई**=प्राप्त करना; **भवन**=योनि; **चौरासिहिं**=चौरासी लाख योनियाँ; **राता**=आसक्त, रमा हुआ है; **गुर ग्याता**=ज्ञानी गुरु, जानकार गुरु; **तेजि**=त्यागकर, छोड़कर; **निजु धर्मा**=अपना धर्म; **ब्यापे**=असर होना।

संसार में मनुष्य-जन्म प्राप्त करना बहुत ही दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद बड़े भाग्य से मुक्ति का फल देनेवाला यह मनुष्य-जीवन प्राप्त होता है। इस चौरासी से छुटकारा पाने का ज्ञान किसी ऐसे गुरु से ही मिल सकता है जो स्वयं जानकार हो अर्थात् जो चौरासी से मुक्त होने का निजी ज्ञान रखता हो। इसलिए सांसारिक पदार्थों के पीछे भटकना छोड़कर परमात्मा की भक्ति करना हमारा निज-धर्म है। यदि हम अपनी सांसारिक ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए गुरु की बताई भक्ति में लग जाएँगे तो पहले किए हुए हमारे अच्छे या बुरे कर्मों का भी हम पर कोई असर नहीं होगा। जीव के बड़े भारी पुण्य हों तभी सतगुरु के चरणों में शरण मिलती है। देवता, मनुष्य तथा ऋषि-मुनि सभी सच्चे गुरु के चरणों की शरण में आने की महिमा गाते हैं।

मानुख जन्म दुर्लभ है नीका। तेजहुं भरम ग्यान गुन जीका॥[2]

नीका=सुंदर; **भरम...जीका**=तीन गुणों से उत्पन्न अपने हृदय का भ्रामक ज्ञान।

यह सुंदर मनुष्य-जन्म बड़ी मुश्किल से मिला है, अत: तीन गुणों से उत्पन्न अपने हृदय के भ्रमित करनेवाले ज्ञान को छोड़ो।

करहू प्रेम सन्तन्हिं से, सेवहु सतगुरु पाव।
मानुष जन्म दुर्लभ है, फेरि नहिं ऐसो दाव॥[3]

पाव=चरण; **दाव**=अवसर।

ऐ मानव! संतों से प्रेम कर और सतगुरु की शरण में जाकर सेवा कर, क्योंकि मनुष्य-जन्म का यह दुर्लभ अवसर फिर नहीं मिलेगा।

धन्य सोई भक्ति अनुरागा। धन्य सोई जेहि आतम जागा॥
धन्य सोई जिन्ह सेवा कीन्हा। धन्य सोई जिन्ह सतगुर चीन्हा॥
धन्य सोई सत शब्द समाई। प्रेम प्रीति बिलगे नहिं भाई॥
धन्य सोई जिन्ह खसमहिं जाना। धन्य सोई सतब्रत जिन्ह ठाना॥
धन्य सोई प्रेम पगु ठाढ़ा। धन्य सोई असल रंग गाढ़ा॥...
प्रेम युक्ति निजु खोजहु भाई। जाते जीवन सुफल होय जाई॥
सतगुरु बिना न होखे कामा। सतगुरु प्रेम बसे निजु धामा॥[4]

अनुरागा=प्रेम; **चीन्हा**=पहचान लिया है; **बिलगे नहिं**=अलग नहीं होता, छूटता नहीं; **खसमहिं**=परमात्मा को; **सतब्रत**=सच्ची साधना; **ठाढ़ा**=खड़ा हो गया है, अपना लिया है; **असल...गाढ़ा**=सच्चे प्रेम का पक्का रंग; **निजु खोजहु**=अपने आप को खोजो; **होखे**=हो सकता है, होगा।

वह मनुष्य धन्य है जिसके हृदय में परमात्मा की भक्ति और प्रेम है, जिसकी आत्मा जाग गई है, जिसने सच्चे गुरु की पहचान करके उसकी सच्ची सेवा की है और सच्चे शब्द की धुन में लीन होने के बाद जिसका प्रेम क्षण-भर के लिए भी नहीं छूटता। वह धन्य है जिसने परमात्मारूपी पति को पहचान लिया है तथा उसकी भक्ति की सच्ची साधना में जुटा हुआ है। वह धन्य है जिसने प्रभु-प्रेम का मार्ग अपना लिया है तथा जिस पर इस सच्चे प्रेम का पक्का रंग चढ़ गया है। दरिया साहिब कहते हैं कि

परमात्मा से प्रेम करने की सच्ची विधि की तलाश करो जिससे तुम्हारा जीवन सफल हो जाए। यह कार्य सतगुरु के बिना नहीं होगा; सतगुरु से सच्चा प्रेम करके ही जीव अपने असली घर पहुँच सकता है।

मानुष सुन्दर सजल है, जैसे कमल का फूल।
भक्ति करे गति चिन्हि के, बड़ो तुम्हारो कुल॥[5]

सजल=भक्तिरूपी जल से पूर्ण; **गति...के**=अवस्था को पहचानकर।

मनुष्य कमल के फूल की तरह है जो तभी सुंदर लगता है जब वह भक्तिरूपी जल से भरपूर हो। पर भक्ति में लगते समय गुरु की गति या उनकी पहुँची हुई अवस्था की परख या पहचान कर लेनी चाहिए। इस पहचान के बाद दृढ़ता से भक्ति करने पर भक्त के कुल की महिमा बढ़ जाती है।

पसु के होत है पनही, नर के कछु नहिं होय।
जो नर भजे नरायन, आपु नरायन होय॥[6]

पनही=जूता।

मरने के बाद पशुओं के चमड़े से तो जूते आदि बनाए जा सकते हैं, परंतु मृतक मनुष्य का शरीर ऐसे किसी भी काम में नहीं आता। पर इस मानव-शरीर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यदि मनुष्य परमात्मा के भजन में लग जाए तो वह स्वयं परमात्मा बन जाता है।

जनम दुरलभ नहिं बारमबारा। करहु भग्ति निजु नाम पिआरा॥
सतगुर सेवा करो पहचानी। सुजस गहो जस निर्मल बानी॥
पारख करिके सेवा ठाने॥ सांच सब्द मुकुति जो जाने॥
चोर साहु चीन्है चित लाई। सेवा करे सुरति लव लाई॥
बंदीछोर तुंह बंद छोड़ावहु। आए जगत में जीव मुकुतावहु॥
दयावंत तुम्ह होहु दयाला। काटहु जम फांस जम जाला॥[7]

सुजस=सुंदर या निर्मल यश; **बानी**=वाणी, शब्द; **पारख**=परीक्षा, पहचान; **ठाने**=दृढ़ निश्चय के साथ लग जाए; **साहु**=साहूकार; **लव**=लिव; **बंदीछोर**=बंधन से छुड़ानेवाले; **तुंह**=तुम; **बंद**=बंधन, क़ैद; **जम**=यम, मृत्यु का देवता।

यह दुर्लभ मनुष्य-जन्म बार-बार नहीं मिलता। इसलिए इसे व्यर्थ न गँवाकर इसे सच्चे और प्यार से भरे नाम की भक्ति में लगाओ। निर्मल शब्द-धुन के समान ही निर्मल यशवाले सच्चे गुरु यानी शब्द-स्वरूपी सतगुरु की पहचान करके उसे धारण करो। सतगुरु वह होता है जो सच्चे शब्द की कमाई करवाकर जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति दिला देता है। ऐसे गुरु की पहचान करके दृढ़ निश्चय के साथ उसकी सच्ची सेवा में लग जाओ। अच्छी तरह से सोच-विचार करके दुश्मनों और मित्रों यानी नकारात्मक और सकारात्मक शक्तियों की पहचान करते हुए सुरति (आत्मा की सुनने की शक्ति) को शब्द में लवलीन करो। यही गुरु की सच्ची सेवा है, तुम यही सेवा करो। हे मेरे सतगुरु! आप संसार में जीवों को मुक्ति दिलाने के लिए आए हो, अतः मुझे संसार के बंधनों से छुड़ा लो। आप दयालु हैं, मुझ पर दया करो और यम के फंदे को काटकर मुझे मृत्यु के जाल से बचा लो।

यम जीव करे ना घात, अमरपुर अमृत पियो।
इमि सतगुरु गुन ग्यात, भला जन्म सुफल भयो॥[8]

घात=हमला करना; **इमि**=इस प्रकार।

सतगुरु के गुणों को जान लेने पर यह मनुष्य-जन्म सफल हो जाता है। जीव कभी नष्ट न होनेवाले अपने असली घर, अमर-लोक में पहुँचकर नाम का अमृत पीता है। इस प्रकार यमदूत फिर जीव का बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

एह भव जरा मरन को देसा। छोड़ि देहु जिव कठिन कलेसा॥
अछै ब्रिच्छ छपलोक निनारा। तेहि बिहंग तें दुर्म के डारा॥

भवसागर में परा भुलाई। चेतहु तबहिं भला है भाई॥
का सुख एह मुरदा के गाऊं। मरि मरि जनम होए जेहि ठांऊं॥
जौ ना अछैबट नामहिं जाना। एह भव सुख निसु सपन समाना॥
कहे दरिया रहु सतगुर सरना। अवसि एक दिन आखिर मरना॥[9]

भव=संसार; **जरा**=बुढ़ापा; **अछै ब्रिच्छ**=अविनाशी वृक्ष; **छपलोक**=छिपा हुआ या गुप्त लोक, सतलोक; **निनारा**=अद्भुत, विचित्र; **बिहंग**=पक्षी; **दुर्म**=पेड़; **डारा**=डाल, टहनी; **परा**=पड़ा; **गाऊं**=गाँव; **ठांऊं**=स्थान; **अछैबट**=अक्षय-वट, अविनाशी वृक्ष; **नामहिं**=नाम की; **निसु**=रात; **अवसि**=अवश्य।

यह संसार जन्म-मरण का देश है। हे जीव! तू इस कठिन कष्ट वाले देश से निकल चल। तू तो सतलोक के अद्भुत और अविनाशी वृक्ष की डाली पर बसेरा करनेवाला पक्षी है। तू भूलकर संसार-सागर में भटकता फिर रहा है। यदि तू इस नींद से जाग जाए अर्थात् तुझे चेतनता आ जाए तो तेरा भला हो सकता है। इस मृत्यु के गाँव यानी मरणशील-संसार में, जहाँ मर-मरकर फिर जन्म होता रहता है, आख़िर क्या सुख है? जब तक नाम के अविनाशी वृक्ष का ज्ञान प्राप्त नहीं होता और तू वापस लौटकर उस पर बसेरा नहीं ले लेता, तब तक तुझे सच्चा सुख नहीं मिल सकता। संसार के सारे सुख रात के सपने के समान हैं। इसलिए दरिया साहिब समझाते हैं कि आख़िर एक न एक दिन अवश्य मरना है, अत: इन जन्म-मरण के दु:खों का अंत करने के लिए सतगुरु की शरण लो।

मानुख जन्म है सुफल अनंदा। जो जन परै ना जम के फंदा॥...
नाम बिना कस जीवन कहावै। जो नहिं गुर गमि ग्यान लखावै॥...
मस्तक मुकुता जाके होई। मस्त गयंद कहावै सोई॥
ताके पारस सिर मुख लागा। भै नहिं निकट रहै उंह जागा॥
बिनु मुकुता मस्तक है हीना। सो नर ऐसा सतगुर बीना॥[10]

गमि=जाकर; **मुकुता**=गजमुक्ता, मोती; **गयंद**=गजेंद्र, गजराज, हाथियों में श्रेष्ठ हाथी; **पारस**=लोहे को सोना बनानेवाली मणि, नामरूपी पारसमणि; **बीना**=बिना।

मनुष्य-जन्म सफल और सुखदायक है यदि इसे पाकर हम ऐसा काम करें जिससे यम के फंदे में न पड़ें। यदि गुरु के पास जाकर नाम का ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो फिर कैसा जीवन? मस्त गजराज वही कहलाता है जिसके मस्तक में मुक्ता-मणि होती है। लोहे को सोना बनानेवाले पारस के समान नर से नारायण बनानेवाले सतगुरु के नाम को सिर पर धारण कर। जो मनुष्य उसका मुख से सुमिरन करता रहता है, उसके पास भय फटकने भी नहीं पाता। बिना सतगुरु के नाम के जीव तुच्छ है। जिसके भाग्य में सतगुरु का नाम नहीं, वह मनुष्य उस हाथी की तरह शोभाहीन है जिसके मस्तक पर मोती नहीं। उसे मुक्ति नहीं मिल सकती।

साधु बिना मत ना मिले, जीवन मृथा होय जाय।
गति नास्ति इमि गत हुआ, फेरि कहां खोजहु आय॥[11]

मत=संतों का मत, नाम का मार्ग; **गति नास्ति**=कोई गति या ठिकाना नहीं; **गत हुआ**=बीत गया (जीवन); **फेरि**=फिर।

सच्चे साधु के बिना नाम का सच्चा मार्ग नहीं मिलता और जीवन बेकार हो जाता है। इस प्रकार बिना कोई गति (ठिकाना) प्राप्त किए यह मनुष्य-जीवन यों ही बीत जाता है। फिर बाद में परमात्मा-प्राप्ति का साधन कहाँ (किस योनि में) जाकर खोजोगे?

ज्ञान बिना जम लूट, मानुष जन्म अनूप है।
या तन जइहै छूट, फिरि पाछे पछताव भया॥[12]

अनूप=बेजोड़; **जइहै**=जाएगा।

मनुष्य-जन्म की बराबरी कोई भी अन्य योनि नहीं कर सकती। यदि इस शरीर के रहते ही परमात्मा के नाम का ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो फिर शरीर छूट जाने पर पछताना पड़ेगा और यम सब कुछ लूट लेंगे।

साधो ऐसा ज्ञान प्रकासी।
आतम राम जाहां तक कहियै सभे पुर्ख की दासी॥
एह सभ जोति पुर्ष है निर्मल नहिं ताहां काल नेवासी।
हंस बंस जो होए निरदागा जाए मिले अभिनासी॥
सदा अमर है मरे ना कबहीं नहिं ताहां सक्ति उपासी।...
है छप लोक सभन्हि ते न्यारा नहिं एहं भूख पियासी॥...
कहें दरिया दिल दागा दूरि करु काटहु जम की फांसी॥[13]

पुर्ख=सत्पुरुष; **पुर्ष**=सत्पुरुष; **नेवासी**=निवासी; **बंस**=जाति; **निरदागा**=बेदाग़, निर्मल; **अभिनासी**=अविनाशी; **सक्ति उपासी**=माया की उपासना या पूजा; **एहं**=है; **दागा**=दाग़।

जीव के निज-घर सतलोक का वर्णन करते हुए दरिया साहिब कहते हैं ऐ साधु! मुझ में ऐसे ज्ञान का प्रकाश हुआ है जो यह स्पष्ट करता है कि जितने भी जीव हैं, सभी उस परमात्मारूपी पति की स्त्रियाँ हैं। यह सारा संसार माया का पसारा है। परंतु सत्पुरुष तो निर्मल है, जिस तक काल की पहुँच नहीं है। जो आत्मा कर्मों की मैल से निर्मल हो जाती है वह वापस जाकर उस अविनाशी प्रियतम परमात्मा यानी सत्पुरुष से जा मिलती है। वह फिर उस जगह पहुँचकर हमेशा के लिए अमर हो जाती है, जहाँ न कभी मृत्यु होती है और न ही माया का आदर-भाव है। सतलोक सब से अद्भुत है, वहाँ किसी को भूख-प्यास नहीं लगती। इसलिए अपने हृदय की मैल को दूर करो और सतलोक पहुँचकर यमराज की फाँसी को हमेशा के लिए काट दो।

रे मन सुमिरि ले सतनाम के फिरि जात औसर टरी।
काया कागज हाथ हरि जनि जासि अवघट मरी॥
समुझि लीजे चरन सतगुर काटु जम के सरी।
निहकलंक तन निरबान पद भौ प्रेम बाती बरी॥
ब्रह्म जागेव भर्म भागेव कर्म काटेव करी।
अमी सरवर पिवन लागा मिला निरमल जरी॥
तप्त तन के त्रिमिर छूटेव फूटि जम जुथ डरी।
दरस से प्रतिपाल कीन्हो सक्ति पाएन परी॥
गुप्त मंतर जंतर कीन्हौ ज्ञान गुंगा गरी।
त्रिखा बुतानेव प्रेम रस बसि रहत गागरि भरी॥
दीन के दुख तुरंत मेटेव कष्ट कागज फरी।
कहें दरिया दाया सिर पर क्रिपा करि जन तरी॥[14]

टरी=बीता जाता है; **काया कागज**=शरीर द्वारा किए गए कर्मों का लेखा-जोखा; **हाथ हरि**=परमात्मा के हाथों में; **जनि जासि**=न चला जाए; **अवघट**=विकट, घोर कष्टप्रद योनि; **सरी**=बाण; **निहकलंक**=बेदाग़, निर्मल; **जागेव**=जाग्रत हो गया; **अमी सरवर**=अमृत का सरोवर; **जरी**=जड़ी, बूटी; **त्रिमिर**=अँधेरा; **जुथ**=सेना; **सक्ति**=माया; **पाएन**=पाँवों पर; **त्रिखा बुतानेव**=प्यास बुझ गई; **फरी**=फट गया।

हे मन! अवसर बीता जा रहा है, सच्चे नाम का सुमिरन कर ले। शरीर धारण करके किए गए कर्मों का लेखा-जोखा परमात्मा के हाथ में है। मरने के बाद किसी कष्टप्रद योनि में जन्म न हो जाए, इसलिए सुमिरन कर ले। यह बात समझ ले कि सतगुरु के चरणों की शरण लेने से ही यमराज के वाणों को काटा जा सकता है। इसी से शरीर निर्मल होता है। निर्मल हुए शरीर में ही प्रभु-प्रेम की ज्योति जलती है जिससे इस संसार से मुक्ति मिलती है। इस प्रकार अंतर में विद्यमान परमात्मा के जाग्रत हो

जाने से भ्रम दूर हो जाते हैं तथा सारे पाप-कर्म कट जाते हैं। नामरूपी जड़ी को पाकर जीव अमृत के सरोवर का रस-पान करने लगता है। दु:खों से तप रहे शरीर का अँधेरा दूर हो जाता है तथा यमराज की सेना डरकर तितर-बितर हो जाती है। परमात्मा के दर्शन होने से आत्मा की सँभाल हो जाती है और माया उसके चरणों में आ झुकती है अर्थात् अधीनता स्वीकार कर लेती है। सतगुरु द्वारा दिए गए गुप्त मंत्र के सुमिरन से अब अंतर में वाद्य-यंत्र (बाजे) बजने लगे हैं और अंतर में ऐसा गंभीर ज्ञान प्राप्त हो गया है जिसे गूँगे की तरह शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रभु-प्रेम के रस को पीकर सदा के लिए प्यास बुझ गई है, अब तो हृदय की गागर हमेशा प्रेम-रस से भरी रहती है। दीन-दु:खी आत्मा के दु:ख तुरंत ही मिट गए और कष्टों का लेखा-जोखा रखनेवाले काग़ज़ ही फट गए। हे प्रभु! आपने मुझ पर दया की है और कृपा कर मेरा बेड़ा पार कर दिया है।

संतो नीके गहो सतनाम हंस अमरपुर जाय।
फिरि फिरि आवै फिरि फिरि जावै फिरि फिरि धरिया देह।
जारि मारि तन कोइला करिहें उड़ी गगन में खेह॥
जम दारुन दावा राखे हो डारे फांस अनंत।
चेतहु चीत चेतावनि नीके तोरहु काल को दंत॥
भौ जल अगम अथाह प्रबल है सतगुर करु कनहार।
सत्त सुक्रित के नावरि चढ़ि के उतरहु भौ जल पार॥
पुहुप पलंग पर पुहुप बिछवना पुहुप कि लागल घ्रानि।
उजल दसा मन मैला ना कबहीं सोइ बिमल की खानि॥
पल पल प्रेम गहो पद पंकज देखहु अरध निसान।
कहें दरिया जाके आड़ अटक नहि रमिहहिं संत सुजान॥[15]

नीके=अच्छी तरह; **खेह**=धूल, राख; **दारुन**=कठोर भयानक, कष्टदायक; **दावा**=अधिकार; **चीत**=चित्त; **कनहार**=केवट; **सत्त सुक्रित**=सत्पुरुष के प्रकट रूप अर्थात् सतगुरु; **नावरि**=नाव; **पुहुप**=पुष्प; **लागल**=लगेगी, होगी;

घ्रानि=सुगंध; **खानि**=ख़ज़ाना; **अरध**=अंतर में; **निसान**=निशानी, ध्वज, पताका; **आड़ अटक**=रोक-टोक; **रमिहहिं**=विराजना, विलास करना।

संतो! सतनाम को अच्छी तरह से पकड़ लो जिसके द्वारा यह पवित्र आत्मा अमरपुर पहुँचेगी। जीव संसार में बार-बार देह धारण करके आता-जाता रहता है। मरने के बाद शरीर को जलाकर कोयला बना दिया जाता है और उसकी राख आसमान में उड़ जाती है। यमदूत कठोरता से जीव को अपने अधिकार में रखता है और उसे अनेक फंदों में डालता है। अपने भले के लिए इस चेतावनी पर ध्यान दो और सच्चे नाम के अभ्यास द्वारा काल के दाँत तोड़ दो। संसार-सागर अगम और अथाह है, इसकी धारा भी बहुत तेज़ है। सतगुरु वह केवट है जिसकी नाव पर चढ़कर इसे पार किया जा सकता है। निजधाम यानी अमरपुर में सारे सुख और ख़ुशियाँ ही ख़ुशियाँ हैं। वहाँ फूलों के पलंग बिछे हुए हैं जिन पर फूलों के ही बिस्तरे लगे हुए हैं। उनसे दिव्य फूलों की अपूर्व सुगंधि निकल रही है। सतगुरु के बताए सच्चे नाम के मार्ग पर चलकर मन की मैल दूर हो जाती है और वह उज्ज्वल होकर निर्मलता का ख़ज़ाना बन जाता है। अपनी दिव्य-दृष्टि से आंतरिक पताका को देखो और एक-एक पल प्रेम के साथ गुरु के आंतरिक चरणों को पकड़े रहो। फिर कोई रोक-टोक नहीं है। अमरपुर में ऐसे ही प्रेमी संत विलास करते हैं।

काल और माया के जाल

इस संसार में काल और माया का बहुत बड़ा जाल फैला हुआ है। परमार्थ की खोज करनेवाले जीव भी काल के प्रभाव में आकर तीर्थ, व्रत और कर्मकांड की बहिर्मुखी क्रियाओं में उलझ जाते हैं और सच्ची आंतरिक साधना की ओर ध्यान नहीं देते। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और देवी-देवता भी काल के इस जाल में फँसकर आवागमन के चक्र में पड़े हुए हैं। काल के भुलावे में पड़े जीव समझाने पर भी समझने को तैयार नहीं होते। संसार पर शासन करनेवाला काल जीवों की सँभाल करने के बजाय उनका संहार

करने में लगा हुआ है। जीव को लूटनेवाला चोर अपने आप को पहरेदार बता रहा है। सतगुरु की दया के बिना काल के कठिन जाल से जीव कभी नहीं निकल सकता।

काल की प्रेरणा से माया ने बाहर से लुभावना और सुखद दिखाई देनेवाला, पर अंदर से विषैला और दुःखद विषय-वासनाओं का जाल संसार में फैला रखा है। जीवरूपी भौंरा सतगुरु के सुखद और सुवासित चरण-कमलों को छोड़कर माया के मोहक और विषैले फूलों की गंध लेने के लिए दौड़ता है। जैसे पतंगा चिराग की लौ को देखकर बेतहाशा उसकी ओर दौड़ता है और अपना सर्वनाश कर लेता है, उसी प्रकार माया के मोहिनी रूप को देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और देवता भी अपने को सँभाल नहीं सके।

कनक और कामिनी – ये काल की दो अति कठिन बेड़ियाँ हैं। इनसे कोई विरला ही बच पाता है। बहुत समय तपस्या करने के बाद भी ऋषि-मुनि और योगी इन बेड़ियों में आसानी से बँध गए।

जो सतगुरु से नाम यानी शब्द का भेद लेकर नाम की कमाई करता है, केवल वही काल और माया को वश में कर सकता है। काल और माया सतगुरु के दिए हुए नाम के सामने एक क्षण भी नहीं ठहर सकते।

तीनि लोक है काल के हाथा। धरि धरि ठोके सबके माथा॥[16]

तीनि लोक=त्रिलोकी, दूसरे रूहानी मंडल यानी ब्रह्मलोक तक की रचना। इसमें सारी स्थूल, सूक्ष्म और कारण रचना आ जाती है। यह रचना नाशवान् है; **काल**=त्रिलोकी तक की रचना को चलाने के लिए परमात्मा द्वारा रचित शक्ति, यह शक्ति परिवर्तन, मृत्यु और कर्म तथा कर्मफल के नियम को लागू करती है; **धरि धरि**=पकड़-पकड़कर; **ठोके**=मारता है।

तीनों लोक काल के अधीन हैं। वह सब जीवों को पकड़-पकड़कर माथे पर ठोकर मारता है अर्थात् कष्ट देता है।

तीर्थ बर्त कर्म रचि राखा। करि खटकर्म ग्यान नहिं भाखा॥
जोगी जती भूले सभ आई। खट दर्सन मिलि पंथ चलाई॥
काल हिंडोला सभ मिलि झूला। भेख धरी पढ़ि पंडित फूला॥
सतगुर बिना कर्म नहिं छूटे। धरि धरि काल भवन में लूटे॥
बिमल नाम मल कबहिं न लागे। भौ परगट परिमल रंग जागे॥[17]

खटकर्म=षट्कर्म (स्नान, संध्या, पूजा, जप, तप और होम); **जती**=यति, ऐसा संन्यासी जिसने इन्द्रियों को वश में किया हुआ हो; **खट दर्सन**=षट् दर्शन (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत); **धरी**=धारण करके; **फूला**=इतराना; **बिमल**=निर्मल; **परिमल**=सुगंध।

काल ने जीवों को संसार में उलझाए रखने के लिए तीर्थ, व्रत तथा स्नान, संध्या, पूजा, जप, तप, हवन आदि षट्कर्म बना रखे हैं। इन्हीं सब कर्मों में योगी तथा संन्यासी भी भूले हुए हैं। काल के इस झूले में सब झूल रहे हैं। पंडित ग्रंथों को पढ़कर और तरह-तरह के वेश धारण करके फूले नहीं समाते। सतगुरु के बिना कर्मों से छुटकारा नहीं मिलता; संसार में काल पकड़-पकड़कर लूटता है। परमात्मा के निर्मल नाम से जुड़ जाने पर फिर कभी दुनिया की मैल नहीं लगती और अंतर में नाम की पवित्र सुगंध जाग जाती है।

धर्मराय सब दुनिया बिगोई। या जग तन धरि सब मिलि रोई॥
एक पुरुष सत्त अहे अमाना। तेहिं तन यम नहिं करे पयाना॥[18]

धर्मराय=कर्मों का हिसाब-किताब रखने और फल देनेवाली शक्ति, यमराज, मृत्यु का देवता; **बिगोई**=भ्रम फैलाना; **पुरुष**=सत्पुरुष; **अहे**=है; **अमाना**=असीम, अनंत; **पयाना**=जाना, गमन करना।

धर्मराय ने सारी दुनिया को भ्रम में डाल रखा है। इस संसार में शरीर धारण करके सब जीव दुःखी होकर रोते हैं। केवल सतगुरु ही ऐसे असीम पुरुष हैं जिनके पास यमदूत पहुँच नहीं सकते।

करम भरम के जाल खेलावै। पाप पुन्य मंह जीव जँहड़ावै॥
काल चरित्र चिन्हि नहीं आवै। बिनु सतगुर को जीव मुक्तावै॥[19]

जँहड़ावै=भटकाना, उलझाना, धोखे में डालना; **चरित्र**=आचरण, करतूत; **चिन्हि**=पहचान।

काल ने कर्मों के भ्रम का ऐसा जाल फैलाया हुआ है कि जीव पाप और पुण्य में ही उलझा रहता है। सतगुरु के बिना न तो जीव इस जाल से छूट सकता है और न ही उसे काल की करतूतों का पता चलता है।

महा महा मुनि औ बड़ ग्याता। भर्म काल इन्ह सभ पर राता॥
एक दुइ होए तब कहि समुझाई।
जक्त माता किछु कहि नहिं जाई॥...
आपु भुला फिरि औरि भुलाया। पड़ा लपेट संघति जो आया॥
जादू जोग में इमि मत फिरई। बुधि सभ छले फहम नहिं रहई॥[20]

ग्याता=ज्ञानी; **राता**=फँसे हुए हैं; **जक्त**=जगत्; **माता**=पगला गया है; **संघति**=संगति; **मत फिरई**=मति फिरना, समझ खो देना; **फहम**=समझ, ज्ञान।

बड़े-बड़े महात्मा, ऋषि-मुनि और ज्ञानी काल के फैलाए हुए भ्रम में फँसे हुए हैं। यदि एक-दो हों तो उन्हें समझा भी लें, पर जब सारा संसार ही माया के पीछे पागल बना हुआ है तो कुछ भी कहा नहीं जा सकता। हर कोई अपने आप तो भूला हुआ है ही, जो कोई उसकी संगति में फँस जाता है वह भी इस भ्रम की लपेट में आ जाता है। इस प्रकार अपनी जादू की युक्ति से काल ने लोगों की अक़्ल इस तरह फेर दी है कि उनकी बुद्धि भ्रमित हो गई है और उन्हें कोई समझ ही नहीं रह गई है।

अवनी आए सभे कोई नाचा। देह धरि धरि कोई नहिं बांचा॥
त्रियदेवा से को अधिकारी। सो तन काले किन्ह उजारी॥
सुर नर मुनि के कौन चलावै। अनेक जन्म भवसागर आवै॥[21]

अवनी=पृथ्वी; **बांचा**=बच पाया; **त्रियदेवा**=त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव); **उजारी**=उजाड़ना, नष्ट करना।

देवता, मनुष्य और ऋषि-मुनि भी पृथ्वी पर बार-बार जन्म लेते हैं पर जन्म लेने के बाद कोई भी काल से नहीं बच पाता। जिसने भी देह धारण की है, उनमें से कोई भी नहीं बच पाया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी से बड़ा भला कौन है; काल तो उनके शरीर को भी नष्ट कर देता है। उनकी भी यहाँ कुछ चल नहीं पाती।

काल जंजालि पवन है, फिरे ब्रह्मांड आकास।
चक्र चहुँ फेरा करे, यहि विधि परिगो त्रास॥...
सहर्ष द्वीप ब्रह्मंड ले, भानु कला प्रकास।
अंतरद्वीप एक गुप्त राह है, निकलि गया सुनु दास॥[22]

भानु=सूर्य।

काल बखेड़ा पैदा करनेवाली आँधी की तरह सारे ब्रह्मांड में फिरता रहता है। वह चारों ओर चक्कर लगाता रहता है और इस प्रकार सबको अपना ग्रास बना लेता है। ब्रह्मांड के हज़ारों द्वीपों तक अनेक सूर्यों का प्रकाश फैला हुआ है। पर हे सतगुरु के शिष्यो! सुनो, उन सबके अंतर से निकलने का एक गुप्त मार्ग है जिसके द्वारा निकलकर यह दास संसार से पार हो गया।

निर्गुन सर्गुन निगम रचि राखा। दुर्म छोड़ि बरने सभ साखा॥
ऐसो माया जक्त रचि राखा। ब्रम्हा बिस्नु हैं ताकर साखा॥
कवि कलि कर्म संत जग बीना। ग्रिह ग्रिह बक्ता कहीं प्रमीना॥
दधी मथे घ्रित बाहर आवे। इमि कर सत्त नाम निजु पावे॥
जौं लगि टीका मूल न पावे। बहुरि बहुरि भव सागर आवे॥
तिरगुन घाट पैठु संभारी। लखो नाम निजु तत्तु बिचारी॥[23]

निर्गुण=तीन गुणों से रहित निराकार ईश्वर की परिकल्पना; **सर्गुण**=तीन गुणों से युक्त अवतार धारण करनवाले साकार ईश्वर की परिकल्पना; **निगम**=वेद; **दुर्म**=वृक्ष; **बरने**=वर्णन करना; **जक्त**=संसार; **साखा**=शाखा, डाली; **कलि कर्म**=कलियुग के कर्मकांड; **बीना**=चुनकर निकालना; **प्रमीना**=प्रवीण, निपुण, कुशल; **दधी**=दही; **टीका**=सर्वश्रेष्ठ रत्न; **बहुरि**=फिर, बार-बार; **भव सागर**=संसाररूपी सागर; **पैठु**=प्रवेश करना; **संभारी**=सावधानी-पूर्वक; **लखो**=देखना, साक्षात्कार करना।

वेद ने तीन गुणों से रहित निराकार तथा गुणों से युक्त साकार ब्रह्म की परिकल्पना की है। वेद मत का अनुसरण करके सभी लोग संसाररूपी वृक्ष के मूल को छोड़ उसकी शाखाओं की महिमा गाने में लगे हुए हैं। ब्रह्मा और विष्णुरूपी शाखाओं को मुख्य रखकर ही माया ने संसार की ऐसी रचना की है। इस कलियुग में गीत-कवित्त बनानेवाले कवियों ने कर्मकांड का जाल फैला रखा है। ऐसी स्थिति में कोई विरला ही संत इनसे अलग होकर उसकी पहचान कर पाता है। बड़े-बड़े कथावाचकों ने घर-घर कर्मकांड का पसारा कर रखा है। निपुण संतजन कहीं-कहीं ही पाए जाते हैं। जिस प्रकार दही को मथने पर घी प्रकट हो जाता है उसी प्रकार शरीर के अंदर जाकर आंतरिक साधना करने पर सच्चा नाम प्राप्त हो जाता है। जब तक जीव सर्वश्रेष्ठ नाम को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे बार-बार इस संसार-सागर में आना पड़ता है। इसलिए दरिया साहिब जीवों को चिताते हुए कहते हैं: तीन गुणों के घाट इस शरीर में संत-सतगुरु के मार्गदर्शन में सावधानी-पूर्वक प्रवेश करो और नाम का साक्षात्कार कर परमात्मा से मिलाप प्राप्त कर लो।

धर्मराए जिव करहिं बिनासा। बिनु चीन्हे ग्रिव डारहिं फासा॥
जैसे मारे गाए कसाई। बेदरद खून करे जिव जाई॥
आपुहिं पहरु चोर है सोई। ठग ठाकुर जग भूले वोई॥
आगि लगाए घर सूते तानी। कएसे जरत बुतावहिं पानी॥

जाके कारन जोगी जागै। उलटि सांप संपहेरिअहि लागै॥
जाकर भछ सो करे अहारा। धीमर जाल मीन कंह डारा॥
तीनि लोक है जाल जंजाला। बिरला बूझै अबिगति काला॥[24]

बिनासा=विनाश करना; **ग्रिव**=गर्दन; **गाए**=गाय; **पहरु**=पहरेदार; **वोई**=उसी में; **सूते तानी**=निश्चिंत होकर सोना; **कएसे**=कैसे; **बुतावहिं**=बुझाना; **संपहेरिअहि**=सपेरे को; **भछ**=खाद्य पदार्थ, आहार; **धीमर**=मछुआरा; **अबिगति**=जो जाना न जाए।

धर्मराय जीवों का विनाश करता है। जिन्हें उस धर्मराय या काल की जानकारी नहीं है और जो संसार में बिना देखे-समझे चलते हैं, वह उनके गले में फंदा डाल देता है। जिस प्रकार एक क़साई गाय को मारता है, उसी प्रकार काल भी बेरहमी से जीवों की हत्या करता है। इस प्रकार जीवों को लूटनेवाला कालरूपी चोर, ख़ुद पहरेदार बना हुआ है। उस कालरूपी ठग को घर का स्वामी मानकर सारी दुनिया भूली हुई है। जीव के अपने घर में आग लगी हुई है और वह निश्चिंत होकर सोया हुआ है। इस प्रकार अज्ञान में सोया हुआ जीव अपने जलते हुए घर को (नाम के जल के बिना) भला कैसे बुझा सकता है? जिस काल को प्रसन्न करने के लिए योगी साधना करते हैं, वही कालरूपी साँप योगीरूपी सँपेरे को डँस लेता है। यह जीव काल का आहार बना हुआ है। कालरूपी मछुआरे ने जीवरूपी मछली के लिए जाल डाला हुआ है। तीनों लोक काल के जाल में फँसे हुए हैं, कोई विरला ही इस अज्ञात काल को समझ सकता है। सतगुरु की दया के बिना काल को नहीं जाना जा सकता।

बिखम सरोवर तप्त जल, धरि धरि डाले काल।
सुख सागर जिव छोड़ि के, चढ़ झुनुका के जाल॥[25]

बिखम=भीषण, भयंकर; **धरि धरि**=पकड़-पकड़कर; **झुनुका**=झुनझुना, खिलौना।

इस संसाररूपी भयंकर सरोवर में काल ने दु:खों और कष्टों का खौलता पानी भर रखा है जिसमें वह जीवों को पकड़-पकड़कर डालता रहता है। फिर भी जीव सुख के सागररूपी परमात्मा को छोड़कर माया के लुभावने झुनझुने के जाल में भूले रहते हैं।

जैसे चीक अज्या प्रतिपाला। बहुत जतन कै कीन्ह नेहाला॥
स्वारथ स्वाद जानि कै मारी। एहि बिधि काल करै रखवारी॥[26]

चीक=क़साई; **अज्या**=बकरी।

जैसे क़साई बकरी को अपने स्वार्थ के कारण अनेक प्रकार से खिला-पिलाकर पालता है और फिर स्वाद के लिए उसे मारकर उसका मांस खाता है; ठीक इसी प्रकार काल भी जीव की रखवाली करता है। पहले उसे सांसारिक भोगों में उलझाकर फिर मौत के समय और बाद में कष्ट देता है।

साहु के माल चोर घर गएउ। इमि करि जीव जग मांह विकएऊ॥[27]

साहु=साहूकार; **इमि**=इस प्रकार; **विकएऊ**=बेच दिया है।

संसार में जीव इसी प्रकार काल के हाथ बेच दिया गया है जैसे साहूकार का माल चोर के घर में हो।

ठग ठाकुर यह जक्त में, परचे विना विनास।
करो विवेक विचारि के, जीव के होए न नास॥[28]

परचे=परिचय, पहचान; **विवेक**=भले-बुरे की पहचान; **नास**=नाश।

इस संसार में कपटी काल परमात्मा बना हुआ है और इस बात को न पहचान पाने के कारण जीव अपना विनाश कराता जा रहा है। यदि जीव सोच-समझकर भले-बुरे का विचार करे और काल की चाल को समझे तो वह सही मार्ग अपना सकेगा। तब काल उसका कभी नाश नहीं कर पाएगा।

तीन लोक महि मंडल माया। जाल फांस रचि सभे नचाया॥[29]

महि मंडल=भूमंडल, पृथ्वी; **माया**=जीव को प्रभु-प्रेम की जगह रचना के मोह में फँसानेवाली शक्ति, रचना की उत्पत्ति में कार्यशील जड़-तत्त्व।

तीनों लोकों सहित इस भूमंडल में माया ने जीवों को अपने जाल में फँसाकर सब को नचा रखा है।

अलि पंकज के तेजि के, विख माया में बास।
प्रान विलग जब होइ हैं, समुझ परी यम त्रास॥[30]

अलि=भौंरा; **पंकज**=कमल; **तेजि**=तज के।

जीवरूपी भौंरा सतगुरु के सुखद और सुवासित चरण-कमलों को छोड़कर मायारूपी विषैले फूलों की गंध में निवास करता है। उसे यमराज के फंदे का पता तब चलता है जब उसके प्राण निकलने लगते हैं।

अघ ऊर शूल सागर हुआ, आगर मति गई भूल।
सतगुर से परचे नहीं, रहा माया में फूल॥[31]

अघ=पाप; **ऊर**=हृदय; **शूल सागर**=पीड़ा का सागर; **आगर मति**=श्रेष्ठ बुद्धि, सुमति; **फूल**=मस्त रहना।

जीव की सुमति, कुमति में बदल गई और उसके हृदय का सागर पापरूपी कष्टमय काँटों से भर गया। सतगुरु से परिचय न होने के कारण वह माया में ही मस्त रहता है।

बिखे भाव रस मांगत, त्यागत संत सनेह।
चौरासी के भवन में, फेरि फेरि धरिहै देह॥[32]

बिखे=विषय; **धरिहै**=धारण करता है।

जीव संतों के प्रेम को छोड़कर दुनिया के विषय-भोगों से प्रेम करके उनका रस माँगता रहता है। इसी लिए वह बार-बार चौरासी लाख योनियों में शरीर धारण करता रहता है।

जोगी या तन कसि के, रहे जगत कंह त्यागि।
बिरला बाँचे लपट से, रगरि काठ की आगि॥[33]

कसि के=कष्ट देकर; **बाँचे**=बच सकता है; **रगरि**=रगड़ने से।

योगी इस शरीर को हठ-कर्मों द्वारा कष्ट देकर संसार का त्याग करता है, परंतु जैसे काठ को काठ से रगड़ने पर आग अवश्य उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मोहित करनेवाली माया के संपर्क में आकर कोई विरला ही कामरूपी अग्नि की लपट से बच सकता है।

जहाँ देखी प्रतिबिम्ब है, है प्रतिमा नहिं रूप।
दर्पन केरी सुन्दरी, नहिं गले लगावे भूप॥
प्रतिमा से पत होत है, सीधे त्यागेवो प्रान।
फिटिक शिला गजदंत से, टूटा मुंह निदान॥[34]

प्रतिबिम्ब=छाया, बनावटी; **प्रतिमा**=मूर्ति; **दर्पन केरी**=दर्पण की; **भूप**=राजा; **पत**=पतन; **फिटिक**=स्फटिक पत्थर; **गजदंत**=हाथी दाँत।

संसार में जहाँ देखो सब कुछ छाया की तरह क्षणभंगुर और केवल छलावा मात्र है। संसार के पदार्थ प्रतिबिंब के समान हैं, उनका स्वरूप वास्तविक नहीं है। वे सब वास्तव में उसी प्रकार किसी काम नहीं आ सकते जैसे दर्पण में दिखाई देनेवाली सुंदरी के प्रतिबिंब को राजा गले से नहीं लगा सकता। जो वास्तविक नहीं है उसके पीछे भागने से पतन ही होता है जैसे हाथी, हथिनी की मूर्ति के मोह में गड्ढे में गिरकर अपनी जान खो बैठता है या शीशे की तरह प्रतिबिंब दिखानेवाले स्फटिक पत्थर में अपनी

परछाईं देखकर हाथी उस पर टूट पड़ता है और उसके मुँह और दाँत टूट जाते हैं। इसी तरह जीव माया के संसार को ही सच मानकर धोखा खाता है।

माया काहु के बस नहीं, नाहिं काहु के साथ।
ज्यों आवे त्यों जायेगी, कारिख लागा हाथ॥[35]

कारिख=कालिख।

माया न तो किसी के वश में आती है और न ही किसी के साथ जाती है। जीव इस दुनिया में ख़ाली हाथ आया और ख़ाली हाथ ही वापस जाएगा। माया में आसक्त रहने के कारण उसके हाथों में कर्मों की कालिख ही लगती है।

यह माया है बेसवा, बिसनी मिले तो खूब।
साधुन से भागी फिरे, कतै परे मजूब॥[36]

बेसवा=वेश्या; **बिसनी**=विषय-भोगों का व्यसनी; **मजूब**=आसक्त, बेसुध।

दरिया साहिब ने माया की तुलना एक वेश्या से की है जिसे विषय-भोगों का व्यसनी मिले तो वह ख़ूब ख़ुश रहती है। कितने ही लोग हैं जो माया में आसक्त होकर बेसुध पड़े हैं। पर वही माया संतजनों से दूर भागती है, उनके निकट नहीं जाती।

माया अनल है बिखम बिकारा। परे पतंग सकल तन जारा॥...
सुर नर माते नाम बिहूना। अवटि मुए जेवों जल बिनु मीना॥[37]

अनल=आग; **बिखम**=विषम, भयंकर; **जारा**=जलाया; **माते**=पगला गए; **अवटि**=औटाना, छटपटाना; **जेवों**=ज्यों।

दीपक की आग से आकर्षित होकर पतंगा अपना सारा शरीर जला लेता है। इसी प्रकार माया भी जीवरूपी पतंगे के लिए भयंकर आग की तरह है।

नाम के बिना देवताओं तथा मनुष्यों को माया ने पागल कर रखा है। वे नाम के बिना उसी प्रकार छटपटाते रहते हैं जैसे पानी के बिना मछली तड़प-तड़पकर मर जाती है।

तिर्गुन त्रिबिध धार अति बांकी। बूड़ि मुए भव सभ पौराकी॥
नाम जहाज सुक्रित कनहारा। चढ़हिं संतजन उतरहिं पारा॥[38]

तिर्गुन=तीन गुण; माया की तीन अवस्थाओं को तीन गुण कहा जाता है। ये हैं—सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण; **बांकी**=विकराल; **पौराकी**=तैराक; **सुक्रित**=सतगुरु; **कनहारा**=केवट।

माया के तीन गुणों की धाराएँ अत्यंत विकराल हैं। बड़े से बड़े सारे तैराक इन धाराओं में डूब मरे। केवल सतगुरुरूपी केवट के नामरूपी जहाज़ में चढ़कर ही संतजन इस माया के संसार-सागर से पार उतरते हैं।

ए दोए चक्र भरमित लोका। कामिनि कनक महा बड़ सोका॥
उभै त्यागि सामर्थ है दूजा। ताको चरन कंवल की पूजा॥[39]

लोका=संसार; **सोका**=दुःख; **उभै**=दोनों।

काम-वासना और धन, काल के दो ऐसे चक्र हैं जिनसे सारा संसार भ्रमित होकर दुःख उठा रहा है। इन दोनों को त्यागनेवाला समर्थ पुरुष कोई दूसरा ही है, उसके तो चरण-कमलों की पूजा करनी चाहिए।

कामिनि कनक काल की बेरी। ई नाही बसि भई काहु केरी॥
सात द्वीप नव खंड शरीरा। कामिनि काल धरे बड़ बीरा॥
पर नारी जो अंग छुआवे॥ अनेक जन्म तेहि काल नचावे॥
पर नारी है विषि को खानी। बोरे काल नरक सहिदानी॥[40]

कनक=सोना, धन; **बेरी**=बेड़ी, बंधन; **सात द्वीप**=शास्त्रों में उल्लेख है कि संसार में सात द्वीप हैं—जंबू द्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मली द्वीप, कुश द्वीप, क्रौंच द्वीप, शाक द्वीप तथा पुष्कर द्वीप; **नव खंड**=इलावृत, रम्यक, हिरण्यमय, कुश, हरि, भारत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष; **बोरे**=डुबोता है।

काम-वासना और धन-संपत्ति—ये दोनों काल की ऐसी बेड़ियाँ हैं जिन पर किसी का वश नहीं चल पाया। यद्यपि सात द्वीपों और नौ खंडों वाला यह संपूर्ण संसार इस शरीर में स्थित है, फिर भी काम-वासना और काल इस श्रेष्ठ शरीर को धारण करनेवाले बड़े-बड़े शक्तिशाली वीर योद्धाओं को अपने क़ब्ज़े में कर लेते हैं। जो पर-स्त्री को वासना की दृष्टि से छूता भी है, काल अनेक जन्मों तक उसे नाच नचाता रहता है। पर-स्त्री को छूना विष की खान है। उसे बुरी नज़र से देखना नरक में जाने की निशानी है। ऐसे जीवों को काल नरकों में डुबोता है।

नारी रूप है संग बिकारा। जानि के पांव अगिनि में डारा॥
अनल तूल के होए परसंगा। पल में जारि करे सब भंगा॥...
होए परसंग जहां तप मलीना। जैसे छीर खटाई भीना॥
जैसे घून काठ के लीन्हा। सभ रस लेइ छोड़ि जो दीन्हा॥[41]

अनल=आग; **तूल**=रूई; **परसंगा**=संबंध; **जारि**=जलाकर; **छीर**=दूध; **घून**=घुन।

पर-स्त्री के रूप के वश में होकर उसके साथ वासनात्मक संबंध करना बहुत-से विकारों का कारण है। उसके साथ विषय-भोगों में पड़ना आग में पाँव डालने के समान है। जिस प्रकार आग और रूई को एक साथ रखने पर सब कुछ जलकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पर-स्त्री के साथ वासनात्मक संबंध भी जीव को नष्ट कर देता है। जिस प्रकार दूध में खटाई

डालने से वह फट जाता है, उसी प्रकार पर-स्त्री का वासनात्मक स्पर्श भी जीव के सारे तप को विकृत या दूषित कर देता है। जिस प्रकार घुन लकड़ी को अंदर ही अंदर खोखला कर देता है, उसी प्रकार काम-वासना जीव के भक्ति-रस को सुखा देती है और उसका जीवन नीरस हो जाता है।

कनक कामिनि के फंद में, ललची मन लपटाए।
कलपि कलपि जिव जरन लगै, म्रिथ्या जन्म गंवाए॥[42]

कलपि कलपि=अनेक कल्पों तक; **म्रिथ्या**=व्यर्थ।

धन और काम-वासना के फंदे में लालची मन इतना फँस जाता है कि जीव कल्पों तक जलता रहता है अर्थात् कष्ट भोगता तथा इस मनुष्य-जन्म को व्यर्थ ही गँवा देता है।

जापर कृपा कीन्ह कृपाला। सो जन बांचहि जाल जंजाला॥...
जाके सतगुरु दीनदयाला। मेटहिं कष्ट दुख यमजाला॥...
सतनाम निजु प्रेम रस, सतगुरु प्रेम प्रतीत।
कहे दरिया जन निजपुर, जाय सो भवजल जीत॥[43]

बांचहि=बच जाता है; **प्रतीत**=विश्वास।

जिस पर वह कृपालु परमात्मा दया करता है, वही काल के जाल की परेशानियों से बच सकता है। जिन्हें दीन-दुखियों पर दया करनेवाले सतगुरु मिल जाते हैं, उनके कष्ट और दुःख मिट जाते हैं तथा वे यमराज के जाल से मुक्त हो जाते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि जिन जीवों ने अपने अंतर में सतनाम के प्रेम का रस ले लिया है और सतगुरु पर विश्वास करके उनसे प्रेम किया है, वे संसार-सागर पर विजय प्राप्त करके अपने निज-घर पहुँच जाते हैं।

निरंजन अरुझन जाल बनएऊ।
बड़ बड़ माछ मगुर सभ बाझे झींगा निकलि न गएऊ॥
मन बिदेह देह में खेले पारख बिरलन्हि पैऊ।
जेंव प्रतिबेम्बु सभनि में भासे प्रतिमा को गुन गैऊ॥
सीव समान जोगि मुनि ज्ञाता ज्ञान बिराग सुनएऊ।
मोहनी मगन गगन में आई उलटत बार न लएऊ॥
बीस भुजा दससीस रावना ऐसी सिस्ति लगएऊ।
भै गौ अंध मंद दसकंधर जगजननी किहां धएऊ॥
भेख अलेख सेख सभ सेवड़ा इन ते कब बिलगएऊ।
कुंज गली में पुंज अगिनि का जरि मरि भस्म उड़एऊ॥
जो एह सब्द साधुजन बूझे परिमल को गति ऐऊ।
कहें दरिया जिन्हि पिया प्रेम रस समुंद्र घने घन छएऊ॥[44]

निरंजन=काल भगवान्; **अरुझन**=उलझानेवाला; **माछ**=मछली; **मगुर**=मगर, घड़ियाल; **झींगा**=छोटी मछली; **बिदेह**=बिना शरीर के; **पारख**=पहचान; **सीव**=शिव; **सिस्ति**=(ऐश्वर्य का साज सजाना या समाँ बाँधना) बंसी की डोरी; **मंद**=मूर्ख; **दसकंधर**=रावण; **जगजननी**=सीता; **सेवड़ा**=जैन साधु; **कुंज गली**=वाटिका में लताओं से ढकी सुंदर पगडंडी या गली; **पुंज...का**=आग का ढेर; **परिमल**=सुगंधि, परमार्थ की पवित्रता; **घने... छएऊ**=परमात्मारूपी समुद्र में पूरी तरह मिलकर परमधाम में छा जाना और आनंद मनाना।

काल भगवान् ने संसार-सागर में उलझानेवाला जाल बना रखा है। इस जाल में बड़ी-बड़ी मछलियाँ और मगरमच्छ ही नहीं, छोटे से छोटा झींगा भी फँस जाता है यानी काल के जाल में छोटे से छोटा जीव भी फँस जाता है। मन अपने आप बिना शरीर का है, पर वह सभी शरीर-धारियों के अंदर अपना करतब दिखाता रहता है। फिर भी उसकी पहचान किसी

विरले ही जीव को होती है। छाया के समान उसके गुणों का आभास सब में समाया रहता है। शिव जी के समान योगी, मुनि और ज्ञानी दूसरा कौन है? उनके ज्ञान और वैराग्य की बातें अक्सर सुनने में आती हैं। लेकिन जब काल की माया मोहिनी बनकर उनके सामने आई तो शिव जी के विचार को उलटते देर नहीं लगी। बीस भुजाओं और दस सिरों वाले रावण ने अपने बल-वैभव और अधिकार का ऐसा प्रभाव जमा रखा था कि सभी उससे डरते थे। पर काल ने ऐसा खेल खेला कि रावण की बुद्धि मारी गई और वह सीता का हरण करने जा पहुँचा। चाहे किसी भी प्रकार के भेषधारी हों, शेख़ या जैनी साधु हों – काल से कोई कब छूट सका है? मनुष्य जिन वाटिकाओं तथा लताओं और फूलों से ढकी सुंदर गलियों में मौज-मस्ती करता है, उन्हीं में वह अपने कर्मों के कारण भीषण आग में जलता है और राख बनकर उन्हीं फूलों से ढकी गलियों में उड़ जाता है। यदि साधक को शब्द की समझ आ जाए तो उसमें परमार्थ की सुगंधि यानी पवित्रता आ जाती है। दरिया साहिब कहते हैं कि जिन्होंने प्रभु-प्रेम का रस पी लिया वे परमात्मारूपी गहरे समुद्र में डुबकी लगाकर परमात्मा के धाम में पहुँचकर सदा आनंद मनाते हैं।

साधो बांकी बात कही।
माया बड़ी जग्त में जालिम इन्हि सों को निमही॥
ब्रह्मा बिस्नु महेसर आदी देव इन्द्रहीं जाए छरी।
तपसी अवर सन्यासी जोगी इन्हिं सहजें पकरी॥...
लागी आगि ऊंचे होए देखा एह सभ सूझि परी।
बाजे माल जाल संग जरि गौ बाजे बिपति परी॥...
बिरला जन कोइ ठाढ़े रहि गौ पल छन बतिस घरी।...
द्रिस्टि करे दया के सागर कड़ी कमान गही।
भंजेव मोह माया को मंदिल प्रेम प्रवाह बही॥
अबिनासी सभ के सिर ऊपर जारे नाहिं जरी।
कहें दरिया समुझो मन मूरख ऐसो ज्ञान करी॥[45]

बांकी=सुंदर, चोखी; **जालिम**=अत्याचारी; **निमही**=निर्वाह होना; **छरी**=छलना; **पकरी**=पकड़ लेती है; **ऊंचे...देखा**=ऊँचे मंडलों में; **बाजे**=कोई-कोई; **माल जाल**=धन-दौलत; **कड़ी कमान**=शब्द का मज़बूत धनुष-बाण उठाना; **भंजेव**=तोड़ दिया है; **मंदिल**=मंदिर, घर; **करी**=करारा, खरा।

परमार्थ के साधको! तुम्हें एक चोखी बात बताता हूँ। इस संसार में माया बड़ी ही ज़ुल्म करनेवाली है, किसका गुज़ारा भला इसके साथ हो पाया है? इसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इंद्र आदि देवताओं को भी छला है। यह तपस्वियों, योगियों और संन्यासियों को बड़ी आसानी से पकड़ लेती है। जब मैंने ऊपरी मंडलों में जाकर देखा, तब मुझे भी यह बात समझ में आई कि इस संसार में माया की आग सब को लगी हुई है, जिसके कारण कई तो धन-दौलत समेत जल गए और कई मुश्किलों में पड़े हुए हैं। कोई विरला ही इसके सामने टिक सका है जिसको उस दया के सागर परमात्मा ने दया-दृष्टि करके शब्द का मज़बूत धनुष-बाण थमा दिया है। शब्दरूपी तीर-कमान से मोह-माया का घर टूट जाता है और माया प्रभु-प्रेम की तेज़ धारा में बह जाती है। ऐ मूर्ख मन! यह ज्ञान की बात समझ ले कि शब्द से जुड़ा हुआ साधक अविनाशी परमात्मा से मिलकर सबसे ऊँचा और अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है। फिर वह माया की आग से नहीं जल सकता।

साधो बड़ा बंधन है भारी।
माया लता एह दुर्म गिर्द है बिबिधि रचा फुलवारी॥
ऊपर मूल हेठ डार्ह पात एह छाया सघन है सोभा।
जिव पंछी एह मन मधूक है याहि घ्रानि में लोभा॥
बिज से बिज एह फैल परा है बुन्द बुला जिमि आई।
चले जात फिरि बिलेमान होए रचि के फेरि बनाई॥
मैं मैं करे माया है मेरी कवतुक कल एह लाई।

छल बल ते एह छीनि लेतु है कर मिजि सभ पछताई॥
आया काहां फेरि गया कहां एह भरमित भौ में अटका।
बाजीगर के हाथ डोरी है जब साटिन ते सटका॥
गया अचेत चेत कछु नाहीं साहब सुरति बिसारी।
कहें दरिया दाया एह जा पर भव से लेत निकारी॥[46]

दुर्म=वृक्ष; **हेठ**=नीचे; **डार्ह**=डालियाँ; **मधूक**=भौंरा; **घ्रानि**=सुगंधि; **बुन्द बुला**=पानी का बुलबुला; **बिलेमान**=विलीन होना; **कवतुक**=तमाशा, अजीब खेल; **कल**=मधुर, सुंदर; **कर मिजि**=हाथ मलना; **साटिन**... **सटका**=तेज़ी से चाबुक मारकर उसे खींच लेना; **निकारी**=निकाल लेता है।

परमार्थ के साधको! यह संसार बड़े भारी बंधन में जकड़ा हुआ है। इस संसाररूपी वृक्ष के चारों ओर मायारूपी बेल लिपटी हुई है। उसने इच्छाओं और तृष्णाओं की अनेक फुलवारियाँ बना रखी हैं। इस मायारूपी बेल की जड़ें ऊपर की ओर तथा डालियाँ और पत्ते नीचे की ओर हैं। इसकी घनी लुभावनी छाया सारे संसार पर पड़ रही है। जीवरूपी पक्षी इस माया की घनी छाया और मोहक सुगंधि में भूला हुआ है तथा उसके साथ जुड़ा हुआ मनरूपी भौंरा भी इसके फूलों की सुगंध के लालच में फँसा हुआ है। माया के बीजों से इसके बीज वैसे ही हर जगह फैल गए हैं जैसे पानी में एक से अनेक बुलबुले पैदा होते हैं। जिस प्रकार बुलबुले पानी में बहते जाते हैं तथा फिर उसी में विलीन हो जाते हैं, माया के बीज भी पानी के बुलबुलों की तरह विलीन होते और फिर से पैदा होते रहते हैं। मनुष्य मैं-मैं करता हुआ माया के इन बुलबुलों को अपना कहता है। परंतु माया छल-बल से इस सुंदर तमाशे में उलझे जीव का सब कुछ छीन लेती है; वह तो हाथ मलता ही रह जाता है। जीव को यह भी पता नहीं चलता कि वह कहाँ से आया था और कहाँ चला गया। इस प्रकार वह भ्रम में पड़ा हुआ संसार में फँसा रहता है। जीवरूपी कठपुतलियों की डोरी माया के हाथों में है, वह जब चाहे चाबुक मारकर डोर खींच लेती है और इस

प्रकार जीव परमात्मा को भूलकर अचेत ही इस दुनिया से चला जाता है, उसे होश आता ही नहीं। दरिया साहिब कहते हैं कि वह परमात्मा जिस जीव पर दया करता है उसे संसार से निकाल लेता है।

कुमति बेइलि बन फूलल हो रे।
फूले रे फुले भंवरा रंग रातल हो रे॥
जिन्हि जिन्हि एह फुल लोल्हल हो रे।
तिन्हि रे तिन्हि आपन आपन मद मातल हो रे॥
दुर्मे दुर्मे लता छबि छावल हो रे।
जैसन गुन तैसन सीतल तातल हो रे॥
एक पवरी जग पसरल हो रे।
पवरी रे पवरी भवरी मेहीं सुत कातल हो रे॥
जिन्हि जिन्हि माया पगु परसल हो रे।
तिन्हि रे तिन्हि आपने आपन घर घातल हो रे॥
एहि जाले जग सब अरुझल हो रे।
सझुरत नाहीं कवने कवने गुन गाथल हो रे॥
दरिया दरस दिल जागल हो रे।
जिन्हि रे जिन्हि सतगुर पद अनुरागल हो रे॥[47]

बेइलि=लता, बेल; **फूलल**=फूल रही है; **रातल**=रमा हुआ, आसक्त; **लोल्हल**=लोढ़ना, चुन-चुनकर तोड़ना; **मद मातल**=नशे से पागल होना; **दुर्मे दुर्मे**=प्रत्येक वृक्ष पर; **तातल**=गर्म; **पवरी**=डयोढ़ी; **भवरी**=भ्रमरी या मकड़ी; **घातल**=नष्ट करना; **अरुझल**=उलझे हुए; **सझुरत**=सुलझना; **गुन**=रस्सी या डोरी; **गाथल**=जकड़ना या बुनना; **अनुरागल**=प्रेम होना।

मायारूपी कुमति की बेल संसाररूपी वन में फूल रही है। इन फूलों में जीवरूपी भौंरा रमा हुआ है। माया के इन फूलों पर मोहित होकर जिन्होंने भी इन्हें ग्रहण किया, वे सब अपने आप इनके नशे से पागल हो गए।

हर मनुष्यरूपी वृक्ष पर यह माया की बेल छाई हुई है। जिस आदमी का जैसा अच्छा या बुरा कर्म होता है, उसी के अनुसार उसे माया का सुखद या दु:खद भोग प्राप्त होता है। यह संसार विशाल ब्रह्मांड की एक छोटी-सी ड्योढ़ी है। ब्रह्मांड की प्रत्येक ड्योढ़ी में मायारूपी मकड़ी ने सूक्ष्म जाल बना रखा है। जो भी माया की सेवा में लगा उसने अपना घर ख़ुद बरबाद कर लिया। माया के इस मक्कड़ जाल में सारा संसार इस प्रकार उलझा हुआ है कि न जाने यह जाल किन-किन रस्सियों से बुना है जो सुलझने में ही नहीं आता। जिन्होंने सतगुरु के चरणों से प्रेम किया, उनके हृदयों में परमात्मा के दर्शन की लालसा जाग उठी और वे माया के जाल से छूट गए।

दुरमति दूरि खड़ी रहु ऐसी।
इहां आवे त दासी होइके प्रेम मगन रहु बइसी॥
जाहु जहां है पाट पटंमर चंदन बहु बिधि करना।
जरी बफ्त औ ओढ़े तासे ताहि समुझि के धरना॥
जाहु जहां है पुहुप बिछवना भोगे पान बिरंजे॥
जहंवां दौलति माल खजाना बहुत परा है गंजे॥
जहंवां गनिका नटे नचावे चट ताली म्रीदंगे॥
ताको पांव पकरि के बांधहु झूठे बहुत तरंगे॥
मीन मासु रसना पर देवे औ रस बहुत रसीले।
सो है जेर गुलाम तुम्हारे वो भी बहुत बखीले॥
तेरी गति मति हम सब जानहिं है तें छैल छबीली।
कहें दरिया कर कसे कमाने ते कबहीं नहिं हीली॥[48]

बइसी=बैठी रहो; **पाट पटंमर**=क़ीमती रेशमी वस्त्र; **जरी बफ्त**=सुनहरी कढ़ाई की हुई मख़मली चादर; **बिरंजे**=रंग-बिरंगे, कई प्रकार के; **गंजे**=ढेर; **गनिका**=वेश्या; **म्रीदंगे**=मृदंग, एक प्रकार का वाद्य-यंत्र जो ढोलक से कुछ लंबा होता है; **रसना**=जीभ; **जेर**=परेशान, दबा हुआ; **बखीले**=कजूंस, दुष्ट; **छैल छबीली**=सुंदर, सजीली; **हीली**=हिली।

हे मायारूपी कुमति! तुम ऐसे ही दूर खड़ी रहो। यहाँ संतों के पास आओ तो दासी की तरह प्रेम में मग्न होकर बैठी रहो। तुम तो वहाँ जाओ जहाँ क़ीमती रेशमी वस्त्र हैं और तरह-तरह से चंदन लगाया जाता है। जो लोग ज़री वाले क़ीमती रेशमी वस्त्र पहनते हैं, तुम सोच-समझकर उनको पकड़ना। तुम वहाँ जाओ जहाँ फूलों की सेज लगी है और रंग-बिरंगे पान चबाए जाते हैं और जहाँ धन-दौलत के ख़ज़ाने के ढेर लगे हैं। तुम उनके पाँवों को पकड़कर बाँधो जिनके यहाँ हर ओर झूठ ही झूठ है तथा ताली और मृदंग बजाकर वेश्या लोगों को अपने इशारों पर नचाती है। जो मांस-मछली और इसी प्रकार के दूसरे बहुत-से जीभ के स्वाद लेते हैं, वे लोग यद्यपि बहुत दुष्ट हैं परंतु अंतर में तुम्हारे ग़ुलाम ही हैं। माया! हम तेरी चाल-ढाल सब जानते हैं, तू बड़ी सुंदर और सजीली है। दरिया साहिब कहते हैं कि जिन्होंने नाम की कमान दृढ़ता से पकड़ ली है, उनके सामने फिर यह माया कभी अपनी जगह से हिलती तक नहीं, शांत होकर बैठ जाती है।

संसार में सजग रहने की आवश्यकता

संसार का बाज़ार धोखों से भरा हुआ है। यदि हम यहाँ सोच-समझकर क़दम न रखें और खरे-खोटे की पहचान न करें तो हम आसानी से धोखा खा सकते हैं। इसलिए संतजन हमें उपदेश करते हैं कि हमें विवेक से काम लेना चाहिए और नक़ली गुरुओं के फेर में न पड़कर सच्चे गुरु की सेवा-भक्ति करनी चाहिए।

जिस प्रकार अंधा व्यक्ति हाथ में आए हुए हीरे को भी फेंक देता है या कमल की सुगंधि से अनभिज्ञ भौंरा कुईं के फूल से ही लिपटा रहता है, उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति भी नाम को छोड़कर विषय-वासनाओं के पीछे भागता रहता है। जिस प्रकार केवल हंस ही दूध को पानी से अलग कर उसे पी सकता है, उसी प्रकार केवल विवेकी पुरुष ही संसार के विषय-भोगों को छोड़कर परमार्थ का आनंद ले सकता है।

अज्ञानवश अहंकार का शिकार होकर जीव 'मैं-मेरी' के मोह में पड़ा रहता है और मनुष्य-जीवन प्राप्त करने के अपने मूल उद्देश्य को भूल

जाता है। पर यह संसार का कच्चा रंग थोड़े ही दिनों में उतर जाता है और मनुष्य अपने अमूल्य जीवन को बरबाद कर अंत में काल के हाथों कष्ट पाता और रोता-बिलखता है।

विषयी व्यक्ति यदि कभी परमार्थ में लगता भी है तो उसे यह बेचैनी होती है कि अंदर का परदा तुरंत क्यों नहीं खुलता। पर विषयों से पूरी तरह छुटकारा पाए बिना इतनी जल्दी अंदर का परदा भला कैसे खुले? काल के वश होकर वह बिना समझे-बूझे नक़ली गुरु की सेवा में लगता है जो गुड़ देने का वादा करके अंत में उसे ईंटों से मारता है अर्थात् लाभ का दिलासा देकर अंत में हानि पहुँचाता है।

इसलिए यह आवश्यक है कि हम सजग होकर सच्चे सतगुरु की खोज करें और उनसे शब्द यानी नाम का भेद प्राप्त कर, नाम-भक्ति की साधना में लगें। तभी हम इस दुर्गम संसार-सागर को पार कर सकते हैं।

बहुत पंसारी हाट में, घट बढ़ सौदा पास।
लेना होय सो लीजिए, परख धनी के दास॥
जो परखे सो पारखी, ग्यान रतन की साट।
बिनु पारख का बोझ है, चला उठाए खाट॥...
तहां ग्यान नहिं खोलिए, जहाँ निगुरचि हाट।
उलटी आपु विचारिए, चलो समुझि के बाट॥[49]

पंसारी=नमक, मसाले, मेवे आदि बेचनेवाला बनिया; **साट**=बदले में; **निगुरचि हाट**=निगुरों का बाज़ार।

संसाररूपी बाज़ार में बहुत-से दुकानदार हैं। सभी अपना-अपना कम-ज़्यादा सामान बेच रहे हैं। इस बाज़ार में परमात्मा के सच्चे भक्त को पहचानकर सामान खरीदना चाहिए अर्थात् दुनिया में परमार्थ का ज्ञान देने का दावा करनेवाले बहुत-से लोग हैं जो प्रभु-प्राप्ति के अलग-अलग मार्ग बताते हैं। जिज्ञासु को उनमें से सच्चे संत या महात्मा को पहचानना है।

पारखी जीव रत्नों के बदले ज्ञान लेता है अर्थात् वह क़ीमती सांसारिक वस्तुओं को देकर भी परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है। जहाँ ज्ञान को पहचाननेवाला न हो, वहाँ पर ज्ञान की चर्चा बेकार है। ज्ञानीजन वहाँ से अपना बिस्तर समेटकर चल देते हैं। निगुरों के बीच प्रभु-प्राप्ति के ज्ञान को नहीं खोलना चाहिए, क्योंकि उन्हें इस ज्ञान की क़ीमत का पता ही नहीं होता। ऐसी स्थिति में ज्ञानीजनों को अपने ध्यान को अंदर में मोड़कर अपने आप में ध्यान लगाना चाहिए। उन्हें भले-बुरे लोगों से भरे संसार में सोच-समझकर सही मार्ग पर चलना चाहिए।

हरनी सिखावै हिरन को, सुनो हमारे पीव।
बिचारे बन मंह बसो, फांस डारेगा ग्रीव॥[50]

हरनी=हिरणी; **ग्रीव**=गला, गर्दन।

हिरनी अपने हिरन को समझाते हुए कहती है कि प्रिय! हमारी बात ध्यान से सुनो। इस जंगल में सोच-समझकर रहो, क्योंकि शिकारी कभी भी तुम्हारे गले में फंदा डाल सकता है। यदि हम इस संसार के आकर्षणों में खो जाएँगे तो काल किसी भी समय अपना फंदा हमारे गले में डाल देगा।

जढ़ मूरख मन को चिन्हो, चिन्हो वेद का अंत।
साधु चिन्हो सतगुरु चिन्हो, तबे बनेगा संत॥[51]

जढ़=जड़, नीच।

तुम पहले इस जड़ और मूर्ख मन को पहचानो, फिर वेद को पहचानो, जिसका अंत ब्रह्म-पद तक है। फिर साधु को पहचानो जिसकी पहुँच त्रिकुटी के पार दसवें द्वार तक है और तब सतगुरु को पहचानो जो अंतिम पद, सतलोक में पहुँच चुके हैं। जब तुम्हें इन सबकी पहचान हो जाएगी, तब तुम संत बन जाओगे। संत-सतगुरु को कोई संत ही पहचान सकता है।

जौं लगि ज्ञान दृष्टि नहिं आवे॥ पारख बिना हीरा बिसरावे॥
लेही उठाय देही जिमि डारी। संग्रह शक्ति विषय व्यभिचारी॥...
जब लगि सिकिलि साफ नहिं नैना। चक्षु विहुन का देखे ऐना॥
मुरुचा मैलि ब्रह्म भौ छीना। ज्यों सेवार जल करे मलीना॥...
कंज पुंज की खबरि न जाना। ममिता बेइली विषय लपटाना॥
कुमुदिन कला भंवरा रस पागा। पदुम प्रगास बास नहिं लागा॥
मृग मद माति घास कंह ढूढ़ा। भटकी भवन में परा अगूढ़ा॥...
संसृत जल पय भीतर रहई। हंस वंश गुण इमि करि गहई॥

हंस वंश गुन गहिर है, मानसरोवर जाहिं।
चतुर चित सो काग है, क्यों मुक्ताहल खाहिं॥[52]

बिसरावे=बेकार समझकर फेंक देना; **जिमी**=ज़मीन; **शक्ति**=माया; **सिकिलि**=माँजकर, चमकाकर; **मुरुचा**=ज़ंग; **छीना**=क्षीण, लुप्त; **सेवार**=शैवाल, काई, पानी में होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास; **कंज पुंज**=कमलों का समूह; **बेइली**=बेल; **कुमुदिन**=सफ़ेद कमल, कुईं; **पागा**=डूबा हुआ; **पदुम**=कमल; **प्रगास**=खिलना, विकसित होना; **मृग मद**=कस्तूरी; **अगूढ़ा**=स्पष्ट, प्रकट; **संसृत**=मिला-जुला; **पय**=दूध; **हंस वंश**=हंस की जाति; **गहिर**=गंभीर, गहरा; **मुक्ताहल**=मोती।

जब तक ज्ञान-दृष्टि नहीं खुलती तब तक मनुष्य अंधे व्यक्ति की तरह हाथ में आए हुए हीरे को बेकार समझकर ज़मीन पर फेंक देता है अर्थात् मूर्ख लोग यानी परमार्थ से अनभिज्ञ लोग, हीरे के समान अमूल्य इस मानव-जीवन का महत्त्व न समझकर, नाम-भक्ति और प्रभु-भक्ति को छोड़कर माया के विषय-भोगों को जुटाने के विचार में ही खोए रहते हैं। जब तक व्यक्ति की दृष्टि पारमार्थिक अभ्यास से मँजकर स्वच्छ नहीं होती, वह अंधे की तरह संसार के सपने को देखता रहता है। जिस प्रकार काई जल को गंदा कर देती है, उसी प्रकार जब तक अंतर में मैल की

ज़ंग लगी हुई है तब तक परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। जीवरूपी भौंरे को परमात्मारूपी कमल का ज्ञान तो है नहीं, वह ममतारूपी बेल के साथ ही लिपटा रहता है। जीवरूपी भौंरा मायारूपी कुईं के फूल में ही उलझा रहता है, वह परमात्मारूपी कमल की सुगंधि नहीं लेता। मृग की अपनी नाभि में कस्तूरी होती है पर वह उसे घास में ढूँढ़ता हुआ भटकता रहता है। इसी प्रकार परमात्मा भी हमारे अंतर में स्पष्ट रूप से विद्यमान है पर हम उसकी खोज में बाहर भटकते फिर रहे हैं। जिस प्रकार दूध और पानी के मिले होने पर केवल हंस ही दूध को पानी से अलग करके उसे पी सकता है, उसी प्रकार केवल विवेकी पुरुष ही संसार के विषय-भोगों को छोड़कर परमार्थ का आनंद ले सकता है। केवल हंसों को ही मोती की परख होती है और वे ही मानसरोवर में जाकर निवास करते हैं, धूर्त या चालाक कौवे मोती नहीं खा सकते; उसी प्रकार चालाक मनरूपी कौवे के अनुसार कार्य करनेवाले लोग भी प्रभु-भक्ति के मोती को नहीं प्राप्त कर सकते। केवल परमार्थ के सच्चे जिज्ञासु ही वे हंस हैं जो परमात्मारूपी मोती को पाने के लिए सतलोकरूपी मानसरोवर को जाते हैं। संसार के विषय-वासनाओं में फँसे लोग वहाँ कैसे जा सकते हैं और परमात्मा को कैसे पा सकते हैं?

मिथ्या जीव गए जम के द्वारा। जन्म जन्म भरमे संवसारा॥
मरकट मुठी ज्यों जड़ को ग्याना। त्यों त्यों बधिक काल निअराना॥
ज्यों ज्यों बृद्ध होत तन छीना। त्यो त्यों माया बिखै रस भींना॥
थकित चरन चलु चंछु ना सूझै। बिखम बान उर अंतर रूझै॥
सर जोरि काल निकट निअराना। म्रितक अंध तन भीतर समाना॥
पकरि प्रान के कस्ट अति दीन्हा। तपत सिला पर तावन लीन्हा॥
धरहि झुलावहि फेरि देहि डारी। बहुत कस्ट देहि तेही मारी॥
तहां कोई नहिं राखनिहारा। जम जीव बांधि नरक महं डारा॥
निर्गुन नाह से प्रीति ना लाई। आगत करहि ना भजन उपाई॥
सतगुर गुर नाहीं पहचाना। नाहीं संत सेवा लपटाना॥[53]

मरकट...ज्यों=बंदर की मुट्ठी की तरह; **बधिक**=शिकारी; **निअराना**=पास आना; **छीना**=क्षीण, कमज़ोर; **चलु**=चलना; **चंछु**=आँख; **बिखम**=भीषण; **उर**=हृदय; **तपत सिला**=दहकता हुआ पत्थर; **तावन**=तपाना; **नाह**=प्रियतम, नाथ; **आगत**=पहले से।

झूठी माया के पीछे भागते रहनेवाले जीव जन्म-जन्मांतरों तक संसार में भटकते रहते हैं और मृत्यु के बाद यमराज के द्वार पर जाते हैं। जिस प्रकार तंग मुँह वाले बर्तन में बंदर की कसकर बँधी हुई मुट्ठी फँस जाती है और शिकारी उसे पकड़ लेता है, इसी प्रकार मनुष्य भी जीवन भर माया के विषय-भोगों में उलझा रहता है, मृत्यु आकर उसे दबोच लेती है। मनुष्य शरीर जैसे-जैसे बूढ़ा होकर कमज़ोर होने लगता है, माया के विषयों के प्रति उसकी आसक्ति बढ़ती जाती है। यद्यपि उसके पाँव इतने कमज़ोर हो चुके होते हैं कि उसे चलना भी मुश्किल हो जाता है, आँखों से दिखाई नहीं देता, फिर भी विषय-भोगों के भीषण बाण उसके हृदय को बेधते रहते हैं। काल मृत्यु का बाण चढ़ाकर उसके पास आ पहुँचता है और इस प्रकार जीव के शरीर में समाकर उसे मृत्यु के अँधेरे में धकेल देता है। वह जीव को बहुत कष्ट देता और मारता है। उसे दहकते हुए पत्थर पर जलाया जाता है, पकड़कर झुलाया जाता है और फिर पटका जाता है। क्योंकि मनुष्य-जन्म में न तो प्रियतम परमात्मा से प्रेम किया, न मृत्यु आने से पहले भजन किया, न सतगुरु की अंतर में पहचान करके उन्हें अपना गुरु धारण किया और न संतों की सेवा में ही लगा; अत: मृत्यु के बाद कोई भी उसे बचानेवाला नहीं होता, यमराज उसे बाँधकर नरक में डाल देता है।

सो गए नरक की खानि में, जो जस करे उपाए।
जन्म कोटि भरमत फिरे, मुरछि मुरछि पछताए॥[54]

मुरछि=मूर्छित, दर्द से बेहोश हो जाना।

जैसा उन्होंने अपने मनुष्य-जन्म में किया उसके अनुसार उन्हें आख़िर नरकों में जाना पड़ा। करोड़ों जन्मों तक वे अनेक योनियों में भटकते फिरे और दर्द से तड़प-तड़पकर बेहोश होकर पछताते रहे।

सतगुर खोज करे जौ कोई सत के नाव बिराजे॥
कहें दरिया टूटे ना फाटे बिनु गुन जल में छाजे॥[55]

गुन=रस्सी; **छाजे**=सुशोभित होना।

जो कोई सच्चे गुरु की खोज करता है, वही सच की नाव पर बैठता है। यह नामरूपी सच की नाव न टूट सकती है, न फट सकती है। यह बिना रस्सी के संसार-सागर से जीवों को पार ले जाती हुई सुशोभित होती है।

तेरो कपरा नहीं अनाज।
दया करहि जब बरिसे पानी तबे बने सब साज॥
कंचा पिंड कंचन में लागा बचन परा सभ भोरा।
कठिन काल आवे सर साजे अब नहिं फौज बटोरा॥
खरंचहु खाहु दाया करु प्रानी परसहु सतगुरु पाव।
मानुख जन्म दुरलभ है भाई फिरि ऐसो नहिं दाव॥
मैं मैं करत महल के भीतर ममता बेइलि कुगंधा।
छीनि लेइ तबे छेके ना कोई कलिप मरहुगे अंधा॥
बहि बहि मुआ बैल की नाई घरही कोस पचासा।
फिरे फिरंग फहम नहिं आवै जेंव नर करे तमासा॥
संत नकीब कहे निसु बासर सुनहु स्रवन सत बाता।
कहें दरिया दर खोजहु प्रानी जौ द्रुम होत निपाता॥[56]

कपरा=कपड़ा; **साज**=सामग्री, सामान; **पिंड**=शरीर; **भोरा**=भुला दिया है; **सर**=बाण; **बटोरा**=इकट्ठा करना, जुटाना; **परसहु**=छूना; **दाव**=अवसर;

बेइलि=बेल; **छेके**=जाने से रोकना; **कलिप**=रोना, बिलखना; **बहि बहि**=हल में जोतना; **की नाई**=की तरह; **फिरंग**=काल; **फहम**=अक़्ल, समझ; **नकीब**=बार-बार उपदेश देना; **स्रवन**=कान; **सत**=सौ; **दर**=दरवाज़ा; **द्रुम**=वृक्ष (शरीर); **निपाता**=बिना पत्तों के, विनाश होना (मृत्यु होना)।

हे मनुष्य! इस संसार के अन्न-वस्त्र पर तुम्हारा कोई दावा नहीं है। परमात्मा दया करके जब जल बरसाता है तभी अन्न तथा वस्त्र उत्पन्न होते हैं और सारे काम होते है। तुमने माँ के गर्भ में परमात्मा की भक्ति करने का जो वादा किया था, उसे भूल गए हो और इस नश्वर शरीर को केवल धन-दौलत इकट्ठी करने में लगाए हुए हो। विकराल काल जब अंत समय में मृत्यु का बाण चढ़ाकर आता है तो उस समय उसका सामना करने के लिए तुम अपनी फ़ौज क्यों नहीं बटोरते? हे प्राणी! मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, यह अवसर बार-बार नहीं मिलता; अत: अपने ऊपर दया करो और अपने खाने-पीने का ख़र्च चलाते हुए सतगुरु की शरण लो। अरे नादान! मैं-मैं करते हुए तुम्हारे अंदर ममता की दुर्गंध फैलानेवाली बेल पनप गई है। जब काल तुझे सब कुछ से अलग कर तेरा यह शरीर भी छीन लेगा तब तुझे इस संसार से जाने से कोई नहीं रोक पाएगा; तब तुम रो-रोकर मर जाओगे। तुम बार-बार तेली के बैल की तरह जोते जा रहे हो और घर में ही रोज़ पचासों कोस चलते हो यानी संसार के चक्कर में उलझे हुए हो। काल तुम्हारे पीछे फिरता रहता है, पर तुम्हें समझ नहीं आती। संत दिन-रात बार-बार उपदेश करते हैं कि हे प्राणी! यह सच्ची बात सुनो – इससे पहले कि यह शरीररूपी वृक्ष बिना पत्तों का होकर गिर जाए यानी तुम्हारी मृत्यु आ जाए, तुम परमात्मा के दर की खोज कर लो।

हरिजन करहु बिबेक बिचारी।
नहिं कछु आया न साथ चलन के धन बित सुत जग नारी॥...
लाल फूल एह सूल के सागर सुगना की मति मारी।

उड़ि गौ भुआ भरम की ढेरी मुरछित भया दुखारी॥
मरकट मूठि गांठि जब लागी जम ने फंद पसारी।
माल जाल औ भूमि भवन सभ अब किमि कहो हमारी॥
म्रीग दवनि दाया नहिं चीन्हे जल बिनु लागी कारी।
भक्ति बिना जो भ्रमित भवन में जम जिव बांधि पछारी॥
सर्बस हारि जीव जहंडाएव हाथ जुआरी झारी।
कहें दरिया एह निपट दागा है सतगुर सब्द बिचारी॥[57]

हरिजन=प्रभु-भक्त; **बित**=धन; **सुत**=पुत्र; **लाल फूल**=सेमल के लाल फूल; **सूल**=पीड़ा, कष्ट; **सुगना**=तोता; **भुआ**=रूई; **मुरछित**=बेहोश; **मरकट**=बंदर; **दवनि**=आग, धूप; **कारी**=कष्ट पाना, घातक होना; **पछारी**=पछाड़ना; **जहंडाएव**=ठगना; **झारी**=झाड़कर; **दागा**=धोखा।

हे प्रभु भक्तो! सोच-विचार करके देखो, इस संसार में न तो हमारे साथ कुछ आया था और न ही धन-संपत्ति, पुत्र, स्त्री आदि कुछ भी साथ जाएगा। तोते की बुद्धि मारी गई, सेमल का सुंदर लाल फूल उसके लिए कष्ट का सागर बन गया। जब वह सेमल के फल पर चोंच मारता है तो रूई उड़ जाती है, उसके हाथ कुछ नहीं आता। वह दु:ख से मूर्च्छित हो जाता है। इसी प्रकार संसार के लुभावने पदार्थों में सुख ढूँढ़ने की कोशिश जीव के लिए कष्ट का कारण बनती है, अंत में उसके हाथ कुछ नहीं आता। जैसे तंग मुँह वाले बर्तन में से खाने की चीज़ निकालने की कोशिश में, बंदर की मुट्ठी बर्तन में फँस जाती है और वह पकड़ा जाता है, उसी प्रकार काल ने जीव के लिए फंदा डाल रखा है। आख़िर संसार की धन-संपत्ति के जंजाल और ज़मीन, घर आदि को कैसे अपना कह सकते हैं? जैसे धूप मृग पर कोई दया नहीं करती और वह उसकी लपट में पानी का भ्रम होने पर कष्ट पाता रहता है, इसी प्रकार जो व्यक्ति परमात्मा की भक्ति नहीं करते वे संसार में भटकते रहते हैं तथा उन्हें यमराज बाँधकर पटकता है। जैसे सब कुछ हारा हुआ जुआरी हाथ झाड़कर चल देता है उसी प्रकार

मृत्यु के समय जीव का सब कुछ छूट जाता है। दरिया साहिब कहते हैं कि यह संसार निरा धोखा है, अत: सच्चे गुरु के बताए शब्द पर ध्यान दो।

नर तुम सतगुर सत ना चीन्हा।
धन सम्पति एह तप का बल है दाया सभनि ते भीना॥
घर में जोरु जबर है बाघिनि वोए कबहीं नाहिं डरती।
जबे सुने परमारथ की गति तबे झपटि के लरती॥
तासो प्रीति करहू निसि बासर बसन झलाझलि गहना।
वोए तुम्हैं है प्रान पियारी वोए हाकिम तुम सहना॥...
मैन मजीठ महल के भीतर बिखै बेइलि तन फूला।
तापर लता बहुत लपटाना बढ़ि ब्याधी जम सूला॥
यह मन मूरख ममिता मद है चढ़ी चरख चौरासी।
कहें दरिया अजहूं चित चेतहु काटि कर्म की फांसी॥[58]

भीना=भिन्न या अनोखी वस्तु; **जोरु**=स्त्री; **लरती**=लड़ती; **झलाझलि गहना**=चमचमाते हुए गहने; **सहना**=सहन करना; **मैन**=कामदेव; **मजीठ**=पक्का रंग; **बिखै बेइलि**=विषयों की बेल; **तापर**=उस पर; **बढ़ि ब्याधी**=कष्ट बहुत बढ़ गए; **ममिता**=ममता।

हे मनुष्य! तुमने सतगुरु और उनकी दया से प्राप्त होनेवाले सच्चे नाम को नहीं पहचाना। धन और संपत्ति तो तपस्या के बल से प्राप्त की जा सकती है, पर सतगुरु की दया, जिसके सहारे सत् यानी परमात्मा की प्राप्ति होती है, इन सब से भिन्न एक अनोखी चीज़ है। तुम्हारे शरीर में संसार की ममतारूपी भयानक बाघिन निवास करती है जो कभी नहीं डरती। परमार्थ की बात सुनते ही वह झपटकर लड़ने लगती है। तुम उससे दिन रात प्यार करते हो और उसी के कहे सुंदर वस्त्र तथा चमचमाते गहने ख़रीदकर लाते हो। वह तुम्हें प्राणों से भी प्यारी है, या यूँ कहो कि वह तुम्हारी मालकिन बनी हुई है और तुम उसकी हर बात को सहते हो। तुम्हारे अंतर

में काम-वासना का गहरा रंग चढ़ा हुआ है, तन में विषय-विकारों की बेल फल-फूल रही है, ऊपर से माया की बेल लिपटी हुई है और फिर यमराज के द्वारा दिए जानेवाले कष्टों ने तुम्हारे दु:खों को बहुत बढ़ा दिया है। यह मूर्ख मन की ममता और अहंकार है जिसके कारण जीव चौरासी के चक्कर में पड़ा हुआ है। इसलिए अभी भी सचेत हो जाओ और कर्मों की फाँस को काटने का यत्न कर लो।

अब कहु कैसे परदा फाटी।
दर के ऊपर चौकी बैठी अक्षा बिछवना खाटी॥
नख सिख ले सभ भुखन बनाया पेन्हे जरकसी खासा।
पान फूल औ मीन मासु है जम सभ देखे तमासा॥
अति है गर्ब गरजि के बोले भौंहें कमाने तानी।
अपना पिया के नाच नचावै भली सोहागिनि रानी॥
या तन तेजि दोसर तन होइहौ चौरासी की पाती।
सुन्दर देह खेह होइ जैहें स्वान सुकर की जाती॥
तन उघारे लाज नेवारे बहुत बियानी गेदा।
घर अंधियारे पैठन लागी सिर पर बाजु लबेदा॥
खोरि खोरि फिरे दवरि होए ठाढ़ी जूठी पातरि पाई।
कहें दरिया जिव जम ने लूटा कहे कवन पतिआई॥[59]

चौकी=पहरा; **अक्षा**=अच्छा; **भुखन**=भूषण, गहना; **जरकसी खासा**=ज़रीदार सुंदर कपड़ा; **दोसर**=दूसरा; **पाती**=संदेश; **खेह**=राख, धूलि; **सुकर**=सूअर; **नेवारे**=छोड़ना; **बियानी**=बच्चा देना; **पैठन लागी**=घुसने लगी; **लबेदा**=डंडा; **खोरि खोरि**=गली-गली; **दवरि**=दौड़कर; **ठाढ़ी**=खड़ी; **पतिआई**=विश्वास करना।

ऐ मनुष्य! तुम्हारी जो दशा अभी है उसमें भला प्रभु-प्राप्ति के लिए अंतर का परदा कैसे खुल सकता है? तुम्हारे अंतर के प्रवेश-द्वार पर पलंग

बिछाए बैठी माया का पहरा है, वह सुंदर ज़रीदार वस्त्र पहनकर तुम्हें लुभाने के लिए ही बैठी है। सिर से पैर तक वह गहनों से लदी है तथा मांस-मछली और पान जैसी चीज़ों का सेवन करती है। यमराज यह सारा तमाशा देख रहा है। तुम्हारे अंदर से घमंड के साथ वह भौंहों की कमानों को तानकर गरजकर बातें करती है। उसके प्रभाव में तुम भूल गए हो कि तुम परमात्मारूपी पति की सुहागिन हो। अब सोचो तो सही कि माया के प्रभाव में तुम अपने उस प्रियतम को किस तरह से नाच नचा रहे हो। याद रखो कि इस शरीर को छोड़कर तुम दूसरा शरीर धारण करोगे और फिर चौरासी लाख योनियों में भटकते रहोगे। तुम्हारी यह सुंदर देह राख हो जाएगी और तुम निचली योनियों में भटकोगे। उन योनियों में नंगे रहना होगा। माया सारी लाज-शर्म छोड़कर तुमसे बहुत-से बच्चे पैदा करवाती है और मृत्यु के अँधियारे में प्रवेश करते समय सिर पर यमदूतों के डंडे बजते हैं। तुम विषय-भोगों की जूठी पत्तल पाने के लिए गली-गली दौड़ते रहते हो। इस प्रकार जीव को माया और यमराज (काल) लूट रहे हैं। यह बात यदि किसी से कहें भी तो कौन विश्वास करता है?

साधो धोखे सब जग मारा।
गुरू स्रिष्टि के ब्रह्मा भूले चारो बेद बिचारा॥
अछै ब्रीछ सुख सागर छोड़ि के त्रीगुण फंद पसारा।
तेहि फंदा में या जग बांधा किमि करि होए उबारा॥
जौ करता एह सभ घट बरता जरा मरन सौ बारा।
नरक स्वर्ग कहु काके कहिये दुख सुख कीन्ह पसारा॥
कवन गुरू है कवन चेला है कवन बूढ़ को बारा।
आपे नाव केवट है आपे आपे खेवनिहारा॥
गुर देखाए ईंट मुख मारे भूले मूढ़ गंवारा।
ब्रषिब चारि चरण जब होइहैं बोझ परा सिर भारा॥
सतगुर सब्द सत्य येह मानो निसु बासर हुसियारा।
कहें दरिया चित चेतु अचेते उतरहु भव जल पारा॥[60]

अछै ब्रीछ=परमात्मारूपी अविनाशी वृक्ष; **त्रीगुण फंद**=तीन गुणों का फंदा; **बूढ़**=बूढ़ा; **बारा**=बालक; **खेवनिहारा**=नाव चलानेवाला; **गुर**=गुड़; **मूढ़ गंवारा**=मूर्ख और अनाड़ी; **ब्रषिब**=बैल; **परा**=पड़ा; **निसु बासर**=रात-दिन; **अचेते**=अज्ञानी।

हे साधुजनों! सारा संसार धोखे में मारा जा रहा है। ब्रह्मा जी को सृष्टि का गुरु कहा जाता है, वह चारों वेदों के विचारक हैं, परंतु वह भी भूल में पड़ गए। उन्होंने सुख के सागर, अविनाशी वृक्षरूपी परमात्मा को छोड़कर त्रिगुणात्मक माया का प्रसार किया। माया के उसी फंदे में सारा संसार बँधा हुआ है, उसका छुटकारा भला कैसे हो सकता है? यद्यपि वह सृष्टिकर्ता परमात्मा सबके अंतर में निवास करता है, फिर भी जीव सैकड़ों बार जन्म और मृत्यु का शिकार होता है। नरक या स्वर्ग की ही बात क्यों कहें – सारी सृष्टि में सुख-दुःख फैला हुआ है। इस सृष्टि में यह भी पता नहीं चलता कि यहाँ कौन गुरु है, कौन चेला है, कौन बूढ़ा है और कौन बच्चा है। सभी काल के शिकार हैं। यहाँ काल सब को धोखा देकर स्वयं ही नाव बना हुआ है और वही केवट यानी नाव को चलानेवाला भी है। वह गुड़ दिखाकर हमारे मुँह पर ईंट मारता है अर्थात् लाभ का दिलासा देकर हानि पहुँचाता है, फिर भी मूर्ख और अनाड़ी लोग उसी की बातों में भूले हुए हैं। ऐसे लोग जब चार पाँवों वाले बैल बनेंगे तो उन्हें भारी बोझ उठाना पड़ेगा। तुम रात-दिन होशियार रहो और केवल सतगुरु के बताए शब्द को ही सत्य मानो। ऐ अनाड़ी जीव! अब भी सचेत हो जाओ और सतगुरु के शब्द के द्वारा संसार-सागर से पार उतर जाओ।

संसार का क्षणभंगुर जीवन

यह सारा संसार नश्वर और क्षणभंगुर है। माता-पिता, भाई-बहन, पुत्री आदि का संबंध केवल थोड़े ही दिनों के लिए है। मरते समय न कोई हमारी सहायता कर सकता है और न हमारे साथ जा सकता है। कुछ ही दिनों में मरे हुए व्यक्ति को भूलकर सभी अपने-अपने काम-धंधों में लग जाते हैं।

इसी तरह धन-संपत्ति, हाथी-घोड़ा, हाट-हवेली, राजदरबार और फ़ौज आदि संसार के साज़-बाज़ केवल दिखावटी और झूठे हैं। बहुमूल्य हीरे-जवाहरात और धन-दौलत से भरे हुए ख़ज़ाने जिन पर हम अभिमान करते हैं और जिनके संग्रह में हम अपना अनमोल समय गँवा देते हैं, वे भी मरते समय हमारे साथ नहीं जाते। सेमल के फूल की लाली को देखकर तोता उसके मधुर फल खाने की आस लगाए उस पर बसेरा करता है। पर अंत में जब सेमल के फल पर चोंच मारता है तो उस फल की रूई उड़ जाती है और बेचारे तोते के हाथ कुछ भी नहीं लगता। इस मनमोहक संसार की आस में रहनेवाले जीवों की भी यही दशा होती है। वे अंत में ख़ाली हाथ इस संसार से जाते हैं। यह शरीर मानो काग़ज़ का पुतला है जो विनाश की वर्षा में तुरंत गल जाता है।

काल की विकरालता के सामने किसी का कोई वश नहीं चलता। ऋषि-मुनि और देवी-देवता भी काल के हाथों मृत्यु के शिकार होते हैं। यह सारा संसार ही मुर्दों का देश है। जो भी यहाँ जन्म लेता है, उसे मरना ही पड़ता है। केवल वे ही जीव जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाते हैं, जो सतगुरु की शरण लेकर नाम की कमाई करते हैं तथा जीते-जी मरने की कला जान लेते हैं।

मातु पिता सुत बंधो भगिनी। अपने मगु में सभ कोइ मगनी॥
घटत छने छन जात ओराई। ह्रिदै बिबेक ग्यान नहिं आई॥
भूले संपति स्वारथ मूढ़ा। परे भवन में अगम अगूढ़ा॥
संत निकट फिरि जाहिं दुराई। छन छन माया मोह लपटाई॥
अब का सोचसि मदहिं भुलाना। ज्यों सेमर सेइ सुगा पछताना॥
तब तोए कहेउ जो सभै एगाना। बंधु माया औ दरब खजाना॥
मरन काल कोइ संग न साथा। जब जम मुसुक दीन्हौ हाथा॥
मातु पिता घरनी घर ठाढ़ी। देखत प्रान लीन्ह जम काढ़ी॥
गाड़े धन गहिरे जो गाड़ै। छूटे माल जहां तक भाड़ै॥
भवन भयावन बाहर डेरा। रोवहिं सभ मिलि आंगन घेरा॥

खाट उठाए कान्ध करि लीन्हा। बाहर जाए अगिनि जो दीन्हा॥
जरि गइ खलरि भसम उड़ियानी। दिना चारि सोच कीन्हो ग्यानी॥
फेरि धंधै लपटानी प्रानी। बिसरि गई वोए नाम निसानी॥...
सतगुर सब्द सांच इंह मानी। कहे दरिया करु भगति बखानी॥
भूलि भरम एह मूल गंवावै। ऐसन जन्म कहां फेरि पावै॥
धन संपति हाथी जन जोरा। मरन अंत संग जाए न तोरा॥
इंह तन देह अगिनि में जरिहैं। भसम उड़ाए फेरि ना हेरिहैं॥
मातु पिता सुत बंधौं नारी। ई सभ पावरि तोहरि बिसारी॥[61]

बंधो=बंधु, भाई; **भगिनी**=बहन; **मगु**=रास्ता; **मगनी**=मस्त; **छने छन**=क्षण-प्रतिक्षण; **अगम अगूढ़ा**=दुर्गम, अथाह; **दुराई**=दूर जाना; **सुगा**=तोता; **एगाना**=अपना; **दरब**=धन-दौलत; **मुसुक...हाथा**=हाथों को पीठ के पीछे ले जाकर कसकर बाँधना; **घरनी**=पत्नी; **भाड़ै**=अनाज रखने का मिट्टी का बहुत बड़ा बर्तन; **खलरि**=चमड़ी; **हेरिहैं**=दिखाई देना; **पावरि**=नीच, मूर्ख।

यह संसार नश्वर है। यहाँ पर माता-पिता, बेटा, भाई-बहन आदि सभी अपनी ज़िंदगी का रास्ता अपने-अपने ढंग से चलने में मस्त हैं। हर क्षण जीवन घटता जा रहा है, परंतु मनुष्य के हृदय में ज्ञान नहीं आता। स्वार्थ के कारण मूर्ख मनुष्य धन-दौलत में भूले हुए हैं जिससे वे बुरी तरह चौरासी लाख योनियों में पड़े रहते हैं। वे संतों के पास जाते भी हैं, पर वे फिर उनसे दूर चले जाते हैं और हर पल मोह-माया में लिपटे रहते हैं। भला अब तुम क्या सोचते हो? तुम तो संसार के नशे में डूबे हुए हो। तुम्हारी हालत तो उस तोते जैसी है जो सेमल का फल पाने की आस में उस पर बसेरा लेता है, पर जब चोंच मारता है तब रूई के उड़ जाने पर दु:खी होता है। जब ज़िंदा हो, तब कहते हो कि सब कुछ अपना है, परंतु मृत्यु के समय जब यमदूत दोनों बाहों को बाँधकर ले जाते हैं तब न कोई रिश्तेदार, न धन-दौलत के ख़ज़ाने और न माया की कोई भी वस्तु साथ

देती है। देखते ही देखते यमदूत प्राण निकाल लेते हैं; माता-पिता और पत्नी घर पर ही मजबूर खड़े-खड़े देखते रह जाते हैं। गहरा गाड़ा हुआ धन और माल से भरे हुए बड़े-बड़े बर्तन भी यहीं छूट जाते हैं। मरने पर घर डरावना लगने लगता है और सब मिलकर आँगन को घेरकर रोने लगते हैं। फिर उसकी अर्थी कंधे पर उठाकर बाहर जाकर उसे आग लगा देते हैं। इस प्रकार शरीर जल जाता है और उसकी राख बनकर उड़ जाती है। उसे अपना समझनेवाले लोग कुछ दिन उसके बारे में सोचते हैं, फिर सब अपने-अपने काम-धंधों में लग जाते हैं और मरनेवाले का नामो-निशान ही भुला देते हैं। इसलिए दरिया साहिब कहते हैं कि केवल सच्चे गुरु के शब्द को सच मानकर प्रभु की भक्ति करो। संसार की भूल-भटक में यह जीव अपना मूल उद्देश्य भूल जाता है, जब कि ऐसा दुर्लभ मनुष्य-शरीर फिर न जाने कब मिले। अंत में मृत्यु के समय धन-संपत्ति और हाथी आदि कुछ भी साथ नहीं जाता। और तो और, यह शरीर भी आग के हवाले कर दिया जाता है और जब यह भस्म बनकर उड़ जाता है तो उसे फिर कोई देखने भी नहीं आता। तब माता-पिता, पुत्र और पत्नी – ये सभी तुझे भुला देते हैं।

गाड़ेवो धन गहिरे भले, बसेवो झूठ के साथ।
सुत कलत्र बैरी भए, चले मरोरत हाथ॥[62]

गाड़ेवो=गड़ा हुआ; **कलत्र**=पत्नी; **मरोरत**=मरोड़कर।

संसार में तुम ने धन इकट्ठा कर उसे ज़मीन में अच्छी तरह गाड़ दिया। परंतु पुत्र, स्त्री आदि के नाते झूठे हैं और झूठों के साथ ही तुम्हारा निवास था। इन्हीं के लिए तुम परमार्थ को छोड़ जैसे-तैसे धन जोड़ते रहे और अपने अमूल्य जीवन को गँवा बैठे। अब पता चलता है कि तुम्हारा साथ न देनेवाले पुत्र और पत्नी दुश्मन थे। अब तुम यमों के साथ हाथ मलते हुए जा रहे हो।

मातु पिता सुत बांधवा, सभ मिलि करे पुकार।
अकेला हंस चलि जातु है, कोई नाहिं संग तुम्हार॥[63]

बांधवा=संबंधी; **तुम्हार**=तुम्हारे।

मृत्यु के समय माता-पिता, पुत्र और संबंधी सभी चीख़-पुकार करते रह जाते हैं, परंतु जीव के साथ कोई नहीं जा सकता। जीव अकेला ही इस संसार से चला जाता है।

कोठा महल अटारिया, स्रवन सुनै बहुराग।
सतगुर सब्द चिन्है बिना, ज्यों पंछिन्ह मंह काग॥[64]

स्रवन=कान; **बहुराग**=अनेक राग।

बेशक हम अपने ऊँचे-ऊँचे सुंदर महलों में अपने कानों से सुरीली राग-रागिनियाँ सुनकर मनोविनोद करते रहते हैं, परंतु यदि हमने सतगुरु के शब्द को नहीं पहचाना तो हमारी दशा ऐसी ही है जैसी पक्षियों के बीच गंदगी खानेवाले कौवे की होती है।

यह सुख खलक पलक में जैहैं। ज्ञान बिना जिव इमि दुख पैहैं॥...
जिमि करि कलपेव जल बिनु मीना। जल सूखे भव जीव मलीना॥
बारि सूखे बारिज सुखि जैहैं। भंवरा भरमि ठौर नहिं पइहैं॥
इमि करि जम जीव करिहें हानी। सतगुरु बिना ना नेक निसानी॥[65]

सुख खलक=संसार का सुख; **कलपेव**=तड़पती है; **बारि**=जल; **बारिज**=कमल; **ठौर**=ठिकाना; **नेक**=ज़रा सी भी।

संसार का यह सुख पल भर में छिन जाएगा और परमात्मा के ज्ञान के बिना जीव को दुःख उठाने पड़ेंगे। जैसे जल के बिना मछली तड़पती है,

जलाशय में पानी के सूख जाने से सारे जीव दुःखी हो जाते हैं, पानी सूख जाने पर कमल भी सूख जाता है और भौंरे को भटकते-भटकते कोई ठिकाना नहीं मिलता, उसी प्रकार सतगुरु के बिना जीव भी भुलावे में पड़ा रहता है, उसे कोई ठिकाना नहीं मिलता। सतगुरु के बिना जीव की कुछ भी निशानी नहीं रहती। इस प्रकार उसे यमराज सताता रहता है।

सतगुरु पद परचे नहीं, मन रावन है साथ।
परे भवन में भरमि के, सो जीव भए अनाथ॥[66]

परचे=पहचाना; **मन रावन**=मनरूपी रावण।

जीव ने सतगुरु के महत्त्व को नहीं पहचाना क्योंकि साथ में मनरूपी रावण है, ऐसे में जीव चौरासी में भटकते हुए अनाथ हो जाता है।

थोर जीवन जग काहें जहड़ाय। अवसर बीते काहें पछताय॥
आगत सोच चरण लवलीन। ज्यों जल अंजुरी के पल पल क्षीन॥[67]

जहड़ाय=भटकना, धोखे में रहना; **आगत**=पहले से; **अंजुरी**=अंजलि।

संसार में यह जीवन थोड़े समय के लिए मिला है। यह अवसर बीत जाने पर फिर पछताने से क्या होगा? यह समय उसी प्रकार बीतता जा रहा है जैसे अंजलि से हर पल निकलता हुआ पानी धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है।

सब होए रहा दुलहा दुलही (सब) फूलन्हि में भंवरा रंग रता।
सुख एक रती दुख होत घना मति दोसर भौ मद मोह मता।
कागज की पुतरी तन जानो मानत नाहिं सो होत पता।
दरिया जो कहें सझुरै कोइ संजन अरुझि रहा सब दुर्म लता॥[68]

रता=लीन; **घना**=बहुत अधिक; **पुतरी**=पुतली, पुतला; **सझुरै**=सुलझे हुए; **लता**=मायारूपी बेल।

इस संसार में हर कोई प्रियतम और प्रियतमा बनकर अपने आप को सुखी अनुभव कर रहा है। सांसारिक विषयरूपी फूलों के प्रेम में ही जीवरूपी भौंरा लीन है। वह भूल गया है कि यहाँ सुख बहुत थोड़े हैं जब कि दुःख बहुत अधिक हैं। अहंकार और मोह में मतवाले हुए जीव की बुद्धि पलट गई है। यह शरीर काग़ज़ का एक पुतला है जो मृत्यु की वर्षा में गल जाएगा। दरिया साहिब कहते हैं कि यदि तुम इस बात को मानते नहीं तो मृत्यु के समय तुम्हें पता चल जाएगा। कोई विरला सज्जन पुरुष ही इस उलझन भरे संसार की गुत्थियों को सुलझाकर संसार के पार जाता है। बाक़ी सभी जीवरूपी वृक्ष मायारूपी बेल में उलझे हुए हैं।

झूमता द्वार गज बाज सब साज है राज दरबार सब फौज भारी।
छरी बरदार चोपदार आसा लिए निकलि नाकीब सब हांक पारी।
बैठिए तख्त आम खास चहुं पास है मीर उमराव कोर्निसि गुजारी।
नौबत निसान एह गर्द बाजी करे बाजिया नीति झनकार झारी।
बेगम बेलास एह सखी चहुं पास है चित्र के बीच मानो लिखि डारी।
लाल जराव मनी मोती सब छाइया छको छबि देखि एह अछो नारी।
पकरि जबरील जब कस्ट कुंदी करे नस्ट नर जात सिर बोझ भारी।
कहें दरिया बेदरद गंदा हुआ बन्दगी बादि करि जन्म हारी॥[69]

गज=हाथी; **बाज**=घोड़ा; **छरी...चोपदार**=राजा की शाही सवारी के साथ सोने-चाँदी से मढ़े डंडे लेकर चलनेवाले कर्मचारी छड़ीबरदार या चोपदार कहलाते हैं; **आसा**=सोने-चाँदी से मढ़ा डंडा; **नाकीब**=बंदीजन, राजाओं का यशोगान करनेवाले; **हांक**=घोषणा; **मीर उमराव**=अमीर और सरदार; **कोर्निसि**=आदर से सिर झुकाना; **नौबत**=ख़ुशी के अवसरों पर बजाया जानेवाला बाजा; **निसान**=नगाड़ा; **गर्द**=धूल; **बाजिया**=बाजा बजानेवाले; **बेलास**=विलास के लिए, मन बहलाने के लिए; **लाल जराव**=रत्नों से जड़ा हुआ; **छको**=चकित होना, चकराना; **छबि**=शोभा;

अछो=स्वच्छ, सुंदर; **जबरील**=यमदूत; **कुंदी**=काठ की बड़ी मुँगरी से मारना; **बादि करि**=विमुख होकर।

परमात्मा की भक्ति न करने पर जीव की क्या हालत होती है, दरिया साहिब इसे समझाते हुए कहते हैं कि ऐ मनुष्य! भले ही तुम्हारे द्वार पर हाथी-घोड़े बँधे हों, तुम्हारा राजदरबार सजता हो, तुम्हारे पास बहुत बड़ी सेना हो, तुम्हारी शाही-सवारी के साथ सोने से मढ़ी हुई छड़ियाँ लेकर सेवक चलते हों और तुम्हारे पधारने की घोषणा बंदीजन करते हों; भले ही तुम्हारे सिंहासन पर विराजमान होते ही चारों ओर अमीर, सरदार और सभी लोग आदर से सिर झुकाते हों, तुम्हारे दरबार में नगाड़े और आनंद के बाजे बज रहे हों, घोड़ों के दौड़ने से धूल उड़ रही हो, तुम्हारे इर्द-गिर्द सखियों के साथ घूमनेवाली तुम्हारी बेग़म इतनी सुंदर हो जैसे किसी सुंदर स्त्री का चित्र बनाया गया हो, तुम्हारे आसपास मणियों, मोतियों और रत्नों से जड़े हुए गहने पहने ऐसी सुंदर स्त्रियाँ हों जिनकी शोभा देखकर लोग चकित रह जाते हों; लेकिन इतना सब कुछ होने के बावजूद मृत्यु के समय जब सिर पर कर्मों का भारी बोझ लदा होता है और यमदूत उसे पकड़कर मुँगरियों से पीटते हैं, तब जीव की घोर दुर्गति होती है। इस प्रकार भक्ति न करने के कारण जीव अपने जीवन की बाज़ी हार जाता है और उसका मनुष्य-जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। यमदूत बड़ी बेदर्दी से उसे नरक की गंदगी में डाल देते हैं।

अवधू एह मुरदे का गांव।
जोगी जती तपी सन्यासी मरि गये सभ ठांव॥
ब्रह्मा बिस्नु महेसर मरि गयो सनकादिक जेहि कहिए।
गौरी गनपति फनपति मरिगौ अचल ब्रह्म को लहिए॥
मच्छ कच्छ बराह सरूपी बावन सो मरि गएऊ।
राम क्रिश्न सीतापति कहिए मरि मरि या जग भएऊ॥
कोटि पैगंमर पीर अउलिया गोर कफन में भएऊ।

नेकी बदी कागज जग माहीं मरि मरि या सभ गएऊ॥
मुआ सभे खोजो तुम काके ऐसा जग है बवरा।
आपन थीत चिन्हें नहिं मूरख तीरथ मंका दवरा॥
धोखे सभ जग मारि उड़ाया धोखे काहु न मारा।
बेद कितेब देखा दिल दरिया उतपति परले डारा॥[70]

अवधू=साधु; **जती**=जिसने इंद्रियों को वश में किया हुआ हो; **ठांव**=जगह; **सनकादिक**=ब्रह्मा जी के महान् ज्ञानी चार पुत्र – सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार; **गौरी**=पार्वती; **फनपति**=शेषनाग; **मच्छ...बावन**=मत्स्य, कच्छप, वाराह, वामन अवतार; **पीर**=आध्यात्मिक गुरु; **अउलिया**=फ़क़ीर; **गोर**=क़ब्र में दफ़नाना; **नेकी बदी**=अच्छाई-बुराई; **काके**=किसको; **बवरा**=पगला; **थीत**=ठिकाना; **मंका**=मक्का; **दवरा**=दौड़ना; **बेद**=वेदों की संख्या चार है – ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद ; **कितेब**=सामी धर्मों के चार ग्रंथ – यहूदियों के ज़बूर और तौरेत, ईसाइयों की बाइबल तथा मुसलमानों का क़ुरान शरीफ़।

ऐ साधुओ! यह संसार तो मुर्दों का गाँव है यानी यहाँ सभी मरणशील हैं। बड़े-बड़े योगी, इंद्रियों को वश में करनेवाले यति, तपस्वी और संन्यासी भी मर गए। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सनकादिक ऋषि, पार्वती, गणेश, शेषनाग आदि भी सभी मर गए। उस अचल परमात्मा को भला कौन प्राप्त कर सका है? मत्स्य, कच्छप, वाराह, वामन, सीतापति श्रीराम, कृष्ण आदि अवतार भी इस संसार में आए और चले गए। करोड़ों पैग़ंबर, आध्यात्मिक गुरु और फ़क़ीर, क़फ़न में लपेटकर क़ब्र में दफ़ना दिए गए। उनकी संसार में की गई अच्छाई-बुराई का हिसाब-किताब तैयार हुआ और वे सभी मरकर चले गए। भला तुम किसको ढूँढ़ते हो! अपने अंतर के तीर्थ की ख़बर नहीं, पर पगली दुनिया मूर्खतावश उस परमात्मा को ढूँढ़ने के लिए बाहर के तीर्थों की ओर या मक्का की ओर हज को दौड़ती फिर रही है। दरिया साहिब कहते हैं कि मैंने अपनी आंतरिक आँखों से वेदों

और धर्म-ग्रंथों को उत्पन्न होते तथा नष्ट होते देखा है। काल के धोखे ने सारे संसार को मार डाला है, पर इस धोखे को कोई नहीं मार सका।

जग में मरन कहिये सांच।
मरना सो जो फेरि ना मरिये तीनि तापे कांच॥
एह जन्म जरा मरन की बेरी किछु ना जाते साथ।
हेम हीरा बाजि गज सब घैंचि लीन्हो नाथ॥
गाड़िया धन गहिर गाड़े बधन करते नीति।
मीन मासु येह भोग भलाई याही जग की रीति॥
आहि आहि चिकार छोड़ते कहां सुत ग्रिहि नारि।
रोदन करि करि बदन देखहिं चलो हाथ पसारि॥
बारि अनल लागाए दीन्हो भसम सरबो अंग।
बहुरि लोई मंदिल के येह कोइ न लागा संग॥
सुर नर मुनी ज्ञानी केते कोइ जन भए दास।
कहें दरिया भक्ति बीना डारु जम ग्रिव फांस॥[71]

सांच=सच; **तीनि तापे**=आध्यात्मिक कष्ट (शारीरिक और मानसिक असंतुलन से पैदा होनेवाले दुःख), आधिभौतिक कष्ट (बाहरी संसार के भौतिक कारणों से उत्पन्न होनेवाले दुःख) और आधिदैविक कष्ट (दैविक शक्तियों जैसे ग्रह दशा, भूत-पिशाच आदि के कारण होनेवाले दुःख); **बेरी**=बेड़ी; **हेम**=सोना; **बाजि**=घोड़ा; **गज**=हाथी; **बधन**=जीवों का वध करना; **आहि आहि**=हाय-हाय; **चिकार**=दर्द से चीख़ना; **सुत**=पुत्र; **ग्रिहि**=घर; **बदन**=मुँह; **बारि**=जलाना; **अनल**=आग; **लोई**=लोग; **मंदिल**=घर; **ग्रिव**=गर्दन, गला।

इस संसार में प्रत्येक प्राणी को मृत्यु अवश्य आएगी, यही सबसे बड़ी सचाई है। लेकिन असली मरना तो वह है जिससे एक बार मरने के बाद फिर से कभी मृत्यु नहीं आती अर्थात् अपने ध्यान को नीचे के सारे शरीर

से ख़ाली करके तीसरे तिल में एकाग्र करने के आंतरिक अभ्यास द्वारा, जीते-जी मरने के बाद फिर व्यक्ति को आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक कष्टों से छुटकारा मिल जाता है और वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सोना, हीरे, हाथी और घोड़े – ये सब तो जन्म-मरण और कष्टों की बेड़ियाँ हैं। इनमें से कुछ भी साथ नहीं जाता। धन को इकट्ठा करके उसे ज़मीन में गहरे गाड़ देना, रोज़ जीवों का वध करना, मछली और मांस का उपभोग करना – यही इस संसार की रीति है। जब मृत्यु का समय आता है तो मनुष्य दर्द से चीख़ता-चिल्लाता है, "कहाँ हैं मेरे पुत्र, कहाँ है मेरी पत्नी?" लेकिन सभी केवल रो-रोकर उसका चेहरा देखते रह जाते हैं। वे कोई भी मदद नहीं कर पाते। जीव हाथ पसारे संसार से चला जाता है। फिर घर के सभी लोग उसे आग के हवाले कर देते हैं। उसका शरीर जलकर राख हो जाता है, पर उसके घर का कोई भी आदमी उसका साथ नहीं दे सकता। कितने ही देवता, मनुष्य, मुनि और ज्ञानी हैं, लेकिन कोई विरला ही प्रभु का सच्चा भक्त होता है। भक्ति के बिना यम गले में मौत का फंदा डाल देता है।

संतो काम करि लेहु नीका।
जाते मिले मुक्ति को साई, सतनाम है टीका॥
जन्म जन्म जहड़ायेवो जग में, माया के मद माँते।
अमृत बानी नाम अमोलिक, तेजि पिवै विषि ताते॥
कंचा पिंड महल है कंचा, कंचा रंग बनाई।
या जग जन्मि जिया नहिं कोई, काया अजर नाहिं पाई॥
छार सोना भौ छार रूपा, भौ छार सुपेदी खाटा।
भक्ति बिना सभ छार नजरि है, खोजहु सतगुर बाटा॥
भौ गौ छार बारि जब दीन्हा, खाक में खाक मिलि जाई।
प्रान पुर्ष अनेक घर पैठे, भरमि भरमि भरमाई॥
केता कहो हठा नहिं माने, फिरि अनइस लपटाई।
कहें 'दरिया' यम बाँधि पछारे, परा परा छपटाई॥[72]

नीका=अच्छा, भला; **साई**=सहाय, साक्षी; **टीका**=सर्वश्रेष्ठ; **मद माँते**=नशे में मस्त; **अमृत बानी**=शब्द-धुन; **ताते**=गर्म, खौलता हुआ; **अजर**=जिसे बुढ़ापा न आए, जो सदा एक-सा रहे; **छार**=राख, ख़ाक; **रूपा**=चाँदी; **खाटा**=पलंग; **नजरि**=दिखना; **बाटा**=मार्ग; **भै गौ**=हो गया; **बारि**=जलाना; **प्रान पुर्ष**=जीव; **पैठे**=प्रवेश किया, पहुँचा; **पछारे**=पछाड़ता है; **परा परा**=पड़ा पड़ा; **छपटाई**=छटपटाता है।

हे सज्जन पुरुषो! यह अच्छा काम कर लो। वह सच्चा नाम सबसे श्रेष्ठ है, जीव को मुक्ति में सहाय है, मुक्ति का साक्षी है। संसार में जहाँ भी जीव जाता है वह माया के नशे में मस्त रहता है। वह नाम की अमूल्य अमृतरूपी वाणी (शब्द-धुन) को छोड़कर विषयों का खौलता हुआ विष पीता है। संसार और शरीर, दोनों नश्वर हैं और उनके रंग भी कच्चे या नश्वर हैं। इस संसार में जन्म लेने पर कोई हमेशा के लिए नहीं जी सका, किसी का भी शरीर हमेशा एक-सा नहीं रहता। सोना-चाँदी और सुंदर सफ़ेद पलंग – ये सब ख़ाक हो जाएँगे। सतगुरु के बताए मार्ग पर चलकर परमात्मा की भक्ति किए बिना संसार की हर वस्तु मिट्टी की तरह दिखती है। मरने के बाद जब शरीर को जला दिया जाता है तब वह ख़ाक बन जाता है और मिट्टी, मिट्टी में मिल जाती है। प्राण पुरुष यानी जीव भटकता हुआ अनेक योनियों में जन्म लेता है। दरिया साहिब कहते हैं कि मैं कितना समझाता हूँ, लेकिन यह ज़िद्दी मनुष्य मानता ही नहीं; वह उन वस्तुओं में आसक्त रहता है जो उसका अनिष्ट करती हैं, जिसके कारण यमदूत उसे बाँधकर पटकते हैं और वह असहाय पड़ा हुआ डर तथा पीड़ा से छटपटाता है।

गर्व का गर्द में मिलना

गर्व करनेवाला निश्चय ही गर्द में मिलता है। केवल थोड़े से बल-वैभव को पाकर ही हम अहंकार करने लगते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि अहंकार के कारण ही रावण, कंस, हिरण्यकशिपु और दुर्योधन जैसे शक्तिशाली राजा गर्द में मिल गए। अभिमानी का अभिमान अवश्य चूर होता है।

गर्भावस्था में जिस परमात्मा ने हमें जठराग्नि से उबारा और कठिन कष्ट से बचाकर इस सुंदर शरीर को सँवारा, उस परमात्मा को हम इस मायामय संसार में आकर भूल जाते हैं। उलटे हम अपनी सुंदरता, बल-बुद्धि और धन-संपत्ति का अभिमान करने लगते हैं। ऐसे जीवों को घोर कष्ट भोगना पड़ता है और वे अंत में रोते-बिलखते तथा पश्चात्ताप करते हैं। केवल परमात्मा की भक्ति द्वारा ही हम निर्भय पद को प्राप्त कर सकते हैं।

अति जेवों गर्ब करे नर लोई। निस्चय गर्ब गर्द मंह होई॥[73]

लोई=लोग; **गर्द**=धूल।

जो लोग बहुत अधिक घमंड करते हैं, उनका वह घमंड अवश्य ही धूल में मिल जाता है।

दुइ भुजा नर पाय के, करे घनेरी टीस।
रावन रज में मिल गया, बीस भुजा दस सीस॥[74]

टीस=ईर्ष्या, डाह; **रज**=धूल।

दो भुजाएँ पाकर मनुष्य को इतना घमंड है कि दूसरों को देखकर उनसे ईर्ष्या करता है। यह नहीं सोचता कि बीस भुजाओं और दस सिरोंवाला रावण भी आख़िर धूल में मिल गया।

राज काज मद रावना, भलि मति गई भुलाइ।
सीता सती समुद्र सम, परा लहरि मंह आइ॥[75]

मद=घमंड; **सती**=पतिव्रता धर्म का पालन करनेवाली स्त्री; **परा**=पड़ा।

राज-काज की शान-शौक़त के घमंड में रावण की बुद्धि भ्रष्ट हो गई और वह पतिव्रता सीता को उठाकर ले आया तथा उस सीतारूपी समुद्र की लहरों में डूब मरा।

जहां गर्व तहां गत दहे, जहां भर्म तहां भीत।
जहां सतगुर तहां सब्द है, जहां संत तहां प्रीत॥[76]

भीत=भय।

जो अभिमान करता है वह समाप्त हो जाता है, जहाँ काल और माया का भ्रम फैला है, वहाँ पर भय है तथा जहाँ पर सतगुरु हैं, वहाँ शब्द यानी नाम मिलता है; जहाँ संत हैं वहाँ ईश्वर का प्रेम है।

गए सब राज केते जग मांह जो बांह बली बल तौलत है।
गज बाज समाज तुरंग ताजी एह पौन के गौन में दौरत है।
झरि झारि झरोखा झांकि रही ललनी ललना मुख जोहत है।
दरिया जो कहैं परे दंद के फंद में नाम बिना जग भर्मत है॥[77]

बांह बली=बाहुबली; **तौलत**=तोलना, चुनौती देना; **तुरंग**=घोड़ा; **ताजी**=तेज़ चलनेवाला; **गौन**=चाल; **दौरत**=दौड़ता; **ललनी**=प्रेमिका, पत्नी; **ललना**=प्रियतम; **मुख जोहत है**=प्रतीक्षा करती है; **दंद**=द्वंद्व, द्वैत भाव से पूर्ण; **फंद**=जाल; **भर्मत**=भटकते हैं।

संसार में दूसरों की ताक़त को चुनौती देनेवाले कितने ही बाहुबलियों के राज्य छिन गए। जिनके पास हाथियों के समूह और हवा से भी तेज़ दौड़नेवाले घोड़े थे और जिनके मुखड़े की एक झलक पाने के लिए उनकी प्रियतमा लालायित आँखों से महल के जालीदार झरोखों से झाँका करती थी; वे ईर्ष्या-द्वेष, पाप-पुण्य, लड़ाई-झगड़ा आदि संसार के द्वैतपूर्ण जाल में पड़कर नाम के बिना संसार-सागर में भटकते फिर रहे हैं।

साधो अबरा के बल साहब।
जो कोइ गरबी बड़े जक्त में ता पर हुकुमी नाएब॥
कंचन कोटरा बन बड़ गरबी भयो गरब अभिमाना।

वोह राम एह रावन कहिये भया गरब पिसिमाना॥
हरिनाकस जो गरब कियो है भया जक्त में बीरा।
जो कोइ गरबी बड़ा जग्त में पकड़ि वोद्र धरि चीरा॥
कंस अंस येह का के कहिये काले काले झगरा।
झपटेव क्रिस्न बाज की नाईं पकरि पछारेव बगरा॥
जुरजोधन जोर बहुत कियो है ऐसा कटक हिलाया।
छल बल क्रिस्न पंडो से कीन्हा वा कहं गर्द मिलाया॥
नाहक गर्ब करै नर लोई उपजि बिनसि फिरि जावै।
कहें दरिया तब समुझि परैगा जब जम मुसुक चढ़ावै॥[78]

अबरा=निर्बल; **जक्त**=जगत्; **नाएब**=अधिकारी; **कंचन**=सोना; **कोटरा**=क़िला, महल; **पिसिमाना**=वश में पड़ना; **हरिनाकस**=हिरण्यकशिपु; **बीरा**=वीर; **वोद्र**=उदर, पेट; **बगरा**=बगुला, बटेर; **जुरजोधन**=दुर्योधन; **कटक**=सेना; **हिलाया**=खलबली मचाना; **पंडो**=पांडव; **नाहक**=व्यर्थ में; **लोई**=लोग; **मुसुक चढ़ावै**=बाहों को मोड़कर उन्हें कसकर पीछे बाँधना।

ऐ साधुजनों! निर्बल व्यक्ति की ताक़त ख़ुद प्रभु हैं। संसार में जो भी घमंड से अपने को बड़ा कहता है, प्रभु की मौज से उसके ऊपर भी हुकम चलानेवाला कोई निकल आता है। जिस रावण को सोने का महल बनाकर बड़ा घमंड हो गया था, राम ने उसके गर्व को चकनाचूर कर दिया। हिरण्यकशिपु को अभिमान था कि वह संसार में बड़ा भारी वीर है, नृसिंह भगवान् ने उसका पेट फाड़कर उसका नाश कर दिया। जो कंस हर समय बहुतों को तबाह किए रखता था, उसे कृष्ण ने उसी तरह पकड़कर मारा जैसे बाज़ छोटे-से बटेर को पछाड़कर मारता है। दुर्योधन ने अपने बल और विशाल सेना के साथ भारी खलबली मचा रखी थी। उसे कृष्ण और पांडवों के साथ छल-बल करने के कारण मिट्टी में मिला दिया गया। जिसने जन्म लिया है वह नष्ट तो होगा ही, मनुष्य व्यर्थ ही घमंड करता है। उसे सचाई का पता तब चलेगा जब यमराज उसकी बाहों को बाँधकर उसे ले जाएगा।

रे नर तोहीं केतिक धीरकारों।
धीक धीक जीवन जीये जग माहीं, मैं मैं करत हमारो॥
विषय भाव रस रहि-रहि माँगत, करत गर्व हँकारो।
उलटि लगे नहिं चरण कमल पर, लिपटत फिरे बिकारो॥
गर्भबास जिन्हि जल जावन दिन्हाँ, रचि-रचि पिन्ड सँवारो।
मरकट मुट्ठी ज्यों गहि के लागेव, ब्याधा बान सर मारो॥
चारो पन गवायो गर्वी, भर्मि भर्मि भै हारो।
कहे 'दरिया' सर्वस परबस, हाथ जुवाड़ी झारो॥[79]

धीरकारों=धिक्कारूँ; **धीक**=धृग; **विषय भाव**=विषय वासना; **जावन**=दूध को दही बनाने के लिए प्रयोग की जानेवाली खटाई या खट्टा दही; **पिन्ड**=शरीर; **मरकट**=बंदर; **ब्याधा**=शिकारी; **चारो पन**=जीवन की चार अवस्थाएँ या भाग – बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था; **भै**=संसार; **झारो**=झाड़ना।

ऐ मनुष्य! तुझे कितना धिक्कारूँ? इस संसार में तेरा जीवन धृग है, क्योंकि तू हमेशा मैं-मैं करता फिरता है। तू बार-बार गर्व के साथ विषय-वासनाओं का रस बड़े चाव से चखता है। अंतर में सतगुरु के चरण कमलों को पकड़ने के बजाय तू इन बेकार की चीज़ों में फँसा हुआ है। गर्भ में परमात्मा ने दया करके पानी की बूँद से उसी प्रकार तुम्हारा सुंदर शरीर बनाया था, जैसे दूध में जावन डालकर दही बनाया जाता है। लेकिन संसार में आकर तुम उसे भूल गए और तुमने अपने आप को यहाँ उसी प्रकार फँसा लिया है, जैसे बंदर एक तंग मुँह वाले बर्तन में अपनी मुट्ठी फँसा लेता है और शिकारी उसको वाणों से मार देता है। तुमने अपने जीवन की चारों अवस्थाएँ संसार में घमंड से भटकते-भटकते गँवा दीं और जैसे एक जुआरी बाज़ी हारकर हाथ झाड़कर ख़ाली चला जाता है, वैसे ही तुम अपना सब कुछ हारकर अब काल के अधीन हो गए हो।

मुदगर लिए सदा सिर ताने जिव जम हाथ बिकाना।
पंडित गर्ब नरक में डारिहि कहु के परिहि जबाना॥
सुत बित नारि सजन समधी के मातु पिता हितजाना।
जठर अगिनि में जिन्हि प्रतिपालेव ताकी सुधी भुलाना॥
तन साजे माजे नहि बनिहें चिकने चाम बिकाना।
अठ कठ काठ जबै कल छुटि है पल में धुरी समाना॥
तन ग्रीही ते बेगि निकलिहें खाट पकरि परमाना।
करधन तोरि अगिनि में जरिहें रोवहि सब परधाना॥
तिल आंजुरि दे गंदा करिहें फिरि धंधे लपटाना।
करिहें दूध सराध कर्म सब बेद बिहिति मनमाना॥
ऐहूं जढ़ जन मरि गए बरबस करि करि गरब गुमाना।
कहें दरिया कोइ दास धनी का निर्भे लोक पियाना॥[80]

मुदगर=मुँगरियाँ; **जम**=यम; **जबाना**=ज़मानत; **बित**=धन संपत्ति; **जठर अगिनि**=पेट में अन्न को पचानेवाली अग्नि; **प्रतिपालेव**=पाला; **सुधी**=याद; **माजे**=धोकर साफ़ करना; **चाम**=चमड़ी; **अठ...काठ**=आठ प्रमुख जोड़ोंवाला शरीर; **कल**=मशीन; **धुरी**=धूल; **ग्रीही**=घर; **बेगि**=तुरंत; **करधन**=करधनी, कमर में पहना जानेवाला सूत; **तिल आंजुरि**=तिलांजलि, मृतक के नाम पर तिल मिले हुए जल को अंजलि से चढ़ाना; **दूध सराध**=शव जलाने के दूसरे दिन किया जानेवाला दूधकर्म; **सराध**=श्राद्ध; **बेद बिहिति**=वेदों द्वारा विधान किया हुआ; **बरबस**=व्यर्थ ही; **निर्भे लोक**=ऐसा लोक जहाँ कोई डर न हो, सतलोक; **पियाना**=प्रस्थान करना, जाना।

हे जीव! तुम्हारे सिर पर जो यमराज हमेशा मुँगरियाँ ताने खड़ा रहता है, उसके हाथों तुम मरते समय बिक जाते हो अर्थात् उसके अधिकार में आ जाते हो। तुम सारी उम्र जिस पंडित की सेवा में लगे थे, उसको तो यमराज

ने उसके अहंकार के कारण नरक में डाल दिया है, अब तुम्हें कष्ट से बचाने के लिए तुम्हारी ज़मानत कौन देगा? तुम संसार में माता-पिता, पुत्र, जीवन-साथी (स्त्री), मित्र, रिश्तेदार, धन-दौलत आदि को अपना हितैषी मानते थे; तुमने उस परमात्मा को भुला दिया जिसने माँ के पेट में जठराग्नि (अन्न पचानेवाली अग्नि) के बीच तुम्हारी रक्षा की थी। तुम तो शरीर को बाहर से ख़ूबसूरत बनाने में ही लगे हुए हो। इस शरीर को मल-मलकर धोने और सजाने से काम नहीं चलेगा। चिकने और सजे-सजाए शरीर वाले भी धर्मराज के हाथों बिक जाते हैं। तुम्हारा शरीर आठ जोड़ों वाली एक मशीन है, जिसका हर जोड़ मौत के समय खुल जाएगा और यह शरीर पल भर में धूल में मिल जाएगा। फिर जैसे ही तुम्हारे शरीर से प्राण निकलेंगे, तुम घर से निकाले जाओगे और तुम्हें अर्थी पर लेटाकर रोते-रोते आग के हवाले कर दिया जाएगा। और तो और, तुम्हारे पास एक मामूली-सी करधनी भी नहीं रहने पाएगी, उसे भी दाह-संस्कार के समय तोड़ दिया जाएगा। लोग तुम्हें तिलों की अंजुलि देकर गंदा करेंगे और फिर सब अपने-अपने काम-धंधों में लग जाएँगे। तुम्हारे दूधकर्म श्राद्ध आदि वेदों में बताए हुए कर्म किए जाएँगे। दरिया साहिब कहते हैं कि इस प्रकार मूर्ख लोग व्यर्थ ही अभिमान कर-करके मर जाते हैं, कोई विरला ही प्रभु का भक्त होता है जो सतलोक को जाता है, जहाँ कोई डर नहीं।

भक्ति-विहीन मानव-जीवन की निरर्थकता

नाम-भक्ति के अभ्यास द्वारा परमात्मा की सच्ची भक्ति करके ही हम अपने मानव-जीवन को सफल बना सकते हैं। भक्ति के बिना मानव-जीवन निरर्थक है।

परमात्मा ही हमारा एकमात्र रक्षक है। गर्भवास की कठोर यातना से वही हमें बचाता है। गर्भवास में जीव अत्यंत आतुर होकर अपनी रक्षा के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता है और उन्हें कभी न भूलने का वादा करता है। परमात्मा की दया से ही जीव मनुष्य का सुंदर शरीर और ज्ञान-विज्ञान की अनोखी शक्ति लेकर संसार में आता है। परमात्मा के प्रति

अपनी कृतज्ञता प्रकट करने और उनकी भक्ति द्वारा आवागमन के चक्र से छुटकारा पाने का यह मानव-जीवन ही एकमात्र अवसर है। परमात्मा की भक्ति के पवित्र जल से ही हमारे हृदय का कमल खिलता है और जीवरूपी मछली उस जल में आनंदपूर्वक विहार करती है। जीव के निस्तार के लिए भक्ति के सिवा और कोई दूसरा साधन नहीं है। पर दुर्भाग्यवश अज्ञानी जीव अपने गर्भकाल के वादे को भुलाकर संसार की विषय-वासनाओं में लिप्त रहता है और उनमें सुख ढूँढ़ने की कोशिश करता है। इस तरह वह अपना सारा जीवन सांसारिक विषयों के पीछे दौड़ने में ही बरबाद कर डालता है। इन विषयों की मृगतृष्णा के पीछे भागने से उसे केवल निराशा ही हाथ लगती है। ऐसे जीवों को यमराज भी कठिन दंड देता है और उन्हें अनेक जन्मों तक दुर्गंधि के कीड़ों और पशु-पक्षियों की योनियों में भटकाता है।

भक्ति बिना सब गए बिहाई। राज काज कछु साथ ना जाई॥
एहि महि केते भए रजधानी। उपजी बिनसि बुला जनु पानी॥[81]

बिहाई=छोड़ जाना, नष्ट होना; **महि**=पृथ्वी; **बुला**=बुलबुला; **जनु**=मानो।

भक्ति के बिना सब कुछ नष्ट हो जाता है। राजाओं की शान-शौक़त भी उनके साथ नहीं जाती। इस धरती पर कितनी ही राजधानियाँ बनीं और पानी के बुलबुले के समान विनष्ट हो गईं।

तलफत मीन यह जल बिनु, कंवल सुखा बिनु वारि।
परे भवन में भग्ति बिनु, चारों वेद विचारि॥[82]

तलफत=तड़पती है; **वारि**=पानी; **भवन**=योनियाँ।

जिस प्रकार जल के बिना मछली तड़पती है और पानी के बिना कमल सूख जाता है, उसी प्रकार चारों वेदों का ज्ञान होने के बावजूद जीव परमात्मा की भक्ति के बिना चौरासी लाख योनियों के चक्र में पड़ा रहता है।

सुनहुं न खगपति प्रीति, बिना भक्ति भव ना तरे॥
कंह सरिता कंह सीत, जिमि कुरंग भरमत फिरे॥[83]

खगपति=गरुड़; **भव**=संसार; **सरिता**=नदी; **सीत**=ठंडक; **कुरंग**=हिरण।

जिस प्रकार हिरण रेगिस्तान में मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते हुए भटकता रहता है, उसे न तो नदी मिलती है और न ही पानी की ठंडक; उसी प्रकार हे गरुड़! प्रेम से यह बात सुन लो कि परमात्मा की भक्ति के बिना जीव संसार-सागर से पार नहीं जा सकता।

मानुष की खलरी पेन्हे चौरासी के जीव।
जन्म कोटि भ्रमत फिरे खोजत मिला न पीव॥[84]

खलरी=चमड़ी; **पीव**=प्रियतम परमात्मा।

चौरासी लाख योनियों में भटकनेवाले जीव ने मनुष्य की खाल ज़रूर पहन ली है, परंतु भक्ति के बिना केवल अपनी बुद्धि से खोज करने पर प्रियतम परमात्मा नहीं मिलता और जीव करोड़ों जन्मों तक भटकता रहता है।

सुंदर नर तन पाएके, भक्ति न कीन्ह बिचारि।
भए क्रिमी बिनु नैन को, बास बिगिंधि संवारि॥[85]

क्रिमी=कीड़ा; **बास**=निवास; **बिगिंधि**=दुर्गंधि।

ऐ मनुष्य! तुमने सुंदर मानव-शरीर पाकर भी सोच-विचार करके भक्ति का मार्ग नहीं अपनाया, तभी तो बिना आँखों के कीड़े बनकर दुर्गंधि में निवास करना पड़ा।

आवत देखा जात न साथी। घेरि पकरि जम मुसुकन्हि बाँधी॥
घरि भर घर में रहन न पावै। खोदि खादि फिरि अग्नि जरावै॥
भएयो अंदेसा खबरि न पाई। कह ग्रिहि नारी रोदन फैलाई॥

जेहुं ऐहो तेहूं चलि जईहो। सतगुर चरन सुध नहिं पइहो॥
करो भक्ति निज ज्ञान बिचारी। धन धन जग में है उजियारी॥
अन्ध कूप कबहीं नहिं परिहो। उदित ब्रह्म भव सागर तरिहो॥
जरा मरन ते होइहो न्यारा। जननी गर्भ न होए अवतारा॥

कहें दरिया चित चेतिये, सतगुरु कहा बिचारि।
सीतल चरण सरोज रज, भक्ति करहिं नर नारि॥[86]

मुसुकन्हि बाँधी=बाहों को पीछे की ओर बाँधना; **घरि भर**=घड़ी भर को, थोड़े समय के लिए; **अंदेसा**=आगे होनेवाली घटना की चिंता; **जेहुं**=जैसे; **तेहूं**=वैसे; **अन्ध कूप**=अंधा कुआँ; **उदित ब्रह्म**=परमात्मा के प्रकट होने पर; **चरन...रज**=चरण-कमलों की धूलि।

मनुष्य जब इस संसार में आया था तो उसे सबने देखा था, परंतु संसार से जाते समय किसी ने उसका साथ नहीं दिया। यमदूतों ने उसे घेरकर पकड़ लिया और मुश्कें बाँधकर (बाहें चढ़ाकर) ले गए। मरने के बाद उसके शरीर को घड़ी भर के लिए भी घर में नहीं रहने दिया गया, उसे अग्नि में जला दिया गया। मौत के आने का अंदेशा तो बना ही हुआ था, परंतु मौत कब आएगी, इसकी ख़बर तो मिली नहीं। जो भी हो, जिसका होना निश्चित था उसके लिए पत्नी ने रोना-धोना क्यों शुरू कर दिया। आख़िर वह जैसे ख़ाली हाथ इस दुनिया में आया था, वैसे ही चला गया; मौत से बचानेवाला सतगुरु के चरणों का अमृत उसे प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए ख़ुद सोच-विचारकर परमात्मा की भक्ति करो। भक्ति करने से तुम्हारा जीवन धन्य हो जाएगा और संसार में तुम्हारे यश का उजाला फैल जाएगा। भक्ति करके संसाररूपी अंधे कुएँ में नहीं पड़ोगे और अंतर में परमात्मा को प्रकट करके संसार-सागर से पार हो जाओगे। फिर जरा-मरण (बुढ़ापे और मृत्यु) से छूट जाओगे और कभी माँ के गर्भ में जन्म नहीं लेना पड़ेगा। इसलिए ऐ लोगो! सतगुरु के विचारपूर्वक कहे वचन पर ध्यान दो और उनके आंतरिक शीतल चरण-कमलों की भक्ति में लग जाओ।

नासिका श्रवन चक्षु बनायो सो, मुख में जीभ रचा बहु भाँती।
हाथ औ पाँव है पेट औ पीठ है, नेकि औ बदी चिन्हे सब जाती॥
सो नर गर्व में भूलि परा यह, नाम बिसारि दिया दिन राती।
'दरिया' दिल देखि बिचारी कहा, दिया बुझि गया जब तेल न बाती॥[87]

श्रवन=कान; **चक्षु**=आँख।

ऐ मनुष्य! तुम्हें परमात्मा ने नाक, कान, आँखें और जीभ दी है। तुम्हारे पास पीठ, पेट, हाथ और पाँव हैं। तुम्हें सब चीज़ों को पहचानने की समझ दी हुई है। इतना सब होने के बावजूद तुम ने अहंकार और माया के नशे में चूर होकर प्रभु का नाम भुला दिया है। सोचकर देखो, तुम्हें तब समझ आएगी जब जीवनरूपी दीया तेल और बाती के बिना बुझ जाएगा।

नर तुम जन्म जगत में हारि।
गर्भ में दस मास बीतेव लीन्ह पिंड संवारि॥
ऊपर मटुक लाल लागेव तामे बारिज बारि।
दसन सुन्दर रसन दीन्हौ बोलत बैन सुधारि॥
बालक के मुख छीर दीन्हौ नीर अनवा डारि।
आतमा एह सर्ब सुन्दर चलत पंथ बिचारि॥
निमक खाए हराम कीन्हौ कौल दीन्हौ बिसारि।
साज बाज बनाए के एह संग सुंदरि नारि॥
गर्ब ते एह गर्जि बोलत कहत बात बिगारि।
जैसे मदपी मातु मद ते देत सभके गारि॥
पकरि जम जब मुसुक कीन्हौ तप्त सीला डारि।
कहें दरिया उलटि पलटी प्रान एहि बिधि जारि॥[88]

पिंड=शरीर; **मटुक लाल**=रत्नजड़ित मुकुट; **बारिज बारि**=जल में कमल; **दसन**=दाँत; **रसन**=जीभ; **बैन**=वचन; **छीर**=दूध; **अनवा**=अन्न; **कौल**=वादा; **मदपी**=शराबी; **मातु**=मस्त; **मद**=नशा; **तप्त सीला**=दहकता हुआ पत्थर।

ऐ मनुष्य! तुमने संसार में आकर अपना जन्म बेकार ही गँवा दिया। दस मास तक माँ के गर्भ में परमात्मा ने तुम्हारे शरीर को सँवारा। शरीर में सबसे ऊपर रत्नजड़ित मुकुट की तरह सिर लगा हुआ है जिसके अंदर अनेक खंड-ब्रह्मांड सुशोभित हैं, मानो जल में कमल खिले हुए हों। तुम्हारे सुंदर दाँत हैं तथा तुम्हें परमात्मा ने मीठे वचन बोलने के लिए जीभ दी है। बचपन में तुम्हें दूध, पानी और अन्न दिया। सबसे सुंदर तुम्हारी आत्मा है जो सोच-विचार करके प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर चल सकती है। इतना सब कुछ होने के बावजूद तुमने परमात्मा के साथ नमकहरामी की और गर्भ में प्रभु से किया गया वादा भूल गए। तुमने तो गर्भ के कठोर कष्ट से निकलने के लिए प्रभु से विनती करते हुए यह वादा किया था कि जन्म लेने के बाद तुम सदा प्रभु-भक्ति में लगे रहोगे। तुम तो सज-धजकर अपनी सुंदर स्त्री पर आसक्त हो गए। जैसे एक शराबी नशे में मस्त होकर सबको गाली देता है, ठीक उसी तरह गर्व में चूर होकर तुम गरजते हुए कड़वी बातें करते हो। तुम्हारे जैसे जीवों को मृत्यु के बाद यमदूत मुश्कें बाँधकर दहकते हुए पत्थर पर डाल देते हैं और प्राणी को उलट-पलटकर जलाते हैं।

तुम ते हित को कहिये जग में जरि जाउ सजीवन आन रतें।
जिन्हि पानि से पिंड जो प्रान दिन्हो एह मान मनोरथ बुद्धि जते।
भूत बैताल सब जात रसातल नाम लिये सब पाप गते।
दरिया जो कहें घट दीपक है पट खोलि देखो एह साधुमते॥[89]

हित=मित्र; **सजीवन**=संजीवनी बूटी; **आन**=दूसरा; **रते**=प्रेम में आसक्त; **जते**=जितने भी; **रसातल**=पाताल; **गते**=समाप्त होना; **पट**=परदा; **साधुमते**=साधुमत, संतमत।

हे प्रभु! आपने पानी की एक बूँद से यह अनमोल शरीर बनाकर मुझे जीवन प्रदान किया, बुद्धि प्रदान की, इज़्ज़त दी, सभी इच्छाएँ पूरी कीं – आप से बड़ा हितैषी इस संसार में और कौन हो सकता है? जो आप जैसी संजीवनी को छोड़कर दूसरों के प्रेम में आसक्त हैं, उन्हें तो जल मरना चाहिए। दरिया साहिब कहते हैं कि आपके नाम में वह ताक़त है जिससे सारे पाप-कर्म समाप्त हो जाते हैं तथा भूत-बैताल आदि शक्तियों का विनाश हो जाता है। साधु-संतों के द्वारा बताए गए इस मार्ग के अनुसार परदा खोलकर देखो, वह नामरूपी दीपक शरीर के अंदर है।

भक्ति बिनु चारो पन गुजरे।
बाल कुमाल तरुनापन बीते ब्रीधो ना सुधरे॥
अज्या पालहि जीभ के स्वारथ खाहि भले बपुरे।
रइनि बिते बेसवा संग राते इन्ह ते एहु जरे॥
पहिरि पोसाक खास खिजमतिया संग संग बहुत जुरे।
साथ लेहि स्वान दुइ चारी जंगली जीव तुरे॥
चढ़ि तुरंग माया मद माते बोलत बैन करे।
जब जब सुने साधु के महिमा जरि जरि सो बिगरे॥
झूठी बातें पोथी बांचे बकि बकि ऐहुं मरे।
सो त्रिसूल लागा तन भीतर कांटन्ह सो अझुरे॥
सपने कबहि न दाया दरद अब सो तन अगिनि जरे।
कहें दरिया दिल दागा जगातिक जम के हाथ परे॥[90]

चारो पन=जीवन की चार अवस्थाएँ; **कुमाल**=कुमारावस्था; **तरुनापन**=जवानी; **ब्रीधो**=बुढ़ापा; **अज्या**=बकरी; **बपुरे**=बेचारे; **रइनि**=रात; **बेसवा**=वेश्या; **राते**=आसक्त होना; **जरे**=जलना; **खिजमतिया**=ख़िदमत करनेवाला सेवक; **जुरे**=इकट्ठे; **स्वान**=कुत्ता; **तुरे**=पीछा करना; **बिगरे**=बिगड़ना; **त्रिसूल**=तीन तरह के कष्ट, तीन ताप; **अझुरे**=उलझे; **जगातिक**=कर वसूलनेवाले।

लोगों ने अपने जीवन की चारों अवस्थाएँ परमात्मा की भक्ति के बिना ही गुज़ार दीं। बचपन, किशोरावस्था और जवानी बीत गई, बुढ़ापा आ गया, परंतु वे अब भी नहीं सुधरे। बेचारी बकरी को जीभ के स्वाद के कारण पालते हैं और मारकर खाते हैं। रात वेश्या के साथ बीतती है जो मन ही मन इनसे कुढ़ती है। अपने साथ कई ख़ास सेवकों को लेकर, वे शिकार की पोशाक पहनकर और दो-चार कुत्तों को साथ लेकर जंगली जीवों को मारने के लिए उनका पीछा करते हैं। माया के नशे में चूर अहंकार से घोड़े पर सवार होकर बड़े कड़वे बोल बोलते हैं। जब भी साधुओं की महिमा सुनते हैं तो क्रोध से जल उठते हैं और बिगड़ खड़े होते हैं। झूठ-मूठ किताबों का पाठ करते और व्यर्थ बहस करते हैं तथा अनावश्यक बातों में उलझते हैं। दैहिक, दैविक और भौतिक – तीनों कष्टों का त्रिशूल उनके अंतर में चुभता रहता है तथा वे हमेशा दुःखरूपी काँटों में उलझे रहते हैं। सपने में भी कभी जिनके दिल में किसी के दर्द को देख दया नहीं आई, अब मौत के समय उनका शरीर अग्नि में जल रहा है। हृदय में धोखा रखनेवाले ऐसे लोग कर्मों का हिसाब-किताब करनेवाले यम के हाथों में पड़ेंगे।

साधो ममिता मद है बवरा।
समुझाए समुझे नहिं मूरख दे धक्का दुइ अवरा॥
चारि चरन दुइ सींघे होइहै घास भुसा के दवरा।
हाटे बाटे मिले बटोही लया बरद है नवरा॥
सन की डोरी मोहकम बांधे भला बरद है चवरा।
प्रात भया तब खोलि दिया है जाए पसुअन्हि में जवरा॥
कांध जुआठे रसरी लाए हरिसा बना सुडवरा।
कर गहि परिहथ चापन लागे बड़ा गबर है धवरा॥
ब्रीध भया तन दांत खियाना पुजे काहां तक कवरा।
अरइन्हि खोदे पैनन्हि पीटे चलहु काहे नहिं दवरा॥
फिरै अकेला कौआ खोदे बड़ी बिपति है तवरा।
कहें दरिया नर भक्ति बिहूना अब तन भया मरवरा॥[91]

बवरा=पागल; **दुइ**=दो; **अवरा**=और; **दवरा**=दौड़ा; **बटोही**=पथिक, मुसाफ़िर; **बरद**=बैल; **नवरा**=नया; **मोहकम**=पशुओं को बाँधने के लिए मुँह के ऊपर लगाई जानेवाली रस्सी की मोहरी; **चवरा**=ताक़तवर; **जवरा**=जोतेंगे; **जुआठे**=जूआ, लकड़ी का ढाँचा जो बैलों को जोतने के लिए उनके कंधों पर रखा जाता है; **रसरी**=रस्सी; **हरिसा**=हरिस, हल का वह सीधा लट्ठा जिसके एक सिरे पर जूआ तथा दूसरे सिरे पर फालवाली लकड़ी लगी होती है; **सुडवरा**=सुडौल, सुंदर; **कर**=हाथ; **परिहथ**=परिहत, हल का वह हिस्सा जिसे किसान हाथ में पकड़ता है; **चापन**=हाथों से दबाना, मीड़ना; **गबर**=हठी; **धवरा**=धवल रंग का बैल; **खियाना**=घिस जाना; **कवरा**=ख़ुराक; **अरइन्हि**=बैल को हाँकने की कील लगी हुई छड़ी; **पैनन्हि**=पैना, छड़ी; **दवरा**=दौड़कर; **तवरा**=तब; **बिहूना**=रहित, बिना; **मरवरा**=मरियल, मरे हुए जैसा।

हे परमार्थ के खोजियो! जो व्यक्ति यह बात समझाने से नहीं समझता कि हमें परमात्मा की भक्ति करनी है, तो संसार उसे दो और धक्के लगाएगा। संसार की ममता के नशे में पागल होने के कारण वह आदमी बाद में चार खुरों और दो सींगों वाला बैल बनकर घास-भूसे के लिए दौड़ता फिरेगा। उसे जो कोई ख़रीदेगा, राह और पड़ाव में मिलनेवाले मुसाफ़िर उससे यही कहेंगे कि नया बैल लाया है। फिर सन की मज़बूत रस्सी की मोहरी में उस सुंदर ताक़तवर बैल को बाँध दिया जाएगा। सवेरा होने पर उसे खोल देंगे तथा दूसरे पशुओं के साथ खेत में जोतेंगे। उसके कंधे पर जूआ रखकर बड़े सुंदर आकार की हरिस में रस्सी के साथ उसे बाँधा जाएगा। परिहथ (परिहत) को पकड़कर ज़मीन में हल जोतने के लिए ज़ोर से दबाया जाएगा, क्योंकि अभी तक वह बैल बड़ा हठी है। इसी प्रकार जोतते हुए जब वह बूढ़ा हो जाता है और दाँत घिस जाते हैं तो फिर पेट की ख़ुराक भी कैसे पूरी हो? अब किसान उसे खेत जोतते समय डंडे मारता है, नुकीली कीलों वाली छड़ी चुभाता है और कहता है, "दौड़कर क्यों नहीं चलते?" उसकी मुश्किलें तब और बढ़ जाती हैं जब वह ज़ख़्मी

बना हुआ अकेला घूमता रहता है, शरीर हिलाया नहीं जाता तथा कौवे उसे नोचते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि मनुष्य-जन्म में परमात्मा की भक्ति न करने के कारण अब उसका शरीर, मरे हुए के समान हो गया है।

तू त साहेब के बिसरल हो दिन बिसरू।
कौल कइलउ बहुत भुलइलउ बीज बोअलउ खेत उसरू॥
मातु पिता सुत बान्धव नारी ता संग कोन में घुसरू।
केस सेत अचेत सोवत आइ गइले पन तिसरू॥
चरन थाके चक्षु भी थाके कोई नहिं साथ अकसरू।
कहे 'दरिया' दर यम ने छेंका कौने राह निकसरू॥[92]

दिन बिसरू=पिछले दिनों को भुला देनेवाला; **कौल**=वादा; **उसरू**=बंजर ज़मीन; **कोन**=एकांत स्थान; **सेत**=सफ़ेद; **पन तिसरू**=जीवन की तीसरी अवस्था; **अकसरू**=अकेला; **छेंका**=रोकना; **निकसरू**=निकलना।

ऐ पिछले दिनों को भूलनेवाले मनुष्य! तू तो उस परमात्मा को ही भूल गया। तूने बहुत बड़ी भूल की है। तूने गर्भ में वादा किया था कि ईश्वर की भक्ति करूँगा, पर दुनिया में आकर बंजर ज़मीन में बीज बोने के समान बेकार के कामों में फँसा हुआ है। तू माता-पिता, पुत्र-रिश्तेदार और पत्नी के साथ प्रेम कर रहा है। उनके साथ तू कोने में घुसा रहता है। जवानी तक की तेरे जीवन की तीन अवस्थाएँ पूरी हो चुकी हैं और बाल सफ़ेद हो गए हैं, पर तू अभी तक बेख़बर होकर सोया हुआ है। तेरे पाँव और आँखें थक चुकी हैं, तू अकेला पड़ चुका है। तेरा साथ देनेवाला कोई नहीं है और यमदूतों ने जीवात्मा के शरीर के निकलने की राह को रोक लिया है, उनसे बचने की कोई राह नहीं है-अब आख़िर तू किस रास्ते से निकलेगा?

माया के गुलाम गिदी दिल तोर करिया।
जनम सिरानी जाकी करत बेगरिया॥

गाड़े धन गहिरे गाड़े भांड़ी सब भरिया।
हाथ झारि चले जैसे चलेला जुअड़िया॥
चारि चरन सींग दुइ पशु अवतरिया।
श्वान शूकर देह धरी भूंकि भूंकि मरिया॥
चारो पन बीति गइले साहेब बिसरिया।
कहे 'दरिया' तोर के धरहरिया॥[93]

गिदी=निर्लज्ज; **तोर**=तुम्हारा; **करिया**=काला; **सिरानी**=बीतना; **बेगरिया**=बेगार; **गाड़े**=क़ीमती; **जुअड़िया**=जुआरी; **शूकर**=सूअर; **भूंकि**=भौंकना; **धरहरिया**=बीच-बचाव करनेवाला।

ऐ माया के ग़ुलाम निर्लज्ज मनुष्य! तुम्हारा दिल काला है। बिना लाभ के माया की ग़ुलामी करते-करते तुम्हारा जन्म बीत गया। तुमने जो अपने क़ीमती धन के बड़े-बड़े बर्तन भरकर गहरे दबाकर रखे थे, मरते समय उन सब को यहीं छोड़कर तुम्हें ख़ाली हाथ ही जाना पड़ेगा, जैसे बाज़ी हारने के बाद जुआरी हाथ झाड़कर चल देता है। भक्ति न करने के कारण चार खुरों और दो सींगों वाले पशु के रूप में जन्म लेना पड़ेगा। कुत्ता और सूअर बनकर भौंकते-भौंकते मर जाएगा। परमात्मा को भुलाए हुए जीवन की चारों अवस्थाएँ बीत गई हैं, अब तुझे बचानेवाला भला कौन है?

2

काया में परमात्मा का निवास

दिल दर्पण में प्रकट परमात्मा

परमात्मा हमारे शरीर के अंदर निवास करता है। वह घट-घटवासी है। पर हमारे हृदयरूपी दर्पण पर बहुत अधिक मैल जमी हुई है। इसलिए हम अपने अंदर परमात्मा को नहीं देख पाते। जब हम सतगुरु की बताई हुई युक्ति से अपने हृदयरूपी दर्पण को साफ़ करते हैं, तब हमें अपने अंतर में परमात्मा स्पष्ट दिखाई देता है।

जिस प्रकार अंधे को चमकता हुआ सूरज दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार अज्ञानी को अपने अंदर प्रकाश-पुंज परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। मृग की अपनी ही नाभि में कस्तूरी होती है, पर अज्ञानवश वह उसे बाहर घास में ढूँढ़ता फिरता है। दूध के अंदर ही घी रहता है, पर जब तक हम उचित युक्ति का सहारा नहीं लेते, तब तक उसे नहीं निकाल सकते। इसी तरह जब तक हम सतगुरु की बताई हुई युक्ति का सहारा नहीं लेते, अपने अंदर विराजमान परमात्मा के दर्शन नहीं कर सकते। जिस प्रकार समुद्र के अंदर डुबकी लगानेवाला समुद्र की गहराई में जाकर रत्न को निकाल लेता है, ठीक उसी प्रकार शब्द यानी नाम का अभ्यास करनेवाला अपने अंतर में जाकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। संत या सतगुरु हमें अपने आंतरिक दर्पण को साफ़ करने के लिए शब्द यानी नाम का साधन बताते हैं। यह साधन मानो आंतरिक आँख को साफ़ करने का अंजन है। जब हम इसके द्वारा अपनी आंतरिक आँख को साफ़ कर लेते हैं तब हम ख़ुद अपने अंदर परमात्मा का दर्शन कर लेते हैं।

दरिया तन से ना जुदा, सभ किछु तन के माहिं।
जोग जुग्ति करि पाइए, बिना जुग्ति किछु नाहिं॥

जो कोइ जुग्ति जोग में आवै। दीदमदीद देखि सो पावै॥...
धन कारीगर सिरजि संवारी। मानुख तन सभ ऊपर सारी॥...
तुमहिं सुभग मंकुर हए भाई। तोहि में साहब सुरति देखाई॥[1]

दीदमदीद=आँखों से आँखें मिलाकर दर्शन करना; **सिरजि**=बनाना; **संवारी**=सँवारना; **सुभग**=सुंदर, भाग्यवान्; **मंकुर**=दर्पण।

परमात्मा इस शरीर से अलग नहीं है। सब कुछ मनुष्य शरीर के अंदर है। परमात्मा से मिलने की युक्ति के द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है, बिना युक्ति के कुछ भी नहीं मिलता। जो कोई यह तरीक़ा अपनाता है वह आमने-सामने परमात्मा का दर्शन कर सकता है। धन्य है वह कारीगर परमेश्वर जिसने इस श्रेष्ठ सुंदर मानव-देह को बनाया और सँवारा है! ऐ मानव! तू भाग्यवान् है कि तुम्हारे शरीररूपी दर्पण में परमात्मा अपना स्वरूप दिखा रहा है।

जब होए प्रगट प्रेम दिल माहीं। तब मगु पूछहु सतगुर पाहीं॥
सोइ देखावहिं सकल ठेकाना। आपु में आपु मकान अपाना॥[2]

मगु=मार्ग, राह; **पाहीं**=पास; **ठेकाना**=ठिकाना; **अपाना**=अपना।

जब तुम्हारे हृदय में प्रभु के प्रति सच्चा प्रेम पैदा हो तो किसी सच्चे गुरु के पास जाकर उनसे परमात्मा से मिलने का मार्ग पूछो। वे ही प्रभु का ठिकाना बताते हैं कि हमारे अपने अंतर में ही परमात्मा का निवास स्थित है।

उरलोचन मगु देखिए, हाजिर हाल हजूर।
प्रगट प्रताप नाम कर, प्रेम भग्ति बिनु दूर॥

चिन्हहु न सतगुर देखि पराहू। का मद माया बिखै रस खाहू॥
एह संसार माया कलवारी। मदे मताए भरम करि डारी॥
खोजहु सतगुर प्रेम समोई। उज्जल दसा हंस गुन होई॥
मुरुचा मुकुर सिकिल करु नीके। तेजि छल कपट साफ करु हीके॥
नाम निसान देखु निजु पलके। जगमग जोति झलाझल झलके॥
उर अंदर जब होए उजियारा। बरै जोति दिल निरमल सारा॥[3]

उरलोचन=हृदय की आँख; **हाल हजूर**=सामने मौजूद; **पराहू**=पड़ेगा; **बिखै**=विषय; **कलवारी**=शराब बेचनेवाली; **मदे मताए**=शराब के नशे में मस्त; **समोई**=के साथ; **मुरुचा**=ज़ंग; **मुकुर**=दर्पण; **सिकिल**=माँजना, साफ़ करना; **निसान**=निशानी; **पलके**=बाहर की आँख बंद करके दिव्य चक्षु से अंदर की ओर देखना; **बरै**=जले।

ऐ मानव! परमात्मा से मिलने का मार्ग अपने हृदय की आँख से देखो, वह तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष मौजूद नज़र आएगा। वह नाम के प्रभाव से प्रकट होता है। प्रेम और भक्ति के बिना वह हम से दूर बना रहता है। तुम सतगुरु को पहचानो; वह तब तुम्हें अंतर में दिखाई पड़ेगा। तुम तो विषयों का सेवन करते रहते हो तथा माया के नशे में चूर हो। इस संसार में माया एक शराब बेचनेवाली की तरह है जो नशा पिलाकर सभी को भ्रम में डालती है। इसलिए प्रेम के साथ सतगुरु की ख़ोज करो, जिससे तुम्हें पवित्रता की अवस्था प्राप्त होगी और तुम हंस के समान गुणग्राही (अच्छे गुणों को ग्रहण करनेवाला) बन जाओगे। अपने हृदयरूपी दर्पण पर लगी हुई छल-कपट की मैल को निकालकर उसे अच्छी तरह माँजकर साफ़ करो। फिर नाम के अभ्यास द्वारा आंतरिक पलकों को उघारकर देखो, तुम्हें जगमगाती और चमकती हुई ज्योति दिखाई देगी जो नाम की पहचान है। इस ज्योति या प्रकाश से जब तुम्हारे हृदय में उजाला फैल जाएगा तो तुम्हारा हृदय अपने-आप निर्मल हो जाएगा।

मुरुचा जाहि मुकुर में लागा। प्रतिमा देखि ना परै अभागा॥
जैसे भानु तेज परकासा। नैन हीन नहिं देखै तमासा॥

है मगु साफ बराबरे, मांड़ां लोचन माहिं।
कवन दोस मगु भानु कह, अपने सूझत नाहिं॥

नाहिं सुरुज अंधरन्हिं देखलावै। नहिं मगु अंधरन्हि चलन चलावै॥...
ब्रम्ह साफ जैसे धुर्ब तारा। पार परद में छटा पसारा॥
संत सिकिलिगर खोजो आई। मुरुचा सिकिलि करो तुम भाई॥
दिल ऐना होए साफ तुम्हारा। दिन दिन अधिक जोति उजियारा॥[4]

प्रतिमा=परछाईं, दर्पण में दिखनेवाला स्वरूप; **भानु**=सूर्य; **तमासा**=दृश्य; **मांड़ां**=आँखों का एक रोग जिसमें पुतली पर झिल्ली छा जाती है; **लोचन**=आँख; **सूझत**=दिखाई देना; **धुर्ब तारा**=ध्रुव तारा; **परद**=परदा; **सिकिलिगर**=माँजकर साफ़ करनेवाला।

जिस प्रकार अंधे को चमकते हुए सूर्य के प्रकाश में भी कुछ दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार जिसके हृदयरूपी दर्पण में माया की मैल लगी हुई है, उसे भी अपने अंदर परमात्मा का स्वरूप नज़र नहीं आता। यदि आँखों में माँड़ा (झिल्ली) पड़ा हो तो साफ़ रास्ता और चमकता सूरज होने के बावजूद कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसमें भला रास्ते या सूरज का क्या क़सूर है? सूरज अंधे को देखने की ताक़त तो नहीं दे सकता और न ही रास्ता उसे चलने की ताक़त दे सकता है। ध्रुव तारे के समान साफ़, परमात्मा की छवि आंतरिक परदे के पार फैली हुई है। उसके दर्शन करने के लिए मैल को साफ़ करके चमकानेवाले संत की खोज करो और सारी मैल को साफ़ करो। जब तुम्हारा हृदयरूपी दर्पण साफ़ हो जाएगा तो अंतर में प्रकाशमय परमात्मा का उजाला दिनों-दिन अधिक स्पष्ट होता जाएगा।

रगरत रगरत रगर करु, मल के कीजै दूर।
मल गये निर्मल हुआ, ग्यान बसा भरपूर॥[5]

मल=मैल।

रगड़-रगड़कर मन की मैल निकालने से मन निर्मल हो जाता है। इसलिए रोज़-रोज़ अभ्यास करके मन की मैल को दूर करो। तब परमात्मा का भरपूर ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।

दरिया दिल दरपन करो, परसत ऐन अनूप।
ऐन ऐना में दीसे, देखि बिमल एक रूप॥[6]

ऐन अनूप=अपना अनुपम घर; **ऐना**=दर्पण।

वह निर्मल एकरूप परमात्मा हमें अपने दिल के दर्पण में दिखाई देता है, अतः यदि हम अपने दिल को दर्पण बना लें तो हम अपने अनुपम घर यानी परमात्मा के धाम को देख लेंगे अर्थात् प्राप्त कर लेंगे।

दास सोई दरसन करे, परसत सतगुरु प्रेम।
जैसे अलि पंकज पर, तेजि सकल भ्रम नेम॥[7]

अलि=भौंरा; **पंकज**=कमल; **नेम**=नियम।

सारे भ्रमों और नियमों को तोड़कर, कमल के फूल में रमे हुए भौंरे की तरह सतगुरु के प्रेम में लीन सच्चा सेवक परमात्मा का दर्शन प्राप्त कर लेता है।

यार मेरा महबूब है, आशिक दिल के पास।
या दिल वा दिल देखिए, महल बना एक रास॥[8]

महबूब=प्रियतम; **आशिक**=प्रेमी; **एक रास**=एक जैसा।

वह परमात्मा मेरा प्रियतम है जो हमेशा प्रेमी के दिल में रहता है। जहाँ कहीं भी देखिए, हर दिल में उसका सदा एक समान रहनेवाला महल बना हुआ है।

कहि-कहि मम कह दिया, देखना निकट है दूर।
जाकी महल बनाइया, सो तो हाल हजूर॥[9]

मम=मैंने; **तो**=तुम्हारे।

हमने बार-बार यह बात कह दी है कि जिस परमात्मा को हम दूर समझते हैं वह निकट ही दिखाई देता है। जिसने यह शरीररूपी महल बनाया है, वह परमात्मा तुम्हारे पास इसी महल के अंदर है।

दिल दरिया दरसन देखिए, अंजन करु गुर ग्यान।
अगम निगम गति कंठ है, बिमल चरन चित ध्यान॥[10]

निगम=वेद।

दरिया साहिब कहते हैं कि गुरु के दिए हुए ज्ञान का अंजन करने से अपने हृदय में ही परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं। चित्त में गुरु के निर्मल चरणों का ध्यान करने से अपने आप वेदों-शास्त्रों का ज्ञान कंठस्थ हो जाता है।

सरबंगी सदा प्रगट है भाई। लखि न जाए मन मइलि समाई॥
हममें तुममें देखु बिचारी। ज्यों दरपन में प्रतिमा डारी॥
प्रगट भया तहं परिमल रंगा। कुबुधि काल मन अपनहिं भंगा॥...
सुरति खोजै तब निरति समाई। पूरन ब्रह्म ग्यान होय जाई॥[11]

सरबंगी=सबके शरीर में व्याप्त; **मइलि**=मैल; **परिमल**=सुगंधित, साफ़; **भंगा**=नष्ट होना; **सुरति**=आत्मा की शब्द-धुन को सुनने की शक्ति; **निरति**=आत्मा की आंतरिक प्रकाश को देखने की शक्ति।

सबके शरीर में व्याप्त रहनेवाला परमात्मा हमारे अंतर में सदा प्रकट है, परंतु हमारे मन में दुनिया की मैल समाई हुई है, इसलिए वह दिखाई नहीं देता। विचारपूर्वक आंतरिक अभ्यास द्वारा देखने पर वह हम सब के अंदर उसी प्रकार दीख पड़ता है जैसे दर्पण में हमारा प्रतिबिंब दिखता है। जब मन प्रभु-प्रेम की सुगंधि में लीन हो जाता है तो कुबुद्धि पैदा करनेवाला काल और मन अपने आप दूर हो जाते हैं। जब आत्मा की सुरत नामक शक्ति अंतर में खोज करती है तब निरत भी अंदर समा जाती है। फिर जीव को पूर्ण ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

काया अंदर ब्रह्म निजु बासा। ताहि चिन्हहु प्रेम परगासा॥
कहौं बानी सुनहु सुजाना। बिना भेद हंस नहिं जाना॥...
देखहु ग्यान एह काया बिलोई। अपने आपु में जाए समोई॥[12]

परगासा=प्रकाश; **सुजाना**=समझदार; **बिलोई**=मथकर।

दरिया साहिब कहते हैं कि ऐ समझदार मनुष्य, सुनो! मैं तुम्हें सच्ची वाणी का भेद सुनाता हूँ। इस भेद को जाने बिना हंस (आत्मा) परमात्मा के पास नहीं जा सकता। इस शरीर के अंदर ख़ुद परमात्मा का वास है जिसे प्रेम के प्रकाश में पहचाना जा सकता है। आंतरिक साधना के अभ्यास द्वारा अपने-आप में समाकर परमात्मा के इस ज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव करो।

जैसे म्रिगमद है म्रिगपासा। आपुन ढूंढ़ै ढूंढ़त घासा॥
आगे पीछे दौरि सो जाई। कंह से घ्रानि बासना आई॥

है खुसबोई पास में, जानि परै नहिं सोई।
भरम लगै भटकत फिरै, तिरथ बरत सभ कोई॥

जौ तुम्ह निज आपन घर चहहू। आपु में आपु देखि मिलि रहहू॥[13]

म्रिगमद=कस्तूरी; **घ्रानि बासना**=ख़ुशबूदार गंध; **खुसबोई**=सुगंध।

हिरण की नाभि में कस्तूरी होती है, परंतु वह उसे बाहर घास में ढूँढ़ता फिरता है। वह यह सोचकर इधर-उधर दौड़ता है कि न जाने कस्तूरी की सुगंध कहाँ से आ रही है। इसी प्रकार परमात्मारूपी ख़ुशबू भी हमारे शरीर में ही है, परंतु लोग उसे तीर्थों, व्रतों के द्वारा पाने के लिए भटकते फिर रहे हैं। इसलिए यदि तुम अपना निज-घर प्राप्त करना चाहते हो तो वह अपने अंतर में खोज करने से ही प्राप्त हो सकता है।

प्रथमे छीर सभे केहू जाना। छीर में बास जो रहा समाना॥
अवटे छीर अनल पर जाई। जोरन दे तब दही जमाई॥
मथनी मथी लैन जौ लीन्हा। लैन लीन्हा बास नहि दीन्हा॥
जब तावे तब निर्मल अंगा। भौ प्रगट परिमल के संगा॥
इमि करि ज्ञान बिलोवे ज्ञाता। सो पंडित भव कबहिं न राता॥[14]

छीर=दूध; **बास**=सुगंध; **अवटे**=उबालना; **अनल**=आग; **जोरन**=जावन; **लैन**=मक्खन; **तावे**=तपाना; **परिमल**=सुगंधि; **बिलोवे**=मथना; **भव**=संसार; **राता**=आसक्त होना, लिप्त होना।

दूध के बारे में तो सभी जानते हैं। पर दूध में घी की जो सुगंधि होती है उस को प्राप्त करने के लिए पहले दूध को आग पर चढ़ाकर उबाला जाता है। फिर उसमें जावन डालकर दही जमा लिया जाता है। दही को मथानी से मथकर मक्खन प्राप्त किया जाता है। मक्खन में भी घी की सुगंधि नहीं होती, परंतु जब मक्खन को गर्म किया जाता है तब वह निर्मल हो जाता है और तभी सुगंधि सहित घी प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो ज्ञानी अपने शरीर को मथकर परमात्मारूपी घी को अपने अंतर में प्रकट कर लेता है, वह सच्चा पंडित बन जाता है और फिर संसार में कभी लिप्त नहीं होता।

सुरति निरति नेता हुआ, मटुकी हुआ शरीर।
दया दधि विचारिये, निकलत घृत तब थीर॥[15]

नेता=नेती, मथानी की रस्सी (के दोनों छोर); **मटुकी**=मटकी; **दधि**=दही; **थीर**=स्थिर, अटल।

शरीर दही बिलोने की मटकी है। आत्मा की शब्द-धुन को सुनने और आत्मिक प्रकाश को देखने की ताक़तें, मथानी में लगनेवाली रस्सी (नेती) के दो छोर हैं। सतगुरु की दया दही है। परमात्मा घी के समान है। जब शरीर में सतगुरु की दया-मेहर से आत्मा की शक्तियों को केंद्रित किया जाता है तो वह सदा निश्चल रहनेवाला परमात्मा प्रकट हो जाता है

तन सरवर मन देखु बिचारी। तहवां खोज आतम बनवारी॥[16]

सरवर=सरोवर; **बनवारी**=परमात्मा।

ऐ मन! आत्मा के प्रियतम परमात्मा को शरीररूपी सरोवर में खोज करके देखो।

दरिया दिल दरियाव है, संतो करो बखान।
जब सदगुर पद पाइए, मरदो जम के मान॥[17]

मरदो=रौंदना, नष्ट करना; **जम**=यम।

संतों ने बताया है कि हमारा अपना हृदय सागर की तरह है जिसमें परमात्मारूपी मोती को ढूँढ़ा जा सकता है। जब सतगुरु की शरण प्राप्त होती है तभी परमात्मा की प्राप्ति करके काल यानी मौत की अकड़ को रौंदा जा सकता है।

दरिया में लाल जवाहिर अहई। मरजिउआ एह बुड़ि के गहई॥
लेइ निकालि बाहर फेरि देखा। धंन धंन सभन्हि मिलि पेखा॥[18]

मरजिउआ=जीते-जी मरना जाननेवाला; **बुड़ि**=डूबना।

हृदयरूपी सागर में परमात्मारूपी क़ीमती रत्न है। धन्य है वह जो जीते-जी मरना जानता है। वह अपने ही अंतर में डुबकी लगाकर इसे प्राप्त कर लेता है और तब इसे बाहर भी परमात्मा प्रत्यक्ष दिखता है। सभी लोग ऐसा देखकर उसे धन्य-धन्य कहते हैं।

दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअंत।
सभ में तैं तोहि में सभै, जानु मरम कोइ संत॥[19]

बेअंत=अनंत; **मरम**=राज़।

हृदयरूपी सागर में वह अगम, अपार और अनंत परमात्मा विद्यमान है। वह सब प्राणियों में विद्यमान है तथा सभी जीव उसी एक परमात्मा में समाए हुए हैं – यह भेद कोई संत ही जानता है।

निकट लाल नयन मंह दीसत, बिकट दूरि हिये मंह बासा।
चंचल मृग माया मद माते सो, आप न चिन्हत ढूंढ़त घासा॥
चित्त चकोर जो चन्द में दिन्हेव, मंद भयो सब औरि तमासा।
'दरिया' जो कहे सब दास भलै, फल चाखत है सब अमृत खासा॥[20]

लाल=प्रियतम; **मंद भयो**=फीके पड़ गए; **खासा**=विशेष, स्वादिष्ट।

वह प्रियतम परमात्मा हमारे निकट ही है; उसे अपनी आँखों में देखा जा सकता है। लोग समझते हैं कि उसे पाना कठिन है और वह कहीं दूर बसता है, लेकिन उसका निवास हमारे हृदय में ही है। माया के नशे में मस्त जीव अपने अंतर में परमात्मा की खोज नहीं करता, वह उस हिरण की तरह है जो कस्तूरी को अपने अंदर न पहचानकर बाहर घास में ढूँढ़ता फिरता है। जब मनुष्यरूपी चकोर का चित्त परमात्मारूपी चंद्रमा में लग जाता है तो उसके लिए संसार के सभी नज़ारे फीके पड़ जाते हैं। ऐसे परमात्मा के प्रेमी सेवक सभी भाग्यवान् हैं; क्योंकि अमृत का विशेष स्वाद वे ही चखते हैं।

मक्क मदीन एह दिल के बीच तहकीक करो मिलि जावदा है।
गैब का चान्द चिराक हुआ आसिक मासूक मिलि आवदा है।
गुलजार गंभीर बागीच कियो महबूब मिआं दिल भावदा है।
कहें दरिया दरगाह दाखिल फकर हुआ दर सेवदा है॥[21]

मक्क मदीन=मुसलमानों के पवित्र-स्थान मक्का और मदीना; **तहकीक**=असलियत की खोज करना; **गैब**=(अज्ञात, अजनबी) गुप्त; **चिराक**=रौशन; **आसिक मासूक**=प्रेमी-प्रेमिका; **गुलजार**=हरा-भरा, ख़ुशहाल होना; **बागीच**=बग़ीचा, उपवन; **भावदा है**=भाता है; **फकर**=फ़क़ीर; **सेवदा है**=सेवा करता है।

असली पवित्र मक्का और मदीना तो हमारे हृदय में ही स्थित हैं। यदि सच्चे हृदय से खोज की जाए तो परमात्मा अपने अंतर में ही मिल जाता है। जब अंतर में स्थित गुप्त चंद्रमा रौशन हो जाता है तो उस प्रकाश में आत्मा और परमात्मारूपी प्रेमी-प्रेमिका का मिलाप हो जाता है। तब हृदयरूपी उपवन हरा-भरा हो जाता है और प्रियतम पति परमात्मा, प्यारा लगने लगता है। फिर वह फ़क़ीर परमात्मा की दरगाह में प्रवेश करके उसके द्वार पर सेवा करता है।

अब तुम दिल का मुरुचा धोवो।
एह तो प्रान बहर भै खेले फिरि पाछे जनि रोवो॥
तेजि गांठि कपट का वोटा अवघट पैठि नहाई।
तिर्बेनी जाहां निरमल जल है मंजन मइलि सफाई॥
मन मजीठ रंग सभ छूटे सत का साबुन लइहो।
करो काग भया जब सेता तब हंसा गति पइहो॥
माहा चित्र में चित्त चुभावा अब चित मेलि ना होई।
झिनि झिनि जंतर तहवां बाजे सब्द अनाहद होई॥
ऐना सिकिल करो निसुबासरु निर्मल जोति लगैहो।

अगम निगम सभ समुझि परेगा बहुरि ना भौजल ऐहो॥
सतगुर पदुम पदारथ पद है वाही पद अनुरागी।
कहें दरिया दर देखि परेगा प्रेम जुक्ति निजु पागी॥[22]

मुरुचा=ज़ंग; **तो प्रान**=तुम्हारी ज़िंदगी; **बहर**=बाहर (संसार में); **भै**=होकर; **खेले**=खेल रहा है; **जनि**=मत, न; **वोटा**=गठरी; **अवघट**=दुर्गम या विकट स्थान; **तिर्बेनी**=त्रिवेणी, संतों के अनुसार अंतर में स्थित तीसरे रूहानी मंडल – दसम द्वार या अक्षर ब्रह्म में स्थित नाम के अमृत के सरोवर को त्रिवेणी, मानसरोवर या अमृतसर कहा जाता है। इसमें स्नान करने से आत्मा की सारी मैल दूर हो जाती है और वह अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप को प्राप्त कर लेती है; **मंजन**=स्नान; **मजीठ रंग**=आसानी से न छूटनेवाला पक्का रंग; **करो**=काला; **सेता**=सफ़ेद; **माहा चित्र**=मनोहर रूप; **झिनि झिनि**=झनझनाते हुए; **जंतर**=वीणा; **निसुबासरु**=रात-दिन; **दर**=दरवाज़ा; **पागी**=तन्मय होना, डूबना।

ऐ मनुष्य! अब तू अपने दिल की मैल धो डाल। तेरी जीवात्मा तो बाहर ही संसार का खेल खेलने में लगी है। तू बाद में मत रोना। अब भी कपट की गठरी की गाँठ खोलकर अपने अंतर में स्थित उस दुर्गम स्थान त्रिवेणी में जाकर स्नान करो। वहाँ के निर्मल जल में स्नान करके सारी मैल साफ़ हो जाती है। मन पर चढ़े हुए दुनिया के पक्के रंग सत यानी नाम के साबुन से छूट जाते हैं। कर्मों के कारण काला कौवा बना जीव तब उज्ज्वल होकर सफ़ेद हंस की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। परमात्मा के अति मनोहर स्वरूप को देखकर जीव मोहित हो जाता है तथा इसके बाद उसका चित्त दुनिया की गंदगी से मैला नहीं होता। वहाँ पर झनझनाती वीणा के बजने के समान अनहद शब्द हो रहा है। तू रात-दिन अपने दिल के आईने को इस तरीक़े से मांजकर चमका जिससे तू अपने अंतर में निर्मल प्रकाश को देख सके। फिर तुझे सारे वेदों-शास्त्रों का रहस्य समझ में आ जाएगा और संसार-सागर में कभी नहीं आना पड़ेगा। सबसे उत्तम पदार्थ सतगुरु

के चरण-कमल ही हैं, तू उन्हीं से प्रेम कर। प्रेम की इस युक्ति में अपने आप को डुबोने पर अपने निज-घर का द्वार दिखाई पड़ेगा अर्थात् परमात्मा का धाम प्राप्त होगा।

एह सभ कहत आपे आप।
अमर की नहिं मरम जानहिं त्रिबिधि तीनो ताप॥
अंन खावहिं पिवहिं पानी मसक ऐसी देह।
हफ्त में चलि जाएगा फिरि मरे या तन खेह॥
सात सागर नवो नारी निर्मल जल है पास।
ईहईं भरि पियो भाजन काहां जाते प्यास॥
घट में साहब मंदिल छायो बनी बाती बाट।
ईहईं सब करो सौदा काहां जाते हाट॥
कवन लघु यह दीर्घ कीन्हों गुरू सिख की बात।
स्वान सूकठ सब में साहिब काहें सीतल तात॥
लाल तेजि एह काल सुमिरहिं फंद दीन्हौ डारि।
कहें दरिया ज्ञान बिना जात भौ जल हारि॥[23]

तीनो ताप=जीव के तीन प्रकार के कष्ट; **मसक**=चमड़े का वह थैला जिसमें भिश्ती एक स्थान से दूसरे स्थान को पानी ले जाता है; **हफ्त**=सात दिन, थोड़े ही दिन; **खेह**=राख, धूल; **नवो नारी**=नौ निधियाँ-स्वर्ग के भंडारी कुबेर के नौ ख़ज़ाने: पदम, महापदम, शंख, मकर, कच्छप, मुकंद, कुंद, नील और वर्च्च; **ईहईं**=यहाँ पर ही; **भाजन**=पात्र, बरतन; **मंदिल**=मंदिर; **छायो**=बनाया; **बाती बाट**=शब्द का मार्ग; **हाट**=संसाररूपी बाज़ार; **लघु**=छोटा; **दीर्घ**=बड़ा; **सूकठ**=सूअर; **तात**=गर्म; **लाल**=प्रियतम।

जीव बिना किसी आंतरिक अनुभव के अपनी मनमानी बात कहता है। उसे अमर होने का यह भेद पता नहीं है कि सुमिरन, ध्यान और धुन सुनने के

तीन साधनों से जीव के तीनों प्रकार के कष्ट मिट जाते हैं। परंतु मनुष्य तो अन्न खाकर और पानी पीकर अपने शरीर को चमड़े की मशक के समान मोटा कर लेता है। कुछ ही दिनों में जब वह इस दुनिया से चला जाएगा तो मृत्यु के बाद शरीर राख हो जाएगा। सातों समुद्र, नौ निधियाँ और प्रभु-प्रेम का निर्मल जल तुम्हारे अंदर स्थित है। इसके बावजूद तुम अपनी प्यास बुझाने के लिए बाहर कहाँ जाते हो? इसी शरीर में भक्ति के जल से अपना हृदयरूपी पात्र भरकर पीते रहो। परमात्मा ने शरीर के अंदर ही अपना मंदिर बना रखा है। वहाँ पहुँचने का मार्ग शब्द-धुन है। परमात्मारूपी सौदा तुम इसी शरीररूपी बाज़ार में ख़रीद सकते हो। फिर तुम क्यों बाहर संसार के बाज़ार में भटकते फिरते हो? वास्तव में इस संसार में छोटा-बड़ा कौन है? कोई भी नहीं। बात केवल इतनी सी है कि एक गुरु है और दूसरा शिष्य अर्थात् परमात्मा दोनों में समान रूप से है, परंतु अंतर सिर्फ़ इतना है कि गुरु में वह प्रकट है, जबकि शिष्य में गुप्त है। वह परमात्मा तो कुत्ते, सूअर आदि सभी प्राणियों में है, इसलिए कौन अच्छा है और कौन बुरा? फिर भी यह जीव काल की नकारात्मक और भटकानेवाली शक्तियों के सुमिरन में ही लगा रहता है जिसका परिणाम यह होता है कि काल उसके गले में अपना फंदा डाल देता है तथा इस प्रकार शब्द का ज्ञान न होने से जीव मनुष्य-जन्म की बाज़ी हारकर संसार-सागर में चला जाता है।

शब्द-धुन द्वारा आत्मा की आंतरिक चढ़ाई

सतगुरु से नाम (शब्द) का भेद प्राप्त करने के बाद ही साधक परमार्थ की सच्ची साधना में लगता है। आदि से अंत तक परमार्थ की पूरी साधना शरीर के अंदर की जाती है। बहिर्मुखी साधना में लगे साधक न तो अपने अंदर प्रवेश करते हैं और न ही उन्हें किसी आंतरिक राज़ का पता चलता है। सतगुरु ही हमें अंदर जाने का तरीक़ा बताते हैं और आंतरिक यात्रा का पूरा भेद समझाते हैं। यह प्रेम का मार्ग है जिसमें शिष्य को अपना शीश सतगुरु को अर्पण करना पड़ता है अर्थात् उसे अपने आप को पूरी तरह सतगुरु के हवाले करना पड़ता है।

सबसे पहले प्रेमी साधक भक्तिपूर्वक पूरी एकाग्रता के साथ सतगुरु के बताए पवित्र वर्णात्मक नामों का सुमिरन करता है। इसके फलस्वरूप आत्मा की अंदर देखने और सुनने की शक्तियाँ, जिन्हें क्रमशः निरत और सुरत कहते हैं, जाग्रत होती हैं। इन्हीं शक्तियों के द्वारा आत्मा दोनों भौंहों के बीच में स्थित सूई की नोक के समान अत्यंत सूक्ष्म द्वार के अंदर प्रवेश करती है जिसे संतों ने तीसरा तिल भी कहा है। अंदर के दिव्य प्रकाश को देखते हुए और मधुर शब्द-धुन को सुनते हुए आत्मा ऊपरी मंडलों में चढ़ती जाती है।

अंदर का मार्ग अत्यंत सूक्ष्म है और आंतरिक यात्रा अत्यंत कठिन है। पर सतगुरु की दया से प्रेमी साधक आगे बढ़ता जाता है। अपने ध्यान को बाहर से समेटकर जब वह अंदर प्रवेश करता है तो उसे तारे, सूर्य और चाँद दिखाई पड़ते हैं। धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ वह सहस्रदल कमल नामक केंद्र में पहुँचता है, जहाँ हीरे-मोतियों के दिव्य प्रकाश की जगमगाहट है और जहाँ मधुर अनहद धुन सदा गूँजती रहती है। इस अनुभव को प्राप्त कर साधक अत्यंत पुलकित होता है। फिर एक टेढ़ी सुरंग से होता हुआ जिसे बंकनाल या बंक कमल कहते हैं, वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगम पर पहुँचता है, जिसे त्रिवेणी कहा जाता है। यहाँ वह जी भरकर अमृत पीता है। यहाँ से आगे जाकर वह दसवें द्वार में प्रवेश करता है और सतगुरु की सहायता से शून्य को पार करके भँवरगुफा में प्रवेश करता है। यहाँ उसे दिव्य मुरली की टेर सुनाई पड़ती है। काम को पूरी तरह वश में किए बिना कोई भी इस टेर को नहीं सुन संकता। यहाँ जीव को परमात्मा से अपनी अभिन्नता का बोध होता है, सोऽहं (मैं वही हूँ) की वास्तविक अनुभूति होती है। अपूर्व सुगंधि के झोंकों और शब्द-धुन की सुरीली तान का आनंद लेते हुए साधक यहाँ से आगे बढ़ता है। यहाँ की आकर्षक शब्द-धुन से खिंचकर वह उस दुर्गम लोक में जा पहुँचता है, जो उसका मूल धाम और परम-पुरुष का अपना निवास-स्थान है। केवल संत ही इस अनुपम और अवर्णनीय लोक में जिसे सतलोक या छपलोक कहते हैं, परमात्मा के साथ सदा विहार करते हैं।

सत्त सब्द जो करै बिबेका। आदि अंत काया महं देखा॥
सत्त सब्द बूझो चित लाई। सो हंसा निरमल होए जाई॥
अमर लोक महं पहुँचहिं दासा। देखहिं अबिगति अजब तमासा॥
सतगुर सब्दहिं मानु सुभागा। निरमल होए मल कबहिं न लागा॥[24]

सत्त सब्द=सार शब्द, दिव्य-धुनि; **काया**=शरीर; **दासा**=सेवक; **अबिगति**=अविनाशी; **सुभागा**=सौभाग्यशाली।

जो सार शब्द की साधना करता है वह आदि से अंत तक सब कुछ शरीर के ही अंदर देखता है। जो जीव सच्चे शब्द का भेद समझ लेता है, वह संसार की मैल से मुक्त होकर निर्मल हो जाता है। वह सेवक जन्म-मरण से रहित अनश्वर सतलोक में पहुँचकर, अविनाशी परमात्मा का अद्‌भुत नज़ारा देखता है। शब्द का यह भेद सतगुरु से किसी सौभाग्यशाली जीव को ही मिलता है। शब्द-साधना से वह निर्मल हो जाता है तथा उसे फिर संसार की मैल कभी नहीं छू सकती।

बानी एक घट घट में समानी। एहि बानी को मरम न जानी॥
जंगम जोगी है बहुतेरा। जो न करै घट भीतर डेरा॥
ग्यान गमी नहिं करै बिचारा। निरगुन सरगुन नहिं निरुआरा॥
जो जग जीवहिं बरख पचासा। जो नहिं मन सतगुर के पासा॥
कल्पकोटि भवचक्र में परई। कस्ट कलपना बड़ दुख सहई॥
नहिं पावै छपलोक के बासा। फिरि फिरि करहिं जंम की आसा॥...
जब होखै सतगुर के दासा। तब सभ छुटिहैं जम के त्रासा॥[25]

बानी=शब्द-धुन; **जंगम**=भ्रमण करनेवाले योगी, शैव संप्रदाय के गुरु; **निरुआरा**=अलग-अलग रूप में समझना; **बरख**=वर्ष; **कल्पकोटि**=करोड़ कल्प (ब्रह्मा का एक दिन कल्प है, जो एक हज़ार चतुर्युगी अर्थात् 43200 लाख वर्षों के बराबर होता है); **भवचक्र**=आवागमन का चक्र; **कलपना**=दुःख; **छपलोक**=सतलोक; **जंम**=यमदूत; **त्रासा**=डर।

शब्द-धुन सब के शरीर में समाई हुई है। लेकिन इस शब्द का भेद कोई नहीं जानता। संसार में ऐसे बहुत-से योगी और विभिन्न संप्रदायों के गुरु हैं जो कभी भी अपने अंदर जाकर ध्यान को इस शब्द में नहीं ठहराते। वे न तो संसार-सागर से पार जाने के ज्ञान का विचार करते हैं और न ही इस भेद को समझने की कोशिश करते हैं कि जो परमात्मा जन्म-मरण की सीमा से परे है उसने क्यों संसार में आकर सतगुरु के रूप में जन्म लिया है। यदि मनुष्य संसार में अनेकों साल भी जीए, परंतु सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार शब्द की साधना पर ध्यान न दे तो फिर वह करोड़ों कल्पों तक आवागमन के चक्र में पड़कर कष्ट और दुःख सहेगा। वह कभी भी सतलोक नहीं पहुँच पाएगा तथा बार-बार यमदूतों के वश पड़ेगा। जब कभी वह सतगुरु का सेवक बनेगा अर्थात् शब्द-धुन को सुनेगा, तभी जाकर कहीं उसे यमराज के डर से छुटकारा मिलेगा।

मन थिर होए तो भगति द्रिढ़ावै। सार सब्द का परचै पावै॥...
अग्र नख हंसा बैठावै। अपने निरति तब सुरति समावै॥...
निअछर निरखि प्रेम पद पावै। छुटि जाए तिमिर गगन झरिलावै॥
प्रेम पंथ महं पैठे सोई। तामें संसै जात बिगोई॥
सीस उतारि दछिना जो देवै। को हमको तुम्ह का कहि लेवै॥
अक्खर भेद कहै सभ जाई। अच्छर माँह निहच्छर पाई॥
कहे दरिया सो संत सुजाना। एह भेद बिरला केहु माना॥

गगन गुफा महं बैठिके, देखो सब्द अमान।
छूटि जाए जग संसै, जम के मरदो मान॥[26]

थिर=स्थिर, एकाग्र; **अग्र नख**=पूर्ण एकाग्र, नाक के ऊपर का भाग यानी तीसरा तिल; **हंसा**=आत्मा; **निअछर**=वर्णन की सीमा में न आनेवाला परमात्मा; **तिमिर**=अँधेरा; **पैठे**=प्रविष्ट होना; **संसै**=संशय; **बिगोई**=नष्ट होना; **दछिना**=दक्षिणा, भेंट; **अमान**=असीम; **मरदो**=रौंदना।

मन के स्थिर होने से भक्ति दृढ़ होती है तथा उस शब्द से मिलाप होता है जो सार वस्तु है। उसे प्राप्त करने के लिए पहले ध्यान को पूरी तरह से एकाग्र करके स्थिरतापूर्वक आत्मा को ठहराना चाहिए। ऐसा करने से आत्मा की अंतर में देखने की शक्ति निरत तथा सुनने की शक्ति सुरत, अपने आप अंदर चली जाती हैं। अंदर जाने से धुनात्मक नाम का अनुभव प्राप्त होता है जिससे प्रेम उमड़ पड़ता है। अंधकार दूर हो जाता है तथा आंतरिक आकाश से अमृत की वर्षा होने लगती है। तब जीव के सभी संशय दूर हो जाते हैं और वह प्रभु-प्रेम के मार्ग पर चलने लगता है। इस प्रकार जो अपने अहंकार को पूरी तरह से मिटाकर अपने आप को सतगुरु के हवाले कर देता है, उसे फिर किसी के कहने की कोई परवाह नहीं रहती। संसार में सभी लोग अक्षरात्मक नाम का ही भेद कहते हैं, पर इस मार्ग में अक्षरात्मक नाम से नि:अक्षर नाम यानी धुनात्मक नाम की प्राप्ति होती है। जो इस नि:अक्षर नाम को जानता है, वही जानकार संत कहलाता है। नाम के इस भेद को कोई विरला ही जानता है। अपने अंतर के आकाश में स्थित सूक्ष्म मार्ग में ध्यान लगाकर देखने से, इस असीम शब्द को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करने से संसार के सभी भ्रम दूर हो जाते हैं तथा जीव काल के गर्व को रौंदकर उस पर विजय प्राप्त कर लेता है।

अनुभव अनहद करै बिचारा। सूझि परै तब उतरै पारा॥
सूझै तीनि लोक ते न्यारा। पुर्ख पुरान निजु प्रेम अधारा।
अभै लोक जहां भय के नासा। जुग जुग अंमर करै बिलासा॥
सुरति बांधि चेतनि जब ठानै। पहुंचे सो जो मन के जानै॥
मूल सब्द तहां लै पहुंचावै। जो कोइ सतगुर होए लखावै॥[27]

तीनि लोक=स्थूल संसार यानी पिंड, शिवनेत्र से लेकर ब्रह्मलोक के निचले भाग तक की रचना यानी अंड तथा ब्रह्मलोक से लेकर भँवरगुफा तक की रचना यानी ब्रह्मांड; **न्यारा**=भिन्न; **अभै**=अभय, जहाँ कोई डर न हो; **मूल सब्द**=मूल-स्थान यानी सतलोक से उठनेवाला शब्द।

अनहद शब्द का अनुभव होने पर जीव संसार-सागर से पार उतर जाता है। इसके द्वारा उस सत्पुरुष का प्रत्यक्ष अनुभव होता है जो सदा से विद्यमान है, जो हमारी आत्मा के प्रेम का आधार है तथा तीनों लोकों से भिन्न है। जीव उस अभय-लोक में पहुँच जाता है जहाँ काल का भय नहीं रहता और फिर वह अनंत युगों तक अमरत्व का जीवन जीते हुए आनंद प्राप्त करता है। वहाँ केवल वही पहुँच सकता है जो अपनी सुरत को एकाग्र करके, चेतना को जाग्रत कर लेता है तथा अपने मन को पहचान लेता है। केवल पूरा सतगुरु ही इस मार्ग का भेद बता सकता है तथा जीव को परमात्मा के उस धाम तक पहुँचा सकता है जहाँ से वह शब्द-धुन उठ रही है।

सुइ अग्र तहां द्वार संबारी। झलके मनि तहां जोति उजियारी॥[28]

सुइ अग्र=सूई की नोक; **मनि**=मणि।

सूई की नोक के समान सूक्ष्म द्वार यानी तीसरे तिल में ज्योति का उजाला ऐसा है जैसे अनेक मणियाँ जगमगा रही हों।

दरिया दर देखे जो कोई। सोई भक्त साधु जन होई॥...
झीनि घाट यह बाट हमारी। दिव्य दृष्टि करै उजियारी॥[29]

दर=द्वार; **झीनि**=सूक्ष्म; **बाट**=मार्ग।

जब कोई प्रभु-प्राप्ति के द्वार यानी दसवें द्वार को स्वयं देख लेता है तभी वह भक्त साधु कहलाता है। प्रभु-प्राप्ति का हमारा मार्ग अत्यंत सूक्ष्म घाटियों से होकर गुज़रता है जिसमें अंतर की दिव्य-दृष्टि मार्ग में उजाला करती है।

चन्द सूर दोउ झलके आई। दुइ पवनारी नीचे चलि जाई॥
सिखरा चढ़े सुखमन अहई। इंगला पिंगला नीचे बहई॥

गंधारी बृगसे गंध सुबासा। अमि कमल प्रेम परगासा॥
एह में मुंद्रा एहि में मूला। एहि में सहस्रकमल दल फूला॥
एहि में उछिले सिंधु अपारा। एहि में मोती लाल पसारा॥
एहि में उड़िगन भान है चंदा। दिब्य दृष्टि करु परम अनंदा॥[30]

सूर=सूर्य; **पवनारी**=कमल की नाल; **सुखमन...पिंगला**=आँखों के ऊपरी भाग में तीसरे तिल से शुरू होकर ऊपर के रूहानी मंडलों को जानेवाली सूक्ष्म नाड़ी या मार्ग को सुषुम्ना, इसके बाईं ओर स्थित सूक्ष्म नाड़ी को इड़ा तथा दाईं ओर स्थित नाड़ी को पिंगला कहते हैं; **गंधारी**=सुगंधित फूल; **बृगसे**=खिलना; **अमि**=अमृत; **मुंद्रा**=मुद्रा-योग की पाँच मुद्राएँ;* **मूला**=मूल स्थान; **सहस्रकमल**=संतमत के अनुसार आंतरिक जगत् में पहले रूहानी मंडल में स्थित हज़ार पंखुड़ियों वाला कमल, इसे तुरिया पद भी कहते हैं; **उड़िगन**=तारे; **भान**=सूर्य।

अंतर में प्रवेश करने पर चाँद और सूर्य दोनों चमकते हुए दिखाई देते हैं। बीच के मार्ग यानी सुषुम्ना के द्वारा ही आगे चोटी की ओर चढ़ा जा सकता है। जब कि कमल-नाल की तरह सूक्ष्म दाईं और बाईं धाराओं के मार्ग, जिन्हें क्रमशः इड़ा और पिंगला कहते हैं, नीचे की ओर ले जाते हैं। वहाँ से आगे पहुँचकर जहाँ एक हज़ार पँखुड़ियों का कमल खिला हुआ है, वह हठयोग-साधना करनेवालों का मूल स्थान है तथा वहाँ पहुँचकर सभी योग-मुद्राएँ सिद्ध हो जाती हैं। अंतर में इस पुष्प के खिल उठने से प्रेम की सुगंधि फैल जाती है। प्रेम का उजाला होने से अंतर का कमल अमृत से भर जाता है। विशाल सागर की लहरें इस स्थान से ही उठ रही हैं, जिसमें अपार मोती,

* मुद्रा-योग में पाँच मुद्राएँ कही गईं हैं – 1. चाचरी: चित्त को एकाग्र करने के लिए दृष्टि को नाक की नोक पर जमाना; 2. भूचरी: दृष्टि को भवों के बीच में जमाना; 3. खेचरी: वह अभ्यास जिसके द्वारा जीभ को बढ़ाकर नाक की नोक तक पहुँचाया जाता है; 4. अगोचरी: अनहद शब्द को सुनना; 5. उनमुनी: ध्यान को अंतर में इस तरह स्थिर करना कि शरीर की सुध न रहे।

माणिक्य आदि रत्न बिखरे पड़े हैं। यहाँ तारे, सूर्य और चंद्रमा हैं, यहाँ पहुँचकर दिव्य-दृष्टि मिल जाने से जीव परम आनंद प्राप्त करता है।

सहस दल और सहस पंखुरी, खुला गगन में ऐत।
सदा सर्वदा बुंद घन, मनि मोती तहां सेत॥
अउधी खोपरी उलटी देखु, झीन झीन जंतर होय।
सोवत जागत धुनि तहां, उनमुनि पलटी वोय॥[31]

दल=पत्ते; **घन**=बादल; **मनि मोती**=मणियाँ और मोती; **सेत**=श्वेत, उजला; **अउधी**=उलटा; **झीन झीन**=झीं-झीं जैसी झनकार करनेवाला वाद्य-यंत्र; **उनमुनि**=ध्यान का अंदर को लगना।

अंतर के आकाश में खिल रहे सहस्रदल कमल में हज़ार पँखुड़ियाँ और हज़ार ही पत्ते हैं। वहाँ सदैव बादलों से अमृत-वर्षा होती रहती है। वहाँ पर मणियाँ, मोती आदि सभी कुछ श्वेत-वर्ण का है। अपनी उलटी खोपड़ी में ध्यान लगाने पर अर्थात् ख़याल को दुनिया की तरफ़ से मोड़कर अंतर में ध्यान लगाने पर झीं-झीं की झंकार करनेवाले वाद्य-यंत्र की आवाज़ का अनुभव होता है। वहाँ सोते-जागते निरंतर शब्द-धुन हो रही है जिसको सुनने से ध्यान पलटकर अंतर में लग जाता है।

बंक कमल मधे करु प्रकासा। देखहु दृष्टि सुगंध सुबासा॥
अमि पत्र भरि प्रेमहिं पीजे॥ त्रिबेनि घाट सुघट भरि लीजे॥[32]

बंक कमल=अंतर में पहले रूहानी मंडल सहस्रदल कमल और दूसरे रूहानी मंडल त्रिकुटी को मिलानेवाला टेढ़ा और बारीक़ रास्ता-बंकनाल; **पत्र**=पात; **सुघट**=सुंदर कलश या घड़ा।

अभ्यासी बंकनाल में प्रवेश कर अपनी आत्मा की आँखों यानी निरत से प्रकाश को देखता है तथा वहाँ की सुगंधि का आनंद लेता है। फिर त्रिवेणी के घाट

पर पहुँचकर वह पत्तों के दोने में भर-भरकर बड़े प्रेम से अमृत को पीता है और इस प्रकार अपने अंदर के सुंदर घट को आनंदमय अमृत से भर लेता है

कहि कहि कवि सब बहुत बनाई। दसवें द्वार की मर्म न पाई।
दसवें द्वार मीन जहं जाई। गहिर भेद बिरला केहु पाई॥[33]

दसवें द्वार=अंतर में तीसरा रूहानी मंडल। इसे सुन्न मंडल, अक्षर ब्रह्म या आत्म-पद भी कहते हैं; **मीन**=मछली; **गहिर**=गहरा।

कवियों ने परमार्थ के मार्ग का अनेक प्रकार से वर्णन किया है, परंतु वे दसवें द्वार या पारब्रह्म का रहस्य नहीं जान सके। जिस प्रकार मछली उल्टी धारा में आनंदपूर्वक जाती है, उसी प्रकार दसवें द्वार में अभ्यासी की आत्मा मीन-गति से ऊपर को चढ़ती है। कोई विरला ही इस गहरे रहस्य को जान पाता है।

भंवर गोंफा तहाँ घुमे निसाना। यह छवि देखहिं संत सुजाना॥

छापा सनदि मोहर यह, सत शब्द टकसार।
सतगुरु पारख परखि के, परखि लेहु ततुसार॥[34]

भंवर गोंफा=चौथा रूहानी मंडल जहाँ आत्मा को यह अनुभव होता है कि वह और परमात्मा वास्तव में एक ही हैं; **निसाना**=पताका, नगाड़ा; **छापा सनदि**=सबूत, प्रमाण; **टकसार**=सिक्का, सत् शब्द का प्रामाणिक सिक्का ढालनेवाली जगह; **ततुसार**=सार तत्त्व, असली पदार्थ।

भँवरगुफा में बाँसुरी की-सी धुन गूँजती रहती है मानो इस रूहानी मंडल की पताका फहरा रही हो। इस शोभा को संतजन ही देखते हैं। जिस प्रकार परखनेवाला असली सिक्के को परखता है, उसी प्रकार यहाँ सतगुरु के द्वारा लगाई मोहर के सबूत वाला और सच्चे शब्द का प्रामाणिक सिक्का देखकर साधक की परख की जाती है, तभी उसे सार तत्त्व की प्राप्ति होती है।

मुरली टेरि गगन में आवै। बोलनिहार सो एह बजावै॥
जौं लगि काम काबू नहिं आवै। तब लगि मुरलि ना टेरि सुनावै॥
सोहंग सुरति सून्य महं पेखै। अजपा मूल द्रिष्टि महं देखै॥
अबिगति रूप अरध महं राखै। पुहुप बास अम्रित रस चाखै॥
सुरति सोहंग मूल में जाई। दरसन देखि कमल ब्रिगसाई॥
बिनु सतगुर को भेद बतावै। गुपत नाम एह प्रगट देखावै॥
जिव के मूल नाम जो पावै। काल फांस के दूरि बोहावे॥
काल फांस जबहीं ले आवे॥ ग्यान खरग लै ताहि देखावे॥
ग्यान खरग दिढ के गहो, सतगुर चरन नेबास।
सीस पटकि जम जाइहे, छप लोक में बास॥[35]

सोहंग=चौथे रूहानी मंडल भँवरगुफा में प्राप्त हुई अवस्था-सोऽहं, जब जीव को यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि वह और परमात्मा वास्तव में एक ही हैं; **अजपा**=त्रिकुटी यानी दूसरे रूहानी मंडल में नाम के सरोवर में कर्मों की मैल को साफ़ करने के बाद आत्मा की निरंतर शब्द-धुन को सुनते रहने की अवस्था; **अरध**=अंतर; **पुहुप**=फूल; **खरग**=तलवार; **नेबास**=निवास; **जम**=यम।

भँवरगुफा के गगन में बाँसुरी की सुरीली तान उठती है। यह विरही शुद्धात्मा से निकली प्रभु-मिलन की पुकार है। काम को पूरी तरह से वश में किए बिना कोई भी इस तान को नहीं सुन सकता। इसे सुनकर आत्मा उस शून्य में सोऽहं का अनुभव प्राप्त करती है तथा वह निरंतर सुनाई पड़नेवाली शब्द-धुन के मूल स्रोत को अपनी आंतरिक आँखों से देख लेती है। वह अविनाशी परमात्मा का स्वरूप अपने अंतर में बसा लेती है तथा दिव्य पुष्पों की सुगंधि और अमृत का स्वाद चखती है। फिर सुरत उस मंडल में चली जाती है जो सोऽहं का भी मूल है। उस मंडल के धनी के दर्शन पाकर वह ख़ुशी से खिल उठती है। इस भेद को सतगुरु के बिना भला कौन खोल सकता है? केवल वही इस गुप्त नाम को प्रकट करके

दिखाते हैं। जो जीव इस मूल स्थान से उठ रहे शब्द को प्राप्त कर लेता है, वह काल के फंदे को तोड़ देता है। यदि काल उसे फाँसना भी चाहे तो वह नाम के ज्ञान की तलवार उसे दिखाता है। इसलिए तुम नाम के ज्ञान की तलवार को मज़बूती से पकड़कर सतगुरु के चरणों में लगे रहो। फिर यमदूत सिर पटककर चले जाएँगे और तुम सतलोक में निवास करोगे।

मन पवना का साधिऐ, साधो सब्दहिं सार।
मूल अकह में गमि करो, मोती घना पसार॥
दरिया अगम गंभीर है, लाल रतन की खानि।
जौं मीलै जन जौहरी, लेहि सब्द पहचानि॥[36]

मन...साधिऐ=मन और प्राणवायु को हठ-योग से रोकने के अभ्यास से भला क्या लाभ होगा; **साधो...सार**=सार शब्द का अभ्यास करो; **घना पसार**=भंडार फैला है।

मन और प्राणवायु को रोकने के अभ्यास से भला क्या लाभ होगा? सार शब्द का अभ्यास करो। इस साधना द्वारा अपने मूल स्थान-अकह में पहुँच जाओ, जहाँ रूहानी मोतियों का भंडार फैला हुआ है। शब्द तक पहुँचना कठिन है, इसका रहस्य बहुत गहरा है, परमार्थ का ख़ज़ाना इसी से निकलता है। इसलिए जिन्हें परमार्थ की पहचान है, ऐसे पारखी भक्तजन अन्य किसी साधना के बजाय शब्द को पहचानकर इसे ही अपनाते हैं।

संतो एहुं अमर घर जैयै।
तन मन वारि चढ़ो सरधा से सो फल आम्रित पइयै॥
काम क्रोध लोभ मद त्रिस्ना एह सभ मेलि अडइयै।
नारी पुर्ख स्वाद बिसरावै सतगुर सब्द समइयै॥
बंकनाल उलटि अजपा के गगन गोफा घर छइयै।
अरध उरध मध्य सोहंग सुरती दीबि द्रिस्टि गहि लइयै॥

सेत घटा घन मोती झरि है निर्मल जोति बरइयै।
पूरन ब्रह्म पुनीत उदित भौ बहुरि ना भौ जल अइयै॥
तहां सुखराज बेलास पलंग पर आम्रित माखन पइयै।
कहें दरिया दाया सतगुर की पास पुर्ख के रहियै॥[37]

एहुं=इस प्रकार; **वारि**=न्योछावर करना; **अडइयै**=रोको; **नारी...स्वाद**=काम-वासना; **छइयै**=बनाना; **दीबि द्रिस्टि**=दिव्य दृष्टि; **सेत**=श्वेत; **घन**=बादल; **बरइयै**=जलना; **बहुरि**=फिर; **बेलास**=विलास, आनंद; **आम्रित**=अमृत।

हे परमात्मा की चाह रखनेवाले जीव! तुम श्रद्धापूर्वक अपने तन-मन को सतगुरु पर न्योछावर करके अपने अंतर में चढ़ाई करो तथा परमात्मारूपी अमृत-फल को प्राप्त करो। इस प्रकार तुम जन्म-मरण से रहित होकर अपने निज-घर पहुँच जाओगे। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और तृष्णा – इन सब को एक साथ वश में करो। काम-वासना को त्यागकर सतगुरु के बताए हुए शब्द में समा जाओ। फिर बंकनाल से त्रिकुटी पहुँचो तथा उलटे कुएँ में अमृत पीकर गगन में उस भँवरगुफा में निवास करो जहाँ शब्द-धुन अपने आप निरंतर सुनाई देनी शुरू हो जाती है। भँवरगुफा में हर तरफ़ सोऽहं की ध्वनि को सुनने से परमात्मा के साथ अपनी समानता का अनुभव करानेवाली दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है। वहाँ श्वेत बादलों की घटा से मोतियों का प्रकाश झरता रहता है और परम निर्मल ज्योति जलती है। वहाँ पहुँचकर पूर्ण परमात्मा के पावन दर्शन हो जाते हैं और फिर जीव को कभी संसार-सागर में नहीं आना पड़ता। वहाँ जीव सुख से राज करता है तथा आनंद की सेज पर बैठकर अमृत का रस लेता है। इस प्रकार सतगुरु की दया से वहाँ पहुँचकर तुम सदा परमात्मा के पास निवास करोगे।

संत की चाल तुम समुझि बांकी बड़ी
सुरति कमान कसि तीर मारा।

पाँच के मेटि पचीस के दलि मलो
छव के छेदि पीउ सब्द सारा।
साधि ले मेरुडंड बैठु ब्रह्मंड खंड
पौन परचो लिए काम जारा।
काल जंजाल ते काम निकुताए ले
जोग गहि जुक्ति तुम समुझि यारा।
उलटि ले पवन तुम गौन करु गगन में
साधि ले त्रिकुटि दिबि द्रिस्टि बारा।
ताहां होत झनकार सत सब्द उजियार
ताहां छूटिगौ त्रिमिर उदित सारा।
ताहां रोग नहिं सोग निरदोख निरबान
सर्बंग सब माहं तुम देखु न्यारा।
कहें दरिया दिल पैठु दरियाव में
पाव तुम लाल अमोल प्यारा॥[38]

बांकी=कठिन, वीरतापूर्ण; **पाँच**=काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार; **पचीस**=पच्चीस प्रकृतियाँ – मनुष्य-शरीर को बनानेवाले पाँच तत्त्वों में से प्रत्येक के पाँच-पाँच व्यक्त रूप; **दलि**=मारकर; **छव**=छः चक्र; **छेदि**=छेदन करना, काटना, काटकर निकालना; **परचो**=परिचय; **निकुताए**=निवृत्त होना; **गौन**=जाना; **त्रिकुटि**=संतमत के अनुसार अंतर में दूसरा रूहानी मंडल जिसे ब्रह्म-लोक भी कहते हैं। यह तीन गुणों का स्रोत है। त्रिकुटी के तीन मुख्य भाग हैं – गगन, त्रिकुटी तथा गुरु-पद; **बारा**=प्रकाशित होना; **त्रिमिर**=अंधकार; **सारा**=समस्त; **निरदोख निरबान**=निर्वाण-पद; **सर्बंग**=सब में व्याप्त परमात्मा; **न्यारा**=अद्‌भुत; **दरियाव**=सागर; **लाल**=माणिक्य, रत्न; **अमोल**=अमूल्य।

यह समझ लो कि संतों के मार्ग पर चलना बड़ा कठिन होता है। वे सुरतरूपी धनुष को चढ़ाकर शब्द का तीर मारते हैं। वे पाँचों विकारों को

नष्ट करके, पच्चीस प्रकृतियों को मारकर और पिंड के छः चक्रों से चेतना को निकालकर सार-रूप शब्द को पकड़ते हैं। वे अपने मेरुदंड (पीठ) को सीधा करके बैठकर, शब्द की साधना करते हैं और अपने अंतर में खंडों-ब्रह्मांडों में प्रवेश करते हैं। इस साधना से वे काम-वासना को जलाकर नष्ट कर देते है। इसलिए ऐ मित्र! शब्द-योग को अपनाकर तुम मुक्ति की युक्ति समझ लो और काल के जाल से अपने आप को निवृत्त कर लो। अपने ध्यान को बाहर से उलटकर अंदर ले जाओ और गगन में चढ़ते चलो। त्रिकुटी पहुँचकर तुम्हारी दिव्य-दृष्टि खुल जाएगी। वहाँ सच्चे शब्द की झनकार हो रही है। वहाँ शब्द के प्रकाश में तुम्हारे अंतर का सारा अंधकार दूर हो जाएगा। वहाँ न कोई दुःख है, न चिंता। तुम निर्दोष निर्वाण-पद को प्राप्त करके सब प्राणियों में व्याप्त परमात्मा के दर्शन करोगे। इसलिए तुम अपने हृदयरूपी समुद्र में पैठो, तुम्हें परमात्मारूपी अमूल्य और प्यारा रत्न प्राप्त होगा।

धरु धीर गंभीर अगम में गम जेंव फूल कमल भमर भूले।
दिबि द्रिस्टि में द्रिस्टि है पीठि पीछे नहिं चन्द चकोर कि प्रीति तुले।
ईंगल पींगल अकह अपार दरस दीदम कपाट खुले।
ऐनक अएन थकित बएन गंवन गंगन उलटि मिले।
छूटी त्रीमिर ऊदित फीटिक रइनि बिहाए बासर पेले।
सब्द अडोल ना डोल डोले गैब का चान्द ना हिलमीले।
पारख फहम रहम करम जेंव देखि भवन चीराग जले।
कहें दरिया दरिआव अगम है मारि हेला कोइ संत खेले॥[39]

अगम...गम=अगम्य में चले जाना; **जेंव**=जैसे; **भमर**=भौंरा; **तुले**=समानता होना; **दरस दीदम**=आँखों से दर्शन करना; **ऐनक**=आईना, दर्पण; **अएन**=आश्रम, घर; **बएन**=वाणी; **ऐनक...बएन**=हृदय के आईने में ही वह घर है जिसकी सुंदरता अवर्णनीय है; **त्रीमिर**=अंधकार; **फीटिक**=स्फटिक, उजाला; **रइनि**=रात; **बिहाए**=बीत गई; **बासर**=दिन;

पेले=प्रविष्ट होना; **डोल डोले**=हिलाने से हिलना; **गैब**=गुप्त, रूहानी; **फहम**=ज्ञान; **रहम**=दया; **करम**=भाग्य, कर्म; **हेला**=धावा बोलना।

प्रेम-मार्ग द्वारा साधक धैर्य धारण करके अंतर की गहराई में स्थित अगम परमात्मा तक पहुँचकर इस प्रकार मुग्ध हो जाता है जैसे कमल के फूल पर भौंरा। इस प्रेम-मार्ग पर चलते समय पीठ पीछे नहीं फेरना, क्योंकि अंतर में दिव्य-दृष्टि प्राप्त होने से ही प्रेम की सच्ची दृष्टि मिलती है। अत: प्रियतम से प्रीति ऐसी होनी चाहिए जैसे चकोर चंद्रमा से करता है। इड़ा और पिंगला नाड़ियों से परे वह अपार अकह लोक है जिसके दर्शन अंतर के कपाट खुलने पर प्राप्त होते हैं। अंदर के आईने में वह घर है जिसका वर्णन करते हुए वाणी थक जाती है अर्थात् वहाँ की सुंदरता का वर्णन किया ही नहीं जा सकता। साधक को वह स्थान अपने ध्यान को बाहर से अंदर फेरकर आंतरिक आकाश में जाकर मिलता है। वहाँ पहुँचकर अंतर का अंधकार मिट जाता है और उजाला हो जाता है, मानो रात बीत गई हो और दिन हो गया हो। साधक शब्द में स्थिर होकर इस प्रकार लीन हो जाता है कि हिलाने से भी नहीं हिलता-डोलता। अंतर में ऐसा अपूर्व रूहानी चंद्रमा निकल आता है जो घटता-बढ़ता नहीं। साधक ज्यों ही अपने आंतरिक घर में जलती हुई ज्योति को देखता है, उसे ज्ञान की परख हो जाती है तथा मालिक की दया होने से उसके कर्मों की माफ़ी हो जाती है। अंतर में स्थित यह प्रेम का सागर अत्यंत अगम है, कोई संत ही अपने अंतर में धावा बोलकर इसमें क्रीड़ा करते हैं।

आंतरिक चढ़ाई की कुछ झलकें

आंतरिक चढ़ाई का रहस्य गूढ़ होने के कारण अधिकांश संतों ने इसका क्रमबद्ध वर्णन न कर, केवल इसकी कुछ झलकों की ओर संकेत ही किया है। इसका पूरा भेद वे केवल अपने शिष्यों के सामने खोलते हैं।

दरिया साहिब कहते हैं कि यह शरीर मानो एक सरोवर है जिसमें गंगा, यमुना और सरस्वती की तीन धाराएँ, (जिन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना

भी कहते हैं) मिलती हैं। यह आंतरिक सरोवर ही असली मानसरोवर है जिसमें हंस (पवित्र जीव) डुबकी लगाते और मोती चुगते हैं तथा अनेक प्रकार से आनंद मनाते हैं।

आंतरिक गगन दिव्य प्रकाश से जगमग और अनुपम हीरे-मोतियों से सुशोभित है। आंतरिक यात्रा में साधक को पहले झींगुर की झंकार जैसी आवाज़ सुनाई पड़ती है। फिर पक्षियों के चहकने और बादलों के गरजने की आवाज़ आती है। आगे की चढ़ाई में मुरली की टेर और वीणा के बजने की आवाज़ सुनाई देती है। साधक क्रमश: आगे बढ़ते हुए दिव्य प्रकाश को देखते हुए और मधुर धुन को सुनते हुए तथा अमृत की वर्षा और सुगंधि के झोंकों का आनंद लेते हुए ऊँचे मंडलों में पहुँचता है। इस तरह आगे बढ़ते हुए वह अंत में अपने निजधाम पहुँच जाता है और परमात्मा से उसका मिलाप हो जाता है तथा वह सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा लेता है।

तन सरवर मन देखु बिचारी। तामें सरिता तीनि सुधारी॥
वामें मान सरवर अहई। हंस बंस कौतुक तहं करई॥
चुंगै मोती निरमल नीका। झलकि बरै मनि मस्तक टीका॥[40]

सरवर=सरोवर; **तामें**=उसमें; **सरिता**=नदियाँ; **तीनि**=गंगा, यमुना और सरस्वती; **वामें**=उसमें; **मान सरवर**=मानसरोवर, अंतर में तीसरे रूहानी मंडल दसम द्वार में स्थित नाम के अमृत का सरोवर। यहाँ पहुँचकर आत्मा के ऊपर से सारी मैल उतर जाती है; **हंस बंस**=हंसों का वंश; **कौतुक**=क्रीड़ा करना, विहार करना; **नीका**=सुंदर; **टीका**=माथे का गहना।

यह शरीर एक सरोवर है जिसमें तीन नदियाँ – गंगा, यमुना और सरस्वती – मिलती हैं अर्थात् इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ मिलती हैं। इस शरीर में ही उनका संगम मानसरोवर है जहाँ पवित्र आत्माएँ विहार करती हैं। वे सुंदर निर्मल आत्माएँ वहाँ आंतरिक मोती चुगती हैं। उनके मस्तक पर शब्दरूपी मणि का टीका चमचमाता रहता है।

तहां गंगा जमुना नीर, तट तिर्कुटी के तीर॥
तहां सरस्वती सुभ धार, इमि पियत प्रेम उदार॥
तहां गंगन गरजु गंभीर, चहुं छटा बर्खत नीर॥
तहां परत बूंद अघात, इमि उलटि जिमि ते जात॥
तहां झींगुर की झनकार, इमि झींझीं जंत्र अपार॥
तहां सुन्न सिखरा जाय, तब तान तार बजाय॥
निसि देवस बाजत तूर, कोई संत पहुंचे सूर॥
दिव्य दृष्टि धाजा सेत, सभ भरम होत-निकेत॥...
निरालेप निर्गुन नाम, निजु बैठ अमरा धाम॥[41]

नीर=जल; **तीर**=किनारा; **बर्खत**=बरसना; **अघात**=चोट; **जिमि**=ज़मीन; **झींझीं**=झीं-झीं की आवाज़; **तार**=वीणा; **निसि**=रात; **तूर**=तुरही; **सूर**=सूरमा; **सेत**=श्वेत, पवित्र; **निकेत**=नष्ट; **निरालेप**=जिसका कोई चिह्न न हो।

अंतर में स्थित त्रिकुटी के किनारे पर पहुँचकर गंगा, यमुना और सरस्वती की पवित्र जल-धाराएँ हैं अर्थात् इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम है। साधक बड़े प्रेम के साथ उनके जल का पान करता है। वहाँ के गगन में गहरे बादलों के गर्जने की आवाज़ आती रहती है तथा चारों ओर बादलों से अमृतरूपी जल बरसता रहता है। इसकी बूँदें पड़ने से साधक का ध्यान संसार से पलटकर अंतर्मुख हो जाता है। अंतर्मुख होने पर पहले झींगुरों की झंकार सुनाई देती है। उसे पार करने पर झीं-झीं की आवाज़ वाला वाद्य-यंत्र सुनाई देता है। वहाँ से आगे सुन्न-शिखर पर जाकर सितार की तान सुनाई पड़ती है। आगे दिन-रात सितार की आवाज़ हो रही है जिसे वहाँ तक पहुँचनेवाला कोई शूरवीर संत ही सुन पाता है। दिव्य-दृष्टि से वहाँ फहरा रही पवित्र श्वेत ध्वजा को देखकर सभी भ्रम नष्ट हो जाते हैं। वहाँ केवल नाम ही नाम है जो गुणों की सीमा से परे है तथा जिसका कोई चिह्न नहीं बताया जा सकता। वहाँ पहुँचकर जीव हमेशा के लिए अपने निज-घर का निवासी बन जाता है।

भव बहर निकंदा तेजि दुख दंदा, दरसत चंदा इमि आवे॥
मगन मस्ताना गगन समाना, गरजि गरजि तहं झरि आवे॥
बुन्द अखंडा सो ब्रह्मंडा, डगमग पंथनहिं इमि आवे।
भव निरदागा तेजि मति कागा, कौतुक काल ना सो पावै॥[42]

बहर=समुद्र; **निकंदा**=नाश होना; **दंदा**=झगड़ा; **झरि**=लगातार वर्षा की झड़ी; **अखंडा**=अनश्वर; **निरदागा**=बेदाग़; **कौतुक**=खेल।

अपने अंतर में चंद्रमा को देख लेने पर जीव संसार-सागर से निकल जाता है और उसके सारे दुःख और परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। वह आनंद मग्न हो वहाँ की खुशी में मस्त होकर आगे गगन में समा जाता है। वहाँ पर बादलों के गर्जने के साथ लगातार अमृत की वर्षा हो रही है। वहाँ ब्रह्मांड में पड़नेवाली अमृत की इन अनश्वर बूँदों के मुक़ाम तक, डाँवाँडोल ध्यानवाला नहीं पहुँच सकता। वहाँ पहुँचकर जीव कौवे की गंदगी खानेवाली वृत्ति को छोड़कर निर्मल हो जाता है। अब काल उसे अपने खेल में नहीं फँसा सकता।

ज्ञान को घोड़ला सून्य में दौरिया सून्य में सुरति है सब्द सारा।
एह काया तो कर्म है भर्म लागा रहै काया के अग्र दिबि द्रिस्टि बारा।
नूर जहूर खुसबोए खासा बने बास सुबास में भौंर हारा।
मुरली मगन महबूब आपे बना झींगुर झनकार तहां बाजु तारा।
गगन गरजत रहे बुन्द अखंडिता पंडिता बेद नहिं अंक न्यारा।
हद बेहद बेअंत अथाह कोइ जन जुक्ति से जाहि पारा।
जौहरि जानिया जाहिर जाके करे हीरा मनि पास है जोति सारा।
कहें दरिया कोइ वोली मस्तान है सब्द के साधि ले संत प्यारा॥[43]

घोड़ला=घोड़ा; **अग्र**=आगे; **दिबि**=दिव्य; **नूर जहूर**=प्रकाश प्रकट होना; **खुसबोए खासा**=सुंदर दिव्य सुगंध; **तारा**=वीणा; **अखंडिता**=अनश्वर; **अंक**=लेख, निशान; **न्यारा**=अद्भुत; **हद बेहद**=हद से भी बहुत ज़्यादा;

जौहरि=पारखी; **जाहिर**=प्रकट; **वोली**=साधु, मालिक या अल्लाह का प्यारा।

साधक गुरु के बताए ज्ञान के घोड़े पर सवार होकर दौड़ते-दौड़ते शून्य में पहुँच जाता है। शून्य में पहुँचकर सुरत सार शब्द में डूब जाती है। जब तक हमारा ध्यान इस शरीर में उलझा रहता है तब तक हम कर्मों के जाल में फँसकर भ्रम के शिकार बने रहते हैं। जब ध्यान को शरीर से आगे अंतर में ले जाया जाता है तब दिव्य-दृष्टि का उजाला हो जाता है। प्रकाश प्रकट होने के साथ सुंदर दिव्य सुगंध में जीव भौंरे की तरह मुग्ध हो जाता है। अंतर में उठ रही मुरली की धुन में मग्न होकर वह स्वयं प्रियतम परमात्मा का ही रूप बन जाता है। वहाँ पर उसे झींगुर और वीणा के बजने के स्वर सुनाई पड़ते हैं। गगन में बादल गरजते रहते हैं तथा अनश्वर अमृत की बूँदें बरसती रहती हैं। वहाँ का अद्‌भुत वर्णन विद्वान वेदों में नहीं पा सकते। यह हद से भी बहुत ज़्यादा है, बेअंत तथा अथाह है। कोई विरला साधक ही गुरु की बताई हुई युक्ति से वहाँ तक जा सकता है। वास्तव में यह आंतरिक प्रकाश भी हीरे और मणियों की तरह है जिसे कोई ऐसा पारखी ही समझ सकता है जिस पर गुरु यह राज़ प्रकट करता है। दरिया साहिब कहते हैं कि शब्द की यह साधना संतों का प्यारा कोई मस्ताना साधु ही करता है।

त्रिवेनी त्रिकुटी भंवर गोंफा में द्वादस उलटि चलावंता।
छव चक्र का (भेद) प्रगट है, सुखमनि सुरति जगावंता॥
अस्टदल कंवल भंवर तेहि भीतर उनमुनि प्रेम लगावंता।
जगमग जोति झलामलि झलके गंगन मगन झरि झावंता॥
मोती मनि मुक्ताहल मगु में सेंधु लहरि तांहां आवंता।
हंसा चुगहिं चोंच मोती गहि सरवर में सुख पावंता॥
अटल धनी ताहां मनि उजिआरा निरभे पद के गावंता।
कहें दरिया सुख सागर बासा बहुरि ना भव जल आवंता॥[44]

द्वादस=दस इंद्रियाँ, मन तथा बुद्धि; **छव...भेद**=पिंड – स्थूल शरीर के छः चक्र, अंड – सूक्ष्म मंडल के छः चक्र; **सुखमनि**=सुषुम्ना; **अस्टदल कंवल**=आठ पँखुड़ियों वाला कमल, यह पारब्रह्म में है; **उनमुनि**=आंतरिक ध्यान; **सेंधु**=सागर; **धनी**=परमात्मा; **निरभे**=जहाँ कोई डर न हो।

अभ्यासी इंद्रियों, मन और बुद्धि को बाहर से उलटकर तथा अंदर को मोड़कर, अंतर में स्थित त्रिवेणी (मानसरोवर), त्रिकुटी (ब्रह्म लोक) तथा भँवरगुफा (सोऽहं) की यात्रा करता है। सुरत को जाग्रत करके सुषुम्ना के मार्ग से यात्रा करने पर उसे नीचे के छः चक्रों के रहस्य का पता चल जाता है। पारब्रह्म में स्थित अष्टदल कमल में पहुँचकर आत्मा वहाँ भौंरे की तरह लुभाई रहती है और ध्यान के अंतर्मुख होने से उसके अंदर अटूट प्रेम पैदा हो जाता है। वहाँ पर जगमगाती हुई ज्योति का प्रकाश झलकता रहता है। गगन से हो रही अमृत की झड़ी में जीव आनंद मग्न हो जाता है। उस मार्ग में पवित्र आत्मारूपी हंस, सत्पुरुषरूपी समुद्र की लहरों से आते हुए मणि मुक्ता और मोतियों का आनंद लेते हैं। हंसरूपी आत्मा वहाँ के सरोवर में पहुँचकर शब्दरूपी मोतियों को चुगती और आनंद मनाती है। उस स्थान को जहाँ अविनाशी प्रभु का निवास है, निर्भय पद कहते हैं। जो वहाँ पहुँच जाता है, फिर वह संसार-सागर में नहीं आता।

अमर वोए ब्रीछ हहि पंवरि जाकी फूलि मातिया भौंर निजु घ्रानं पाई।
अमी एह प्रेम है प्रीति पीवता रहै जीति जम धार नहिं निकट आई।
उनमुनि के बीच यह चीत चुभा रहै चौक है चान्दनी देखि पाई।
अरध अमान निरबान झलकत रहै सेत सुगंध छबि छत्र पाई।
मगन मासूक इह गगन गरजत रहै झरत झरि बुन्द घन घटा आई।
आदि अनादि देखि बादि मिथ्या तेजो दरस हर घरी निजु पलक पाई।
गहो गुर ज्ञान तुम ध्यान करु धनी का तेजि दे मनी नहिं दोजक जाई।
कहें दरिया दिल दागा तुम दूरि करु उगा दे ज्ञान सुनु संत भाई॥[45]

ब्रीछ=वृक्ष; **पंवरि**=पंखुड़ी; **फूलि...भौंर**=जीवरूपी भौंरा मतवाला हो गया; **मातिया**=मतवाला होना; **घ्रान**=सुगंधि; **अमी**=अमृत; **धार**=धारा, लहर; **चीत**=चित्त; **अरध**=अंदर; **अमान**=असीम; **निरबान**=निर्वाण; **मासूक**=प्रेमी; **झरि**=वर्षा की झड़ी; **घन**=बादल; **बादि**=व्यर्थ; **तेजो**=त्यागो; **मनी**=अहंकार; **दोजक**=नरक; **दागा**=धोखा, दाग़, मैल।

परमात्मा वह अमर वृक्ष है जिसकी खिली हुई सुंदर पँखुड़ियों यानी दिव्य स्वरूप की किरणों और शब्दरूपी सुगंध को पाकर जीवरूपी भौंरा मतवाला हो जाता है। उसका प्रेम ऐसा अमृत रस है जिसे वह प्रेम से पीता रहता है और काल पर विजय प्राप्त कर लेता है। फिर काल का प्रभाव उसके नज़दीक नहीं आता। अंतर में चाँदनी के प्रकाश को पाकर उसका ध्यान अंतर्मुख हो जाता है तथा मन उसी में लीन हो जाता है। अंतर में उजाले और सुगंधि की शोभा तथा अपना खोया हुआ राज छत्र (राज्य) पाकर वह अनंत निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है। अंतर में गगन में गरजते बादलों की घटाओं से झरती हुई अमृत-बूँदों में प्रेमी साधक मग्न हो जाता है। अनादि काल से चले आ रहे सब के आदि-स्रोत परमात्मा को देखकर वह व्यर्थ की बातें छोड़ देता है तथा हर समय अपनी आंतरिक आँखों से प्रभु का दर्शन करता रहता है। इसलिए यदि तुम नरकों में नहीं जाना चाहते तो अहंकार को त्यागो, गुरु से ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा का ध्यान करो, दिल की मैल को दूर करो तथा संतों के वचनों को सुनकर अपने अंतर में ज्ञान का प्रकाश करो।

तब भएवो अमरपुर राज जबहिं घट निर्मल बारेव।
घटा घनघोर अंदोर भयो तब सो तन तारेव।
गिरिवर पिहिकत मोर झींगुर झनकारेव।
चमकेव छटा घटा तम तड़केव कड़केव
बुन्द अखंडित झपटि मंडल ताहां झारेव।

डगमग भौ दल कंद्रप मोह मंदिल धरि फारेव।
तरिवर चढ़ेव बिहंगम गगन मगन जहां द्रिस्टि पसारेव।
उमगेव सलिता चले स्वर्ग कहं जाहां कमल को मूल सो भौंर गुंजारेव।
डार्ह पात फूल फल फलेव जोति सभन में बारेव।
कहें दरिया दल संत अंत जिन्हि मंत मगन होए पंथ सुधारेव॥[46]

अमरपुर=सतलोक; **घट**=शरीर; **जबहिं...बारेव**=जब हृदय के अंदर निर्मल दीपक जला; **अंदोर**=ज़ोरों की गड़गड़ाहट; **गिरिवर**=पर्वत; **पिहिकत**=मधुर कंठ वाले पक्षियों का बोलना; **छटा**=प्रकाश; **तड़केव कड़केव**=ज़ोर की आवाज़ के साथ फटना; **मंडल**=क्षितिज, परिवेश; **कंद्रप**=कामदेव; **मंदिल**=मंदिर, घर; **बिहंगम**=पक्षी; **उमगेव**=उमड़ पड़ना; **सलिता**=नदी; **डार्ह**=डालियाँ; **बारेव**=जलाना; **मंत**=सलाह, उपदेश, मत; **पंथ**=मार्ग।

जब भी साधक के हृदय में निर्मल प्रकाश का दीपक जल उठता है तभी वह अविनाशी सतलोक का राज्य पा लेता है। जब अभ्यासी के अंतर में बादलों के गर्जने की घनघोर गड़गड़ाहट की आवाज़ ज़ोरों से गूँज उठती है, तब वह इस संसार से तर जाता है। अंतर में पर्वत यानी ऊँचे मंडलों पर मधुर आवाज़ में मोर बोलते हैं और झींगुरों की झीं-झीं सुनाई देती है। अँधेरे और बादलों को फाड़कर कड़कड़ाती बिजली का प्रकाश चमक उठता है। वहाँ अमृत की अनश्वर बूँदों की झड़ी चारों तरफ़ से लगी रहती है। वहाँ पहुँचने के बाद अभ्यासी मोह के पूरे घर को उठाकर पटक देता है और उसे चकनाचूर कर देता है तथा कामदेव की सेना में हार की खलबली मच जाती है। ऊँचे वृक्षरूपी रूहानी मंडल पर चढ़कर आत्मारूपी पक्षी की दृष्टि जहाँ तक भी जाती है, वह दिव्य गगन को देखकर आनंद मग्न हो जाता है। आत्मा उफनती नदी की तरह ऊँचे मंडलों की ओर आगे बढ़ती चली जाती है जहाँ रूहानी कमल

की जड़ यानी परमात्मा में रूहरूपी भौंरे आनंद मग्न होकर गुंजार कर रहे हैं। फिर उसे यह प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है कि उस परमात्मा की ज्योति सभी डालियों, पत्तों, फूलों और फलों में समान रूप से जल रही है। संतों के उपदेश के अनुसार प्रेम-मग्न होकर जिन्होंने अपना परमार्थ का रास्ता सुधार लिया, ऐसी संत-मंडली को ही यह अंत मिल पाया है।

3

जीवित सतगुरु की आवश्यकता

सतगुरु: परमात्मा के प्रकट रूप

काल-जाल में फँसे जीवों के कष्ट को देखकर परम दयालु परमात्मा संसार में सतगुरु के रूप में प्रकट होते हैं और जीवों को चिताकर उन्हें अपने आनंद-धाम सचखंड वापस ले जाते हैं। युग-युग से जीवों को उबारने का यही नियम चला आ रहा है। शब्द यानी नाम का भेद देकर सतगुरु जीवों को जगाते हैं, शब्द का अभ्यास करवाकर उनकी मैल दूर करते हैं और उन्हें काल की सीमा त्रिलोकी से परे चौथे लोक या अमर-धाम में ले जाते हैं।

अत: हमें शीघ्र ही सतगुरु को खोज करके उनकी शरण लेनी चाहिए। एक न एक सतगुरु संसार में हमेशा विद्यमान रहते हैं। वह परमात्मा के प्रकट रूप होते हैं। एकमात्र उन्हीं की कृपा से हमारी आंतरिक आँख खुलती है और हम आंतरिक गगन में प्रवेश करके वहाँ के अलौकिक दृश्यों को देखते हैं। सतगुरुरूपी सीढ़ी के सहारे ही जीव अमर लोक में पहुँच सकता है।

अपना नश्वर शरीर छोड़ने से पहले सतगुरु जीवों के उबार का कार्य चलाने के लिए अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाते हैं। उनके उत्तराधिकारी भी उसी तरह अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं। इस प्रकार यह सिलसिला तब तक चलता रहता है, जब तक शब्द यानी नाम की साधना एकनिष्ठ भाव से होती रहती है। जब इस पवित्र शब्द-साधना में बाहरी दिखावा, कर्मकांड और अंधविश्वास का मिश्रण हो जाता है तब सतगुरु की शब्द-शक्ति वहाँ से उठ जाती है और फिर नए सिरे से सतगुरु अन्यत्र अवतार धारण कर पुन: शब्द (नाम)का प्रचार शुरू करते हैं। इस प्रकार दयालु परमात्मा का जीवों को उबारने का यह नियम सदा चलता रहता है।

इससे यह स्पष्ट है कि सतगुरु मनुष्य-रूप में साक्षात् परमात्मा होते हैं। उन्हें मनुष्य मात्र समझना बहुत बड़ी भूल है। उनके चरणों में अपने तन, मन, धन को समर्पित करके ही हम संसार-सागर के पार जा सकते हैं।

आदि अन्त सतपुर्ष अमाना। एहि अवनी पर कीन्ह पयाना॥
युग युग तुम से कहा बुझाई। बुझहु अकूफ ज्ञान लव लाई॥

करहु अकूफ बिबेक करि, जन उतरहिं भवजल पार।
चले जहाज जग इमि करि, गहि लीजै पतवार॥[1]

अमाना=असीम; **अवनी**=पृथ्वी, धरती; **पयाना**=पधारना; **अकूफ**=आंतरिक समझ, अनुभव; **इमि करि**=इस प्रकार।

असीम सत्पुरुष इस धरती पर सतगुरु के रूप में पधारते हैं। इस प्रकार वह युग-युग से जीवों को आंतरिक ज्ञान का मार्ग समझाते आए हैं। अपने को अंतर में एकाग्र करके इस आंतरिक ज्ञान का अनुभव प्राप्त करो। सोच-विचार करके देखो, जिस प्रकार पतवार को सँभालनेवाले के बिना जहाज़ सागर से पार नहीं जा सकता, उसी प्रकार आंतरिक जहाज़ की पतवार को जब सतगुरु पकड़ते हैं, तभी जीव उसमें बैठकर संसार-सागर के पार जा सकते हैं।

अजर अडोल ना डोलनिहारा। सत्य पुरुष वह हहिं करतारा॥
जग महं आए जीव मुकुतावहिं। वंद छोड़ाये हंस ले जावहिं।[2]

करतारा=सृष्टिकर्ता; **हंस**=आत्मा।

जो सृष्टिकर्ता सत्पुरुष हमेशा एकरस रहता है, जो न कभी विचलित होता है और न ही परिवर्तित होता है; वह स्वयं संसार में जीवों को जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कराने के लिए सतगुरु के रूप में आता है और संसार की क़ैद में बंदी पवित्र जीवात्माओं को छुड़ाकर वापस अपने निजधाम ले जाता है।

सतगुर वहां से आइया, सत पुरुष को अंश।
हंस वंश कुल राजमनि, इहां कहां वो वंश॥
केते अपने मत चले, केते बटोही बाट।
सतगुर मत नहिं जानहिं, सहे यम की साट॥[3]

राजमनि=शिरोमणि, सिरमौर; **बटोही**=राही; **बाट**=मार्ग; **यम**=यमदूत; **साट**=चाबुक, चोट।

सतगुरु सत्पुरुष का ही अंश होते हैं। वह सत्पुरुष के निजधाम सतलोक से संसार में आते हैं। पवित्र आत्माओं के कुल-शिरोमणि सतगुरु यहाँ आकर जीवों को सत्पुरुष का संदेश देते हैं। फिर भी कितने ही जीव हैं जो सतगुरु की बात नहीं मानते और अपनी ही बुद्धि के अनुसार अपनी-अपनी राह चलते हैं। ऐसे जीवों को फिर यमदूतों के चाबुक की मार सहनी पड़ती है।

कष्ट कल्पना देखि के, तब हम किया पयान।
मन के रंगे रंगिया, है कछु कथा अमान॥[4]

कल्पना=रोना, बिलखना; **पयान**=पधारे; **अमान**=असीम।

जीव यहाँ पर मन के रंग में रँगे हुए हैं जो रहस्य की एक अजीब कथा है। इसके फलस्वरूप जीवों को कष्ट से रोते-बिलखते देखकर ही संत इस संसार में सतगुरु के रूप में आए हैं।

जहाँ बसे सतगुर सतपुर देशवा भेषवा धरीय पगुढारही रे जी॥
आय जगत में जीव समुझावही गावही निजु पद जानिउ रे जी॥[5]

सतपुर=सतलोक; **पगुढारही**=क़दम रखना, पधारना; **गावही...जी**=अपने उच्चतम स्थान की महिमा का गुणगान करते हैं।

सतगुरु वास्तव में सतलोक के निवासी हैं। वह मनुष्य का रूप धारण करके इस संसार में आते हैं। वह इस संसार में आकर अपने निज-घर का

गुणगान करते हैं और वहाँ के बारे में बताते हैं तथा इस प्रकार जीवों को चिताते हैं।

सब्द सरूप चलि आये जग में मानुख तन धरि गुन बलु गायेउ रे जी॥
लीन्ह अवतार दरस तुम पायेउ तुह से गुन यह गायेउ रे जी॥[6]

तुह से=तुझसे।

ऐ मनुष्य! शब्द का स्वरूप बनकर सतगुरु इस संसार में आते हैं। वह मनुष्य-शरीर धारण करके शब्द के गुण और बल की महिमा गाते हैं। शब्द ने मनुष्य-रूप में जन्म लिया है तभी तो जीव सतगुरु के रूप में उसे देख पाते हैं। क्योंकि सतगुरु ख़ुद शब्द का रूप हैं, इसी लिए वह शब्द की ही महिमा का गुणगान करते हैं।

कहे दरिया जग आयेवो, सन्तन्हि के हित लागि।
जिन्ह जिन्ह शब्द बिचारिया, त्रिगुण माया त्यागि॥[7]

सन्तन्हि...लागि=संतों के जीवों को उबारने के हितकारक कार्य के लिए; **त्रिगुण**=तीन गुण – सत्त्व, रजस और तमस।

सतगुरु इस संसार में अधिकारी जीवों के कल्याण के लिए यानी उन्हें उबारने के लिए आते हैं। जो जीव उनके बताए शब्द के मार्ग पर चलते हैं वे सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण वाली माया के जाल से छूट जाते हैं।

तीन लोक के बाहरे, सो सतगुरु का देश।
जो जन जानि बिचारहीं, यम नहिं पकरे केश॥[8]

जानि=समझकर।

तीन लोकों की सीमा से परे यानी रचना के तीन भागों – पिंड, अंड और ब्रह्मांड से परे जो सतलोक है, वही सतगुरु का देश है। जो लोग इस बात

को समझकर उनके बताए मार्ग पर चलते हैं, यमराज उनके केश नहीं पकड़ सकता यानी कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

चौथा लोक अमर अस्थाना। तीन लोक महं काल पयाना॥
सबकी पतन अमर केहि कहेउ। तीन लोक महं परलै भयेउ॥[9]

चौथा लोक=काल के अधीन रचना के नाशवान् हिस्से के तीन भाग हैं – पिंड, अंड तथा ब्रह्मांड। इन्हें ही तीन लोक कहा जाता है। संतों का चौथा लोक अखंड, अविनाशी, तथा परम चेतन है। इसे सतलोक भी कहते हैं; **पयाना**=पहुँच; **पतन**=नष्ट होना; **परलै**=प्रलय।

चौथा लोक यानी सतलोक सदा अविनाशी रहता है। इस रचना के तीन लोक काल के दायरे में हैं। इन तीन लोकों में तो प्रलय होती है, वे सब के सब नष्ट होनेवाले हैं, अतः उन्हें अविनाशी कैसे कहा जा सकता है?

सुमति करहु निजु सन्त की सेवा। सकल मही का पूजहु देवा॥
धन्य सो ग्राम जहां संत के बासा। तहाँ साहब नीति लेहिं निवासा॥...
ऐसो पारस सन्त समाना। सन्त साहब को एकै जाना॥[10]

मही=पृथ्वी; **साहब**=परमात्मा; **पारस**=ऐसा पत्थर जिसको छुआने से लोहा सोना बन जाता है।

सारी पृथ्वी के देवताओं की पूजा क्या करते हो? संतों की सेवा में ही संसार के सारे देवताओं का पूजन है। इसलिए विचारपूर्वक सच्चे संत की सेवा करो। वह स्थान धन्य है जहाँ संत रहते हैं, क्योंकि उस स्थान पर सदा स्वयं परमात्मा निवास करता है। संत और परमात्मा एक ही हैं, उनमें कोई अंतर नहीं है। जैसे पारस बेमोल के लोहे को छूकर सोना बना देता है, उसी प्रकार संत भी संसारी जीव को परमात्मा के साथ मिलाकर उसे परमात्मा का रूप बना देते हैं।

तन मन अरपन कीजिए, सतगुरु आगे सीस।
अमर मुरति लखाइहैं, सो सतगुरु जगदीस।[11]

सीस=सिर; **लखाईहैं**=दिखाना।

सतगुरु के आगे अपना तन, मन और सिर अर्थात् अहंकार, न्योछावर कर देना चाहिए। सतगुरु परमात्मा के ही प्रकट रूप हैं। वह हमें अविनाशी परमात्मा का दर्शन करा देते हैं।

धन सतगुर भवनिधि कंड़हारा। आए जग जिव करहिं उबारा॥
नैन बिहुन नहिं कवन बेलासा। नाम भानु सत कोटि प्रकासा॥
सो साहब भौ सतगुर मोरा। गौ दोबिधा भौ नैन अंजोरा॥[12]

कंड़हारा=कर्णधार, नाविक; **बिहुन**=रहित; **बेलासा**=आनंद; **सत कोटि**=सौ करोड़; **दोबिधा**=दुविधा, मन की अस्थिरता; **अंजोरा**=प्रकाश।

धन्य हैं सतगुरु जो संसार-सागर से जीवों को निकालने के लिए नाविक के रूप में इस दुनिया में आए हैं। संसार में आकर वह जीवों का उबार करते हैं। किसी भी प्रकार के आनंद देनेवाले दृश्यों का अनुभव तब तक नहीं हो सकता जब तक आंतरिक आँख नहीं खुलती। अंतर में नाम के प्रकट हो जाने पर सौ करोड़ सूर्यों के बराबर प्रकाश हो जाता है। वह परमात्मा ही मेरा सतगुरु बनकर आया है, जिसने मेरे मन की अस्थिरता को दूर कर आंतरिक आँख को प्रकाशित कर दिया है।

जिंदा गुरु निहचै गहो, वा गुर सनदी हजूर।
वा सनदी के देखते, यम भागे बड़ी दूर॥[13]

निहचै=निश्चय; **सनदी**=जिसे किसी कार्य को करने का प्रमाणपत्र मिला हो, अधिकारी, हुक्मनामा लानेवाला।

निश्चित रूप से किसी देहधारी जीवित गुरु को धारण करो। क्योंकि ऐसा गुरु ही वह अधिकारी है जिसे जीवों को मुक्त कराने के लिए परमात्मा की ओर से प्रमाणपत्र मिला हुआ है। उसे देखते ही यमराज बहुत दूर भाग खड़ा होता है।

सनदी हमारी साँच करि जानो जनि करिहहु चतुराईउ रे जी।
सत तो जिंदा सुकृत सीढ़ी है हम ते सीढ़ी चलायेउ रे जी॥
साह फक्कर औ वस्ती गुनदासा यह सभ सीढ़ी हमारीउ रे जी।
इन्हीं जाके साहिजादा थपिहैं सोइ सीढ़ी कहायेउ रे जी॥
ऐसे ही चलि हैं सीढ़ी हमारा सुनहु दफा यह मानिउ रे जी।
दफा हमार सत सब्द जो मानै सो तौ हुकुम जोगायेउ रे जी॥
हुकुम हमार सत कै मानै लोक पयाना जीव जायेउ रे जी।
बचन हमार नाहि जो मनिहैं अंतकाल पछतायेउ रे जी॥[14]

फक्कर...वस्ती=दरिया जी की वंशगत गद्दी के उत्तराधिकारी फक्करशाह और बस्तीदास; **गुनदासा**=दरिया जी की नाद-गद्दी (शब्द-मार्ग की गद्दी) के उत्तराधिकारी; **दफा**=धारा, खंड, अंश; **जोगायेउ**=आदर करना, पूरा करना; **पयाना**=प्रस्थान।

जीवों का सत्पुरुष से मिलाप कराने के लिए सतगुरु संसार में जीवित सीढ़ी होते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि हम इसी सीढ़ी पर जीवों को चढ़ाकर सतलोक में सत्पुरुष के पास पहुँचाते हैं। इस प्रकार सदा विद्यमान रहनेवाला परमात्मा ही एकमात्र सत् है और सुकृत (सतगुरु) उनके पास पहुँचानेवाली सीढ़ी हैं। हमें परमात्मा ने इस संसार से जीवों को मुक्त कराने के कार्य के लिए हुक्मनामा दिया है, इस हुक्मनामे को तुम सच मानों, अपनी तरफ़ से कोई चालाकी न करो। हमारी वंशगत गद्दी के उत्तराधिकारी फक्करशाह और बस्तीदास तथा नाद-गद्दी के उत्तराधिकारी गुनादास – ये सभी हमारे इसी शब्द-मार्ग की सीढ़ी हैं। ये अपने बाद जिसे

इस पंथ की गद्दी पर बैठाएँगे, वह भी इन्हीं की तरह परमात्मा से मिलाप की सीढ़ी कहलाएँगे। इसी तरह हमारी यह सीढ़ी चलती रहेगी। हमारे उत्तराधिकारियों को भी तुम हमारा ही रूप मानना। हमारे जो उत्तराधिकारी सच्चे शब्द को मानेंगे, उन्हें समझना कि वह हमारे हुक्म का पालन कर रहे हैं। हमारे हुक्म को सच मानते हुए वह शब्द-मार्ग द्वारा जीवों को सतलोक ले जाएँगे। जो हमारे शब्द को हुक्म को नहीं मानेगा वह अंत में पछताएगा।

कब लगि अदल चलै जग माँही सो निजु बचन सुनावहु रे जी।
साह फक्कर सुनु चित्त दै नीकै कहेउ तोहि समुझाइउ रे जी॥
तुम जो पूछा अदल की बातैं सोइ भेद तोहि भाखेउ रे जी।
भरम करम नाहि होय अदल में रहे अदाग अमानहु रे जी॥
भेख करम में मिली जब जइहैं बिलगिहैं सब्द हमारउ रे जी।
अंस हमार उठि कै जइहैं काल मुख जीव जाइउ रे जी॥
तब मम फिरि के इह जग अइहौं करिहौं सब्द पुकारिउ रे जी।
जुगन्ह जुगन्ह से हम चलि आयेउ सार सब्द गोहरायेउ रे जी॥[15]

अदल=परमार्थ का पंथ; **अदाग**=बेदाग़, दोषों से रहित; **अमानहु**=अभिमान से रहित; **भेख**=दिखावा।

जब दरिया साहिब से पूछा गया कि संसार में आपका यह परमार्थ-पंथ कब तक चलता रहेगा तो वह बोले – फक्करशाह! ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें अच्छी तरह समझाकर बताता हूँ। तुम ने जो पंथ के बारे में पूछा है, उसका रहस्य तुम्हें बताता हूँ। जब तक इस पंथ में कर्मकांड का भ्रम नहीं रहेगा, इसमें कोई दोष नहीं आएँगे तथा यह अभिमान से रहित रहेगा, तब तक यह पंथ इसी प्रकार चलता रहेगा। पर जब इसमें बाहरी दिखावे और कर्मकांड की मिलावट आ जाएगी, तब हमारा निर्मल शब्द इस पंथ से अलग हो जाएगा। हमारे शब्दरूप अंश के यहाँ से उठ जाने के कारण

तब बाहरी दिखावे और कर्मकांड में फँसे इस पंथ के जीव भी काल के मुख में जाएँगे। तब हम फिर से इस संसार में अन्यत्र कहीं आकर शब्द का प्रचार करेंगे। शब्द का प्रचार करके हम फिर से शब्द-मार्ग का अपना नया पंथ स्थापित करेंगे और पवित्र आत्माओं को मुक्ति दिलाकर सतलोक ले जाएँगे। हम इसी प्रकार युग-युग से संसार में आते रहे हैं और सच्चे शब्द का प्रचार करते रहे हैं।

अजर अमर पुरुष वह अहई। हम देह धारी सब गुन कहई॥
सत सुकृत के अतने भेदा। वो अमर हम ज्ञान निखेदा॥
सुकृत सीढ़ी सत तब पावै। बिना सीढ़ी लोक नाहिं जावै॥
सीढ़ी छोड़े तौ जाय बोहाई। ताके लोक लिखा नहिं भाई॥...
सत पुरुष सत यह अहई। साहिजादा के सुकृत कहई॥[16]

अजर=हमेशा एक जैसा रहनेवाला; **अहई**=है; **सत**=सत्पुरुष; **सुकृत**=सत्पुरुष का पुत्र जो संसार में आता है यानी सतगुरु; **अतने**=इतना; **निखेदा**=खोदकर प्रकट करना, खोलकर समझाना; **लोक**=सतलोक; **बोहाई**=बह जाना, डूब जाना; **साहिजादा...सुकृत**=शहंशाह के पुत्र यानी परमात्मा के पुत्र संत-सतगुरु।

सत्पुरुष और उनके पुत्र मुझ में बस इतना ही अंतर है कि सत्पुरुष सदा एकरस रहते हैं तथा अविनाशी हैं, जबकि मैं नश्वर मनुष्य-शरीर धारण करके उनके गुणों का बखान करता हूँ। मैं उस अविनाशी सत्पुरुष के ही ज्ञान को प्रकट करता हूँ। परमात्मा के पुत्र यानी सतगुरुरूपी सीढ़ी के द्वारा ही सत्पुरुष को प्राप्त किया जा सकता है। इस सीढ़ी के बिना कोई भी जीव सतलोक नहीं जा सकता। जो इस सीढ़ी को छोड़ देता है वह संसार-सागर में बह जाता है। उसके बारे में यह समझना चाहिए कि उसके भाग्य में सतलोक को प्राप्त करना लिखा ही नहीं है। सत्पुरुष तो बेबहा या अनमोल है और उस सच्चे शहंशाह के पुत्र को सतगुरु कहते हैं।

लिखा बचन यह सत्य है, ज्ञानी करो बिचार।
सत सुकृत की सीढ़ी पगु दे, उतरहु भवजल पार॥[17]

भवजल=संसार सागर।

ऐ ज्ञानी! हमारे लिखे हुए इस सत्य वचन पर विचार करो – जीव सतगुरुरूपी सीढ़ी पर चढ़कर ही संसार-सागर से पार उतर सकते हैं।

जहां तहां जल सूखिया, अनल भान समीर।
एक दरिया नहिं सूखिया, सभ नदियन को मीर॥

गुरु दरिया हम दरसन पाई। दया सिन्धु गुन कहा न जाई॥
दरिया अलख पलक में देखो। दरिया ज्ञान सिन्धु यह लेखो॥[18]

अनल=आग; **भान**=सूर्य; **समीर**=वायु; **मीर**=सरदार, श्रेष्ठ, प्रधान।

संसार में अग्नि, सूर्य या हवा से सब जगह पानी सूख जाता है। लेकिन एक समुद्र, जो सब नदियों से श्रेष्ठ है, नहीं सूखता। उस सतगुरुरूपी दरिया के दर्शन हमने किए हैं। सतगुरु दया के सागर हैं, उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका वास्तविक स्वरूप अलख है अर्थात् उसे इन आँखों से नहीं देखा जा सकता, उसे अपनी आंतरिक पलकों को उघारकर देखो। उस सतगुरुरूपी दरिया को तुम परमात्मा के ज्ञान का समुद्र ही समझो।

दरिया नाम देह जनि जानौ। दरिया नाम पुरुष पहचानौ॥...
बेबाहा बे किमति जो कहिया। दरिया दरशन सो पद गहिया॥[19]

जनि=मत; **पुरुष**=सत्पुरुष; **बेबाहा**=(दरिया साहिब द्वारा परमात्मा के लिए प्रयुक्त नाम), अनमोल; **पद**=अवस्था, स्थान।

दरिया को तुम एक नश्वर शरीर का नाम मत समझो। तुम यह समझो कि दरिया सत्पुरुष के प्रकट रूप हैं। जिस परमात्मा के धाम को अनमोल कहा जाता है, उसकी प्राप्ति दरिया के दर्शनों से हो सकती है।

दरिया अगम गम्भीर है, सतनाम है सार।
कवि थाके मुनिवर कहे, वेद ना पावहिं पार॥[20]

सार=सार वस्तु, निचोड़।

परमात्मारूपी दरिया या समुद्र अत्यंत गहरा है तथा उस तक पहुँचा नहीं जा सकता। सच्चा नाम ही उसका सार तत्त्व है। उसको जानने के प्रयास में संसार में अनेकों कवि तथा मुनिवर थककर हार गए। वेद भी उसका पार नहीं पा सके।

साहब का जोर का भरोसा है हमारो दिल
हमसो बर्कस करि कौन पेस पाई है।
सरग पताल ब्यापे जिमि असमान कापे
साहब का डरहि से (और) काल कंप खाई है।
ताहिते सरकार का दास आनि अवतरे हों
जो नहिं बुझे ताहि साहब बुझाई है।
कहें दरिया तीनि लोक हुआ कैद बीच छुटेगा
ते सोई जाके साहब छोड़ाई है॥[21]

साहब=स्वामी; **बर्कस**=विरोध, संघर्ष; **पेस**=पेश पाना, बस चलना; **बुझाई**=समझाना; **छुटेगा**...**सोई**=वही छुटकारा पा सकेगा।

हमारे दिल में अपने स्वामी परमात्मा के बल का विश्वास है। इसलिए हम से विरोध करके भला कौन पार जा सकता है? मेरे स्वामी स्वर्ग और पाताल सर्वत्र व्याप्त हैं, उनके डर से धरती और आसमान काँपता है और काल भी उनके डर से काँप उठता है। मैं उस सच्ची सरकार का सेवक बनकर पैदा हुआ हूँ, इस बात को जो नहीं समझेगा उसे मेरे स्वामी परमात्मा ख़ुद समझा देंगे। तीनों लोक काल की क़ैद में पड़े हुए हैं। इस क़ैद से तो वही छूट सकता है जिसे मेरे स्वामी परमात्मा खुद छुड़ाते हैं।

धरि धरि ध्यान समाधि करे हो सपने सो नहिं पाए।
दीन दयाल क्रिपाल दयानिधि लियो है हंस बोलाए॥
करहु भक्ति बे भर्म कर्म बिसरावहु भाई।
एह भए ब्रह्म भरिपूर सो नाम अचल पद पाई॥
आम्रित पोखन पावहि हो भक्ति करहि लौ लाए।
धन्य भाग्य तेहि जीव के हो साहब लियो है छोड़ाए॥
कहें दरिया सुनु सत्त सब्द एह बानी।
काहां छापा एह मूल अगम सहिदानी॥
सत्त सुक्रित दिल लाए ले हो गहिर जो गहि लेहु ज्ञान।
सो जन के प्रतिपालहि हो जम से राखि अमान॥
सतगुर एह परसाद तुम्हारा।
तन मन धन जिन्हि अरपन कीन्हो हंस उतारहु पारा॥[22]

धरि...बोलाए=योगीजन ध्यान और समाधि लगाकर जिसे सपने में भी नहीं प्राप्त कर सके, उस परमात्मा ने स्वयं दया करके भक्तजनों को सतगुरु द्वारा बुलवा लिया है; **पोखन**=भोजन; **लौ**=लिव लगना, ध्यान मग्न होना; **सहिदानी**=निशानी, छाप; **अमान**=अभय प्राप्त, रक्षित; **परसाद**=कृपा।

जिसे योगीजन ध्यान और समाधि लगाकर सपने में भी प्राप्त नहीं कर सके, उस दीनदयालु, कृपालु और दया के सागर परमात्मा ने दया करके अपने भक्तों को सतगुरु के द्वारा बुलवा लिया है। जिन्होंने संदेह छोड़कर तथा कर्मकांड को भुलाकर उस परमात्मा की भक्ति की, वे पूर्ण रूप से परमात्मा का रूप बन गए और उन्होंने नाम की अचल अवस्था प्राप्त कर ली। धन्य हैं उस जीव के भाग्य, जिसे मेरे स्वामी परमात्मा ने संसार की क़ैद से छुड़ा लिया। जो एकाग्रता के साथ ध्यान मग्न होकर भक्ति करता है उसे अंतर में अमृत का भोजन प्राप्त होता है। सतगुरु की दी हुई नाम की छाप उस मूल अगम धाम को पहुँचने की निशानी है। इसलिए हे जीव! तुम सतगुरु

से गहरा प्यार करो और उनके बताए हुए ज्ञान को ग्रहण करो। वही अपने भक्तों की रक्षा करते हैं और उन्हें यम से अभय प्रदान करके रखते हैं। यही उनका प्रसाद है, उनकी कृपा है। जो जीव अपना तन-मन-धन सतगुरु को अर्पित कर देते हैं, उन्हें वह संसार-सागर से पार उतार देते हैं।

सतगुरु: जीवों के एकमात्र उद्धारक

सतगुरु की नामरूपी नाव पर चढ़कर ही जीव इस अथाह भवसागर को पार कर सकता है। केवल उनकी नामरूपी नाव ही संसार-सागर की भयंकर लहरों के ऊपर चल सकती है। केवल सतगुरु जैसा समर्थ नाविक ही इस नाव को खेकर उस पार ले जा सकता है। सतगुरु के शब्द यानी नाम के बिना जीव का निस्तार संभव नहीं है।

विकराल काल केवल संत-सतगुरु से ही डरता है। वह भूलकर भी उनके शिष्यों के निकट नहीं जाता। सतगुरु जन्म-जन्मांतर के कर्मों की मैल को दूर करके जीव को निर्मल बनाते हैं और उसे अपने साथ सतलोक ले जाते हैं। इसी लिए सतगुरु की शरण में आए हुए जीव को देखकर काल रो-रोकर अपना सिर पीटता है। जो भी जीव सतगुरु की शरण में आता है, वह निश्चय ही संसार-सागर को पार कर जाता है। उसे ज़रूरत होती है तो केवल अपने आप को सतगुरु के चरणों में सौंपकर प्रेम और भक्ति के साथ उनके बताए हुए अभ्यास को पूरा करने की।

जैसे माता सदा प्रेमपूर्वक अपने बच्चे की सँभाल करती है और उसके द्वारा बाल खींचे जाने या नाख़ून से आघात किए जाने पर भी प्रेमपूर्वक उसकी रक्षा करती है, ठीक उसी प्रकार सतगुरु भी अपने शिष्यों के गुण-अवगुण का ख़याल न करके सदा उनकी सँभाल करते हैं और उन्हें निर्मल बनाकर अपने परम-धाम ले जाते हैं। सतगुरु के बिना जीव वैसा ही असहाय है जैसा पंखों और आँखों के बिना पक्षी। पर जब वह सतगुरु की शरण में आ जाता है तो उसे समर्थ सतगुरु की सहायता प्राप्त हो जाती है। सतगुरु की दया से कौवे के समान गंदगी में रमा हुआ जीव, हंस के समान निर्मल हो जाता है, दुष्ट बदलकर महात्मा बन जाते हैं।

सतगुरु के बिना जप-तप और उपासना निष्फल है। केवल सतगुरु की दया और पथ-प्रदर्शन से ही जीव का उबार होता है। अत: हमें अपना तन, मन और धन सतगुरु के चरणों में सौंपकर उनकी सेवा और भक्ति में अपना जीवन समर्पित कर देना चाहिए।

भवजल जल है अगम अपारा। कउन केवट गहिहैं करुआरा॥
जौं अबहीं करि लेहु निमेरा। ग्यान गुरु गति गहो सबेरा॥
जौं लैबहु सतगुरु की बानी। लांघि सको तब भवजल पानी॥
बिना सब्द नहिं होए उजियारा। बिनु सतगुर नहिं उतरहिं पारा॥
काया परचै मूल जब पावै। सतगुर मिलै तब सब्द लखावै॥[23]

करुआरा=पतवार; **निमेरा**=निर्णय, निपटारा; **सबेरा**=नियत समय से पहले का समय, अभी; **लैबहु**=लेना; **परचै**=परिचय, भेद।

इस अगम अपार संसार-सागर में कौन नाविक हमारी नाव को पार ले जा सकता है—इस बात का निर्णय हमें अंत समय का इंतज़ार न करके अभी कर लेना चाहिए। दरिया साहिब फ़रमाते हैं कि सतगुरु ही वह नाविक हैं जो जीव को इस संसार-सागर से पार ले जा सकते हैं। अत: उनसे ज्ञान प्राप्त करके अभी मृत्यु आने से पहले उनकी शरण ले लो। यदि तुम उनसे अनहद वाणी यानी नाम का भेद लेकर उसके अभ्यास में जुट जाते हो तो तुम संसार-सागर को पार कर जाओगे। सतगुरु और शब्द-धुन के बिना कोई भी जीव संसार-सागर को पार नहीं कर सकता। जीव को शब्द का भेद सतगुरु ही बताते हैं।

मेटि संसै सत सब्द से, जो गुर मिलै करार।
सतगुर बिना पार नहीं, भरमि रहा संसार॥

सतगुर सत्त सब्द भरिपूरा। निरमल सरीर मेटेउ सभ पीरा॥
धरमराए निकट नहिं आवै। जाए छप लोक अम्रितफल पावै॥

ऐसन गुर जो मीलै आई। तब हंसा छपलोक के जाई॥
जाए छपलोक जहं पुर्ख अमाना। अछै ब्रिच्छ जहं सेत निसाना॥[24]

करार=खरा, सच्चा; **भरिपूरा**=परिपूर्ण; **पीरा**=पीड़ा, कष्ट; **अमाना**=असीम; **अछै ब्रिच्छ**=अक्षय वृक्ष, अविनाशी परमात्मा; **सेत निसाना**=श्वेत पताका।

यदि हमें सच्चा गुरु मिल जाए तो वह हमसे शब्द का अभ्यास करवाकर हमारे सभी संशय दूर कर देता है। संसार के जीव तो व्यर्थ ही बहिर्मुखी साधनों में भटकते फिर रहे हैं। सतगुरु के बिना कोई भी इस भवसागर को पार नहीं कर सकता। सतगुरु सच्चे शब्द से परिपूर्ण होता है, वह हमें निर्मल बनाकर आवागमन के चक्र (कष्ट) से निकाल देता है, फिर यमराज जीव के निकट नहीं आ सकता। जीव सतलोक जाकर अमृत फल का आनंद लेता है और हमेशा के लिए अमर हो जाता है। यदि ऐसा गुरु मिल जाए तभी यह जीव उस सतलोक तक पहुँच सकता है जहाँ असीम अविनाशी सत्पुरुषरूपी अक्षय वृक्ष है तथा पवित्र श्वेत पताका फहरा रही है।

मन के धोख मेटि सभ जाई। छपलोक महं अम्रित खाई॥
कल्प कोटि के मेटि अंदेसा। सतगुर सब्द जो गहै संदेसा॥[25]

मेटि=मिट जाते हैं; **कल्प**=एक हज़ार चतुर्युगी; **अंदेसा**=भय, आशंका।

यदि जीव सतगुरु के बताए हुए शब्द के उपदेश को अपने जीवन में अपना ले तो उसकी करोड़ों युगों की आशंकाएँ और मन के सभी धोखे मिट जाते हैं तथा वह सतलोक पहुँचकर अमृत का सेवन करके अमर हो जाता है।

ऐसो सत करता हहिं भाई। सतगुरु ज्ञान चीन्हों चित लाई॥
आये सरन यम करे न हानी। निश्चय होउ मुक्ति पहचानी॥
सत की नाव चढ़े जन कोई। तीन लोक ते न्यारे होई॥

विविध लहरि जौं उठै तरंगा। कनहरि कसिके गहे उतंगा॥
सो कनहरिया करता अहई। निरालेप निरमोलिक कहई॥
उतरे पार परम गुरु ऐसा। तीन लोक मानो छबि बरे तैसा॥...
यह निश्चय जन जानहु नीका। सतनाम इमि सब को टीका॥

सत्त की नाव जो चढ़े, नर जाय अमरपुर गांव।
आवागवन से रहित भयो, अजर अमर निज ठांव॥[26]

हहिं=है; **चित लाई**=ध्यान लगाकर; **न्यारे**=परे, अलग; **तरंगा**=उछाल; **कनहरि**=कर्णधार, केवट; **उतंगा**=ऊँचा; **निरमोलिक**=अनमोल; **परम**=सर्वश्रेष्ठ; **नीका**=अच्छी तरह; **टीका**=श्रेष्ठ।

ऐसे सतगुरु स्वयं परमात्मा ही हैं, अत: ध्यान लगाकर उनके बताए ज्ञान को समझने की कोशिश करो। सतगुरु की शरण में आने पर यमराज भी जीव को कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता और निश्चय ही जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। सतगुरु की नामरूपी सच्ची नाव पर जो भी जीव सवार होता है, वह तीन लोकों की सीमा से परे निकल जाता है। इस संसार-सागर में जो बड़े ऊँचे उछाल लेती हुई लहरें उठती हैं, उनसे बचाने के लिए सतगुरुरूपी केवट जीव की नाव को ऊँचा उठाकर उसे कसकर पकड़े रखते हैं। वह केवट वास्तव में स्वयं परमात्मा ही है जिसे माया से निर्लेप और अनमोल कहा जाता है। वही सबसे श्रेष्ठ सतगुरु है जो जीव को इस भवसागर से पार उतारते हैं। उनका दिव्य स्वरूप तीन लोकों में शोभायमान हो रहा है। हे जीव! तुम निश्चित ही यह बात अच्छी तरह से समझ लो कि सच्चा नाम सबसे श्रेष्ठ है। सतगुरुरूपी नाव पर जो भी मनुष्य चढ़ता है वह अविनाशी-धाम यानी सतलोक पहुँच जाता है। फिर वह संसार के आवागमन के चक्कर से छूटकर अपने अजर अमर धाम में निवास करता है।

चिन्हहु सतगुरु जो अनुरागी। आदि अन्त ज्ञान में जागी॥
सो गुरु ज्ञान मुक्ति की खानी। सतगुरु भेद करो पहचानी॥

ज्ञान अचल जबहीं मिले, तब छुटे भ्रम भीर।
कहें दरिया दरसन देखे, दया सिन्धु का तीर॥[27]

अनुरागी=प्रेमी; **खानी**=ख़ज़ाना; **भीर**=संकट, विपत्ति; **तीर**=किनारा।

ऐ मनुष्य! यदि तुम सचमुच परमार्थ के प्रेमी हो तो पहले सतगुरु को पहचानो। सतगुरु वह है जिसे आदि से लेकर अंत तक के ज्ञान की जानकारी है। तुम सतगुरु के इस राज़ को भी पहचान लो। उनका बताया हुआ ज्ञान ही मुक्ति का ख़ज़ाना है। सतगुरु के द्वारा जब उस अचल परमात्मा का ज्ञान जीव को मिल जाता है तो उसके सारे भ्रम और कष्ट छूट जाते हैं और उसे दया के समुद्र सतगुरु की कृपा से परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं।

गुरु बिनु भव नहिं भंजनिहारा। सत तरनी गुरु ज्ञान करारा॥
सतगुरु सत परम गुरु ज्ञाता। सुमिरत पाप जो करे निपाता॥
भव के भर्म सभे मिटि जाई। अटल अमर पद सो गुन गाई॥
आवागवन की संसे मेटिहैं। कोटि जन्म के दुख सब छुटिहैं॥[28]

भंजनिहारा=मिटानेवाला; **तरनी**=नाव; **निपाता**=नष्ट; **भव**=संसार।

गुरु के बिना संसार के आवागमन को मिटानेवाला कोई नहीं है। गुरु जिस सच्चे नाम का ज्ञान देते हैं, वह संसार-सागर से पार ले जाने के लिए सच्ची नाव है। सतगुरु इस सच्चे नाम के सबसे बड़े जानकार तथा सत्-स्वरूप हैं। नाम के सुमिरन से जीव के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, संसार के सारे भ्रम मिट जाते हैं और वह अचल अविनाशी परम-धाम को प्राप्त करके उसी की महिमा गाता है। उसके आवागमन के संशय मिट जाते हैं तथा करोड़ों जन्मों के सारे दु:ख दूर हो जाते हैं।

इंह तिनलोक निरंजन राई। चौदह चौकी जम बैसाई॥
एको हंसा ना होखहिं नाहिं पारा। बीचहिं भसम करै जरि छारा॥

हारे जम सतनाम से, हाथ डंडा दीन्हो डारि।
अमरलोक को जाइं है, संत ना आवहिं हारि॥[29]

निरंजन=धर्मराय, काल; **राई**=राजा, शासक; **चौदह चौकी**=चौदह लोकों में चौकी; **जरि**=जलाकर; **छारा**=राख।

रचना के तीन लोकों – पिंड, अंड और ब्रह्मांड में काल का शासन है। उसने चौदह लोकों में जीव के लिए यमराज के नाके लगा रखे हैं। एक भी जीव इनको पार करके परमात्मा तक नहीं जा सकता, यमराज उसे बीच में ही जलाकर राख कर देता है। सतगुरु के बताए हुए सच्चे नाम की शक्ति के आगे यमराज हार जाता है और जीव से लड़ने के लिए उठाए हुए हथियार नीचे डाल देता है। संत उससे हार कर नहीं लौटते और उनके साथ जीव अविनाशी सतलोक को चला जाता है।

जापर चिट्ठी मूल सो आवै। यम जालिम नहिं तेहि सतावै॥
जाके छापा सनदि हजूरी। तासे निकट रहौं नहिं दूरी॥
तुम से छल बल जो वह करई। हुकुम हमार सदा वह डरई॥
जीव उलटि जब पिऊ पर लागा। उलटि पिऊ तब जीव पर जागा॥[30]

चिट्ठी=आदेश, हुक्म; **मूल**=जीव का मूल स्थान यानी परमात्मा की दरगाह; **जालिम**=अत्याचारी; **सनदि हजूरी**=परमात्मा के हुक्म का प्रमाणपत्र; **पिऊ**=परमात्मा।

जिस जीव को परमात्मा की दरगाह से हुक्म आता है, उसे अत्याचारी यमराज नहीं सता सकता। परमात्मा के हुक्म से जिसको नाम की छाप लग जाती है, यमदूत उससे दूर ही रहते हैं, नज़दीक नहीं आते। हे जीव! वही काल जो तुमसे छल करता है या अपनी ताक़त से तुम्हें डराता है, वही संतों के हुक्म के सामने हमेशा डरता रहता है। जीव जब अपने ध्यान को बाहरी पदार्थों से मोड़कर अपने प्रियतम परमात्मा में लगा देता है तो वह

परमात्मा भी उस जीव पर अपनी दया-दृष्टि करता है और उसे निहाल कर देता है।

जौं लगि सतगुर मिले न दाता। तौं लगि काल करे उतपाता॥
खोजहुं सतगुर जो जिव बांचै। नाहिं तौ काल सदा सिर नाचै॥[31]

उतपाता=उपद्रव; **बांचै**=बचना, छुटकारा पाना।

हे जीव! जब तक शब्द यानी नाम की दात देनेवाले सतगुरु नहीं मिलते, तब तक काल उपद्रव करता ही रहता है। काल के चंगुल से छुटकारा पाने के लिए तुम सतगुरु की खोज करो, नहीं तो काल सदा तुम्हारे सिर पर मँडराता ही रहेगा।

जिन्हि गहा सतगुर परवाना। जग में परगट उदित अमाना॥
सत साहब करहीं प्रतिपाला। काटहिं काल कुबुधि के जाला॥
ताके लेइ अपने ग्रिहि राखा। सत्त सब्द निस्चै हम भाखा॥
जीव माने तब करहुं बिचारा। ताके लेइ उतारों पारा॥
कोटि जन्म के कागज कीरा। नाहिं कस्ट काल कै पीरा॥
सत्त नाम सामर्थ हहि भाई। तासो काल सदा डर खाई॥
सत्तपुर्ख से करे ना जोरा। धरे तेज तब करे निहोरा॥
धनुख बान नहिं देखा हाथा। कांपहि काल ठेठावहिं माथा॥
जो जन हुकुम सत्त कै राखै। तासो काल जोर नाहिं भाखै॥[32]

गहा=ग्रहण किया; **परवाना**=हुक्मनामा; **प्रतिपाला**=रक्षा, सँभाल; **ग्रिहि**=घर, धाम; **कीरा**=फाड़ना, नष्ट करना; **पीरा**=पीड़ा, यातना; **जोरा**=ताक़त; **तेज**=उग्रता, अकड़; **निहोरा**=विनती; **ठेठावहिं**=पीटना।

परमात्मा या सत्पुरुष के प्रकट स्वरूप सतगुरु के अपनी असीम महिमा के साथ संसार में उदय होने पर जो उनके हुक्म को धारण करता है,

उसकी सँभाल सत्पुरुष ख़ुद करता है। वह काल की कुबुद्धि को मिटा देता है। दरिया साहिब कहते हैं कि हमने पक्के तौर पर यह सचाई कह दी है कि ऐसे जीव को वह सतगुरु अपने धाम ले जाकर बसाते हैं। जो जीव संतों के वचनों को मानते हैं अर्थात् उनके उपदेशानुसार अभ्यास करते हैं, उनको वह साथ लेकर संसार-सागर से पार उतार देते हैं। संतों की शरण में आने से जीव के करोड़ों जन्मों के कर्मों का लेखा-जोखा फट जाता है तथा फिर उसे काल के कष्ट और यातनाएँ नहीं सहनी पड़तीं। सच्चे नाम में इतनी सामर्थ्य है कि काल उससे सदा डर खाता है। सत्पुरुष के सामने काल का ज़ोर नहीं चलता और वह अपनी अकड़ छोड़कर विनती करने लगता है। फिर उसके हाथ में लड़ने के लिए धनुष-बाण दिखाई नहीं देते, वह डर से काँपते हुए अपना सिर पीटता है। जो मनुष्य सतगुरु के हुक्म में रहता है उस पर काल का कोई ज़ोर नहीं चलता।

जब सतगुर से परचै पाई। भवजल के सभ संसै मेटाई॥
बोलहिं सतगुर ग्यान गंभीरा। दरिया समुझि लेहु तुम बीरा॥
जो जो हंसा बोधो जाई। सो सो हंसा पहुंचै आई॥

दरिया भवजल अगम है, सतगुर करो जहाज।
तेहि पर हंसा चढ़ि के, जाए करो सुखराज॥
पहुंचे हंसा सत सब्द ते, सतगुर मिले जो मीत।
कहै दरिया भव भरम तेजी, बसै चरन महं चीत॥[33]

परचै=परिचय, पहचान, मिलाप; **संसै**=आशंका, डर; **हंसा**=जीव; **बोधो**=चिताना, नाम का भेद देना।

जब जीव का सतगुरु से मिलाप होता है तो उसके संसार-सागर के सभी डर समाप्त हो जाते हैं। सतगुरु शब्द का गहरा ज्ञान शिष्य को समझा देते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि शिष्य को इसे भली-भाँति समझकर अच्छी तरह मन में बिठा लेना चाहिए। सतगुरु जिन-जिन जीवों को नाम का भेद

देते हैं, वे सभी अवश्य ही सतलोक पहुँचते हैं। सतगुरु ही वह जहाज़ हैं जिसके द्वारा जीव इस अथाह भवसागर को पार करके अपने सुख के धाम में पहुँचकर आनंद मना सकते हैं। आत्मा को यदि सतगुरुरूपी मित्र का साथ मिल जाए तो वह उनके बताए सच्चे शब्द के द्वारा अपने निज-घर पहुँच जाती है। इस प्रकार संसार के उसके सारे भ्रम मिट जाते हैं और उसे सतगुरु के चरणों से सच्ची प्रीति हो जाती है।

सीतल सब्द साधु की बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी।...
सार सब्द जब दिढ़ता लावै। तब सतगुर किछु आपु लखावै॥[34]

बानी=वचन, कहना; **सुरति**=आत्मा की सुनने की शक्ति; **दिढ़ता**=दृढ़ता, परिपक्वता; **लखावै**=दिखाना।

सच्चे साधु के द्वारा बताया हुआ शब्द हृदय को शीतल करता है। उसके द्वारा सुरत हृदय के बीच यानी तीसरे तिल में प्रवेश कर जाती है। सार शब्द का अभ्यास जब पक जाता है तो सतगुरु स्वयं ही शिष्य को कुछ सूक्ष्म आंतरिक भेद दिखलाते हैं।

सतगुर मंत अंत के कामा। तन छूटे पहुंचे निज धामा॥
करे बिलास पुहुप की खानी। पुहुप बिवान अम्रित रस सानी॥
कहे बिबेक बिचारहुं ग्यानी। सार सब्द है अम्रित बानी॥...
है एह सांच झूठ जनि जाने॥ झूठ बुझे तोहि जम्ह धरि तानें॥[35]

मंत=सलाह, मंत्र, उपदेश; **पुहुप की खानी**=फूलों की ढेरी; **बिवान**=विमान; **जम्ह**=यम; **धरि ताने**=पकड़कर खींचना, घोर कष्ट देना।

सतगुरु के उपदेश के अनुसार शब्द का अभ्यास करना, अंत में मृत्यु के समय जीव के काम आता है और वह अपने निजधाम पहुँच जाता है। वहाँ वह फूलों की सेज पर आनंद करता और अमृत से सने फूलों के विमान पर विहार करता है। ऐ ज्ञानीजनों! मैंने जो यह बात कही है तुम इस पर

अच्छी तरह से विचार करना। सार शब्द की धुन ही अमृत है। जो इस बात को सच नहीं मानते, उन्हें यमदूत पकड़कर ज़ोर से खींचतान करके घोर कष्ट देते हैं।

सतगुर चरन बिमल पद, गहि लीन्हो निजुनाम।
भक्ति भाव द्रिढ़ ग्यान करि, जाए अमर पुरधाम॥[36]

बिमल=निर्मल; **द्रिढ़**=प्रगाढ़, पुष्ट; **अमर पुरधाम**=अविनाशी लोक, सतलोक।

सतगुरु के निर्मल चरणों की शरण लेने से नाम की प्राप्ति होती है तथा भक्ति-भाव से सतगुरु के दिए हुए नाम के ज्ञान को पुष्ट करके जीव अविनाशी सतलोक पहुँच जाता है।

जब लगि सतगुरु ना मिले, कतनो कथे बिराग॥
हंस वंश नहिं मिलिया, रहा काग का काग॥[37]

कतनो=कितना; **कथे**=कहना; **बिराग**=वैराग्य, विरक्ति; **हंस वंश**=पवित्र आत्माओं का वंश; **काग**=कौवा।

कोई चाहे कितनी ही विरक्ति की बातें क्यों न करता फिरे, जब तक उसे सतगुरु नहीं मिलते, वह कभी भी निर्मल होकर अंतर में उच्च मंडलों में जाकर पवित्र आत्माओं की मंडली में शामिल नहीं हो सकता। वह गंदगी खानेवाले कौवे के समान संसार की विषय-वासना की गंदगी में ही पड़ा रहता है।

गुर बिनु जप तप ध्यान न करई। भए भंजन सत गुर पद गहई॥
भव तरनी गुर ग्यान सनीपा। दया दीपक मन तेज अनीपा॥

अति अधीन लीन पद पावे॥ दर्पन दया सुखद गुन गावे॥
घींचे केस करे नख घाता। तदपि हेतु छोड़े नाहिं माता॥
ऐसे प्रेम संतन्ह सुख दीजे॥ मम बालक कंह रच्छा कीजे॥
गुन ऐगुन की खोज न कीजे॥ दास अंक लिखि कर गहि लीजे॥[38]

भए भंजन=भय को दूर करनेवाला; **गहई**=पकड़ना; **भव...सनीपा**=गुरु का दिया ज्ञान संसार को पार करने के लिए नाव के समान है; **दया... अनीपा**=सतगुरु की दया का चिराग़ जलने पर मन की शक्ति ढीली पड़ जाती है; **घींचे**=खींचे; **हेतु**=प्रेम; **कर**=हाथ।

गुरु के बिना जप, तप और ध्यान आदि नहीं करने चाहिएँ। सतगुरु ही संसार के भय को दूर करनेवाले हैं; अत: उन्हीं की शरण में जाना चाहिए। गुरु का ज्ञान संसार-सागर को पार करने के लिए नाव के समान है। उनकी दया का चिराग़ जलने पर मन की शक्ति नष्ट हो जाती है। अपने आप को अत्यंत नम्र बनाकर जो ध्यान में लीन होता है, वह सतगुरु के चरणों को अपने अंतर में प्राप्त करता है। सतगुरु की दया से उसका हृदय दर्पण के समान निर्मल होकर चमक उठता है और वह उनका गुणगान करने लगता है। हे मेरे सतगुरु! जिस प्रकार बच्चे के द्वारा बाल खींचे जाने या नाख़ूनों से आघात किए जाने के बावजूद भी माता उसको प्यार करना नहीं छोड़ती, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे बच्चे के समान हूँ, माता के समान मेरी रक्षा करके अपने प्रेम से मुझे सुख प्रदान करो। मेरे गुण-अवगुण न देखो, अपनी बही में सेवकों के रूप में मेरा नाम लिखकर मेरा हाथ पकड़कर मुझे बचा लो।

नैन फूटा और पर टूटा, करि को कवन उपाय।
पांव तोरि लंगर हुआ, कइसे पहुंचे जाय॥
जंबू द्वीप के मध्य में, सतगुरु होहु सहाय।
अबरि के बार उतारिये, रहो चरन लव लाय॥[39]

पर=पंख; **तोरि**=टूट जाना; **लंगर**=लँगड़ा; **जंबू द्वीप**=सात द्वीपों वाले इस भुवन-कोश में सबसे भीतरी द्वीप, जिसमें हम रहते हैं अर्थात् पृथ्वी; **अबरि के**=अब की।

जिस प्रकार एक पक्षी के नयन फूटे हुए हों, पंख टूटे हुए हों और पाँव से भी लँगड़ा हो, तो फिर वह कैसे अपनी मंज़िल तक पहुँच सकता है? इसी प्रकार जीव भी इस पृथ्वी पर सतगुरु के बिना असहाय है। हे मेरे सतगुरु! आप मेरी सहायता करके अब की बार मुझे इस संसार से उबार लो, मैं सदा आपके चरणों में ध्यान लगाए रहूँगा।

साधो सतगुर की बलिहारी।
जो कोई गुर ज्ञानी बूझे ता पर तन मन वारी॥
कागा ते एह हंस करे जो भौ से लेत निकारी।
मंजन करे मइलि सभ छूटे अघ पातख सभ जारी॥
काल जाल एह फिरे जक्त में बीखम बेइलि बिकारी।
होए चेतनि जब चित में चितवे चुंमक सब्द संभारी॥
भीतर हाड़ रुधिर है प्राना ऊपर चाम बोखारी।
पल में परलै जीव घात है छूटि जैहैं नरनारी॥
गुर जौ कहे सीख जो बूझे रसना सब्द संभारी।
है एक मूल फूल संजीवन पलकन्हि में उजियारी॥
मति मराल की गति जब आवै काग कुबुधि दुरि डारी।
कहें दरिया सोई हंस बंस है भव जल जात ना हारी॥[40]

वारी=न्योछावर करना; **भौ**=संसार; **मंजन**=स्नान; **मइलि**=मैल; **अघ**=पाप; **पातख**=गुनाह; **जारी**=जलाना; **जक्त**=जगत् ; **बीखम**=विषम, कष्टदायक, विकराल; **बेइलि**=लता, बेल; **बिकारी**=विकार; **चुंमक**=चुंबक; **रुधिर**=रक्त, ख़ून; **चाम**=चमड़ी; **बोखारी**=मढ़ना; **परलै**=प्रलय; **रसना**=जीभ; **मराल**=हंस।

हे साधुजनों! हमें अपने सतगुरु पर बलिहार जाना चाहिए। जो भी जीव अपने ज्ञानी गुरु के उपदेश को समझकर उन पर अपना तन-मन न्योछावर करता है, सतगुरु उसे कौवे के समान संसार की गंदगी में फँसे हुए होने पर भी हंस के समान पवित्र बना देते हैं और संसार से निकाल लेते हैं। उनके बताए शब्द के सरोवर में स्नान करने से जीव की सारी मैल दूर हो जाती है तथा उसके सारे पाप और दोष जलकर भस्म हो जाते हैं। संसार में विकारों की कष्टदायक बेल लिपटी हुई है और काल जीवों के पीछे अपना जाल लेकर घूमता रहता है। फिर जब जीव सचेत होकर अंतर में ध्यान लगाता है, तब शब्द-धुन उसे चुंबक के समान आकृष्ट कर लेती है। मनुष्य-शरीर के भीतर हाड़-मांस, ख़ून और प्राण हैं तथा ऊपर से चमड़ा मढ़ा हुआ है। पल भर में जीव की मृत्यु हो जाती है और संसार के सभी स्त्री-पुरुष पीछे छूट जाते हैं। इसलिए गुरु की कही सीख को मानकर वर्णात्मक नाम को ग्रहण करके उसका अभ्यास करना चाहिए। यह सुमिरन ऐसा मूल है जिससे ऐसा फूल पैदा होता है जो मृतक को जीवित कर देता है और जिससे आंतरिक आँख की पलकों में उजाला हो जाता है। इस अभ्यास के बाद जब मनुष्य की बुद्धि निर्मल हो जाती है, तब वह कौवे की-सी कुबुद्धि छोड़कर पवित्र हंस बन जाता है। वह फिर संसार-सागर में नहीं डूबता।

साधो सतगुर गुर हितकारी।
धरि के बांह छोड़े नहिं कबहीं भौ से लेत निकारी॥
ब्राह्मन छत्री बैस सूद्र सभनि के ज्ञान बिचारी।
जाति के गर्ब करे जनि कोई जो जन भक्ति पियारी॥...
निरखि परखि गुरु नीके कीजे बेरा बांधु संवारी।
एह कलि गुरू बड़े परपंची डारि ठगौरी मारी॥
अवघट घाट चिन्हे नाहिं मूरख कैसे खेइ उतारी।
अटकी नाव परी भंवचक्र में कठिन कलपना कारी॥
आवत जात रहत की घरिया एक बूड़े एक ढारी।
दरिया दरस दया सतगुर के होखे मुक्ति करारी॥[41]

निकारी=निकालना; **जनि**=मत, न; **निरखि परखि**=जाँच परखकर; **नीके**=अच्छा; **बेरा**=नाव; **परपंची**=प्रपंची, छल करनेवाला; **ठगौरी**=ठगी, धोखा; **अवघट**=विकट, दुर्गम; **खेइ**=नाव खेना; **कलपना**=कष्ट; **कारी**=कठिन, घोर; **घरिया**=घड़िया, वह छोटा-सा बर्तन जिसे रहट से पानी निकालने के लिए प्रयोग किया जाता है; **बूड़े**=डूबना; **करारी**=सच्ची, पक्की।

हे साधक! सतगुरु हमेशा जीव की भलाई करनेवाले हैं। वे जिस जीव की बाँह पकड़ लेते हैं फिर उसे कभी नहीं छोड़ते और उसे संसार-सागर से निकाल लेते हैं। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, सभी को अपना ज्ञान प्रदान करते हैं। इसलिए इस बात को अच्छी तरह समझ ले कि जिस किसी को भी परमात्मा की भक्ति प्रिय हो, वह कभी भी जाति का गर्व न करे। इस कलियुग में बड़े धोखेबाज़ और छल-कपट करनेवाले गुरु, जीवों को ठगने में लगे हुए हैं, इसलिए अच्छी तरह जाँच-परखकर गुरु धारण करके संसार-सागर से पार जाने की नाव तैयार कर लेनी चाहिए। दरिया साहिब बड़े ज़ोरदार शब्दों में कह रहे हैं कि पाखंडी गुरु को दुर्गम आंतरिक मार्ग की समझ ही नहीं होती, फिर भला वह जीव की नैया कैसे पार लगा सकता है? ऐसे गुरु की शरण लेनेवाले जीवों की नैया आवागमन के चक्र में ही अटकी रह जाती है और वह घोर कष्टों के कारण रोता-बिलखता रहता है। जैसे लगातार चक्कर काटते रहट में जब एक घड़िया कुएँ में पानी लेने के लिए डूबती है तो दूसरी पानी को डालती है। इसी प्रकार संसार में आवागमन का चक्र भी हमेशा चलता रहता है। जीव को कभी भी मुक्ति नहीं मिलती, उसका एक जीवन समाप्त होता है तो दूसरा शुरू हो जाता है। केवल सतगुरु के दर्शन और उनकी दया से ही उसे सच्ची मुक्ति मिल सकती है।

धन्य सतगुर सत सब्द बिचारा।
मानुष से देवता जिन्हि कीन्हौ मेटेव सकल बिकारा॥
मोचेव पाप सकल अघ मेटो टूटा गरब हंकारा।

जागेव ब्रह्म जोति भौ निर्मल बरखत अम्रित धारा॥
एहि भव मांह बुड़त जिन्हि राखेव भौ जल के कंड़हारा।
एह तन तप्त जारा भौ नासेव उतरेव भव जल पारा॥
वोए गुरदेव दयानिधि सागर कोटि कलपना जारा।
भौ निकलंकी तत्तु बिचारेव जम जालिम पचि हारा॥
अंमर काया सोक जाहां नाहीं पोषेव अम्रित सारा।...
कहें दरिया चरण चित लागेव जिन्दा सत करतारा॥[42]

मोचेव=छुड़ाना; **बरखत**=बरसना; **कंड़हारा**=कर्णधार, नाविक; **नासेव**=नाश करना; **कलपना**=कष्ट, दुःख; **जारा**=जलाना; **पोषेव**=खिलाना, पोषण करना; **जिन्दा**=जीवित; **करतारा**=परमात्मा।

धन्य हैं सतगुरु जिन्होंने सच्चे शब्द का अभ्यास करवाकर हमें मनुष्य से देवता बना दिया और हमारे सारे विकार मिटा दिए। उन्होंने सारे पाप-दोष दूर करके हमारे अहंकार को नष्ट कर दिया जिसके फलस्वरूप हमारे अंतर में परमात्मा की ज्योति जाग्रत हो गई तथा अमृत की वर्षा होने लगी। इस संसार-सागर में डूबते हुए हम जीवों को, उन्होंने केवट बनकर बचा लिया और संसार के दुःखों में जलते इस शरीर के जरा-मरण का नाश करके हमें भवसागर से पार उतार दिया। दया के सागर गुरुदेव ने हमारे करोड़ों दुःखों को जलाकर भस्म कर दिया। अब हम निर्मल होकर सार तत्त्व यानी शब्द के ध्यान में लग गए हैं और हमारा पीछा करनेवाला दुःखदाई यमराज थककर हार गया है। हम अमर होकर वहाँ पहुँच गए हैं जहाँ न तो शरीर है और न ही दुःख। वहाँ पर सार-रूप अमृत का भोजन प्राप्त होता है। अब परमात्मा के जीवंत-रूप सतगुरु के चरणों में हमारा चित्त लग गया है।

सतगुरु का शब्द जीवों के उद्धार का एकमात्र साधन

सतगुरु का दिया हुआ शब्द यानी नाम ही हमें काल की त्रिलोकी से पार ले जाकर परमात्मा से मिलाता है। पर परमात्मा से मिलने के लिए पहले

सतगुरु से प्रीति और प्रेम करना आवश्यक है, क्योंकि सतगुरु ही हमें नाम का भेद देते हैं, हमें अपने अंदर जाने का तरीक़ा बताते हैं और अंत में परमात्मा से मिलाप भी करवाते हैं। यह प्रेम का मार्ग है जो अत्यंत कठिन है। लेकिन प्रेमपूर्वक सतगुरु की भक्ति करने और उनकी बताई हुई शब्द-धुन की युक्ति का अभ्यास करने से साधक निश्चय ही अपनी साधना में सफल होता है। सतगुरु के आदेशानुसार जब शिष्य अपने ध्यान को एकाग्र करके अंतर में टिकाता है तो उसे दिव्य प्रकाश दिखाई देता है और मधुर शब्द सुनाई देता है। फिर प्रकाश और शब्द के सहारे वह धीरे-धीरे ऊपरी मंडलों में चढ़ता जाता है और अंत में अपने मूल धाम में पहुँचकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

परमात्मा की यह भक्ति गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी प्रेमपूर्वक की जा सकती है। एक-दूसरे को भजन करने के लिए प्रेरित करते हुए पति-पत्नी शब्द (नाम) की साधना कर सकते हैं। इस साधना में अनेक देवी-देवताओं की सेवा-पूजा को छोड़कर एकमात्र परमात्मा की एकनिष्ठ भाव से भक्ति की जाती है। साधक उठते-बैठते शब्द-धुन से अपनी लिव लगाए रखता है। इस प्रकार गुरु की कृपा से उसके अंतर में ज्ञान प्रकट हो जाता है। गुरु-ज्ञान के अंकुश से वह मनरूपी हाथी को वश में कर लेता है तथा काम-क्रोध आदि विकारों से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है।

परमार्थ का मार्ग बहुत ही कठिन और लंबा है। इसलिए जीव बहुत धीरे-धीरे इस मार्ग में प्रगति करता है। पर सतगुरु की दया से शब्द-मार्ग का अभ्यासी कभी भी विफल नहीं होता। अपनी यात्रा की सभी कठिनाइयों को पार करके वह अंत में परमात्मा को प्राप्त कर लेता है और सदा के लिए आवागमन के चक्र से छुटकारा पा लेता है।

दरिया सब्द बिचारिऐ, तीनि लोक ते न्यार।
गुर ते भरम जनि राखहु, मिलहिं सब्द निजु सार॥[43]

न्यार=निराला, अनोखा, अलग।

उस शब्द की साधना करनी चाहिए जो तीनों लोकों से निराला है। जब शिष्य अपने सतगुरु से कोई भी कपट या परदा नहीं रखता तभी उसे इस सच्चे या सार शब्द की प्राप्ति होती है।

नाम बान जब हिरदै लागा। निकरि निरंतर सुरति जागा॥

ग्यान रतन की खानि, मनि मनिक दीपक बरै।
सब्द सजीवनि जानि, अमरपुर अम्रित पीवहीं॥

अभय निसान धुनी तंह होई। अजर अमर पद पावै सोई॥
कहन सुनन किमि करि बनि आवै। सत्तनाम निजु परचै पावै॥
लीजै निरखि भेद निजु सारा। समुझि परै तब उतरै पारा॥...
पारस सब्द कहा समुझाई। सतगुर मिलै तब देहि देखाई॥[44]

निकरि=धँसकर आर-पार होना; **सुरति**=आत्मा की अंतर में धुन को सुनने की शक्ति; **मनिक**=माणिक्य, एक रत्न; **बरै**=जलना; **सजीवनि**=मृतक को जीवित कर देनेवाली बूटी; **निसान**=नगाड़ा; **अजर**=जिसे बुढ़ापा न आता हो; **अमर**=जो जन्म-मरण में न आता हो तथा जिसका कभी नाश न हो।

जब सतगुरु का मारा नाम का बाण हृदय में लगकर अंतर को बींध देता है तो सुरत सदा के लिए जाग जाती है। नाम संपूर्ण ज्ञान की खान है जिससे अंतर में मणियों और मोतियों का दीपक जल रहा है। शब्द ही संजीवनी बूटी है, क्योंकि इसके द्वारा जीव सदा के लिए मृत्यु से छुटकारा पा जाता है और सतलोक पहुँचकर अमृत का पान करता है। वहाँ जीव को सारा भय दूर करनेवाला शब्द-धुनरूपी नगाड़ा सुनाई देता है, जिसे सुनकर साधक अजर-अमर हो जाता है। वहाँ का वर्णन कहने या सुनने में नहीं आ सकता। वहाँ उसे वास्तविक सतनाम का परिचय प्राप्त होता है और वह अपने अंतर का सारा रहस्य अपनी आँखों से देख लेता है।

सब कुछ समझकर वह संसार-सागर से पार हो जाता है। वास्तव में शब्द पारस के समान है जो सांसारिक जीवरूपी लोहे को परमात्मा का रूप बना देता है। शब्द का प्रत्यक्ष अनुभव तभी प्राप्त होता है जब सतगुरु से मिलाप होता है।

सतगुर ग्यान दीपक बरै, जो मन होखे थीर।
कहे दरिया संसै मिटै, हरै सकल सभ पीर॥[45]

बरै=जलना; **थीर**=स्थिर; **पीर**=पीड़ा, दर्द।

जब साधक का मन स्थिर हो जाता है तो सतगुरु के दिए हुए नाम के ज्ञान की ज्योति अंतर में जल उठती है जिससे सारे संशय और दुःख-दर्द दूर हो जाते हैं।

प्रथम प्रेम मगु मोहकम पाऊँ। यार मिलन कर खोजहुं ठाऊँ॥
पहिले सतगुर से करु प्रीती। सत्त बचन मानहु परतीती॥...
सोइ देखावहिं सकल ठेकाना। आपु में आपु मकान अपाना॥[46]

मगु=मार्ग; **मोहकम**=मज़बूती से, जमकर; **पाऊँ**=पाँव रखो; **ठाऊँ**=स्थान; **परतीती**=विश्वास; **ठेकाना**=स्थान, आंतरिक मंज़िल; **मकान**=घर।

प्रियतम परमात्मा से मिलने का ठिकाना ढूँढ़ने के लिए सबसे पहले प्रेम के मार्ग पर मज़बूती से क़दम रखो। प्रेम-मार्ग पर क़दम रखने के लिए सतगुरु से प्रीति करो और उनके वचनों को सत्य मानकर उन पर विश्वास करो। वह मनुष्य को अपने अंतर में ही अपना-धाम और सारे आंतरिक स्थान दिखा देते हैं।

एक तन छूटै भक्ति बिबेखा। सो जिव परे साहब के लेखा॥
जो जन भग्ती तन मन लागा। सत्त सब्द से भौ अनुरागा॥

ताकर जीवन जन्म सुधारा। जो निजु मानै सब्द हमारा॥
सत्त चरन निजु करे नेवासा। ताके बिघिनि ना आवै पासा॥
सत्तनाम में रहे समाई। चीन्हे काल कुबुधि के भाई॥...
सत सुबास अम्रित रस चाखै। सजीवनि नाम सुरति तहं राखै॥[47]

बिबेखा=विवेक, समझ; **अनुरागा**=प्रेम; **नेवासा**=निवास; **बिघिनि**=विघ्न।

जो मनुष्य-जन्म का उद्देश्य समझ लेता है और विवेक द्वारा भक्ति करके अपने अंदर सच्ची भक्ति-भावना जाग्रत कर लेता है, ऐसा जीव परमात्मा के लेखे में पड़ जाता है। जो जीव तन-मन से परमात्मा की भक्ति में लग जाता है, उसका सच्चे शब्द से प्रेम हो जाता है। जो सतगुरु के बताए हुए शब्द को मानता है उसका मनुष्य-जन्म सुधर जाता है। जो सतगुरु के आंतरिक चरणों में निवास करता है, उसके निकट संसार के कोई भी विघ्न नहीं फटकते। वह काल की कुबुद्धि को पहचान लेता है और सतनाम में समा जाता है। जो अपनी सुरत को नामरूपी संजीवनी में लगाकर रखता है, उसे सच्चे सुगंधित नामरूपी अमृत का रस चखने को मिलता है।

इसिक प्रेम पंथ बड़ कठिनाई। ठग बटवार लगै बहु भाई॥

दरिया डरु मत ताहिसै, ग्यानवान तोहि पास।
मदत बेबाहा साह का, ठग बटवारन्हि नास॥[48]

इसिक=इश्क़; **बटवार**=राहगीरों को लूटनेवाला; **मदत**=सहायता; **बेबाहा**=अनमोल, परमात्मा; **साह**=शाह, सच्चा शहंशाह; **नास**=नष्ट करना।

इश्क़ यानी प्रेम की राह बहुत कठिन है। इस राह में बहुत से ठग और लुटेरे लगे रहते हैं। दरिया साहिब अपने शिष्य को कहते हैं कि तुम्हें इनसे डरने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि तुम्हारे साथ ज्ञानी सतगुरु हैं अर्थात् अंतर के मार्ग में संतों के शिष्यों के साथ उनका सतगुरु हर क़दम पर साथ रहता है। सच्चे शहंशाह परमात्मा की मदद से ये सब ठग और लुटेरे नष्ट हो जाएँगे।

स्त्री पुर्ष एक मत करिए॥ एके मता दुनों मिलि धरिए॥
होए जुगल तब भक्ति बिरागा। तत्तु विचारि प्रेम निजु पागा॥[49]

जुगल=जोड़ा (दोनों का एक साथ होना); **पागा**=डूबना, सराबोर होना।

गृहस्थ आश्रम में रहते हुए जब पति-पत्नी एकमत होकर प्रभु-भक्ति करते हैं और दोनों एक ही विचार को मानते हैं, तब दोनों की भक्ति और वैराग्य की साधना ठीक तरह से होती है। तब वे जीवन के सार तत्त्व को समझकर प्रभु-प्रेम से सराबोर हो जाते हैं।

साहब इमि कहिये समुझाई। गृहि में नर किमि भक्ति बचाई॥...
काल फंद यह किमि मुक्तावै। छपलोक मंह किमि करि जावै॥
साहब बचन जो कहा बिचारा। सत पुरुष है नाम हमारा॥
एहि तत्व गहे लौ लाई। ताके काल निकट नहिं जाई॥
उठत बैठत सुरति समावै। दिव्य दृष्टि में प्रेम लगावै॥
छापा सनद मोहर टकसारा। इमि करि उतरे भवजल पारा॥
देवा देई धोखा सभ त्यागे। सत्त बिचारि सोई निजु जागे॥
तेजे भरम भाव सत गहई। निज गहि प्रेम तुमहिं से लहई॥

उठत बइठत सत पुर्ष में, रहें शब्द लवलीन।
देइ दोहाई सत्य के, इमि करि काल मलीन॥[50]

गृहि=गृहस्थी; **लौ लाई**=ध्यान लगाकर; **सनद**=सबूत, प्रमाण; **टकसारा**=सिक्का, सिक्के ढालनेवाली टकसाल; **देवा देई**=देवी-देवता; **भाव**=प्रेम; **मलीन**=फीका पड़ना, मुरझाना, समाप्त होना।

दरिया साहिब के समय में लोगों में यह भ्रामक धारणा थी कि गृहस्थ आश्रम में रहते हुए परमार्थ की साधना नहीं हो सकती। इसी बारे में वह अपने सतगुरु से पूछते हैं कि हे स्वामी! मुझे यह समझाएँ कि गृहस्थ में रहते हुए मनुष्य कैसे भक्ति कर सकता है? वह काल के फंदे से मुक्त

होकर कैसे सतलोक जा सकता है? इस पर उनके सतगुरु कहते हैं कि हमारे (सतगुरु) द्वारा दिए नाम को सत्पुरुष का प्रकट रूप समझो। जो हमारे शब्द यानी नाम के तत्त्व को ध्यान लगाकर ग्रहण करता है, काल उसके निकट भी नहीं जा सकता। शिष्य को चाहिए कि वह उठते-बैठते हर समय सुरत को शब्द-धुन के साथ जोड़े रखे तथा अंतर में जाग्रत हुई दिव्य-दृष्टि से प्रभु-प्रेम में लीन रहे। सतगुरु जिस शिष्य पर परमार्थ के सिक्के की मोहर लगा देते हैं, वह संसार-सागर से पार उतर जाता है। शिष्य को चाहिए कि वह शब्द की साधना करते हुए देवी-देवताओं के धोखे में न आए। जो सत्य का चिंतन करता है, उसे जाग्रति प्राप्त होती है। इस प्रकार जब वह भ्रमों को त्यागकर प्रेम के मार्ग को अपना लेता है तो इस सच्चे प्रेम के द्वारा वह सतगुरु से परम-पदार्थ को प्राप्त कर लेता है। ऐसा साधक उठते-बैठते परमात्मा के शब्द में लीन रहता है तथा सदा सतगुरु या सच्चे नाम की ही दुहाई देता है, जिससे काल का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

जोगी मो से पूछहु आई।
जो तोहरे घर ज्ञान नहीं है झूठे जोग कमाई॥
मन के उक्ति काम नहिं आवे उलटा पलटा जोरे।
बिनु कनहरियै नाव चलावे अवघट लेके बोरे॥
पांच तत्तु का भेद बतावों जल थल अगिनि अकासा।
कायापरचे सोधि देखावों तब तुम होइहौ दासा॥
सुखमनि सांपिनि भेद बतावों कहों अमीका घाटा।
ऊपर मूल साखा है नीचे ताकर कहिं देउं बाटा॥
कहें दरिया एह जोग जुक्ति है सतगुर भेद बताया।
सूई अग्र द्वार जहंवां है तहवां सुरति समाया॥[51]

उक्ति=उपाय, तरकीब; **जोरे**=जोड़ना; **कनहरियै**=नाविक; **अवघट**=विकट स्थान; **बोरे**=डुबोना; **सोधि**=ढूँढ़ना, खोज करना; **दासा**=सेवक;

सुखमनि=सुषुम्ना; **सांपिनि**=कुंडलिनी; **अमीका घाटा**=अमृत का घाट; **साखा**=टहनी; **बाटा**=राह; **सूई अग्र**=सूई का सुराख़।

हे योगी! यदि तुम मुझ से आकर योग के बारे में पूछो तो मैं तुम्हें बताऊँगा कि वास्तव में योग-साधना है क्या। यदि तुम्हें अपने अंतर में परमात्मा को प्राप्त करने का ज्ञान नहीं हुआ तो फिर तुम्हारी योग-साधना व्यर्थ है। परमात्मा से मिलाप करने के लिए मन के बताए हुए उपाय जीव के किसी काम नहीं आ सकते, क्योंकि हमारा मन उलटा-सीधा जोड़कर तरकीबें सोचता है। यह तो वैसा ही है जैसे नाविक के बिना यदि नाव चलाई जाए तो वह सागर में विकट स्थान में पहुँचकर डूब जाती है। मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि पाँच तत्त्वों का भेद भी तुम्हें बताता हूँ। तुम तभी अंतर से सच्चे शिष्य बन पाओगे जब तुम अपने शरीर में अनुसंधान (खोज) करके मेरे कहे भेद को प्रत्यक्ष देख लोगे। मैं तुम्हारे अंतर में स्थित सुषुम्ना नाड़ीरूपी साँपिनी तथा अमृत के घाट का रहस्य तुम्हें बताता हूँ। जिस अविनाशी परमात्मारूपी वृक्ष का मूल ऊपर की ओर तथा टहनियाँ नीचे की ओर कही गई हैं, मैं तुम्हें उस तक पहुँचने का मार्ग भी बताता हूँ। योग की असली युक्ति, जिसका भेद केवल सतगुरु बताते हैं, यही है कि शरीर में सूई के सुराख़ के समान अत्यंत सूक्ष्म द्वार में पहुँचकर सुरत शब्द में समाती है।

है कोइ जोगी एह मत पावै। प्रेम पिवे अलिमस्त कहावै।
मेरु मंडल आसन कहं साधे। पांच भुअंगम बिखिधर राधे॥
गगन मंडल में आसिक यारा। जोग न जाए तेरो जुक्ति पियारा॥
मन गयंद ज्ञान करु आंकुस जुक्ति जंजीर लगावै।
नाम अमल ते भौ मतवाला झोंक में झोंक सो आवै॥
अगम पंथु पगु धीरे-धीरे ज्ञान रतन लिए आवै।
काम क्रोध दुस्ट भौ हीना जग जीते सो जावै॥
सतगुर सनदी लखै जो कोई सोवत जागत पावै।
कहें दरिया किछु संसे नाहीं बहुरि ना भौ जल आवै॥[52]

अलिमस्त=बेफ़िक्र, मस्ताना; **मेरु मंडल**=मेरुदंड; **भुअंगम**=साँप; **बिखिधर**=विषधर; **राधे**=वश में करना; **आसिक यारा**=प्रेमी का प्रियतम; **गयंद**=हाथी; **आंकुस**=अंकुश; **अमल**=नशा; **हीना**=नष्ट; **सनदी**=सबूत, प्रमाण; **बहुरि**=फिर से, पुनः।

है कोई ऐसा योगी जो हमारी बात को समझ पाए और प्रेम का प्याला पीकर मस्ताना कहलाए? मेरुदंड और आसनों की साधना करने का क्या लाभ! तुम अपने अंतर के काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकाररूपी पाँच विषैले साँपों को अपने वश में करो। ऐ प्यारे! अंतर में गगन-मंडल में जहाँ हमारा प्रियतम, वह परमात्मा निवास करता है, वहाँ न तो तेरे योग के द्वारा पहुँचा जा सकता है और न ही तुम्हारी किसी भी प्रकार की हठयोग की युक्ति वहाँ तक जा सकती है। मनरूपी हाथी को गुरु से प्राप्त ज्ञान के अंकुश से वश में करके उनके द्वारा बताई हुई युक्ति की ज़ंजीर से उसे बाँधो। इस प्रकार जब मन को नाम का नशा चढ़ता है तो वह मस्त होकर अंतर में झूमता है। तब साधक गुरु के बताए ज्ञानरूपी रत्न को लेकर प्रभु-प्राप्ति के अगम-पंथ पर धीरे-धीरे क़दम आगे बढ़ाता है। इस मार्ग पर केवल वही जा सकता है जो काम-क्रोध आदि दुष्टों को मारकर संसार में विजई हो जाता है। सतगुरु के दिए हुए परवाने के आधार पर जो भी प्रभु के धाम को देख लेता है, फिर सोते-जागते उसका ध्यान वहीं लगा रहता है। उसके सारे भ्रम दूर हो जाते हैं और वह फिर संसार-सागर में लौटकर नहीं आता।

जोगिया जो जुक्ति जानहि भजहि निर्मल ज्ञान।
सुनत धुनि उनुमुनी पलटी बिमल ब्रह्म अमान॥
जाप अजपा जपहु प्रानी सुरति सुखमनि तान।
इंगला पिंगला सुखमना सुधि रहत एक ठेकान॥
बंक नाल है खोडस कमल ताहां भौंर बास समान।
झलकत अमी ताहां जोति जगमग भौंर गोफा ध्यान॥

झरत झरि तहां अगम निर्मल प्रेम पद निरबान।
अरध ऊरध गगन गरजित बुंद सेंधु समान॥
फूले फूल सुबास परिमल दीबि द्रिस्टि मकान।
कहें दरिया भेद सतगुर हंस पहुँचे अमान॥[53]

उनुमुनी=अंतर में ध्यान लगना; **अमान**=असीम; **इंगला...सुखमना**=इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना; **ठेकान**=स्थान; **बंक नाल**=अंतर में पहले रूहानी मंडल सहस्रदल कमल और दूसरे रूहानी मंडल त्रिकुटी को मिलानेवाला टेढ़ा और बारीक़ रास्ता; **खोडस**=सोलह; **बास**=सुगंधि; **समान**=समा जाना; **भौंर गोफा**=भँवरगुफा: अंतर में चौथा रूहानी मंडल जहाँ पहुँचकर आत्मा को यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि वह और परमात्मा वास्तव में एक ही हैं। इसी लिए इस अवस्था को सोऽहं भी कहा जाता है; **अरध**=अंदर; **ऊरध**=ऊपर से; **सेंधु**=समुद्र; **परिमल**=सुगंधित; **दीबि द्रिस्टि**=दिव्य दृष्टि; **मकान**=धाम; **अमान**=असीम परमात्मा।

हे योगी! जो मनुष्य परमात्मा से मिलने की युक्ति जानता है वह गुरु के बताए हुए निर्मल ज्ञान की प्राप्ति के लिए भजन करता है। जब जीव अपने अंतर में शब्द-धुन को सुन लेता है तो बार-बार वही रस लेने के लिए उसका ध्यान बाहरी संसार से पलटकर अंतर्मुख होकर निर्मल और असीम परमात्मा में लग जाता है। वह सुषुम्ना के रास्ते सुरत को खींचकर उस अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ बिना जीभ हिलाए ही सुमिरन जारी रहता है। यह अवस्था वहाँ पहुँचकर प्राप्त होती है जहाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ एक ही स्थान पर आकर मिलती हैं अर्थात् दूसरे रूहानी मंडल त्रिकुटी में नाम के सरोवर में कर्मों की मैल को उतारने के बाद यह अवस्था प्राप्त होती है। अंतर में सोलह दलों का कमल है जिसकी सुगंधि से मनरूपी भौंरा मस्त बना रहता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी इसकी सेवा में लगे रहते हैं। सहस्रदल कमल को पार करने पर मिलनेवाली बंकनाल भी इस देही के अंदर ही पाई जाती है। वहाँ अमृत की वर्षा होती रहती है

तथा प्रकाश जगमगाता रहता है। इसके आगे आत्मा भँवरगुफा को पहुँचती है जहाँ अगम और निर्मल अमृत की झड़ी लगी रहती है, परमात्मा से प्रेम की यही अवस्था सच्चा निर्वाण है। वहाँ अंतर में ऊपर गगन में गर्जना होती रहती है और आत्मारूपी बूँद परमात्मारूपी समुद्र में समा जाती है। दिव्य-दृष्टि से दिखनेवाले उस निज-घर में आत्मा को आनंदित करनेवाली ख़ुशबू से सुगंधित अनेक पुष्प खिले हुए हैं। केवल सतगुरु से इस भेद को पाकर ही पवित्र आत्माएँ उस असीम परमात्मा तक पहुँच सकती हैं।

अगम गुर ज्ञान से ब्रह्म पहचान ले
बिना पहचान का कथे ज्ञानी।
बिना पहचान अजान कहां जाइहो
बिना ठहराव कहां ठवर ठानी।
बिना दिबि द्रिस्टि एह जीव कहां जाइहै
उर्ध मुख ध्यान धरि बिकल बानी।
अरध अंधिआर ताहां चोर चारिउ मुसे
बिना सत सब्द जिव होत हानी।
बिना मगु देखि सभ भेख भर्मत फिरे
नहि जोग जुक्ति रस रोग आनी।
खाली सभ खलक है पलक मुंदे रहे
खोलु दिबि द्रिस्टि सोई सिद्ध ज्ञानी।
सोइ साधु भरि पूर है सूर सनमुख
सही आपु में आपु जिन्हि उलटि आनी।
कहें दरिया सत सब्द बिनु पार
नहिं वार भटकत फिरे मूढ़ प्रानी॥[54]

कथे=कहना; **अजान**=नासमझ; **ठवर**=ठिकाना; **उर्ध**=ऊपर; **अरध**=अंदर; **चारिउ**=चारों ओर से; **मुसे**=चोरी करना; **मगु**=मार्ग; **भेख**=ढोंगी; **भर्मत फिरे**=भरमता फिरे; **खलक**=संसार; **वार**=इस ओर, संसार में; **मूढ़**=मूर्ख।

ऐ ज्ञानी! गुरु से अगम का ज्ञान प्राप्त करके तू परमात्मा की पहचान कर ले। बिना पहचान किए तू क्या ज्ञान कहता फिरता है? अरे नासमझ! परमात्मा की पहचान किए बिना तू कहाँ तक जा पाएगा? शब्द-धुन के आधार के बिना तुझे ठिकाना कहाँ मिलेगा? ऐ इनसान! दिव्य-दृष्टि खुले बिना यह जीव अंतर में अँधेरे में भला कहाँ जा सकता है? ऊपरी ध्यान धरने से तो आंतरिक वाणी अप्रकट ही रहेगी, वह कभी प्रकट नहीं हो सकती। जीव के अंतर में व्याप्त अंधकार में चारों ओर चोर चोरी कर रहे हैं और सच्चे शब्द के प्रकाश के बिना उसका नुक़सान होता ही रहता है। परमात्मा से मिलने का रास्ता देखे बिना सभी दिखावा करनेवाले ढोंगी साधु भटकते फिरते हैं। सच्चे योग की युक्ति के रस के बिना वे संसार में तरह-तरह के मन के रोगों के शिकार हो रहे हैं। सारी दुनिया परमार्थ के सच्चे ज्ञान से ख़ाली पड़ी है, सभी की आंतरिक आँख बंद पड़ी है। जो कोई भी अंतर में अपनी दिव्य-दृष्टि खोल लेता है, वही सच्चा सिद्ध ज्ञानी है। वही पूरा साधु और सच्चा सूरमा है जो ध्यान को बाहरी संसार से उलटकर ख़ुद अपने अंतर में आ गया है। सच्चे शब्द के बिना मूर्ख प्राणी इस संसार में ही भटकते फिरते हैं, कोई भी भवसागर से पार नहीं जा सकता।

सतगुरु के लक्षण

सतगुरु परमात्मा के प्रकट रूप होते हैं। अत: परमात्मा के ही समान उनके अलौकिक लक्षणों का यथार्थ रूप से वर्णन करना किसी के लिए संभव नहीं है। फिर भी परमार्थ के खोजियों के लिए उनके कुछ प्रमुख लक्षणों का यहाँ संकेत किया जाता है।

सतगुरु का सबसे प्रमुख लक्षण यह है कि वह शब्द यानी नाम की दीक्षा देते हैं। जीवों को नाम का भेद देकर और उनसे नाम की साधना करवाकर वह उन्हें पापों से मुक्त करते तथा सत्पुरुष यानी परमात्मा से मिलाते हैं। जैसे वृक्ष दूसरों को छाया और फल प्रदान करता है तथा नदी दूसरों को जल देती है, वैसे ही संत या सतगुरु केवल दूसरों का कल्याण

करने में लगे रहते हैं। वह सबसे बड़े परोपकारी होते हैं। जीवों को काल के जाल से मुक्त कर, उन्हें वापस अपने धाम में ले जाना ही उनके संसार में आने का एकमात्र उद्देश्य होता है।

सतगुरु सत्य के मूर्तिमान् रूप होते हैं और सदा सचाई का जीवन बिताते हैं। जल में रहते हुए भी जल से अछूते रहनेवाले कमल के पत्ते के समान वह संसार में रहते हुए भी संसार के विकारों से निर्लिप्त रहते हैं। मुरग़ाबी जल में रहती है, फिर भी उसके पंख जल से नहीं भीगते। वैसे ही संतजन भी संसार में रहते हुए संसार की बुराइयों से अछूते रहते हैं। परमात्मा के प्रेम में मस्त संतजन कभी नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करते। नाम के धनी संतों के पास माया और काम-वासना कभी फटकने नहीं पातीं। जैसे आकाश में अंडा देनेवाले अललपक्षी का अंडा ज़मीन पर गिरने से पहले ही फूट जाता है और उसका बच्चा ऊपर ही ऊपर आसमान में उड़ जाता है, वैसे ही सत्पुरुष के पुत्र संत-सतगुरु का ध्यान भी सदा ऊपरी मंज़िलों में ही रहता है और कभी भी संसार के निचले स्तर पर नहीं उतरता। वह दया और प्रेम के अगाध भंडार होते हैं और उनकी आँखों से सदा दया और प्रेम की किरणें निकलती रहती हैं जिससे अनुरागी जीव उनका दर्शन करते ही उनके प्रेम में मस्त हो जाते हैं। उनकी विनम्रता, सहनशीलता और क्षमा की कोई सीमा नहीं होती। जैसे पहाड़ बूँदों के आघात को सहन करता है, वैसे ही संतजन भी संसार के अपमान और निंदा को धैर्य और दयापूर्वक बरदाश्त कर लेते हैं।

सतगुरु सच्चे दाता होते हैं। वह सबको देते हैं, किसी से कुछ लेते नहीं। वह हक़-हलाल की कमाई से अपनी जीविका चलाते हैं और कभी किसी से भिक्षा नहीं माँगते। ज्ञान का अथाह समुद्र होने पर भी वह सदा गंभीर बने रहते हैं। व्यर्थ का वाद-विवाद करके वह अपने ज्ञान का प्रदर्शन नहीं करते। केवल सच्चे जिज्ञासुओं के सामने ही वह परमार्थ के कुछ गूढ़ रहस्यों को खोलते हैं। बाहरी धार्मिक वेष-भूषा और दिखावटी पूजा-पाठ को वह कोई महत्त्व नहीं देते। संत और असंत बाहर से एक जैसे भले ही दिखाई देते हों, पर उनमें महान् अंतर होता है। कमल और जोंक एक साथ ही तालाब में पैदा होते हैं।

पर कमल अपनी सुगंधि से हृदय को प्रसन्न कर देता है, जबकि जोंक हमारा रक्त चूस लेती है। संत नीर-क्षीर-विवेकी हंस जैसे होते हैं। वह दुर्गुणों को त्यागकर केवल सद्गुणों को ग्रहण करते हैं। हमारे अवगुणों की ओर वह ध्यान नहीं देते। वह सदा हमारे हृदय की मैल साफ़ करने में ही लगे रहते हैं।

साधु-संत या सतगुरु की महिमा अपरंपार और अवर्णनीय है। वह स्थान धन्य हैं जहाँ संत-सतगुरु निवास करते हैं और वह कुल धन्य है जिसमें वह जन्म लेते हैं। उनके चरणों की शरण लेकर ही जीव आवागमन के चक्र से छुटकारा पाकर परमात्मा के अमर-धाम में आनंद मनाते हैं।

सतगुरु सो सत शब्द दृढ़ावे॥ हंस बोधि छपलोक पठावे॥
मन कर्ता का करे विचारा। सो गुरु ज्ञान-सिन्धु विस्तारा॥
ताके हाथ मुक्ति है सांचा। जेहि नहिं भ्रम वचन है कांचा॥[55]

बोधि=ज्ञान देना, चेताना; **विस्तारा**=अपार।

सतगुरु वह होते हैं जो सच्चे शब्द का अभ्यास करवाते हैं तथा जीवों को चेताकर सतलोक पहुँचाते हैं। ऐसे सतगुरु मन और सच्चे कर्ता के अंतर पर विचार कर, यह समझाते हैं कि मन को काल का रूप तथा कर्ता को दयाल पुरुष का रूप समझना चाहिए। ऐसे सतगुर का ज्ञान अपार सागर की तरह विस्तृत होता है। उन्हें संसार का कोई भ्रम नहीं होता। उनका वचन कभी भी मिथ्या नहीं होता। ऐसे सतगुरु के हाथों ही जीव की सच्ची मुक्ति संभव है।

सोई असल टकसार कहावे। जो यह सनदि हजूरी पावे॥
बीचहिं छापा सनदि बनावे। जम्ह जगाति ताहि संतावे॥...
जाके नाम मूल उजियारा। बरे जोति तहां निर्मल सारा॥[56]

टकसार=सिक्का ढालने की जगह; **सनदि हजूरी**=परमात्मा के हुक्म का प्रमाण-पत्र; **जगाति**=कर वसूलनेवाला; **संतावे**=सताना, यातना देना; **बरे**=जलना।

असली सिक्का ढालनेवाला वही होता है जिसके पास ऐसा करने का आधिकारिक प्रमाण-पत्र हो। इसी प्रकार जिसे परमात्मा के हुक्म से जीवों को नाम का भेद देकर सतलोक ले जाने का अधिकार प्राप्त होता है, वही सच्चा सतगुरु है। पर जो परमात्मा के हुक्म के बिना जीवों को नाम का भेद देने का ढोंग करता है यानी स्वयं अपनी मर्ज़ी से परमार्थ का नक़ली सिक्का ढालने का अवैध कार्य करता है, कर्मों का हिसाब माँगनेवाले यमदूत उसे इस अपराध के लिए तरह-तरह की यातनाएँ देते हैं। जबकि जिसके अंतर में सबके आदि-स्रोत नाम का प्रकाश प्रकट हो जाता है, उसके अंतर में नाम की निर्मल ज्योति हमेशा जलती रहती है।

टिका मूल निजु नाम है, रहो चरन चित लाए।
हंस बंस मुकुताइहैं, जिन्दा जग में आए॥[57]

टिका=शिरोमणि, सिरमौर; **मुकुताइहैं**=मुक्त करना; **जिन्दा**=देह-स्वरूप।

सच्चा नाम ही सबका मूल स्रोत तथा सबका सिरमौर है। इसलिए शब्द-स्वरूपी सतगुरु के चरणों में ध्यान लगाए रखो। देह-स्वरूप में संसार में आकर वह पवित्र आत्माओं को मुक्ति दिलाते हैं।

सतगुरु सत परम गुरु ज्ञाता। सुमिरत पाप जो करे निपाता॥
भव के भर्म सभे मिटि जाई। अटल अमर पद सो गुन गाई॥
आवागवन की संसे मेटिहैं। कोटि जन्म के दुख सब छुटिहैं॥[58]

निपाता=नष्ट; **संसे**=संशय, डर।

सतगुरु स्वयं सत्पुरुष तथा सबसे महान् ज्ञानी गुरु हैं। उनके बताए हुए सुमिरन से जीव के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, सारे सांसारिक भ्रम दूर हो जाते हैं तथा वह अटल-अविनाशी परम-पद को प्राप्त करके परमात्मा का गुणगान करने लगता है। जीव को आवागमन का भय नहीं रहता तथा उसके करोड़ों जन्मों के समस्त दुःख दूर हो जाते हैं।

तीनि लोक से बाहर बाता। तहाँ बसहिं वोए सतगुरु दाता॥[59]

वोए=वह।

संतों की बातें तीन लोक से परे अर्थात् चौथे लोक यानी सतलोक की हैं। सतगुरु जो दाता बनकर आता है, उसी सतलोक में निवास करता है।

सुखद संत गुन पर दुख हीता। जेंवो दुर्म सरिता जल थल हीता॥
परमारथ करि स्वारथ नाहीं। जेंवो जल बुड़त उबारहिं बाहीं॥[60]

हीता=हित, भलाई; **जेंवो**=ज्यों; **दुर्म**=वृक्ष; **बुड़त**=डूबना; **बाहीं**=बाँह।

जिस प्रकार वृक्ष दूसरों को फल देते हैं और नदी का जल शरीर को स्वच्छ और शीतल करके सबकी प्यास बुझाता है, पेड़-पौधों की सिंचाई के काम आता है और जिस प्रकार धरती, अच्छी या बुरी वस्तुओं और व्यक्तियों का बोझ उठाती और सबके लिए अन्न, फल आदि उपजाती है, उसी प्रकार संतों का भी यह गुण है कि वे दूसरों का दुःख दूर करके उनकी भलाई करते हैं और उन्हें सुख प्रदान करते हैं। जैसे कोई पानी में डूबते हुए किसी व्यक्ति की बाँह पकड़कर उसे बाहर निकालता है, उसी प्रकार संत भी संसार-सागर में डूबते जीवों को उबारते हैं। वे सदा दूसरों का कल्याण करने में ही लगे रहते हैं, संसार में उनका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं होता।

जाके मूल नाम मनिमाला। सोई सन्त हैं ज्ञान रिसाला॥
बिना मूल ज्ञान है खाली। सुरति करे अजपा जपे माली॥...
जाके ब्रह्म भेद यह भांती। सोइ सन्त साधु की जाती॥
कहे दरिया समुझो यह ज्ञाना। सतगुर से पावे परवाना॥[61]

मनिमाला=मणियों की माला; **रिसाला**=रसाल, मधुर, सुंदर; **खाली**=खोखला; **अजपा जपे**=त्रिकुटी यानी दूसरे रूहानी मंडल ब्रह्म में नाम के सरोवर में कर्मों की मैल को साफ़ करने के बाद आत्मा की निरंतर शब्द-धुन को सुनते रहने की अवस्था; **माली**=माला; **परवाना**=आज्ञापत्र, हुक्मनामा।

जो आदि स्रोत नामरूपी मणियों की माला को धारण करनेवाले हैं अर्थात् जो शब्द-स्वरूपी और शब्द में लीन रहनेवाले हैं, वे ही मुक्ति का सुंदर ज्ञान देनेवाले संत हैं। इस मूल शब्द के बिना ज्ञान खोखला है। जिसकी सुरत अपने-आप चलते रहनेवाले अजपा-जाप की माला जपना शुरू कर देती है और इस प्रकार ब्रह्मलोक को पार करके उसका पूरा रहस्य जान लेती है, उसे ही साधु कहते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि इस ज्ञान को समझ लो कि मुक्ति प्राप्त करने का आज्ञापत्र केवल सतगुरु से ही प्राप्त किया जा सकता है।

संत साधु मिलि करै बखाना। केवल निरभै नाम अमाना॥
माया चिन्है संत है सोई। ग्यानि भगति का करै बिलोई॥[62]

निरभै=भयरहित करनेवाला; **अमाना**=असीम; **बिलोई**=मथना, साधना करना।

साधु-संत सभी मिलकर केवल भयरहित करनेवाले असीम नाम का ही वर्णन करते हैं। संत उसे ही कहते हैं जो सच्चे ज्ञान और भक्ति की साधना करता है।

संत सदा गुन सरस हैं, अनरस कबहिं ना होय।
दुजा दुविधा खोइ के, ग्यान समीपे सोय॥[63]

सरस=रस से भरे हुए; **अनरस**=नीरस, फीके; **दुजा**=द्वैत-भाव।

संतों का यह गुण है कि वे सदा नाम के रस से भरे होते हैं, वे संसार के नीरस विषय-भोगों में नहीं फँसते। वे ईर्ष्या-द्वेष, पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि, द्वैत भाव और दुविधा को त्यागकर परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करके शांति का अनुभव कर चुके होते हैं।

साधु सोइ जो दुरमति खोवै। सांच रहे अघ पातख धोवै॥
साधु सोइ कंवला जल माहीं। संग रहे जल परसत नाहीं॥
एहि बिधि रहे फिरे संसारा। ज्ञान बिचारि करे उपकारा॥[64]

दुरमति=खोटी मति, दुर्बुद्धि; **खोवै**=दूर करना, त्यागना; **अघ पातख**=पाप, दोष; **कंवला**=कमल; **परसत**=छूना, भीगना।

साधु वह होता है जो जीवों की दुर्बुद्धि को दूर करता है और स्वयं सचाई की राह पर चलते हुए दूसरों के पापों और दोषों की मैल को धोकर पवित्र बना देता है। जिस प्रकार कमल-पत्र जल में होता है परंतु पानी में नहीं भीगता, उसी प्रकार साधुजन संसार में निर्लिप्त रहते हुए जीवों को परमात्मा का ज्ञान देकर उनकी भलाई करते रहते हैं।

साधु सोइ निर्मल गुनसारा। बारे द्रिस्टि करे उजिआरा॥
जौं मराल मन कबहिं न मैला। मन अव ग्यान तोल में तौला॥
कड़ी कमान घिंचै दिनराती। तेहि नहिं काल करे उतपाती॥
ताके पास कामिनि नहिं जाई। मस्त हाल देखि दूरि पराई॥
भांग अफीम पान नहिं खाई। झरे अमी चाखै लव लाई॥...
एक रस रहे एक गुन गावै। साधु लछन परगट तहां पावै॥[65]

गुनसारा=गुणों का भंडार; **बारे**=जलाना, प्रकाशित करना; **मराल**=हंस; **तोल...तौला**=तराजू में तुल जाना, रंग में रँगना; **कमान घिंचै**=धनुष को चढ़ाना; **उतपाती**=उपद्रव करना, परेशान करना; **कामिनि**=कामुक स्त्री; **पराई**=अन्यत्र; **झरे**=बरसना; **अमी**=अमृत; **लव लाई**=लीन होना, एकटक ध्यान लगाना; **लछन**=लक्षण।

साधु निर्मल गुणों के भंडार होते हैं। वे अपनी आंतरिक दृष्टि को प्रकाशित करके अपने अंतर में उजाला कर लेते हैं। उनका मन सच्चे ज्ञान के रंग में पूरी तरह से रँगा हुआ होता है तथा वे इंद्रियों के रसों की गंदगी में उसी

प्रकार नहीं फँसते जैसे हंस गंदगी में नहीं लिपटता। वह दिन-रात शब्द के धनुष-बाण को चढ़ाकर रखते हैं अर्थात् शब्द में रमे होते हैं जिससे काल उन्हें तंग नहीं कर सकता। काम-वासना की दृष्टि से उनके पास कोई नहीं फटक सकता तथा उन्हें मस्ती की हालत में देखकर माया मोहिनी दूर से ही लौट जाती है। वे भाँग, अफ़ीम, पान आदि नशीली चीज़ों का सेवन नहीं करते, वे ध्यान लगाकर अंतर में बरस रहे अमृत का स्वाद लेते हैं। वे एक परमात्मा के रस में लीन रहते हैं तथा उस एक के ही गुण गाते हैं। साधुजनों में ये लक्षण प्रकट रूप से पाए जाते हैं।

भर्म कर्म कबहीं नहिं राखै। निश्चै ज्ञान प्रेम रस भाखै॥
दरिया दर देखे जो कोई। सोई भक्त साधु जन होई॥[66]

दर=द्वार।

जो जीवों को भ्रमित करनेवाले कर्मों में नहीं उलझते, जो निश्चय ही प्रभु के प्रेम-रस के ज्ञान का उपदेश करते हैं, जो जीवों को परमात्मा का द्वार दिखाते हैं, वे ही परमात्मा के सच्चे भक्तजन या साधुजन हैं।

बिनु साधे बांधे गए, साधु न कहिए सोय।
माया बेरी है बांकुरी, पगु में अटकी वोय॥[67]

साधे=साधना या अभ्यास करना; **बेरी**=ज़ंजीर; **बांकुरी**=टेढ़ी, कठिन; **पगु**=पाँव; **अटकी**=जकड़ी हुई।

ऐसे लोगों को साधु नहीं कहते जो शब्द की साधना के बिना संसार में बँधे हुए हैं तथा जिनके पाँव माया की कठिन बेड़ियों में जकड़े हुए हैं।

साधु राव न रंक है, साधन है गुरु ज्ञान।
सदा सर्वदा उदित हैं, काल हुआ पिसिमान॥[68]

राव=राजा; **रंक**=कंगाल; **उदित**=प्रकाशित; **पिसिमान**=परेशान, परास्त।

सच्चा साधु ही सच्चा राजा है, भले ही सांसारिक दृष्टि से वह राजा नहीं कंगाल लगता हो। उसके पास सांसारिक दौलत नहीं, पर गुरु-ज्ञान का साधन होता है जिससे वह सदा प्रकाशित रहता है। इसी से काल उससे परास्त हो जाता है।

साधु साधु सब कहत है, साधु समुझे वार।
अलल पक्ष कोई एक है, पंछी कोटि हजार॥
अललपछ का केंचुआ, गिरते किया विचार।
सुरति साधि चेतनी हुआ, जाए मिला परिवार॥[69]

वार=(काल का) आघात, बारी, अवसर, यहाँ इस मनुष्य-जीवन के दुर्लभ अवसर की पहचान रखने से आशय है; **अललपछ**=अलल पक्षी, संतों की वाणियों में इस पक्षी का वर्णन पाया जाता है जो आकाश में अंडा देता है तथा अंडा ज़मीन पर पहुँचने से पहले ही उसमें से बच्चा निकलकर वापस आकाश में उड़ जाता है; **केंचुआ**=बच्चा; **साधि**=निशाना साधना।

दुनिया में लोग बिना सोचे-समझे जिस-तिस को साधु कहते हैं, परंतु जिस प्रकार करोड़ों पक्षियों में कोई विरला ही अलल पक्षी होता है, उसी प्रकार असली साधु भी कोई विरला ही होता है जो मनुष्य-जीवन की दुर्लभता की भली-भाँति पहचान रखता है। इसलिए वह संसार के जाल में नहीं पड़ता। वह समझता है कि जीवात्मा का असली घर सतलोक है। आकाश से ज़मीन की ओर गिरते हुए अलल पक्षी के अंडे में विद्यमान बच्चा जब विचार करता है कि उसका असली घर कहाँ है तो वह अपने मूल स्थान को याद करके अंडे से बाहर निकलकर वापस आकाश में अपने परिवार में मिल जाता है। उसी प्रकार साधु भी अंतर में आत्मा की शब्द को सुनने की शक्ति की साधना करके चेतन अवस्था को प्राप्त कर लेता है तथा वापस जाकर उस परमात्मा से जा मिलता है जो सभी आत्माओं का मूल स्रोत है।

साधु जन मांगे नहिं, माँग खाय सो भाँड़।
सती पिसावनि ना करे, पिसि खाय सो राँड़॥[70]

भाँड़=नाच-गाने का पेशा करनेवाला मसख़रा; **सती**=पतिव्रता स्त्री; **पिसावनि**=चक्की पीसना; **राँड़**=वेश्या।

साधु-संत किसी से माँगकर अपना जीवन बसर नहीं करते। जो दूसरों से माँगकर खाता है वह तो नाच-गाने का पेशा करनेवाला नक़लची भाँड़ है। संतजन पतिव्रता स्त्री की तरह होते हैं जो एकमात्र पतिरूपी परमात्मा की सेवा में लगे रहते हैं, लेकिन जो अपने पति परमात्मा से विहीन हैं, वे घर-घर जाकर चक्की पीसते हैं अर्थात् लोगों के आगे अपनी दीनता दिखाते और हाथ फैलाते हैं।

बेबाहा के मत में संत बिराजित, आदि औ अन्त सदा सुख वोई॥...
अमृत अमर साथ सो सामर्थ, हाँथ पसारि ना माँगत रोई॥[71]

बेबाहा=अनमोल, परमात्मा; **मत**=मत, पंथ।

उस अनमोल परमात्मा के पंथ में संत सुशोभित होते हैं। उनका यह पंथ आदि से अंत तक सुखदायी होता है। जिनके साथ अमर कर देनेवाला अमृत और वह समर्थ परमात्मा होता है, वे किसी के आगे हाथ फैलाकर रोते हुए कभी नहीं माँगते।

कहे दरिया जब चरण तेरे लगा, दूसरा कौन जो जांच लीजे॥[72]

जांच=माँगना, याचना।

हे सतगुरु! जब यह दरिया आपके चरणों में लग गया है तो अब ऐसा और कौन है जिसके पास वह माँगने के लिए जाए?

ना मांगों ना जाचों जाई। जो भेजहु सो तुमहिं बड़ाई॥[73]

जाचों=याचना करना, माँगने के लिए प्रार्थना करना; **बड़ाई**=बड़प्पन।

हे सतगुरु! मैं न तो किसी से कुछ माँगता हूँ और न ही किसी के आगे भीख लेने के लिए हाथ फैलाता हूँ। जो भी आप मेरे लिए भेजते हैं वह सब आपकी ही बड़ाई है।

संत रहनि भौ बारिज बारी। सदा सुखी निरलेप बिचारी॥
जलकुकरी जल महं जो रहई। पानी पर कबहीं नहिं लहई॥...
अवघट घाट लखै सोइ संता। सो जन जानु सदा गुनवंता॥
अजपा जाप अनाहद नादा। तेजि भव भरम सो बादि बिबादा॥[74]

भौ=संसार; **बारिज**=कमल; **बारी**=जल; **निरलेप**=निर्लेप; **जलकुकरी**=जल में रहनेवाला पक्षी, मुरग़ाबी; **पर**=पंख; **अवघट**=विकट; **लखै**=देखना; **अनाहद नादा**=अनहद-धुन; **भव भरम**=संसार के भ्रम; **बादि**=व्यर्थ।

संत इस संसार में उसी प्रकार सदा सुखी और निर्लेप रहते हैं जैसे कमल जल में निर्लेप रहता है या जैसे पानी में रहते हुए भी मुरग़ाबी के पंख कभी भी पानी में नहीं भीगते। संत उसी गुणवान जन को कहते हैं जो अपने अंतर में विकट घाटियों को देख-समझकर उन्हें पार कर लेता है। संसार के भ्रमों और व्यर्थ के वाद-विवादों को छोड़कर वह निरंतर अनहद शब्द को सुनने में मस्त रहता है तथा उसके अंतर में नाम का सुमिरन अपने आप चलता रहता है।

चलि भवो पंथ संत मंत कीएऊ। पूछे वचन ज्ञान किछु कहेऊ॥
करे प्रेम वचन किछु कहिए। नहिं तौ मौन दसा होए रहिए॥
पहिले बोलव साखी दुइ चारी। ज्ञानी मिलहिं तो लेहिं बिचारी॥[75]

भवो पंथ=पंथ चल पड़ा; **साखी**=परमात्मा की कृपा को प्रकट करनेवाली बातें, संतों की उक्तियाँ; **दुइ चारी**=दो-चार, कुछ-एक।

संतों का पंथ इस संसार में चल पड़ा है। इसके लिए किसी विशेष प्रचार की आवश्यकता नहीं। यदि कोई संतों से परमार्थ का प्रश्न पूछता है तो ही वे कुछ कहते हैं। जब कोई उनसे प्रेम करता है, तब वे परमात्मा के बारे में कुछ बताते हैं, नहीं तो मौन रहते हैं। वे जीव का ध्यान परमात्मा की ओर मोड़ने के लिए पहले कुछ-एक साखियाँ सुनाते हैं और यदि उन्हें कोई परमात्मा का सच्चा ज्ञानी मिल जाए तो उससे विचार-विमर्श करते हैं।

इमि करि जग में संत सुजाना। जेंवो जल पुरइनि लेप न आना॥
गुन लेहिं घींचि ऐगुन देहि डारी। जेंवो जल मराल निर छीर सुधारी॥
साधु असाधु एक तन देखा। गुन होए बिलगि नाम सत रेखा॥
धन्य ग्राम संत जन ग्याता। रहे निकट सुने सत बाता॥
जलज जोंक उपजे जल साथा। रुधिर घींचि जिमि यह गुन गाथा॥[76]

जेंवो=ज्यों; **पुरइनि**=कमल; **लेप**=लिप्त; **घींचि**=खींचना, चूसना, ग्रहण करना; **ऐगुन**=अवगुण; **मराल**=हंस; **निर छीर**=नीर-क्षीर; **बिलगि**=अलग, पृथक्; **सत**=सच्चा; **जलज**=कमल; **गुन गाथा**=गुणों की गाथाएँ, समूह।

जिस प्रकार कमल जल में रहने पर भी जल से अछूता रहता है, वैसे ही संत भी इस संसार में रहते हुए संसार से निर्लेप रहते हैं। जिस प्रकार हंस पानी से दूध को अलग करके उसका पान करते हैं, उसी प्रकार संत भी गुणों को ग्रहण करते हैं तथा अवगुणों को त्याग देते हैं। साधु और असाधु का शरीर तो एक-सा ही दिखाई देता है, परंतु सच्चे नाम की विभाजक रेखा दोनों के गुणों को अलग करती है अर्थात् साधु शब्द-धुन का अभ्यासी होता है, जबकि असाधु को नाम का ज्ञान नहीं होता। वह स्थान धन्य है जहाँ ज्ञानी संतजन रहते हैं, जहाँ के निवासी उनके निकट

रहकर सच्चे नाम की बातें सुनते हैं। जिस प्रकार जोंक और सुगंधि देकर लोगों को आनंद देनेवाले कमल – दोनों साथ ही पानी में पैदा होते हैं, पर जोंक लोगों का ख़ून चूसती है, जबकि कमल आनंद प्रदान करता है; इसी प्रकार साधु और असाधु के गुणों को भी समझना चाहिए।

सतगुरु महिमा युग युग, जागृत जीव के पास।
दर्शन से पर्सन हुआ, किया कर्म का नास॥[77]

पर्सन=स्पर्श, मिलाप।

अंतर में जाग्रत हो चुके जीव युगों-युगों से सतगुरु की महिमा का गुणगान करते आ रहे हैं। वे बताते हैं कि सतगुरु के दर्शनों से ही परमात्मा से मिलाप होता है तथा कर्म नष्ट हो जाते हैं।

धन साहेब आमृत दियो, विष किन्हों सब दूर।
साली सुखा ते जल दियो, अन्न भया भरिपूर॥[78]

साली=धान का पौधा; **भरिपूर**=परिपूर्ण, भरपूर।

मेरे स्वामी, सतगुरु धन्य हैं जिन्होंने मुझे संसार के विषयरूपी विष से छुड़ाकर नामरूपी अमृत प्रदान किया। जैसे सूखते हुए धान के पौधों को पानी देने से भरपूर अनाज पैदा होता है, वैसे ही सतगुरु ने संसार में झुलसते मुझ जीव को नाम का भेद देकर परम आनंदमय परमात्मा से मिला दिया।

संत महिमा किछु कहि नहिं जाई। जिन्हि जिन्हि भजन नाम लवलाई॥
नाम निरखि जिन्हि करहिं बिबेखा। सत्तनाम निस्चै दिल देखा॥[79]

लवलाई=लवलीन होना, एकाग्र होना; **निरखि**=देखना; **बिबेखा**=विवेक, भले-बुरे की पहचान करने की शक्ति।

उन संतों की महिमा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता, जिन्होंने एकाग्र होकर नाम का भजन करके अपने अंतर में सच्चे नाम को साक्षात् देख लिया है। वे नाम का ही विचार और अभ्यास करते हैं। वे निश्चित रूप से अपने अंदर सतनाम यानी परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन कर चुके होते हैं।

साधु के महिमा कहि नहिं जाई। जैसे सेंधु जल थाह ना पाई॥
जैसे रबि ससि सबते ऊंचा। अवरि जीव जगत सब नीचा॥
थाके निगम साधु गुन गाई। सेस सहस्र फनि चरित सुनाई॥
आदि अंत थाके मुनि केता। साधु महिमा है सेंधु समेता॥

जल बिनु कमल न सोभही, मान सरोवर हंस॥
साधु जन्म असाधु घर, तब सोभे कुल बंस॥[80]

सेंधु=सिंधु, सागर; **अवरि**=अन्य; **निगम**=वेद; **सेस**=शेषनाग; **सहस्र फनि**=हज़ार फनों वाला; **समेता**=के समान; **बंस**=खानदान।

जिस प्रकार समुद्र के जल की थाह नहीं पाई जा सकती, उसी प्रकार संतों की महिमा भी कही नहीं जा सकती। उनकी अवस्था संसार के अन्य सभी जीवों से ऊँची होती है जैसे सूर्य और चंद्रमा धरती पर रहनेवाले सभी प्राणियों से ऊँचे होते हैं। जैसे धरती पर रहनेवाले सभी जीव सूर्य और चंद्रमा से नीचे हैं, वैसे ही संसार के सभी जीव संत से नीचे हैं। समस्त वेद तथा हज़ार फ़नों वाले शेषनाग भी साधुओं के गुणों का वर्णन करते-करते थक गए। साधुओं की महिमा समुद्र के समान है। जैसे अथाह समुद्र की थाह लगाना कठिन है, वैसे ही साधुजनों की महिमा का पता लगाने में कितने ही मुनि हार गए। जैसे कमल से जल सुशोभित होता है तथा हंसों से मानसरोवर की शोभी होती है, उसी प्रकार जब किसी असाधु के भी घर में साधु का जन्म होता है तब वह कुल या परिवार सुशोभित हो जाता है।

साधो सतगुर काके कहियै।
बूझि बिचार पढ़ो नर प्रानी भव सागर नहि बहिये॥
की कोइ ज्ञानी ज्ञाता कहियै की हरि पद अनुरागी।
की बेद पढ़ा कोइ भेद में राता की माया के त्यागी॥
की कोइ जोग जुक्ति से जागे भोग भसम करि दावै।
की निति नेउरी नेम करै की प्रीति पवन में लावै॥
की धुर्मपान पावता नीके मौनी मगन अकासा।
की दया धरम करे तीर्थ बर्त में त्यागे भूख पियासा॥
की लाए भभूत जटा सिर राखे काम क्रोध बिसरावै।
की जंगम जोगी सेवड़ा कहिये की वह घंट बजावै।
की ग्रिहि तेजि सेवै बनखंडे कंदमुल करे अहारा।
की डंड कमंडल फिरै उदासी करमे बहु बिसतारा॥...
एह सब भेख अलेख मता है बहु परिपंच सुनावै।
जैसे दरपन दरसन देखे प्रतिमा द्रिस्टि लगावै॥
सतगुर सो सत सब्द सनेही निगम नेति कहि गावै।
कहें दरिया दर सभते न्यारा जो कोइ भेद बतावै॥[81]

काके=किसको; **बूझि**=समझना; **की**=क्या; **हरि**=विष्णु; **अनुरागी**=प्रेम करनेवाला; **राता**=रमा हुआ, लगा हुआ; **दावै**=जलाना; **नेउरी**=न्योली, हठयोग में पेट के मल को साफ़ करने की क्रिया; **नेम**=नियम, धार्मिक क्रियाओं का पालन; **पवन**=प्राणवायु; **धुर्मपान**=धूम्रपान, भाँग आदि पीना; **नीके**=ख़ूब; **भभूत**=मस्तक पर लगाई जानेवाली भस्म; **बिसरावै**=भूलना, त्यागना; **जंगम**=लिंगायत संप्रदाय का साधु; **सेवड़ा**=जैन साधु; **ग्रिहि**=गृहस्थ; **करमे**=कर्मकांड; **भेख**=दिखावे का वेश धारण करनेवाला; **अलेख**=बेहिसाब, असंख्य; **परिपंच**=प्रपंच, ढोंग, आडंबर; **प्रतिमा**=प्रतिबिंब; **सब्द सनेही**=शब्द या नाम का प्रेमी; **नेति**=न+इति, यह भी नहीं, इतना ही नहीं, अवर्णनीय; **न्यारा**=निराला।

हे परमार्थ के साधको! सतगुरु किसे कहा जाता है? अरे मनुष्य! धर्म-ग्रंथों को विचारपूर्वक पढ़ो जिससे तुम इस संसार-सागर में बहने से बच जाओ। क्या बड़े भारी ज्ञानी को संत कहते हैं या फिर विष्णु भक्तों को? क्या वेदों को पढ़कर अनेक तरह के भेदभाव में लगा हुआ व्यक्ति संत होता है या मोह-माया को त्यागकर संन्यासी बना हुआ व्यक्ति? क्या हठयोग की साधना करके सांसारिक भोगों को जलाकर भस्म करनेवाला, नित्य-प्रति न्योली आदि यौगिक क्रियाएँ करनेवाला या प्राणयाम करनेवाला संत होता है? क्या ख़ूब सारी चिलमें पीकर मौन धारण करके आकाश को निहारने में ही मग्न रहनेवाला, तीर्थों में दया-धर्म के कार्य करनेवाला या भूख-प्यास को त्यागकर व्रत लेनेवाला संत होता है? क्या काम-क्रोध को भुलाकर सिर पर लंबी-लंबी जटाएँ रखनेवाले और मस्तक पर भभूत लगानेवाले को संत कहते हैं? या फिर किसी संप्रदाय के साधु, घंटे बजानेवाले, घर को त्यागकर जंगल में कंदमूल खानेवाले, डंडा और कमंडल उठाकर बहुत-से कर्मकांड करते हुए उदासी बनकर घूमनेवाले को साधु कहते हैं? असल में ऐसे बाहरी वेष-भूषा बनानेवाले लोगों के असंख्य मत केवल परमार्थ के नाम पर ढोंग करते हैं; ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति असल वस्तु को न देखकर दर्पण में उसके प्रतिबिंब को ही देखता रहे। वास्तव में सतगुरु तो उन्हें कहते हैं जो सच्चे नाम से प्रेम करते है, वेद जिनकी महिमा नेति-नेति कहकर गाते हैं तथा जो सबसे निराले परमात्मा के परम-धाम सतलोक का रहस्य जीवों को बताते हैं।

सोइ संत सुबुद्धि सुबैन निरबान सत सुक्रित को ध्यान नहिं ओरि तूले।
दाया दिदार एह दरद दिल में धरे आपने आप से कमल फूले।
महल मोकाम एह काम काबू किए मस्त गयंद जौं आपु झूले।
ज्ञान जंजीर एह जतन जुक्ति किए सील संतोख से सब्द बोले।
सत्त कपाट एह कुलुफ कुंजी दिये रतन एह जतन करि जक्त तोले।
हाट औ बाट में गहिर गूंगा डोले सब्द अनमोल कहिं जानि खोले।
सील समूह सोइ ज्ञान गुर अगम है देखि के मूल कहिं द्रिस्टि मेले।
कहें दरिया दरियाव में लाल है आपने आपु नहिं सत्त डोले॥[82]

सुबुद्धि=सुमति; **सुबैन**=सुंदर मधुर-वचन; **निरबान**=मुक्ति; **सत सुक्रित**=सच्चा सतगुरु; **ओरि**=और, अन्य; **तूले**=तुलना करना; **दाया**=दया; **दिदार**=दर्शन, मूर्तरूप; **दरद**=दर्द, सहानुभूति; **काबू**=वश करना; **गयंद**=हाथी; **सील**=शील, पवित्र आचरण; **सत्त**=नाम; **कपाट**=द्वार; **कुलुफ**=ताला; **कुंजी**=चाबी; **जक्त**=जगत्, संसार; **तोले**=तोलना; **हाट... में**=सर्वत्र व्यवहार करते हुए; **जानि**=समझ-बूझकर; **अगम**=अथाह; **मूल**=असलियत; **द्रिस्टि मेले**=दृष्टि डालना, दया करना; **दरियाव**=समुद्र; **लाल**=रत्न; **सत्त**=नाम; **डोले**=विचलित होना।

संत वही होते हैं जो सुंदर वचनों से युक्त हों और जिन्होंने मुक्ति की अवस्था को प्राप्त किया हो। ऐसे सतगुरु के ध्यान की तुलना किसी और चीज़ से नहीं की जा सकती। वे दया की साक्षात् मूर्ति होते हैं तथा उनके हृदय में दूसरों के प्रति सहानुभूति होती है। उनका हृदय-कमल अपने आप खिला रहता है। शरीररूपी महल के असली ठिकाने पर पहुँचकर वे मस्त हाथी के समान झूमते हुए काम को अपने वश में कर चुके होते हैं। वे परमात्मा के सच्चे ज्ञान की युक्ति अपनाकर पवित्र आचरण और संतोष के साथ शब्द-मार्ग का उपदेश देते हैं। नामरूपी ख़ज़ाने के दरवाज़े पर लगे ताले की चाबी सतगुरु के हाथ में होती है। वे इस रत्न को बड़े यत्न से तोलकर (समझ-बूझकर) संसार को देते हैं। वे गंभीर और मौन रहते हुए सर्वत्र घूमते फिरते हैं परंतु केवल कहीं-कहीं पर ही वे समझ-बूझकर अनमोल शब्द का भेद खोलते हैं। सतगुरु ज्ञान और शील के अथाह सागर होते हैं। वे जीव की असलियत को देखकर ही कहीं अपनी दया की दृष्टि उस पर डालते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि संत संसाररूपी समुद्र के रत्न होते हैं। वे स्वयं सत्य और अविनाशी होते हैं।

जग में संत भये कैसे भारी।
काट कुश बनराव सहतु है संत सहैं जग गारी॥
जैसे समुद्र सकल जल निजवे संतन गमि विचारी।

जैसे हीरा सहै घन चोटहिं कबहीं न लागत कारी॥
बुंद अघात सहै गिरि जैसे संत धक्का निरुआरी।
कहे 'दरिया' सिरताज सोई है ताकी मैं बलिहारी॥[83]

भारी=महान्; **काट कुश**=काँटे और नुकीली झाड़ियाँ; **बनराव**=शेर; **गारी**=गाली; **सकल**=सारा; **निजवे**=पचा लेना, अपने आप में रख लेना; **गमि**=पहुँच, ज्ञान; **कारी**=काला या मलीन होना; **अघात**=आघात, चोट; **गिरि**=पर्वत; **निरुआरी**=निवारण करना, बिना परवाह किए, बरदाश्त करना; **सिरताज**=सिरमौर, सरताज; **ताकी**=उसकी।

संसार में कैसे-कैसे महान् संत हुए हैं! जिस प्रकार शेर जंगल में नुकीले झाड़ों और काँटों को सहन करता है, उसी प्रकार संतों ने दुनिया की गालियों और अपमान को सहन किया है। जिस प्रकार समुद्र सारे पानी को अपने अंदर पचा लेता है, संतों की पहुँच के बारे में भी उसी प्रकार विचार करना चाहिए। अर्थात् अपार पहुँच होने के बावजूद वे अपने अनुभव को अंतर में पचा लेते हैं। जैसे हीरा घन की चोट को सहन करता है और कभी भी मलीन नहीं होता, जैसे पर्वत वर्षा की बूँदों की चोट सहन करते हैं; उसी प्रकार संत भी दुनियादारों के आघात को बिना परवाह किए बरदाश्त करते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि ऐसे संत संसार के सरताज हैं, मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ।

संतो साधु लछन निजु बरना।
ब्रिगसित नैन बोलु सत बानी देखु कमल दल चरना॥
ऊंचे नीचे चलब संभारे समुझि समुझि पगु धरना।
परमारथ पर पीर जो जाने पर आतम के भरना॥
सिंह ठवनि धरि जुथ जेहि नाहीं जियतहिं भोजन करना।
म्रीतक मंद दूरि परित्यागहु ऐसो पेट ना भरना॥
दया दीनता लीन चरन में एक दसा निजु धरना।
कहें दरिया सुक्रित दिल साँचो भवसागर में तरना॥[84]

लछन=लक्षण; **बरना**=वर्णन करना; **ब्रिगसित**=खिले हुए, प्रसन्न; **नैन**=नेत्र; **सत बानी**=सत्य वचन; **कमल...चरना**=चरण-कमल; **ऊंचे नीचे**=सुख-दुःख; **चलब**=चलना; **संभारे**=सँभलकर; **पगु धरना**=क़दम रखते हैं; **पर पीर**=दूसरों की पीड़ा, दुःख; **पर आतम**=दूसरे जीव; **भरना**=संतुष्ट करना, कल्याण करना; **सिंह**=शेर; **ठवनि**=अवस्था, रीति; **धरि**=धारण करके; **जुथ**=समूह, झुंड; **जेहि**=जिसकी; **जियतहिं**=जीवित; **म्रीतक मंद**=गंदा मरा हुआ, यहाँ दूसरों की कमाई से आशय है; **परित्यागहु**=त्याग देना; **एक दसा**=एकनिष्ठ भाव; **सुक्रित**=साधु, संत; **दिल**=हृदय; **साँचो**=सच्चा, परमात्मा; **भवसागर**=संसाररूपी सागर; **तरना**=पार होना।

ऐ सज्जन पुरुषो! मैं साधुओं के लक्षण वर्णन करता हूँ। प्रसन्न नेत्रों वाले और केवल सत्य वचन बोलनेवाले साधुओं के चरण-कमलों के दर्शन करने चाहिएँ। वे जीवन के उतार-चढ़ाव या सुख-दुःख के बीच सँभलकर चलते हैं। वे परमार्थ के मार्ग पर चलते हुए दूसरों की पीड़ा को समझते हैं तथा उनका कल्याण करते हैं। उनकी रीति भी शेर के समान होती है, जिनके झुंड नहीं होते तथा जो किसी और के द्वारा मारे हुए शिकार को नहीं खाते, बल्कि स्वयं अपने पराक्रम से जीवित जानवर का शिकार करके खाते हैं। उसी प्रकार साधु भी विरले ही होते हैं तथा वे अपने परिश्रम की कमाई द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। जैसे शेर मरे हुए जानवर के गंदे मांस से अपना पेट नहीं भरता और उसे दूर से ही त्याग देता है, ठीक इसी प्रकार की दृष्टि साधुजन भी दूसरों की कमाई खाने के प्रति रखते हैं और उसे दूर से ही त्याग देते हैं। वे जीवमात्र के प्रति दया-भाव और दीनता को अपनाए हुए प्रभु के चरणों में एकनिष्ठ भाव से लीन रहते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि संतों का हृदय सच्चा होता है और केवल संतों की ही दया से हम संसाररूपी सागर से पार हो सकते हैं।

सतगुरु-भक्ति

संसार-सागर को पार कर अपने अमर धाम पहुँचने के लिए सतगुरु की भक्ति अनिवार्य है। केवल सतगुरु की दी हुई ज्ञानरूपी अनुपम नाव के सहारे ही हम इस विकराल भवसागर को पार कर सकते हैं।

वह जीव धन्य है जो सतगुरु के चरणों की सेवा में लगा है। कोई कितना भी बुद्धिमान और चालाक क्यों न हो, उसे अपने आप को पूरी तरह सतगुरु के आगे समर्पित कर देना चाहिए और अपनी अक़्ल को बीच में न लाकर केवल सतगुरु के कहने के अनुसार चलना चाहिए। सच्चा शिष्य (मुरीद) अपने गुरु के आगे मृतवत बना रहता है और अपने आपाभाव को बिल्कुल मिटा देता है। जो मुर्दे के समान बना रहे, वही मुरीद है और जो गुरु को अपना सिर समर्पित कर दे, वही शिष्य है। सच्चा शिष्य कभी भी अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। गुरु को परमात्मा समझकर वह गुरु के लिए अपने तन, मन, धन और प्राणों तक को न्योछावर करने के लिए सदा तैयार रहता है। सच्चे शिष्य के हृदय में गुरु के दर्शन के लिए सच्ची विरह और तड़प होनी चाहिए तथा गुरु का दर्शन प्राप्त होने पर उसे उनके स्वरूप को उसी तरह टकटकी लगाकर देखना चाहिए जिस तरह चकोर चाँद को देखता है।

जैसे भौंरा कमल के फूल की सुगंधि को पाने के बाद उसे छोड़कर फिर कहीं नहीं जाता, वैसे ही सतगुरु के प्रेम में मग्न शिष्य भी अपने गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी से अपना दिल नहीं लगाता। जैसे माता का ध्यान सदा अपने बच्चे की ओर, किसान का अपनी खेती की ओर और कंगाल का धन की ओर लगा रहता है, वैसे ही प्रेमी शिष्य का ध्यान सदा अपने सतगुरु की ओर लगा रहता है। उनका ध्यान करके और उनके प्रेमामृत को पीकर वह सदा अपने आप में मग्न रहता है।

सतगुरु की शरण लेने और उनकी आज्ञा में रहकर उनकी सेवा करने से शिष्य की आत्मा पर चढ़ी कर्मों की मैल उतर जाती है और सतगुरु

द्वारा दी गई ज्ञान-छुरी से काल का बंधन आसानी से कट जाता है। प्रेम के परिपक्व होने पर प्रेमी शिष्य की पारमार्थिक साधना अपने आप पूरी हो जाती है और प्रियतम से उसका मिलाप हो जाता है।

जो अभागे जीव संत या सतगुरु का सम्मान न कर, उनकी निंदा करते तथा उनसे द्रोह करते हैं, वे नरक के अधिकारी होते हैं और उन्हें निचली योनियों में जन्म लेना पड़ता है। काल ऐसे जीवों को कभी नहीं छोड़ता और उन्हें घोर कष्ट देता है:

सतगुरु से परिचय करो, पांजी पंथ विचार।
अटल राज पद पाइहो, भव जल जाहिं न हारि॥[85]

परिचय=पता करना; **पांजी**=हेलकर पार करने योग्य नदी का घाट, अत्यंत सुगम मार्ग; **पंथ**=मार्ग; **पाइहो**=प्राप्त करना; **भव जल**=संसाररूपी सागर; **हारि**=हारकर।

सतगुरु की खोज करो और उनकी शरण में जाकर संसार-सागर को पार करने के सबसे आसान रास्ते यानी युक्ति को अपनाओ। तब तुम उस युक्ति के सहारे भवसागर को पार करके (जीतकर) सचखंड के अटल राज्य के अधिकारी बन जाओगे।

प्रथमहिं सतगुरु सत्य कर भाऊ। दया सिन्धु कर दरशन पाऊ॥
भव शुभ घरी जब गुरु मिलेऊ। आनन्द मंगल ललित लोभेऊ॥
भव तरनी गुरु ज्ञान अनूपा। सो मम हृदय वसेउ सरूपा॥[86]

सत्य=सच्चा; **भाऊ**=प्रेम; **दया सिन्धु**=दया का समुद्र; **पाऊ**=प्राप्त करना; **भव**=होना; **घरी**=घड़ी; **मंगल**=हितकर; **ललित**=सुंदरता; **लोभेऊ**=लुभा जाना; **भव तरनी**=संसार-सागर को पार करने की नाव; **मम**=मेरा; **वसेउ**=बस गया है; **सरूपा**=स्वरूप।

सबसे पहले शुद्ध और सच्चे हृदय से दया के समुद्र सतगुरु का दर्शन प्राप्त करो। वह घड़ी शुभ है, जब हमें गुरु मिले। गुरु मिलने से हम मंगलमय आनंद में मग्न होकर उनकी सुंदरता पर लुभा गए। जिस गुरु का अनुपम ज्ञान संसार-सागर को पार करने के लिए नाव के समान है, उसका स्वरूप मेरे हृदय में बस गया।

धन्य सोई सतगुरु पद लागा। जन्म पदारथ जग में जागा॥[87]

पद=चरण; **जागा**=जाग्रत होना।

धन्य है वह जो सतगुरु के चरणों की शरण में आ गया है। संसार के सोए हुए जीवों के बीच वह जग चुका है और उसने मनुष्य-जन्म के सर्वोत्तम पदार्थ की प्राप्ति कर ली है।

सतगुरु चरण सुधा सम, बिमल मुक्ति का मूल।
पद पंकज लोचत हिये, अजर अनूपम फूल॥[88]

सुधा=अमृत; **बिमल**=निर्मल; **पद पंकज**=चरणरूपी कमल; **लोचत**=ललचाना, तरसना; **हिये**=हृदय; **अजर**=जो कभी नष्ट न हो, क्षय-रहित।

सतगुरु के चरण अमृत के समान हैं। ये निर्मल मुक्ति के मूल हैं। यदि हमारा हृदय सतगुरु के चरण-कमलों के लिए तरसता है तो कभी नष्ट न होनवाला परमात्मारूपी अनुपम फूल प्राप्त होता है।

गुरु आला गुरु बला, गुरु देवन्हि को देव।
कतनो चेला होय सयाना, करे गुरु की सेव॥[89]

आला=श्रेष्ठ, सबसे उत्तम; **बला**=बलवान्, शक्तिमान; **कतनो**=कितना भी; **सयाना**=बुद्धिमान; **सेव**=सेवा।

देवों के देव सतगुरु सबसे श्रेष्ठ और शक्तिशाली हैं। शिष्य कितना भी बद्धिमान क्यों न हो, उसे सतगुरु की सेवा ही करनी चाहिए।

चौरासी से बाचिहो, जो चतुर चित नहिं होय।
सतगुरु से साचो रहे, दुरमति घाले धोय॥[90]

चौरासी=चौरासी लाख योनियाँ; **बाचिहो**=बच सकते हैं; **चतुर चित**=दिल में चालाकी वाला; **दुरमति**=कुबुद्धि; **घाले**=नष्ट करना।

अपने मन की चतुराई को त्यागकर ही हम चौरासी लाख योनियों के चक्र से बच सकते हैं। सतगुरु के प्रति सच्ची भावना रखें, वे हमारी कुबुद्धि को दूर करके हमें निर्मल कर देते हैं।

गुरु कंह सर्बस दीजिए, तन मन अरपेवो सीस।
गुर बहिआं गुरदेव है, गुर साहब जगदीस॥[91]

सर्बस=सब कुछ; **अरपेवो**=अर्पण करना, न्योछावर करना; **सीस**=सिर, अहंभाव; **बहिआं**=बाँह, सहारा; **साहब**=स्वामी; **जगदीस**=परमेश्वर।

अपना तन, मन और अहंभाव – सब कुछ गुरु को अर्पित कर देना चाहिए, क्योंकि गुरु ही हमारा सहारा हैं और गुरु ही हमारे स्वामी परमेश्वर हैं।

तन मन धन सतगुर पर वारी। सदा सेत गुण कबहीं न कारी॥[92]

वारी=न्योछावर करना; **सेत**=श्वेत, पवित्र; **कारी**=काला, खोटा।

सतगुरु सदैव पवित्र गुणों से सम्पन्न होते हैं, इसलिए अपना तन, मन और धन उन पर न्योछावर करना चाहिए।

शिष्य कहाँ जब सिर नहिं देवै। सतगुरु सो भवसागर खेवै॥[93]

सिर=अहं; **सो**=वह; **भवसागर**=संसार-सागर; **खेवै**=नाव पार लगाना।

सतगुरु ही तो जीव को संसार-सागर से पार ले जाते हैं। वह शिष्य ही क्या जो अपने आप को सतगुरु पर न्योछावर न कर दे।

ग्यान छुरी निश्चय गहों, काटि करम कलि पाप।
सतसरण सतगुरु सेवा, मेटे कलि मल ताप॥[94]

ग्यान छुरी=ज्ञानरूपी छुरी; **निश्चय**=मज़बूती या दृढ़ता से; **गहों**=पकड़े; **सतसरण**=सच्चे नाम की शरण; **कलि**=कलियुग, बुरे; **मल**=मैल; **ताप**=कष्ट।

यदि सतगुरु के दिए ज्ञान की छुरी को मज़बूती के साथ पकड़ा जाए तो कलियुग के बुरे पाप-कर्मों को काटा जा सकता है। नाम की शरण लेने तथा सतगुरु की सेवा करने से जीव के कलियुग के सारे पापों की मैल और कष्ट दूर हो जाते हैं।

ग्यान खर्ग जबही गहयो, छपित भए रिपु राज।
सत अदल हम भाखिया, मुक्ति महातम काज॥[95]

ग्यान खर्ग=ज्ञानरूपी तलवार; **गहयो**=पकड़ना; **छपित**=छिप गया, लुप्त हो जाना; **रिपु राज**=शत्रुओं का राजा, काल; **सत अदल**=सच्चा मत, नाम-मार्ग; **हम**=मेरा, मैंने; **भाखिया**=कहा; **महातम**=महिमा; **काज**=कार्य।

दरिया साहिब कहते हैं कि जैसे ही जीव अपने हाथ में ज्ञानरूपी तलवार को पकड़ता है, काल अपने आप लुप्त हो जाता है। मैंने यह सच्चा मत अर्थात् नाम-मार्ग, मुक्ति का गौरव प्राप्त करने के लिए कहा है।

जो मति होय मराल की, मरम जाने गुरु ग्यान।
नीर छीर विवरन करे, भौ जगत में मान॥[96]

मति=बुद्धि; **मराल**=हंस; **मरम**=भेद, रहस्य; **नीर...विवरन**=दूध और पानी को अलग करना; **भौ**=हो गया; **मान**=आदर।

हम गुरु के बताए ज्ञान का भेद तभी जान पाते हैं, यदि हमें हंस के समान सुबुद्धि प्राप्त हो। सुबुद्धि प्राप्त करके हंस की तरह दूध और पानी को अलग करो यानी अच्छे और बुरे की पहचान करो। तभी तुम संसार में आदरणीय बन सकते हैं।

सतगुर पद सेवन करो, आज्ञाकारी होय।
भली भक्ति दासी भली, पिया मिलेगा सोय॥[97]

पद=चरण; **सेवन करो**=सेवा करो; **दासी**=सेविका, दास्य-भाव; **पिया**=प्रियतम परमात्मा; **सोय**=वह।

हमें गुरु की आज्ञा में रहते हुए उनके चरण-कमलों की सेवा करनी चाहिए। हमारे लिए गुरु की भक्ति करना और दास बनकर उनकी सेवा करना ही सबसे अच्छा है, क्योंकि इसी से प्रियतम परमात्मा प्राप्त होते हैं।

सतगुर अग्या सुख बहुतेरा। सत पद का जो करै निमेरा॥[98]

बहुतेरा=अत्यधिक; **सत पद**=परमात्मा के सच्चे धाम में पहुँचने की अवस्था; **निमेरा**=निर्णय, निपटारा।

सतगुरु की आज्ञा में रहने से बहुत सुख प्राप्त होता है, क्योंकि आज्ञाकारी जीव को ही सतगुरु धुर-धाम पहुँचाते हैं और सदा के लिए उसका निपटारा कर देते हैं।

हुकुम बिसारे सो कम जाती। हुकुम जो होए दिन अव राती॥
बिना हुकुम पग कतहिं न दीजै। कोर्निसि किए प्रेम नहिं छीजै॥[99]

बिसारे=भुला दे; **कम जाती**=नीच, कमीना; **अव**=और; **पग**=क़दम; **कतहिं**=कहीं भी; **कोर्निसि किए**=माथा टेकते हुए, सिर झुकाते हुए; **छीजै**=कम होना।

जो गुरु के हुक्म को भुला देता है वह नीच बुद्धि का शिष्य है। हमें दिन-रात उनके हुक्म में रहना चाहिए, उनके हुक्म के बिना कहीं भी क़दम नहीं रखना चाहिए। उनके सामने सिर झुकाते समय उनके प्रति हमारे प्रेम में कभी भी अभाव नहीं आना चाहिए।

सोइ हंस गुनसार है, जिन्हि मानहिं कहा हमार।
सब्द तेग एह गहिके, उतरहिं भवजल पार॥[100]

हंस=पवित्र आत्मा, जीव; **गुनसार**=गुणों का भंडार, गुणवान; **सब्द तेग**=शब्दरूपी तलवार; **एह**=यह; **गहिके**=पकड़कर; **उतरहिं**=उतर जाता है; **भवजल**=संसार-सागर।

वही जीव गुणवान है जो हमारा कहा मानता है और शब्द की तलवार पकड़कर संसार-सागर से पार उतर जाता है।

सतगुर ध्यान रहो लौ लाई। मेटहिं जरा जिव जम नहिं खाई॥
जनम जनम के प्राछित जावै। निरकेवल होए छपलोक सिधावै॥
करहु ध्यान सतगुर के सेवा। सकल मही का पूजहु देवा॥
निहततु छोड़ि जो तत्तु बिचारी। सो हंसा छपलोक सिधारी॥
गूंगा होए अम्रित सो पावै। आपु चखै फिरि औरि चखावै॥[101]

लौ लाई=लिव लगाना, मग्न होना; **जरा**=बुढ़ापा; **जिव**=जीव; **प्राछित**=प्रायश्चित करना, पापों का मार्जन करना; **निरकेवल**=निष्केवल, विशुद्ध; **छपलोक**=सतलोक; **सिधावै**=प्रस्थान करना, जाना; **सकल मही**=सारी पृथ्वी; **का**=क्या; **पूजहु देवा**=सतगुर की पूजा में ही सारे संसार के देवताओं की पूजा है; **निहततु**=असार, खोखला संसार; **तत्तु**=सार तत्त्व, शब्द; **सो हंसा**=वह जीवात्मा; **गूंगा होए**=गंभीर बनकर, अंदर के राज़ को बाहर प्रकाशित न कर; **औरि**=दूसरों को।

हमें सतगुरु में ध्यान मग्न रहना चाहिए। इससे जन्म-मरण का चक्र कट जाता है अर्थात् बार-बार के बुढ़ापे से मुक्ति मिल जाती है और यम हमें अपना ग्रास नहीं बना सकता। हम अनेक जन्मों से किए गए पापों का प्रायश्चित्त कर लेते हैं और निर्मल होकर सतलोक को चले जाते हैं। सतगुरु का ध्यान और उनकी सेवा करने में ही सृजनकर्ता परमात्मा की पूजा समाहित है। इस असार संसार को छोड़कर जीव शब्दरूपी सार तत्त्व को समझ लेता है और सतलोक सिधारता है। अपने अंतर में सच्चे अमृत को पाकर वह उसका वर्णन बाहर उसी प्रकार नहीं कर पाता जैसे गूँगा व्यक्ति स्वाद को नहीं बता पाता। सतगुरु स्वयं उस अमृत को चखता है तथा औरों को भी चखाता है अर्थात् संत-अवस्था को प्राप्त करके, अन्य जीवों को भी शब्द-मार्ग के द्वारा सतलोक पहुँचाता है।

जीवन मरन है या तन खेहा। करो प्रेम सतगुरु से नेहा॥
हाल हजूरी कहि समुझाया। अझुरन झेल ताहि सझुराया॥[102]

या=इस; **खेहा**=राख, मिट्टी; **नेहा**=प्रेम; **हाल हजूरी**=परमात्मा का हाल; **अझुरन**=उलझा हुआ; **झेल**=जाल-जंजाल; **ताहि**=उसे; **सझुराया**=सुलझाया।

दरिया साहिब कहते हैं कि जीवन का अंत मृत्यु है और यह शरीर मिट्टी में मिल जाता है। सतगुरु ही कुल-मालिक का संदेश देकर संसार के जाल-जंजाल में उलझे हुए हम जीवों को छुड़ाते हैं।

सतगुर से करु प्रेम यह तजो भर्म बिकार।
शीतल सर्वदा प्रेम रस, समुझि लीजै ततुसार॥[103]

करु=करो; **तजो**=छोड़ दो; **भर्म**=संसार के भ्रम; **बिकार**=विकार, दोष; **सर्वदा**=हमेशा, सदैव; **ततुसार**=सार तत्त्व।

हमें इस संसार के भ्रमों और विकारों को छोड़कर सतगुरु से प्रेम करना चाहिए। हमें इस सार तत्त्व को समझ लेना चाहिए कि केवल

प्रेम का रस ही हमें हमेशा के लिए शीतलता यानी शांति प्रदान कर सकता है।

जैसे भृंगा भावाकुल माता। भौ रस बस कतहिं न जाता॥...
जैसे चन्द चकोर चित चोभा। दिव्य दृष्टि दिल इमि करि लोभा॥
जैसे मातु सुत हित कर जानी। पाले बहु विधि पलकहिं आनी॥
जैसे दुखी सुखी धन पावे। ज्यों आवे त्यों जतन करावे॥
जैसे कृषि करे किसाना। निस वासर तेही तत्व समाना॥
ऐसे चित गहि करो विचारा। गहो प्रेम सतगुरु पद सारा॥

एके मन एके दशा, एके गुण गहि पार।
भव में भटकि अटके नहिं, गहि लिजै ततुसार॥[104]

भृंगा=भौंरा; **भावाकुल**=प्रेम से भरा, प्रेम में बेचैन; **माता**=मतवाला, मस्त; **भौ**=होना; **बस**=वशीभूत होना; **कतहिं...जाता**=उस प्रेम-रस के वश में होकर वह और कहीं भी नहीं जाता; **चित चोभा**=चित्त का आसक्त होना; **इमि करि**=इस प्रकार; **लोभा**=ललचाकर; **सुत**=पुत्र; **हित**=भला; **पाले**=पालती है; **बहु विधि**=अनेक प्रकार से; **पलकहिं आनी**=पल भर को भी ध्यान को कहीं दूसरी तरफ़ नहीं जाने देती; **जैसे..पावे**=जैसे दुखिया धन पाकर सुखी हो जाता है; **त्यों**=वैसे ही; **जतन**=यत्न, प्रयास; **कृषि**=खेती; **निस वासर**=रात-दिन; **तेही...समाना**=उसी वस्तु में समाए रहता है, ध्यान लगाए रखता है; **गहि**=ग्रहण करके; **पद**=चरण; **सारा**=सार वस्तु ; **अटके**=फँसना; **ततुसार**=सार तत्त्व, असली तत्त्व।

जैसे फूल के रस से वशीभूत होकर भौंरे का हृदय प्रेम से भरा होता है, वह उसी में मस्त रहता है और फिर अन्यत्र कहीं नहीं जाता तथा जैसे चकोर का चित्त चंद्रमा में लीन रहता है, उसी प्रकार हमें ललचाई दिव्य-दृष्टि से अपने अंतर में देखना चाहिए। जैसे माता अपने पुत्र का भला जानकर उसे अनेक प्रकार से पालती है और पल भर को भी अपने ध्यान को कहीं

दूसरी तरफ़ नहीं जाने देती तथा जैसे दु:खी व्यक्ति धन को पाकर सुखी हो जाता है और हर प्रकार का यत्न करके उसकी सँभाल करता है; जैसे किसान जब खेती करता है तो वह रात-दिन उसी में अपना ध्यान लगाए रखता है, उसी प्रकार प्रेमी शिष्य को भी एकनिष्ठ चित्त से सतगुरु के चरणों में पूरी तरह प्रेम लगाए रखना चाहिए। अपने मन को केवल गुरु के प्रेम में लीन करके, प्रेम की इस एकनिष्ठ अवस्था को प्राप्त करके तथा इसी एक गुण को ग्रहण करके संसार-सागर को पार किया जाता है। इस विधि से हम संसार में भटककर कभी भी नहीं फँस सकते। इसलिए जो सार तत्त्व है, उसे ही ग्रहण करना चाहिए।

संत के आदर करु सम्माना। विघ्नी भरम सब पाप ओराना॥[105]

सम्माना=सम्मान, आदर; **ओराना**=समाप्त या नष्ट हो जाना।

संतों का हमेशा आदर करना चाहिए। इससे सारे विघ्न और भ्रम मिट जाते हैं तथा पाप नष्ट हो जाते हैं।

साधु सनेही जो नीन्दा करई। अजगर होए नरक सो परई॥[106]

सनेही=प्रेमी; **अजगर**=साँप; **सो**=वह; **परई**=पड़ता है।

जो भी प्रेमी साधु की निंदा करता है, वह अजगर के रूप में जन्म लेता है तथा नरकों में पड़ता है।

भया कृमी सो नयन बिहूना। यह कछु कर्म पाप है पूना॥
साधु द्रोह काल बस भयऊ। महा अघोर नर्क में गयऊ॥[107]

भया=बन गया; **कृमी**=कीड़ा; **नयन बिहूना**=नयन-रहित, अंधा; **कछु**=कुछ; **पूना**=पूर्ण, सबसे बड़ा; **द्रोह**=वैर, अपराध; **काल...भयऊ**=काल के वश हो जाते हैं; **अघोर**=भयानक, घृणित, गंदा।

साधुओं से वैर करना सबसे बड़ा पाप है, इस कर्म के कारण उन्हें निचली योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

संत द्रोह जानि जिन्हि कीन्हा। बांधे काल नर्क तेहि दीन्हा॥
नरक खानि परे जीव जाई। करहि कलपना कोटि उपाई॥

परमारथ के कारने, संत जों करहिं पुकार।
नाम सुनत बिखि लागहीं, ताके वार न पार॥[108]

जानि=जान-बूझकर; **खानि**=योनि; **कलपना**=दु:ख के कारण विलाप करना; **कोटि उपाई**=करोड़ों तरीक़े; **सुनत...लागहीं**=सुनने पर ज़हर जैसा लगता है।

जो जान-बूझकर संतों से वैर करते हैं, काल उन्हें बाँधकर नरक में डाल देता है। ऐसे जीव नरकों की घृणित योनि में पड़ते हैं और दु:ख के कारण अनेक प्रकार से रोते-बिलखते रहते हैं। संत परमात्मा का संदेश संसार के हित के लिए देते हैं। फिर भी जिनको उनका संदेश कड़वा लगता है, उन्हें न इस लोक में और न परलोक में कहीं भी कोई ठिकाना नहीं मिलता अर्थात् वे कहीं भी शांति या सुख से नहीं रह सकते।

संत के बिखि अम्रित होए जाई। उलटि बिखी फेरि बिखिहिं समाई॥
संत द्रोह करे मूढ़ गंवारा। अपने हाथ आपु पगु मारा॥[109]

बिखि=विष; **उलटि बिखी**=विष पलटकर; **फेरि**=फिर; **बिखिहिं समाई**=विष देनेवाले में ही समा जाता है; **द्रोह**=वैर; **मूढ़ गंवारा**=मूर्ख और गँवार; **आपु...मारा**=अपने पाँवों पर (कुल्हाड़ी) मारना।

यदि कोई संत को विष दे तो वह भी उसके लिए अमृत हो जाता है और वह विष पलटकर फिर विष देनेवाले का ही विनाश कर देता है। वास्तव में

संतों से वैर करनेवाला तो मूर्ख और गँवार है, क्योंकि वह तो अपने ही हाथों से अपने पाँवों पर कुल्हाड़ी मारता है अर्थात् अपना अनिष्ट करता है।

जोर तुम जनि करै जुलुम तुझ पर परै
जुलुम के परे फिरि गर्द होए जाएगा।
फकर सो फरक रहु फहम दिल मो नहि
अलफ अलाह का धका तुम खाएगा।
कौल करि आइया हुआ बेकौल तुम
रहम की नजरि बिनु पकरि तुम जाएगा।
कहें दरिया दरबेस दरगाह दिल दरद
बिनु बंदा तुम बहुरि पछताएगा॥[110]

जोर=ज़ोर-ज़बरदस्ती, बल प्रयोग करना; **जनि करै**=मत करो; **जुलुम**=यातना, आफ़त; **परै**=पड़े; **गर्द**=धूल; **फकर**=साधु या संत; **फरक रहु**=अलग रहो, न टकराओ; **फहम**=समझ, ज्ञान; **मो**=में; **अलफ अलाह**=आदि प्रभु, ख़ुदा; **कौल**=वादा, गर्भ में प्रभु से किया गया भक्ति करने का वादा; **बेकौल**=वादा भूलना; **रहम**=दया; **दरबेस दरगाह**=संतों का दरबार; **दिल दरद**=हृदय में जीवों के दर्द के प्रति सहानुभूति; **बंदा**=मनुष्य; **बहुरि**=फिर, बाद में।

हमें संतों के साथ ज़ोर-जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। इससे हम बहुत बड़ी आफ़त में पड़कर धूल में मिल जाएँगे। हमें संतों से नहीं टकराना चाहिए। उन्हें समझने की शक्ति हमारे दिल में नहीं है। यदि हम संतों से टकराते हैं तो हमें प्रभु की ओर से धक्के खाने पड़ेंगे। जब हम माता के गर्भ में कष्ट उठा रहे थे तो हमने परमात्मा से उसकी भक्ति करने का वादा किया था, परंतु संसार में आकर हम अपना वह वादा भूल गए हैं। संतों की दया-दृष्टि के बिना हम अवश्य ही काल के द्वारा पकड़े जाएँगे। दरिया साहिब कहते हैं कि यदि हम संतों के दरबार में नहीं जाते तथा

हमारे हृदय में जीवों के दर्द के प्रति सहानुभूति नहीं है तो हमें बाद में पछताना पड़ेगा।

सतगुरु की शरण के बिना जीवों की दशा

सतगुरु की शरण लिए बिना कोई भी जीव इस भवसागर को पार नहीं कर सकता। सतगुरु ही भवसागर को पार करानेवाले नाविक हैं। सतगुरु के बिना जीव अक्सर विषय-वासना में ही उलझे रह जाते हैं। सतगुरु के बिना मुक्ति की युक्ति नहीं मिलती और जीव काल के चंगुल में पड़कर भवसागर में ग़ोते खाते रहते हैं। निर्मम काल उन्हें नरकों में भी डालता है। संसार की सारी शान-शौक़त और राग-रंग के होते हुए भी सतगुरु के बिना हमारा जीवन गंदगी के पीछे दौड़नेवाले काग, कुत्ते और सूअर के जीवन जैसा निरर्थक है।

सांसारिक वस्तुओं की तड़क-भड़क पानी के बुलबुले के समान खोखली और क्षणभंगुर है। संसार का कच्चा रंग कुछ ही दिनों में उतर जाता है। सेमल के लुभावने फूल को देखकर उसके फल को खाने की लालसा से सुग्गा (तोता) सेमल के वृक्ष पर बसेरा करता है। पर सेमल के फल के पकने पर जब वह उसे खाने के लिए उस पर चोंच मारता है तो उसकी रुई उड़ जाती है और उस बेचारे के हाथ कुछ भी नहीं लगता। संसार की लुभावनी विषय-वासनाओं के प्रेम में फँसे जीवों की भी यही दशा होती है। उन्हें अंत में केवल निराशा ही हाथ लगती है। जब तक सतगुरु के चरणों में प्रेम पैदा कर उनसे नाम की युक्ति लेकर हम परमात्मा को प्राप्त नहीं करते, तब तक हम कभी भी सुखी नहीं हो सकते।

बारिध अगम अथाह जल, वोहित बिनु किमि पार।
कनहरिया गुरु ना मिला, बूड़त है मंझधार॥[111]

बारिध=समुद्र; **अगम**=जिसका पार न पाया जा सके; **अथाह**=जिसकी थाह न पाई जा सके; **वोहित**=नाव, जहाज़; **किमि**=कैसे; **कनहरिया**=नाविक, कर्णधार, केवट; **बूड़त**=डूबना; **मंझधार**=धारा के बीच में।

अगम और अथाह जलवाले सागर को किसी नाव या जहाज़ के बिना कैसे पार किया जा सकता है? यदि हमें सतगुरुरूपी कर्णधार नहीं मिले तो हम मनुष्य-शरीर धारण करके भी संसार-सागर की धारा के बीच में ही डूबेंगे।

सतगुरु बिना मुक्ति नहिं जानी। इमि करि यम जीव करिहें हानी॥
सतगुरु बिना मुक्ति नहिं पावै। कतनो पढ़ि-पढ़ि रटि गुन गावै॥[112]

इमि करि=इस प्रकार; **कतनो**=कितना भी; **रटि**=रटना, कंठस्थ करना; **गुन गावै**=गुणगान करे।

सतगुरु के बिना कोई भी जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, भले वह कितने ही शास्त्रों को पढ़कर और कंठस्थ करके प्रभु का कितना ही गुणगान क्यों न करता फिरे।

जब सतगुरु परचे नहिं पाई। सो जीव जानि सदा जहड़ाई॥
सत्य भाव की युक्ति न जाना। सो जन विषय सदा लपटाना॥[113]

परचे=परिचय, पहचान; **जहड़ाई**=भटकना; **सत्य भाव**=सच्ची अवस्था; **युक्ति**=तरीक़ा; **लपटाना**=लिपटा रहना, फँसा रहना।

जब तक जीव का सतगुरु से परिचय नहीं होता, वह हमेशा भटकता ही रहता है। सतगुरु की बताई युक्ति से सच्ची आंतरिक अवस्था प्राप्त किए बिना मनुष्य हमेशा विषय-विकारों में ही फँसा रहता है।

नरक कुन्ड के बीच में, गोता खाहीं अनेक।
विवेकी जन कोई बाचिहें, जाके सतगुरु एक॥[114]

खाहीं=खाते हैं; **विवेकी जन**=ऐसा व्यक्ति जिसे अच्छे-बुरे की पहचान हो; **बाचिहें**=बचता है।

नरकों के कुंड में अनेक जीव ग़ोते खाते हैं। अच्छे और बुरे की सही पहचान करनेवाला कोई विरला जीव ही, जो सतगुरु की शरण में आ जाता है, नरकों से बचता है।

कोठा महल अटारिया, सुनै स्रवन बहु राग।
सतगुरु सब्द चिन्है बिना, ज्यों पंछिन्ह महं काग॥
चौरासी के भवन में, कल्प कोटि बहि जाहिं।
ग्यान बिना नहिं बाचिहैं, फिरि फिरि भटका खाहिं॥[115]

अटारिया=अटारी, ऊपर के खंड पर बनी हुई कोठरी; **स्रवन**=कान; **बहु राग**=अनेक प्रकार के राग; **चिन्है**=पहचाने; **काग**=कौवा; **भवन**=योनियाँ; **कल्प कोटि**=करोड़ों कल्प युगों तक: ब्रह्मा के एक दिन को कल्प कहा जाता है जो एक हज़ार चतुर्युगी अर्थात् 43200 लाख वर्षों के बराबर होता है; **बहि जाहिं**=बह जाता है; **बाचिहैं**=बच सकते।

भले ही हमारे पास अपने ऊँचे-ऊँचे सुंदर महल हों और हम उनमें सुरीली राग-रागिनियाँ सुनकर मनोविनोद करते रहते हों, परंतु यदि हमने सतगुरु के शब्द को नहीं पहचाना तो हमारी दशा ऐसी ही है जैसी पक्षियों के बीच गंदगी खानेवाले कौवे की होती है। इस प्रकार हम करोड़ों युगों तक संसार-सागर में चौरासी लाख योनियों में बहते रहेंगे। सच्चे ज्ञान के बिना हम बच नहीं सकते और बार-बार भटकते रहेंगे।

जो नर सतगुर सब्द ना माना।
सो जढ़ स्वान सुकर जग माहीं कर्म अनेक लपटाना॥
दाया सो हीन मलीन सदा नर बिखै सरोबर जाना।
जम जालिम धरि मरिहैं जरिहैं उर्ध मुख सदा झुलाना॥
जैसे सूआ सेमर सेवत मुरझि परा छपटाना।
तैसे मदपी गांठि के गंथ दे घर की अकिलि भुलाना॥

अति गरूर मगरूर माया मद चढ़ि तुरे अभिमाना।
अपने भवन करे अलबेसी फेरि पाछे पछताना॥
जीव बधन तौं अधरम कहिऐ करै बिषै रस पाना।
कुमति कांट सुमति के घेरे बिखै बेइलि तन साना॥
आए उलटि फिरि जाए पलटिके कतहिं ना मिले ठिकाना।
कहें दरिया एह नाम भजन बिनु जमके हाथ बिकाना॥[116]

जढ़=मूर्ख, नीच; **स्वान**=कुत्ता; **सुकर**=सूअर; **लपटाना**=लिपटना, फँसना; **दाया...हीन**=दया से रहित; **मलीन**=मैला; **बिखै...जाना**=विष के कुंड में जाना पड़ता है; **जम जालिम**=निर्दयी यमराज; **धरि... जरिहैं**=पकड़कर मारते और जलाते हैं; **उर्ध मुख**=सिर नीचे और पैर ऊपर को; **झुलाना**=झुलाते हैं; **सूआ**=तोता; **सेमर**=सेमल का सुंदर फूल; **मुरझि परा**=मुरझाना, दुःखी होना; **तैसे**=वैसे; **मदपी**=शराबी; **गांठि**=गाँठ; **गंथ**=ग्रंथ, धन; **अकिलि**=अक़्ल, सुध-बुध; **गरूर**=घमंड; **मगरूर**=घमंडी; **माया मद**=माया का नशा; **तुरे**=घोड़ा; **अलबेसी**=मौज-मस्ती; **जीव बधन**=जीव-हत्या; **कुमति कांट**=कुबुद्धिरूपी काँटे; **बिखै बेइलि**=विष की बेल; **तन साना**=तन में लिपटना; **कतहिं**=कहीं भी।

जो मनुष्य सतगुरु के सच्चे शब्द को नहीं मानते, ऐसे लोग निचली योनियों में व्यर्थ जीवन व्यतीत करते हैं और अनेक कर्मों में फँसे रहते हैं। जो मनुष्य जीवमात्र के प्रति दया-भावना से रहित और पाप-कर्मों से मैले हैं, उन्हें अंत में विष के कुंड में गिरना पड़ता है। उन्हें निर्दयी यमदूत पकड़कर मारते और जलाते हैं। वे उनको सिर नीचे और पैर ऊपर करके झुलाते हैं। जीवों की दशा सेमल के वृक्ष पर बसेरा लेनेवाले तोते जैसी होती है। सेमल के सुंदर फूलों को देखकर तोता उन पर लुभाया रहता है, परंतु जब वह उनमें लगे फलों का स्वाद लेने के लिए चोंच मारता है तो उनमें से रूई उड़ जाती है, उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता और वह निराश हो मूर्छित होकर छटपटाता है। जीवों की हालत उस शराबी

की तरह होती है जो अपनी गाँठ का सारा पैसा लुटाकर अपने घर की सुध-बुध भुला देता है। वे मनुष्य जो अत्यधिक अहंकार के कारण घमंडी बने रहते हैं, माया के नशे में अभिमान के घोड़े पर सवार रहते हैं और अपने आलीशान भवनों में मौज-मस्ती मनाते हैं, ऐसे लोगों को फिर अंत में पछताना पड़ता है। वे जीव-हत्यारूपी अधर्म करते हैं, विषयों के रस का पान करते हैं, कुबुद्धिरूपी कांटे उनकी सुबुद्धि को घेरे रहते हैं और विषयरूपी विष की बेल उनके शरीर में लिपटी रहती है। वे बार-बार संसार में जन्म लेते रहते हैं तथा मृत्यु का शिकार होते रहते हैं, उन्हें कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता। दरिया साहिब कहते हैं कि इस प्रकार सतगुरु के बताए नाम के भजन के बिना जीव को यम का ग़ुलाम बनना पड़ता है।

सखि हे ध्रिग ध्रिग जिवन जिवेला जग मांह।
बिनु गुर ज्ञान फिरेला बन मांह॥
जो अति कामिनि कनक उरेह।
भुखन बसन फिरि तन होइहें खेह॥
तरुनी के तेज फिरि हीन भैले गात।
सुखि गैले तरिवर छीन भेले पात॥
बुंद बुला तन उपजि बिलाए।
देहे धरि धरि सभ मरि मरि जाए॥
सासुर सभ सुख गुन के रास।
बिनु पिया पंथ एह फिरत उदास॥
तेजु देहु मान मगन पुर जाहु।
कहें दरिया फल आम्रित खाहु॥[117]

ध्रिग ध्रिग=धिक्कार है; **जिवन**=जीवन; **जिवेला**=जीना; **मांह**=में; **फिरेला**=फिरना; **कामिनि**=कामुक स्त्री; **कनक**=सोना, धन-संपत्ति; **उरेह**=चित्र; **भुखन**=गहने; **बसन**=वस्त्र; **खेह**=राख, मिट्टी; **तरुनी**=युवती; **तेज...हीन**=फिर निस्तेज हो जाएगा; **भैले**=हो जाएँगे; **गात**=शरीर;

सुखि=सूखना; **गैले**=गए; **तरिवर**=वृक्ष; **छीन**=क्षीण, गिरना; **भेले**=होना; **पात**=पत्ते; **बुंद बुला**=पानी का बुलबुला; **उपजि**=उत्पन्न होना; **बिलाए**=नष्ट होना; **धरि**=धारण करना; **सासुर**=ससुराल; **रास**=भंडार; **पिया पंथ**=प्रियतम परमात्मा का मार्ग; **एह**=यह, जीव; **तेजु**=त्यागना; **पुर**=जीव का मूल धाम, सतलोक; **आम्रित**=अमृत।

ऐसे मनुष्यों के जीवन को धिक्कार है जो गुरु के ज्ञान के बिना संसाररूपी जंगल में भटकते रहते हैं। यदि उन्हें काल्पनिक या चित्र के समान झूठी स्त्रियों और धन-संपत्ति के लिए उमंग है, तो उन्हें समझना चाहिए कि सुंदर गहने और वस्त्र अंत में शरीर के साथ ही मिट्टी में मिल जाते हैं। जैसे वृक्ष के सूखने पर पत्ते गिर जाते हैं, उसी प्रकार अंत में युवती का आकर्षक शरीर भी निस्तेज हो जाता है। यह शरीर पानी के बुलबुले की तरह पैदा होता है तथा नष्ट हो जाता है। सभी जीव बार-बार शरीर धारण करके जन्म लेते और मरते हैं। आत्मारूपी स्त्री का ससुराल सारे सुखों और गुणों का भंडार है जहाँ उसका प्रियतम परमात्मा निवास करता है। परंतु परमात्मारूपी प्रियतम का मार्ग मिले बिना आत्मारूपी स्त्री सदा उदास ही फिरती रहती है। इसलिए हमें अपने इस शरीर के अभिमान को त्यागकर प्रभु-प्रेम में मग्न होकर अपने मूल धाम को जाना चाहिए और वहाँ सच्चे अमृत के फल को चखना चाहिए जो हमें सदा के लिए अमर बना देता है।

बेगि गहो गुरु चरन पीछे पछतैबहु हे।
संतों नाहक फिरि मरि जैबे कहाँ घर छैबहु हे॥
उलटि पलटि भवसागर रहटा नधैबहु हे।
संतो चारि चरन दुइ सींघ भुसा खर खैबहु हे॥
नाहीं रही कुल कर्म सो आपु बंधैबहु हे।
संतो बाजीगर के हाथ पलक नहिं पैबहु हे॥
जंगल माहं के रोर से सोर लगैबहू हे।

संतो स्वान सुकर कर देह बहुत दुख पैबहू हे॥
सतगुर चरन सुधा सम प्रेम लगैबहु हे।
संतो कहें दरिया सुनु दास मुक्ति फल पैबहु हे॥[118]

बेगि गहो=जल्दी पकड़ो; **पछतैबहु**=पछताओगे; **नाहक**=बेकार ही, व्यर्थ; **मरि जैबे**=मर जाओगे; **छैबहु**=घर बनाना; **भवसागर रहटा**=संसार-सागररूपी रहट, चक्कर लगाकर कुएँ से पानी निकालने का यंत्र जिसमें बैलों को जोता जाता है; **नधैबहु**=जुतना; **चारि... सींघ**=चार पैर और दो सींगों वाले चौपाए पशु, बैल; **भुसा खर**=भूसा और घास; **खैबहु**=खाना; **बंधैबहु**=बाँधे जाओगे; **पलक...पैबहु**=पलक झपकने का मौक़ा भी नहीं मिलेगा; **माहं**=में; **रोर**=कोलाहल, हल्ला; **लगैबहु**=लगाओगे; **स्वान**=कुत्ता; **सुकर**=सूअर; **पैबहू**=पाओगे; **सुधा सम**=अमृत के समान; **मुक्ति...पैबहु**=मुक्ति का फल पाओगे।

हमें जल्द से जल्द गुरु के चरणों को पकड़ना चाहिए अन्यथा बाद में पछताना पड़ेगा। यदि हम इस जन्म को व्यर्थ ही गँवाकर मर जाएँगे तो फिर अपना घर कहाँ बनाएँगे? हमें कहाँ जन्म लेना पड़ेगा? फिर तो हमें बार-बार उलट-पलटकर संसाररूपी रहट में जोता जाएगा। हम दो सींगों वाले चौपाए पशु बनकर भूसा और घास खाते फिरेंगे। अंत में हमारा कोई कुल या कुल का कर्म-धर्म नहीं रहेगा और हम अपने किए हुए कर्मों से स्वयं को बँधवा लेंगे। हारकर अपना सब कुछ लुटाकर ख़ाली हाथ हुए कालरूपी बाज़ीगर के हाथों पड़ेंगे, जो हमें पलक झपकने का भी मौक़ा नहीं देगा, जन्म-मरण के चक्र में सदा उलझाए ही रखेगा। ऐसे जंगल में जाकर जन्म लेना पड़ेगा जहाँ हमें स्यार आदि जंगली जानवरों के साथ मिलकर सुर में सुर मिलाकर शोर मचाना होगा। हम निचली योनियों का शरीर धारण करके बहुत दुःख पाएँगे। दरिया साहिब कहते हैं कि केवल सतगुरु के अमृत के सदृश चरण-कमलों में प्रेम लगाने पर ही हम मुक्तिरूपी फल प्राप्त कर सकते हैं।

पाखंडी गुरुओं के धोखे

संसार में गुरु-शिष्य का झूठा व्यवहार फैला हुआ है। इसलिए हमें अच्छी तरह समझ-बूझकर किसी को गुरु धारण करना चाहिए। शब्द यानी नाम का भेद देनेवाला ही सच्चा गुरु है। अन्य गुरु स्वयं मन के धोखे में पड़े हुए हैं। ऐसे पाखंडी गुरु अपने साथ-साथ अपने शिष्यों को भी संसार-सागर में ले डूबते हैं।

काल जीवों को अपने जाल में उलझाए रखने के लिए अपने दूतों को गुरु-रूप में इस संसार में भेजता है। जीवों को भुलावा देना और उन्हें गुमराह करना ही ऐसे गुरुओं का काम है। ऐसे गुरु दिखावटी वेष-भूषा बनाकर और धर्म-शास्त्रों का हवाला देकर लोगों को ठगते हैं। उनका अपना मन तो वश में होता नहीं, पर वे दूसरों के मन को वश में करने का तरीक़ा समझाते फिरते हैं। केवल लोगों के कान फूँककर वे उन्हें अपना चेला बना लेते हैं। इस तरह वे उनसे दक्षिणा लेकर उनका धन अपहरण करते हैं, पर उनका शोक दूर नहीं करते। उनकी अपनी ही आंतरिक आँख बंद होती है, वे भला अपने शिष्यों को आंतरिक शब्द-धुन सुनने की युक्ति कैसे बता सकते हैं? वे केवल बहिर्मुखी क्रियाओं और कर्मकांड में शिष्यों को उलझाए रखते हैं और बाहरी क्रियाओं को ही मुक्ति का साधन बताते हैं। इस प्रकार के अंधे गुरुओं और बहरे चेलों की इस संसार में भरमार है। बहिर्मुखी साधन मानो लोहे की नाव हैं जो पत्थर जैसे कठोर कर्मों के बोझ से लदी हुई है। इस नाव को मुक्ति का साधन माननेवाले गुरु और शिष्य दोनों ही संसार-सागर में ग़ोते खाते रहते हैं।

अत: बाहरी वेष-भूषा और दिखावटी क्रियाओं के धोखे में न आकर हमें सच्चे गुरु की खोज करनी चाहिए। केवल सतगुरु से नाम का भेद पाकर ही हम संसार-सागर को पार कर सकते हैं।

(ऐसो) गुरू ठगौरी जगत मह, दिछ्या देहि सभ ठांव।
गुरु सिख संग बुड़ि मरै, कहां बसे निजु गांव॥[119]

ठगौरी=ठगी, धोखेबाज़ी; **मह**=में; **दिछ्या**=दीक्षा; **सभ ठांव**=सब जगह; **सिख**=शिष्य; **बुड़ि मरै**=डूब मरे; **निजु गांव**=अपना निजधाम।

गुरु के नाम पर संसार में ऐसी ठगी चल रही है कि धोखेबाज़ गुरु सब जगह लोगों को दीक्षा देते फिरते हैं। ऐसे गुरु और शिष्य तो एक साथ ही संसार-सागर में डूब मरते हैं, वे भला अपने निजधाम में कैसे निवास कर सकते हैं?

जाके सतगुर भेद कही, सो लखि पावत संधी।
मनमत बात बनाय के, पार उतरे ना भवोंदधी॥[120]

लखि पावत=देख पाना, प्राप्त करना; **संधी**=लक्ष्य, निशाना; **मनमत**=मन की मत के अनुसार चलनेवाले; **भवोंदधि**=संसार-सागर।

जिसे सतगुरु भेद बताते हैं, वही अपने असली लक्ष्य को देख पाता है अर्थात् उसे प्राप्त कर सकता है। मन के मत के अनुसार चलनेवाले जो केवल बातें बनाते रहते हैं, संसार-सागर से पार नहीं उतर पाते।

जेंवो तरनी जल माह, नाम बिमल गुन रहित है।
समुझि पकड़िए बांह, भव नहिं बूड़े जहाज यह॥[121]

जेंवो=ज्यों, जैसे; **तरनी**=नाव; **माह**=में; **बिमल**=निर्मल; **गुन रहित**=तीन गुणों से परे, माया की तीन अवस्थाओं को तीन गुण कहा जाता है। ये हैं-सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण; **भव**=संसार।

निर्मल नाम तीन गुणों से परे की शक्ति है। जैसे जल में नाव होती है, उसी प्रकार संसार-सागर से पार जाने का साधन नाम है। इसलिए हमें सोच-समझकर ऐसे गुरु की बाँह पकड़नी चाहिए जो नाम का मार्ग बताते हों, जिससे हमारा यह आत्मारूपी जहाज़ संसार-सागर में न डूबे।

गुरु गुरु में भेद निनारा। सतगुरु खोज करहु निरुआरा॥[122]

निनारा=अलग; **निरुआरा**=छाँटना, जाँचकर।

गुरु गुरु में अंतर है। इसलिए सच्चे गुरु की खोज सोच-समझकर करो।

निरखि परखि नीके गुरु कीजे, बेड़ा बांधु सम्भारी।
कलि के गुरु बड़े प्रपंची, डारि ठगौरी मारी॥[123]

निरखि परखि=देख-परखकर; **नीके**=अच्छी तरह; **बेड़ा...सम्भारी**=नाव को सँभालकर बाँधना; **कलि**=कलियुग; **प्रपंची**=छल करनेवाला, धोखेबाज़; **ठगौरी**=ठगी, धोखेबाज़ी।

अच्छी तरह देख-परखकर ऐसा गुरु धारण करो जो संसार-सागर में बहती हुई हमारी नाव को सँभालकर रखे, क्योंकि कलियुग के गुरु बड़े धोखेबाज़ हैं, वे जीव के साथ ठगी करते हैं और हानि पहुँचाते हैं।

शाहजादा सुनि लीजियै, आगम कहौं बुझाय।
अदल में धोखा होइहैं, सुनहु सबद चित लाय॥
निरंजन चारी दूत सम, प्रगट तन धरि आव।
जो दोविधा उहाँ भयो, सो दोविधा इहाँ लाव॥[124]

शाहजादा=पुत्र (दरिया साहिब अपने उत्तराधिकारी को संबोधित कर रहे हैं); **आगम**=आगे से ही होनेवाली घटना को बताना, भविष्य; **अदल**=परमार्थ का पंथ जो सब जिज्ञासुओं के लिए सामान्य है, किसी भी एक दल अर्थात् वर्ग, मज़हब या संप्रदाय का नहीं है; **चारी**=चार सेवक; **चित लाय**=ध्यानपूर्वक; **निरंजन**=काल; **चारी दूत**=चार दूत, कुछ दूत; **सम**=समान, संतों के जैसे; **प्रगट...आव**=प्रकट शरीर धारण करके आएँगे; **दोविधा**=दुविधा, भ्रम; **उहाँ**=वहाँ; जैसा धोखा ब्रह्मा आदि तीन देवताओं ने काल को ही सत्पुरुष मानकर खाया, वैसा ही धोखा ये दूत भी सतगुरु बनने का ढोंग फैलाकर करेंगे; **इहाँ लाव**=यहाँ फैलाएँगे।

दरिया साहिब अपने उत्तराधिकारी को संबोधित करते हुए कहते हैं कि पुत्र! मेरी बात को सुन लो। आगे जो बात होनेवाली है उसके बारे में मैं तुझे कुछ समझाता हूँ। मेरे द्वारा चलाए गए इस परमार्थ के पंथ में धोखा होगा, मेरी यह बात ध्यानपूर्वक सुनो। काल के दो-चार दूत पाखंडी गुरुओं के रूप में संसार में प्रकट होंगे। जैसे देवलोक में काल ने अपने को सत्पुरुष बताकर ब्रह्मादि देवों को भ्रम में डाला, वैसे ही ये दूत अपने को सतगुरु बताकर जीवों को भ्रम में डालेंगे।

साखी सबद ग्रन्थ पढ़ि, सीख करिहैं नर नारि।
आपन मन बोधा नाहिं, दर्व हरन के झारि॥[125]

सीख=शिक्षा; **आपन**=अपना; **बोधा**=ज्ञान देना; **दर्व...झारि**=बहुत-सा धन हरण करना।

ये लोग ग्रंथों में से साखियाँ और शब्द पढ़कर गुरु बनकर स्त्री-पुरुषों को शिक्षा देते रहेंगे। परंतु जब उन्होंने अपने मन को ही ज्ञान नहीं दिया है, तो वे दूसरों को क्या शिक्षा दे सकते हैं? बस लोगों का अधिक से अधिक धन हरण करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य होगा।

आपु न बोधे बोधे संसारा। सो गुरु परहिं नरक जमधारा॥
ब्राह्मण गुरु करही गुरुआई। ब्रह्म चिन्हे बिनु ठौर न पाई॥[126]

बोधे=ज्ञान देना, समझाना; **चिन्हे**=पहचाने; **ठौर**=ठिकाना।

जिसे अपने आप को परमात्मा का सच्चा ज्ञान नहीं, वह दुनिया को ज्ञान देता फिरता है। ऐसा गुरु यम के द्वारा नरक में डाला जाता है। जो ब्रह्म

को पहचाने बिना स्वयं को ब्राह्मण कहकर संसार का गुरु बना फिरता है उसे कहीं भी कोई ठिकाना नहीं मिल सकता।

घर घर गुरु कान जो लागा। निर्मल ज्ञान ज्योति नहिं जागा॥[127]

ज्ञान ज्योति=ज्ञान की ज्योति; **जागा**=जागती, जलती।

जो गुरु बनकर घर-घर में जाकर कान में मंत्र फूँककर चेले बनाता है, उसके अंतर में कभी भी परमात्मा के निर्मल ज्ञान की ज्योति नहीं जलती।

लागहिं कान कर्म नहिं चीन्हा। सहजहिं लोक मुक्ति कहि दीन्हा॥
आपु ठगे फिर और ठगाया। चीन्हें न काल कर्म फैलाया॥[128]

लागहिं कान=कान से लगकर गुरु-मंत्र फूँकना; **कर्म**=कार्य; **चीन्हा**=समझा; **सहजहिं**=सहज ही, आसानी से; **लोक**=दुनिया को; **कहि दीन्हा**=कह दिया।

जो गुरु बनकर शिष्य के कान में गुरु-मंत्र तो फूँकता है, पर उसे इस बात की समझ नहीं है कि गुरु का कार्य क्या है। वह तो बड़ी आसानी से दुनिया को कह देता है कि वह मुक्ति दिला सकता है, जबकि वह स्वयं भी ठगा जाता है, साथ ही दूसरों को भी ठगता है।

ना काहु का गुरूआ, ना सिख काहु के कीन्ह।
कान लागे तेहि गुरु कही, हम नाम पुर्ष का दीन्ह॥[129]

काहु का=किसी का; **गुरूआ**=गुरु; **सिख**=शिष्य; **काहु के**=किसी को; **कीन्ह**=किया, बनाया; **तेहि**=उसे; **नाम...का**=सत्पुरुष का सच्चा नाम; **दीन्ह**=दिया।

जो पाखंडी साधु कान में गुरु-मंत्र फूँकता है, लोग उसे ही गुरु कह देते हैं। लेकिन वास्तव में न तो वह किसी का गुरु है और न उसने किसी को

शिष्य ही बनाया है। दरिया साहिब कहते हैं कि सच्चा गुरु तो वह है जो अपने शिष्यों को सत्पुरुष के सच्चे नाम का भेद दता है।

मोर पंख सुन्दर अति नीका। अहिकर भोजन ज्ञान बिनु फीका॥[130]

नीका=अच्छा; **अहिकर**=साँप; **फीका**=नीरस।

मोर के पंख बहुत अच्छे और सुंदर होते हैं, परंतु वह साँप खाता है। इसी प्रकार कुछ गुरु भी सुंदर नीले, पीले या गेरुए वस्त्र पहनकर लोगों को अपना चेला बना लेते हैं, परंतु आंतरिक ज्ञान का अनुभव न होने से वे होते कच्चे गुरु हैं और कर्म भी बुरे करते हैं।

ऐगुन संग्रह गुन देहिं डारी। जग में शिष्य करहिं नर नारी॥
भेष सुभेष देखत नीक लागा। ऊपर हंस भीतर है कागा॥[131]

ऐगुन संग्रह=अवगुणों को इकट्ठा करना; **डारी**=छोड़ देना; **भेष सुभेष**=सुंदर दिखनेवाला वेष; **देखत...लागा**=देखने में सुंदर लगता है; **कागा**=कौवा।

पाखंडी गुरु गुणों को छोड़कर अवगुणों को इकट्ठा करते हैं। वे दुनिया में लोगों को अपना शिष्य बनाते फिरते हैं। उनका सुंदर वेष ऊपर से देखने में तो बहुत अच्छा लगता है। परंतु वे केवल ऊपर से हंस दिखते हैं, उनके अंतर में तो कौवे के समान मैल भरा होता है।

दर्व हरहिं पर सोक ना हरहीं। सो गुरु नर्क अघोरहिं परहीं॥
देह चिन्हा प्रज्ञान ना चिन्हा। ऐसो गुरु जक्त मंह किन्हा॥
भीतर काग हंस कर साजा। सो गुरु करहिं बड़े-बड़े राजा॥...
चिन्हहु सतगुरु जो अनुरागी। आदि अन्त ज्ञान में जागी॥[132]

दर्व हरहिं=धन लेता है, हरण करता है; **सोक**=दुःख; **अघोरहिं**=भयानक, गंदा; **परहीं**=पड़ता है; **देह चिन्हा**=शरीर को देखा; **ऐसो**=ऐसा, इस प्रकार का; **काग**=कौवा; **हंस...साजा**=हंस की शोभा; **अनुरागी**=प्रेमी।

जो गुरु बनकर शिष्य का धन तो लेता है पर उसके दुःखों को दूर नहीं करता, वह गंदगी भरे नरक में पड़ता है। संसार में लोग गुरु बनाने के लिए उसके बाहरी शरीर को देखते हैं, ज्ञान को नहीं देखते। बड़े-बड़े राजा भी ऐसे व्यक्ति को अपना गुरु बनाते हैं जो अंदर से कौवे के समान गंदा होता है, केवल ऊपर से ही हंस की तरह लगता है। सच्चे गुरु की पहचान करो, जो परमात्मा का प्रेमी हो और परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करके इस संसार की मोह-माया की नींद से पूरी तरह जाग्रत हो चुका हो।

बधिर सीख आंधर गुरु कीन्हा। नैन बिहुँन मगु कैसे चीन्हा॥
तापर दस बीस लाइन साथा। बुड़ि मुए भव भए अनाथा॥
अवघट तरनी केवट अनारी। परे चकोह टुटली पतवारी॥
इत उत नाहिं बुड़े मझधारा। कन हरि चिन्हिना कीन्ह गँवारा॥[133]

बधिर=बहरा; **सीख**=शिष्य; **आंधर**=अंधा; **गुरु कीन्हा**=गुरु बनाया; **नैन बिहुँन**=बिना आँखों के; **मगु**=मार्ग; **चीन्हा**=पहचानना; **तापर**=उस पर; **बुड़ि मुए**=डूब मरे; **भव**=संसार-सागर; **भए**=हो गए; **अवघट**=विकट; **तरनी**=नाव; **केवट**=मल्लाह; **अनारी**=नासमझ; **परे**=पड़े हुए हैं; **चकोह**=भँवर; **टुटली पतवारी**=टूटा हुआ पतवार, चप्पू; **इत उत**=यहाँ-वहाँ; **मझधारा**=बीच धारा में; **कन हरि**=कर्णधार, मल्लाह; **चिन्हिना कीन्ह**=पहचान नहीं की।

बहरे शिष्य ने ज्ञानरूपी आँखों से अंधे व्यक्ति को गुरु धारण किया। परमात्मा के सच्चे ज्ञान की आँखों के बिना वह गुरु परमार्थ का मार्ग भला कैसे पहचान सकता है? उस पर उसने दस-बीस चेलों को भी अपने साथ लगा रखा है। अंत में वे सब के सब संसार-सागर में डूब मरते हैं और

अनाथ हो जाते हैं। आत्मारूपी नाव विकट धारा में फँस जाती है, गुरुरूपी मल्लाह नासमझ है, संसार-सागर के भँवर में पड़कर उस गुरु का प्रदान किया गया भक्तिरूपी पतवार भी टूट जाता है और वे सभी पाखंडी गुरु के जाल में फँसकर कहीं किनारे पर नहीं, बल्कि बीच धारा में डूब जाते हैं।

आंधर गुरु चेला बहिर, दुवो चले एक साथ।
ना वोय देखा और वोय ना सुना, आरसी लिए हाथ॥[134]

आंधर=अंधा; **चेला बहिर**=बहरा शिष्य; **आरसी**=दर्पण।

गुरु अंधा है और शिष्य बहरा है। दोनों एक-दूसरे के साथ चलते हैं। गुरु के हाथ में दर्पण है, परंतु वह देख नहीं सकता और शिष्य सुन नहीं सकता। ऐसे में भला उन्हें परमात्मा का दर्शन कैसे हो सकता है? भाव यह है कि आंतरिक रूप से अंधा गुरु अपने हृदयरूपी आईने में प्रतिबिंबित परमात्मा को देख नहीं सकता। फिर वह अपने आंतरिक रूप से बहरे (परमात्मा की बात में रुचि न रखनेवाले) शिष्य को कैसे कथा सुना सकता है?

रोगिया चाहे वैद्य बतावे, वैद्य करेगा घात।
शिष्य चाहे सो गुरु बतावे, तब बिगरेगी बात॥[135]

घात=अहित, हानि; **बिगरेगी**=बिगड़ जाएगी।

यदि वैद्य रोगी के मन की इच्छा के अनुरूप उसे उपचार बताने लगे तो वह रोगी का अहित ही करेगा। इसी प्रकार यदि गुरु भी अपने शिष्य के मन की इच्छा के अनुरूप ही उसे उपदेश देने लगे तो परमार्थ की बात ही बिगड़ जाती है।

अवघट तरनी लागिया, पतवारी गई टूट।
कन्हरिया आंधर हुआ, सो जीव यम ने लूट॥

कन्हरिया सतगुरु कहि, सुकृत जाको नांव।
शील संतोष तरनी भइ, गये अमरपुर गांव॥[136]

अवघट=विकट; **तरनी**=नाव; **पतवारी**=पतवार, चप्पू ; **कन्हरिया**=कर्णधार, मल्लाह; **आंधर**=अंधा; **सुकृत**=परोपकारी सतगुरु; **जाको**=जिसका; **नांव**=नाम; **अमरपुर गांव**=अविनाशी सतलोक।

नाव विकट संसार-सागर में पड़ी हुई है, इसे पार करने के लिए पाखंडी गुरु के द्वारा दिया गया पतवार भी वक़्त पड़ने पर टूट गया है। उस समय पाखंडी अंधा केवट (मल्लाह) भी उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता, ऐसे में नाव में बैठे जीवों को यमदूत लूट लेते हैं। वास्तव में इस संसार-सागर से अविनाशी सतलोक पहुँचने के लिए सतगुरु ही सच्चे मल्लाह हैं जो शील और संतोषरूपी नाव पर बैठाकर जीवों को सतलोक पहुँचा देते हैं।

पंडित बूझो सब्द बिचारी।
राजगुरू राजन्हि सीख कीन्हो बोझ लिए सिर भारी।
जो जो खून करै वह राजा सो तोहरै ग्रिव डारी।
जैसे बधिक सावज के मारे इमि करि काल पछारी।
लोह के नाव पखान का भारा चले केवट जल हारी।
बूड़त भौजल थाह ना पावे सीख करै नरनारी।
नहिं परमारथ स्वारथ नीका आतम घात बिगारी।
झूठि बचन मन मगन रहत है सत्त बचन है गारी।
निगम नेति एह बिमल पुनीता रचि रचि बचन संवारी।
गीता अरथ गुपुत करि राखहि मनि मत फंद पसारी।
सतगुर सब्द सत्त एह मानहु बांधहु गांठि संभारी।
भौ के बीच कबहि नहिं बुड़िहौ दरिया कहै पुकारी॥[137]

बूझो=समझो; **सीख**=शिष्य; **खून करै**=जीव-हत्या करे; **सो**=वह; **तोहरै**=तुम्हारे; **ग्रिव**=गला; **डारी**=डाला जाएगा; **बधिक**=शिकारी; **सावज**=शिकार किए जानेवाले जानवर; **इमि करि**=इसी प्रकार; **पछारी**=पछाड़ता है; **पखान**=पत्थर; **बूड़त**=डूबते हुए; **भौजल**=संसार-सागर; **नरनारी**=स्त्री-पुरुष; **नीका**=अच्छा; **आतम...बिगारी**=ख़ुद अपना नाश करके सब कुछ बिगाड़ देना; **गारी**=गाली; **निगम**=वेद; **नेति**=न+इति, यह भी नहीं, इतना ही नहीं, अवर्णनीय; **बिमल**=निर्मल; **पुनीता**=पवित्र; **रचि रचि**=अनेक प्रकार से बनाकर; **संवारी**=सजाना; **फंद पसारी**=जाल फैलाते हैं; **मानहु**=मानना चाहिए; **बांधहु गांठि**=गाँठ बाँधना।

ऐ पंडित! जो मैं कह रहा हूँ, विचारपूर्वक सुनो। तू राजगुरु बनकर राजा को अपना शिष्य बनाता है तो उसके कर्मों का भारी बोझ तू अपने सिर पर लेता है। फिर तेरा शिष्य, वह राजा, जो-जो हत्याएँ करेगा, वह कर्म तेरे सिर पर भी पड़ेंगे, क्योंकि राजा अपने गुरु के निर्देश के अनुसार ही कार्य करता है। उसके सभी अच्छे-बुरे कर्मों में तू भी भागीदार है। फिर काल तुझे वैसे ही पछाड़ेगा जैसे शिकारी अपने शिकार किए जानेवाले जानवर को मारता है। संसार-सागर में तेरी स्थिति, भारी पत्थरों से भरी हुई लोहे की नाव के समान होगी। पाखंडी गुरुरूपी मल्लाह संसार-सागर के बीच हार मानकर डूबने लगता है। कहीं भी थाह न पाकर वह डूब जाता है। उसने बहुत से स्त्री-पुरुषों को शिष्य बना रखा है। वे भी संसार-सागर को पार नहीं कर पाते और उसी में डूब जाते हैं। इस प्रकार ऐ पंडित! तूने न तो अच्छी तरह से स्वार्थ ही साधा और न ही परमार्थ कमाया, बल्कि ख़ुद अपना नाश करके सब कुछ बिगाड़ लिया। हम झूठी प्रशंसा की बातें सुनकर मन में ख़ुशी से मग्न रहते हैं, जबकि सच्ची बातें हमें गाली की तरह लगती हैं। जिस निर्मल और पवित्र परमात्मा को वेद अवर्णनीय कहते हैं और उसके बारे में अनेक प्रकार से सुंदर ढंग से कथन करते हैं, उन बातों को तो तू बताता ही नहीं। गीता के अर्थ को भी तू गुप्त रखता है

और इस प्रकार अपने मन के अनुसार जाल फैलाता है। दरिया साहिब कहते हैं कि सतगुरु के बताए शब्द को ही सच मानकर इसे सँभालकर गाँठ बाँधनी चाहिए। तभी हम संसार-सागर के बीच कभी नहीं डूबेंगे।

पंडित सांच कहे जग मारे।
झूठ कहे सबे हितकारी बांधि नरक में डारे॥
घर घर पांडे दीछा देवहिं बोझ लिए सिर भारी।
है जेहुं तेहुं का सिखवा पर हित है हितकारी॥
करि असनान तिलक सिर देवहि रोज बजावहि घांटी।
आतम मारि पखाने पूजे लिए भरम की टाटी॥
आंख मुंदि मौनी होए बैठे कर में माला फेरे।
जौं बकुला जल रहे किनारे टप दे मछरी हेरे॥
निगम नेति सादा जग माहीं सर्ब मासु के खावे।
अपने अंधा आगु ना सूझे आनहि आंगुरि लावे॥
ऐसे बुड़े बहुत अभिमानी सतगुर चरन बिसारे।
कहें दरिया सतनाम भजन बिनु गए जबाना हारे॥[138]

सांच=सच; **हितकारी**=कल्याणकारी; **दीछा देवहिं**=दीक्षा देते हैं; **जेहुं... का**=जैसा था वैसा ही रह जाना; **सिखवा**=शिष्य; **असनान**=स्नान; **देवहि**=देते हैं, लगाते हैं; **आतम**=जीवात्मा; **पखाने**=पत्थर; **टाटी**=बाँस आदि की फट्टियों से बनाया गया पल्ला, चिक, परदा; **बकुला**=बगुला; **टप**=झटपट; **हेरे**=देखना; **निगम**=वेद; **नेति**=न+इति, यह भी नहीं, इतना ही नहीं, अवर्णनीय; **सर्ब**=सबका; **आगु...सूझे**=आगे को दिखाई नहीं देता; **आनहि...लावे**=दूसरे को अपनी उँगली से इशारा करना या राह बताना; **बिसारे**=भूलकर; **जबाना हारे**=संसार की बाज़ी हारकर।

यदि हम सच कहें तो संसार मारने को दौड़ता है, जबकि झूठ कहनेवाले को हितकारी कहा जाता है। परंतु झूठ कहनेवाले को यमराज नरक में अवश्य

डालता है। पाँड़े घर-घर जाकर लोगों को दीक्षा देते हैं और दीक्षित होनेवाले के कर्मों का भार अपने सिर पर ले लेते हैं। शिष्य तो जैसे का तैसा ही रह जाता है अर्थात् उसका कोई लाभ नहीं होता, पर फिर भी वे गुरु दूसरों के लिए कल्याणकारी कहे जाते हैं। वे स्नान करके अपने मस्तक पर सुंदर तिलक लगाते हैं तथा रोज़ धर्म-स्थलों में घंटियाँ बजाते हैं। भ्रम का परदा पड़ा होने के कारण वे जीव को मारकर निर्जीव पत्थर की मूर्ति की पूजा करने के लिए चढ़ाते हैं। जैसे बगुला पानी के किनारे ध्यान मग्न होकर खड़ा रहता है, पर मछली की आहट पाते उसे झट पकड़कर चट कर जाता है, वैसे ही वे भी आँखें बंद करके मौनी बनकर हाथ में माला फेरते हुए किसी अवसर की तलाश में बैठे रहते हैं। वेद कहते हैं कि वह बेअंत परमात्मा सारे संसार में सभी जीवों में व्याप्त है, फिर भी वे सभी जीवों का मांस खाते हैं! वे स्वयं अंधे हैं, आगे उनका क्या हाल होनेवाला है, कुछ भी उन्हें नहीं सूझता, फिर भी वे दूसरों को अपनी उँगली से राह दिखाते हैं! सतगुरु के चरणों को भुला देनेवाले ऐसे अनेक अभिमानी संसार-सागर में डूब जाते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि वे सच्चे नाम के भजन के बिना संसार की बाज़ी हारकर चले जाते हैं।

रे नर ऐसा गुरु ना कीजै।
दोजक कारन करे खुसामद धोती पैसा लीजै॥
सास्तर साथ बगल तर राखहिं गीता को मति ऐसा।
खेलि सिकार जंगल जिव मारहिं अठई दसई भैंसा॥
संझा तरपन औ गाइत्री या का भेद बतावै।
दिल में दोबिधा दाया ना भाखे हरिनी खंसी खिआवै॥
गुरू सीख के एक मता भौ दुई पाखंड भौ भारी।
नाव पथल के चले ना जल में दुइ कनहरिया हारी॥
ज्ञान होए तौं मन के चीन्हे तन मन धन सभ बारी।
होए मुक्ति दाया को सागर भौ से लेत निकारी॥
बेद पढ़ी पढ़ि भेद ना जाने मरि मरि फेरि अवतरिया।
कहें दरिया बिनु दाया ठवर नहिं समुझि के बांह पकरिया॥[139]

दोजक=नरक; **बगल...राखहिं**=बगल में रखता है; **मति**=मत; **सिकार**=शिकार; **जिव**=जीव; **मारहिं...भैंसा**=अष्टमी और दशमी तिथि को भैंसे की बलि देता है; **संझा**=संध्या; **तरपन**=तर्पण; **गाइत्री**=गायत्री, ब्रह्मा ने वेदों की रचना करने से पहले चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र की रचना की थी; **दिल**=हृदय; **दोबिधा**=दुविधा, उलझन; **हरिनी**=हिरणी; **खंसी**=बकरा; **खिआवै**=खाना; **सीख**=शिष्य; **भौ**=हुआ; **दुई**=दोनों को; **पथल**=पत्थर; **कनहरिया**=कर्णधार, मल्लाह; **मन...चीन्हे**=मन (के धोखे) को पहचान लेता है; **बारी**=न्योछावर करना; **दाया...सागर**=दया का सागर (सतगुरु); **भौ से**=संसार-सागर से; **निकारी**=निकालना; **अवतरिया**=जन्म लिया; **दाया**=दया (सतगुरु की); **ठवर**=ठौर, ठिकाना; **बांह पकरिया**=बाँह पकड़ना, सहारा लेना।

दरिया साहिब हमें सावधान करते हैं कि हमें ऐसा गुरु नहीं करना चाहिए जो हमें नरकों से बचाने के लिए कहकर हमारी ख़ुशामद करता है और हमसे धोती और पैसा लेता है। जो शास्त्रों को अपने साथ बग़ल में रखकर गीता का मत समझाता फिरता है, परंतु जंगल में शिकार खेलकर जंगली जीवों की हत्या करता है तथा अष्टमी और दशमी तिथि को भैंसे की बलि देता है, जो हमें संध्या, तर्पण और गायत्री का रहस्य बताता है, परंतु हृदय में उलझन होने के कारण दया-भाव की बात नहीं करता और बकरे और हिरणी को मारकर खाता है। ऐसे गुरु और शिष्य दोनों एक-मत होकर भारी पाखंड करते हैं। जैसे पानी में पत्थर की नाव को दो-दो मल्लाह भी पार नहीं ले जा सकते, उसी तरह ये दोनों पाखंडी संसार-सागर से पार नहीं हो सकते। जिसे विवेक या ज्ञान होता है वह मन के धोखे को पहचानकर अपना तन, मन, धन—सब कुछ दया के सागर सतगुरु पर न्योछावर कर देता है। सतगुरु उस जीव को संसार-सागर से निकाल लेते हैं तथा उसकी मुक्ति हो जाती है। पाखंडी गुरु वेदों को पढ़कर भी परमात्मा का भेद नहीं जान पाते और बार-बार संसार में जन्म लेते रहते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि सतगुरु की दया के बिना जीव को कोई

ठिकाना नहीं मिलता, इसलिए सोच-समझकर हमें किसी सतगुरु की ही बाँह पकड़नी चाहिए।

नर तुम देह चीन्ह गुरु कीन्हा।
भीतर भरी भेंगार भरम की, हरि बातों में बीना॥
बाहर मुरति पथल का रचिया ता पर पाती दीना।
सजीव तोरि निरजीव के पूजा जबर से भए अधीना॥
महिखा मारि देवल को भीतर पर आतम कहे भीना॥
जीव सीव एह राम सभनि में भान कला छबि दीना॥
तीलक चर्चेव कान्ह जनेऊ अज्या को सिर छीना।
जैसे स्वान अपावन राते और भछहि बहु मीना॥
गर्बी माते गर्ब काया ते और दइत बल कीन्हा।
काल सिकारी खेदि के मारे जाल परा खग झीना॥
मरकट मुठि नीके गहि लागी बुद्धि परा मति हीना।
कहें दरिया नहिं दर्द काल के दाया बिना दुख लीन्हा॥[140]

देह चीन्ह=बाहरी शरीर को देखकर; **भेंगार...की**=भ्रम का विकार; **बीना**=बनना, बुनना; **पथल**=पत्थर; **रचिया**=बनाई; **ता पर**=उस पर; **पाती**=पत्ते; **दीना**=चढ़ाना; **सजीव**=जिसमें जान हो; **निरजीव**=जिसमें जान न हो; **जबर**=ज़बरदस्त काल; **महिखा**=भैंसा; **देवल**=देवालय, मंदिर; **आतम...भीना**=परमात्मा को जीव से अलग कहते हैं; **सीव**=ईश्वर; **भान कला**=सूर्य की किरण; **छबि**=शोभा; **दीना**=दे रही हैं; **तीलक चर्चेव**=लेप लगाकर तिलक लगाना; **अज्या...छीना**=बकरी का सिर काटना; **अपावन**=अपवित्र (मांस); **राते**=मग्न होना, चस्का लगना; **भछहि**=खाना; **गर्बी**=घमंडी; **माते**=मतवाले हुए, नशे में चूर होना; **काया**=शरीर; **दइत**=दैत्य, राक्षस; **काल सिकारी**=कालरूपी शिकारी; **खेदि...मारे**=खदेड़कर मारे; **परा**=पड़ गया; **खग**=पक्षी; **झीना**=अति सूक्ष्म; **मरकट**=बंदर; **नीके...लागी**=अच्छी तरह कसकर पकड़ी

हुई; **बुद्धि...हीना**=बुद्धि मारी गई; **दाया**=दया; **दुख लीन्हा**=दुःख लिया, उठाया।

ऐ मनुष्य! तूने तो बाहरी शरीर को देखकर गुरु धारण कर लिया है, पर उसके अंदर तो भ्रमों के विकार भरे पड़े हैं। ईश्वर की बातों को भी वह अपनी बातों के ताने-बाने में बुनकर सुनाता है। वह बाहर बनाई गई पत्थर की मूर्ति पर फूल-पत्तियाँ चढ़ाता है। इस प्रकार सजीव पौधों से पत्तियों को तोड़कर निर्जीव पत्थर की मूर्ति की पूजा करता है तथा इस कारण वह ज़बरदस्त काल के अधीन हो जाता है। वह मंदिर के भीतर भैंसे की बलि देता है और कहता है कि परमात्मा तो जीव से भिन्न है। जबकि सचाई यह है कि परमात्मा हर जीव के अंदर उसी प्रकार विराजमान है जैसे सूर्य की किरणें सब जगह शोभा दे रही हैं। वह अपने मस्तक पर लेप लगाकर तिलक लगाता है, कंधे पर जनेऊ धारण करता है, परंतु बलि के लिए बकरे का सिर काटता है। उसे मांसाहारी जीवों के समान मांस का चस्का लगा हुआ है तथा वह मछलियाँ भी बहुत खाता है। वह शरीर के गर्व में चूर होकर घमंडी बना हुआ है तथा राक्षसों के समान जीवों को मारने के लिए उन पर बल प्रयोग करता है। ऐसे में कालरूपी शिकारी उसे खदेड़कर मारेगा और वह पक्षी की तरह उसके अति सूक्ष्म जाल में फँस जाएगा। संसार में उसकी हालत उस बंदर जैसी है जो तंग मुँह वाले बरतन से अनाज के दानों को निकालने के लिए अपनी मुट्ठी को अच्छी तरह कसकर बंद कर लेता है। उस समय उसकी बुद्धि ऐसी मारी जाती है कि वह दानों को छोड़कर अपनी मुट्ठी नहीं खोलता और भ्रमवश यह समझता है कि उसके हाथ बर्तन में फँस गए हैं। इस प्रकार संसार में फँसे हुए जीवों पर काल कोई दया नहीं करता। दरिया साहिब कहते हैं कि सतगुरु की दया के बिना जीव अपने ऊपर दुःख ले लेता है।

साधो धोखा के जग धावै।
पाहन पानपति एह कीन्हा अजहुं गति नहिं आवै॥

भेख बनाइ सोभा बड़ि सुन्दरि सेली गूंथि ग्रिव नावै।
नाचे गावे ताल बजावै नट को कला दिखावै॥
कथनी कथि के मथनी मथि के घ्रीत कबहि नहि पावै।
छाछि पिवै सो मन मतवाला बांधा जमपुर जावै॥
छोड़ि सांच एह झूठ मिठाई रसना स्वाद न पावै।
पाप पुन्य के मोटरि सिर पर ऐहु जीव जहडावै॥
आंधर गुरू बहिर है चेला चतुराई से खावै।
दूनो पगु में बेरी भरि के काल घसेटे जावै॥
कहत फिरे भला गुरु मेरा चारो फल घर आवै।
कहें दरिया तब समुझि पड़ेगा जब जम मुसुक चढ़ावै॥[141]

धावै=फिरना; **पाहन**=पत्थर; **पानपति**=प्राण प्रतिष्ठा; **कीन्हा**=बना लिया; **अजहुं**=अब भी; **गति**=मार्ग; **भेख**=दिखावे के वेष; **सेली गूंथि**=माला गूँथकर; **ग्रिव नावै**=गले में पहनना; **नट**=नाचनेवाला; **कथनी**=बातें; **कथि के**=कहकर; **घ्रीत**=घी; **कबहि**=कभी भी; **छाछि**=मट्ठा; **मतवाला**=मस्त; **रसना**=जीभ; **मोटरि**=गठरी; **ऐहु**=यह, इस प्रकार; **जहडावै**=भटकना, ठगना; **आंधर**=अंधा; **दूनो पगु**=दोनों पाँव; **बेरी**=ज़ंजीर; **भरि के**=भरकर, डालकर; **घसेटे**=घसीटना; **चारो फल**=चार फलों को चार पुरुषार्थ भी कहते हैं, ये हैं – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; **मुसुक चढ़ावै**=बाँहों को मोड़कर उन्हें कसकर पीछे बाँधना।

हे साधुजनों! दुनिया के लोग पाखंड या धोखे के पीछे दौड़ते हैं। उन लोगों ने पत्थरों को ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया हुआ है। सही मार्ग पर नहीं चलने से आज तक इनकी गति नहीं हुई अर्थात् इन्हें मुक्ति नहीं मिली। परमार्थ के नाम पर ये बड़े ही सुशोभित ढंग से दिखावे के वेष बनाते हैं, सुंदर माला गूँथकर अपने गले में पहनते हैं, नाचते-गाते और तालियाँ बजाते हैं, शारीरिक मुद्राओं के द्वारा मदारी जैसी कलाएँ दिखाते हैं। परंतु केवल बातों की मथानी से मथने पर कोई भी कभी घी प्राप्त

नहीं कर सकता। परमार्थ के सच्चे घी के बिना केवल खोखली बातों का मट्ठा पीकर ही इनका मन मस्त बना हुआ है, जिसके कारण इन्हें बंधन में पड़कर यमपुरी जाना पड़ेगा। सचाई को छोड़कर केवल झूठ की मिठाई खाने से जीभ को स्वाद नहीं मिल सकता। जब तक इनके सिर पर अच्छे और बुरे कर्मों की गठरी है, तब तक ये इसी प्रकार भटकते रहेंगे। यदि गुरु मिलता है और वह अंधा है, जिसके पास ज्ञानरूपी नेत्र नहीं हैं तथा शिष्य बहरे हैं जिन्हें अंतर में सुनने की शक्ति नहीं है, तो गुरु और शिष्य दोनों ही अपनी चतुराई से केवल पेट भरने का कार्य करते हैं। परंतु अंत में काल इनके दोनों पाँवों में ज़ंजीर डालकर इन्हें घसीटते हुए ले जाता है। वैसे तो कुछ लोग कहते फिरते हैं कि हमारा गुरु अच्छा है जिसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – ये चारों फल हमारे घर आते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि इन्हें तभी सचाई की समझ आएगी जब यमराज इनकी बाँहों को मोड़कर उन्हें कसकर पीछे बाँधकर अपने साथ ले जाएगा।

4

सत्संग की आवश्यकता

सत्संग की महिमा

जीव को निर्मल बनाने और उसके भक्ति-भाव को जगाने के लिए सत्संग अत्यंत आवश्यक है, पर सत्संग या संतों की संगति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। संत परमात्मा के प्रकट रूप होते हैं। अत: उनकी संगति में आकर उनके प्रति प्रेम बढ़ाने से ही परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम उभरता है और अंत में वे हमें परमात्मा से मिला देते हैं।

संत या सतगुरु के चरण करोड़ों तीर्थों के समान पवित्र करनेवाले हैं। इसलिए संत या सतगुरु का दर्शन और उनके प्रति प्रेम कभी व्यर्थ नहीं जाता। उनके दर्शन के लिए जाने पर क़दम-क़दम पर पुण्य प्राप्त होता है। अंतर में प्रत्येक क़दम बढ़ाने पर अपार पुण्य-लाभ होता है और असंख्य पाप कटते हैं। उनके आंतरिक दर्शन से हमारा हृदय-कमल खिल उठता है, अंतर में प्रकाश छा जाता है और शब्द यानी नाम प्रकट हो जाता है। संतों के सत्संग द्वारा हम धीरे-धीरे पाप कर्मों से मुक्त होकर पवित्र बन जाते हैं और परमात्मा से मिलाप कर लेते हैं:

संत समाज सदा सुख राजू। भक्ति महातम सिर पर छाजू॥[1]

संत समाज=संतों का सत्संग; **महातम**=महिमा, पुण्य प्रदान करनेवाला फल; **छाजू**=शोभा देना।

संतों का सत्संग सदा सर्वोत्तम सुख देनेवाला है। सत्संग जिज्ञासु को प्रभु-भक्ति में लगाता है और भक्ति की महिमा यह है कि भक्त के सिर पर प्रभु की छत्र-छाया रहती है।

साधु संगति कोई चिन्ह सुभागा। जेहि चीन्हे सब दुरमति भागा॥
जब चिन्हें तब भवो निकलंका। निज मुख बैन कहे सत अंका॥[2]

सुभागा=सौभाग्यशाली, भाग्यवान्; **दुरमति**=बुरे विचार; **भवो**=होना; **निकलंका**=बेदाग़, निर्मल; **बैन**=वचन; **सत अंका**=सच्चे मंडल के।

ईश्वर के सच्चे धाम को कोई सौभाग्यशाली व्यक्ति ही सत्संग के माध्यम से पहचान पाता है। जो उसे पहचान लेता है, उसके सभी बुरे विचार दूर भाग जाते हैं। इस प्रकार की पहचान हो जाने पर जीव निर्मल होकर स्वयं अपने मुख से उस सच्चे मंडल की बात कहता है।

माला टोपी भेष नहीं, नहीं सोना श्रृंगार।
सदा भाव सतसंग है, जो कोई गहे करार॥[3]

भेष=बाहरी दिखावा; **भाव**=अवस्था या रूप, प्रेम; **गहे**=ग्रहण करे; **करार**=असली, खरा।

सत्संग के लिए माला, टोपी आदि का बाहरी दिखावा करने या सोने के सुंदर आभूषणों से सजने की आवश्यकता नहीं होती। यदि कोई सत्संग को असली रूप में ग्रहण करना चाहता है तो उसके लिए सादगी अपनाना ठीक है।

कोटि तिरथ साधुन्हि के चरना। भगति भाव किलिबिख सब हरना॥
साधु निकट सब तिरथ कहावै। भूला भरमि के जग भरमावै॥[4]

कोटि=करोड़ों; **किलिबिख**=पाप; **हरना**=दूर करना, नष्ट करना; **भरमि**=भ्रमित होकर; **भरमावै**=भरमना, भटकना।

साधु-संतों के चरणों में करोड़ों तीर्थ हैं अर्थात् उनके पास आना ही करोड़ों तीर्थों के समान है। संतों के प्रति प्रेम और भक्ति जीव के सारे पापों को दूर कर देती है। साधु-संतों के निकट तो सब तीर्थ ही तीर्थ हैं, पर भ्रमों में भूला हुआ जीव संसार में अपने पापों को दूर करने के लिए तीर्थों में भटकता फिरता है।

करहु प्रेम संतन्हि से जाई। दरसन प्रेम म्रिथा नहिं भाई॥[5]

म्रिथा=व्यर्थ।

तुम संतों के पास जाकर उनसे प्रेम करो। प्रेम और श्रद्धा से उनके दर्शन करना कभी व्यर्थ नहीं जाता।

जो पगु संत दरस कंह परई। कोटि पुन्य अघ पातक हरई।
जेहि मंदिल मनि संत बिराजे। कोटि तीर्थ पद पंकज छाजे॥

संत दरस गुन सुखद अति, हृदय कंवल परकास।
जो पगु पड़े प्रयाग सम, सुरसरि जल पद पास॥[6]

पगु=पाँव, क़दम; **कंह**=के लिए; **परई**=पड़ता है; **अघ पातक**=नरक में डालनेवाले पाप और दुष्कर्म; **हरई**=दूर करना; **मंदिल**=मंदिर, घर; **मनि**=रत्न, श्रेष्ठजन; **पद पंकज**=चरण-कमल; **छाजे**=शोभा देना; **गुन**=प्रभाव; **हृदय...परकास**=हृदयरूपी कमल का खिल जाना; **सुरसरि**=गंगा; **पद पास**=चरणों के पास।

जो क़दम संतों के दर्शन करने के लिए उठता है, उसमें एक-एक क़दम पर करोड़ों पुण्यों का फल प्राप्त होता है तथा नरकों में डालनेवाले पाप और बुरे कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिस घर में संतरूपी रत्न सुशोभित होते हैं, उनके चरणों में करोड़ों तीर्थ शोभा देते हैं। संतों के दर्शन का प्रभाव अत्यधिक सुख देनेवाला होता है। इससे मनुष्य के हृदयरूपी कमल में

प्रकाश छा जाता है। वैसे तो कहा जाता है कि प्रयाग में स्थित गंगाजल के द्वारा निर्मलता प्राप्त होती है परंतु सच्चा तीर्थराज, प्रयाग और पवित्र करनेवाला गंगाजल तो संतों के चरणों में स्थित है। जो कोई भी उनकी शरण में जाता है वह निर्मल हो जाता है।

संत दरस गुन सभ ते नीका। जेंवो मस्तक बिच मनि का टीका॥
तहं दीपक के कौने कामा। कोटि तिर्थ भरमे का धामा॥
संत निकट पट देखु उघारी। तामे चरित्र अनेक संवारी॥
चच्छु बिहून देखे नहिं नैना। बहिरा से कोटि कहे जो बैना॥
ना उन्हि सुना मुकुर नहिं देखा। इमि करि बचन झूठ करि लेखा॥

गुर पद पदुम मन भंमर करु, आनंद मंगल मूल।
लै लपटि रहा बिमल रस, काटि कर्म कलि सूल॥

भव भर्म भंजन पाप रंजन संजन जन सुख पावहीं।
चरन कंज में मंजन तन करु त्रिबिधि ताप नसावहीं॥
बिमल झलकत पलक पेखो अलख नाम लखावहीं।
जीवन मुक्ति जो जिंद जग में दरस दरिया पावहीं॥[7]

टीका=माथे पर पहना जानेवाला एक आभूषण; **कौने**=क्या; **धामा**=तीर्थ-स्थान, देव-स्थान; **पट**=परदा; **उघारी**=खोलना, परदा उठाना; **तामे**=उसमें; **संवारी**=सजना, रचना; **चच्छु बिहून**=नयन से हीन, अंधा; **बैना**=बातें; **मुकुर**=आईना; **पद पदुम**=चरण-कमल; **भंमर**=भौंरा; **मंगल**=कल्याण; **लपटि रहा**=लिपटा हुआ, मोहित हो रहा; **बिमल रस**=निर्मल प्रेमरूपी रस; **कलि**=कलियुग; **सूल**=कष्ट; **भव... भंजन**=संसार के भ्रमों का नाश करनेवाले; **पाप रंजन**=पापों में अनुरक्त, रँगा हुआ; **संजन**=सजन; **चरन कंज**=चरण-कमल; **मंजन...करु**=संतों के आंतरिक चरणों की धूलि में स्नान करो; **त्रिबिधि ताप**=तीन प्रकार के कष्ट – आध्यात्मिक कष्ट, आधिभौतिक कष्ट और आधिदैविक कष्ट;

पलक पेखो=पलक उघारकर देखो; **अलख**=परमात्मा, जिसे आँखों से देखा नहीं जा सकता; **लखावहीं**=दिखा देते हैं।

जैसे मस्तक पर पहना जानेवाला रत्नजड़ित टीका नामक आभूषण सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार संतों के दर्शन की महिमा भी सबसे अधिक है। जब संत-दर्शन प्राप्त हो जाता है तो फिर मंदिरों में दीपक जलाने और तीर्थों में भटकने की आवश्यकता नहीं रह जाती। संतों के पास जाकर हमारी आँखों पर पड़ा परदा खुल जाता है तथा अंतर में अनेक प्रकार के सुंदर नज़ारे दिखाई देते हैं। लेकिन दुनिया के जीवों के पास इन्हें देखनेवाली आँख नहीं है, उन्हें तो कुछ भी दिखाई नहीं देता। ये तो ऐसे बहरे हैं कि करोड़ों बातें कहने पर भी कोई लाभ नहीं होता। ऐसे बेचारे सांसारिक जीवों के पास न तो अपने शरीररूपी दर्पण में दिखाई देनेवाली आँख खुली है और न ही उनके बताए शब्द को सुननेवाले आंतरिक कान खुले हैं, जिसके कारण वे न कुछ सुन पाते हैं और न ही कुछ देख पाते हैं। फलस्वरूप वे संतों के वचनों को झूठ कहते हैं।

संत दरिया हमें सलाह देते हैं कि गुरु के चरण-कमलों में अपने मन को भँवरे की तरह लीन कर दो, जो आनंद और कल्याण के मूल हैं। मनरूपी भँवरा जब गुरु के चरण-कमलों के प्रेम रस में लवलीन हो जाता है तो इस कलियुग की पाप-बुद्धि से किए गए कर्मों की चुभन दूर हो जाती है। संत सांसारिक भ्रमों को दूर करनेवाले और पापों को मिटाकर आनंद प्रदान करनेवाले होते हैं। इसलिए आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक कष्टों को नष्ट करने के लिए संतों के चरण-कमलों में अपने आप को नहलाओ अर्थात् उनके चरण-कमलों की शरण लेकर उनकी सेवा में लगो। संत इन भौतिक आँखों से न दिखाई देनेवाले नाम को दिखा देते हैं। ऐ जीव! तू अपनी पलकें उघारकर देख। तेरे अंतर में नाम का निर्मल प्रकाश झलकता है। जो व्यक्ति संसार में संतों की बताई युक्ति से जीते-जी मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उसे परमात्मा का दर्शन हो जाता है।

जो कोइ साधु दरस के जावै।
पगु पगु तीरथ दान पुन्य है कोटि तिरथ भ्रमि आवै॥
दरसन से फेरि परसन हुआ है तंमा पारस पावै।
वाका भेद जाने नहिं कोई सोना सुगंध बनावै॥
जन्म सूल है सील को सागर आगर मुक्ति बतावै।
संत के सेवा असंत करतु है भक्ति महातम पावै॥
अरथ मिले तब धरम कथत है काम चिन्हे मोक्ष पावै।
चारो फल का एहि महि महिमा जो कोई अरथ लगावै॥
जढ़ नहिं जानहि एह भौ भरमा चढ़ी चरख पछतावै।
जैसे लगी रहट की घरिया एक बूड़े एक आवै॥
पसुअत ज्ञान साधु नहिं चीन्हहि सुनि के मुंदहिं काना।
कहें दरिया जेहि दया दरद नहिं जम के हाथ बिकाना॥[8]

के=को; **पगु**=क़दम; **परसन**=स्पर्श, परमात्मा को साक्षात् अनुभव करना; **तंमा**=ताँबा; **वाका**=उसका; **सूल**=दुःख; **सील**=शील; **आगर**=उत्तम, श्रेष्ठ; **चारो फल**=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; **महि**=में; **जढ़**=मूर्ख; **भौ**=संसार; **चरख**=पहिया, चक्कर; **रहट...घरिया**=घड़िया, रहट से पानी निकालने के लिए लगी ठिलिया; **पसुअत**=पशु के समान।

जो कोई साधु-संतों के दर्शन के लिए जाता है उसे क़दम-क़दम पर करोड़ों तीर्थों के दान-पुण्य का फल प्राप्त होता है। जैसे पारस का स्पर्श पाकर तांबा सोना बन जाता है और उसका भेद किसी को पता नहीं चलता, वैसे ही संत का दर्शन मिलने के बाद जब जीव को उनका आंतरिक स्पर्श प्राप्त होता है तो वह परमात्मा बन जाता है। मनुष्य-जीवन दुःखमय है परंतु शील के सागर सतगुरु इसी जन्म में उसे उत्तम मुक्ति का मार्ग बताते हैं। यदि कोई दुष्ट व्यक्ति भी संतों की सेवा करे तो उसे भी प्रभु-भक्ति का श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। संतों की शरण में जाने पर मनुष्य-जीवन के चारों पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इसी संसार में प्राप्त हो

जाते हैं। मूर्ख लोग इस संसार के भ्रम को नहीं समझ पाते। वे आवागमन के चक्र में पड़कर बार-बार जन्म लेते हैं तथा मृत्यु का कष्ट भोगते हुए पछताते हैं। संसार के आवागमन के चक्र में पड़े उनकी स्थिति वैसी ही है जैसे रहट में पानी निकालने के लिए लगी हुई घड़िया, रहट के घूमने के साथ एक-एक करके कुएँ में डूबती तथा निकलती रहती है। पशु के समान जीवन बितानेवाले ऐसे लोग न तो परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं और न ही साधु-संतों को पहचान पाते हैं। वे तो संतों के वचन सुनकर अपने कान बंद कर लेते हैं। ऐसे लोग जिनके हृदय में दया-भावना नहीं और जो जीव मात्र के प्रति पीड़ा का अनुभव नहीं करते, यमराज के हाथ में पड़कर कष्ट भोगते हैं।

सत्संग के लाभ

संतों की संगति में जाने पर ही हमें उनसे शब्द यानी नाम का भेद प्राप्त होता है जिसके अभ्यास से चित्त निर्मल होता है। संतों के सत्संग के प्रभाव से हमारे हृदय की मैल उतर जाती है, आंतरिक कमल खिल उठता है, हमारी कुबुद्धि नष्ट हो जाती है और भक्ति, विवेक तथा वैराग्य का उदय हो जाता है। जैसे पारस-मणि के संपर्क से लोहा सोना बन जाता है, स्वाति की बूँद को पाकर सीप मोती से भर जाती है, मलयागिरि चंदन की सुगंधि से आसपास के वृक्ष चंदन बन जाते हैं और फूल की सुवास से तिल का तेल, सुगंधित फुलेल बन जाता है, ठीक वैसे ही सत्संग के प्रभाव से दुष्ट भी महात्मा बन जाते हैं। इसके विपरीत बुरी संगति में पड़कर सज्जन भी दुर्जन बन जाता है, जैसे नदी का मीठा जल समुद्र में मिलकर खारा हो जाता है।

इसलिए हमें संत या सतगुरु के सत्संग में आकर तथा उनकी सेवा कर उनके प्रति अपना प्रेम बनाना चाहिए। प्रेमी जीव संत या सतगुरु के दर्शन के प्रेमामृत को बड़े चाव से पीते हैं। साधु या संतजन कल्प वृक्ष के समान होते हैं जिनसे हमें चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है। हमारा हर काम सफल हो जाता है और हम सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा जाते हैं:

करु सेवा सत संगति सरना। मेटै जग में जरा मरना॥
जौ मीले सतसंग सुभागा। होए बिबेक भग्ति (अरु) बएरागा॥
नदी मिलै सलिता में जाई। खारो जल संगति सो पाई॥
पारस मूल सब्द जो पावै। चकमक चित्त चुमुकि लौ लावै॥[9]

सत संगति=सत्संगति; **सरना**=शरण; **जरा**=बुढ़ापा; **सुभागा**=सौभाग्य से; **बएरागा**=वैराग्य; **सलिता**=समुद्र; **खारो**=खारा; **चकमक**=एक पत्थर जिस पर आघात करने से आग निकलती है; **चुमुकि**=चुमकारना, स्पर्श करना; **लौ**=लपट, चमकना।

सत्संग, सेवा और संतों की शरण ग्रहण करने से जीव का संसार में जन्म-मरण का सिलसिला समाप्त हो जाता है। यदि सौभाग्य से सत्संग मिल जाए तो भक्ति, विवेक तथा वैराग्य की प्राप्ति होती है। कुसंगति और सुसंगति के बुरे और अच्छे फल होते हैं। समुद्र के खारे जल में मिलने से नदी का मीठा जल भी खारा हो जाता है, परंतु यदि जीव को मूल शब्दरूपी पारस का स्पर्श प्राप्त हो जाए तो उसका चित्त निर्मल होकर इस प्रकार चमक उठता है, जैसे चकमक पत्थर के रगड़ने से अग्नि प्रकट हो जाती है और उसकी लिव अंदर में लग जाती है।

पारस परसे कंचन होई। सो कुधातु कहि सके ना कोई॥
रहे असंत संत भौ ऐसे। सेंधु सीप मुकुता मनि जैसे॥[10]

परसे=छूने से; **कंचन**=सोना; **कुधातु**=खोटी धातु, लोहा; **भौ**=होना; **सेंधु**=सिंधु, सागर; **मुकुता मनि**=मोती और मणियाँ।

जैसे समुद्र में पड़ी सीप स्वाति की बूँद पाकर मोती और मणियों से भर जाती है, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है और फिर उसे कोई खोटी धातु नहीं कह सकता, उसी प्रकार संतों की संगति में आकर दुष्ट भी संत बन जाते हैं।

तिल पेरे फेरि तेल कहावै। फूल पारस फुलेल सोहावै॥
पारस फूल से कर्म कटावै। नाम सजीवन पारस पावै॥[11]

पेरे=पेरना, कोल्हू आदि में दबाकर किसी पदार्थ का रस या तेल निकालना; **फूल पारस**=फूलरूपी पारस; **फुलेल**=सुगंधित तेल; **सोहावै**=सुशोभित होता है; **सजीवन**=संजीवनी बूटी।

तिल को पेरकर पहले तेल निकाला जाता है, फिर फूलरूपी पारस के संयोग से वह सुगंधित तेल बनकर सुशोभित होता है। ठीक वैसे ही जैसे फूलरूपी पारस तेल के स्वभाव को बदलकर उसे सुगंधित तेल बना देता है, उसी प्रकार संजीवनी बूटी के समान नामरूपी पारस को प्राप्त करके जीव अपने कर्मों को मिटाकर ईश्वर का रूप बन जाता है तथा अमर हो जाता है।

सतगुर दरस संत सुख हीता। ढारेउ अम्रित पत्र पुनीता॥
पियत प्रेम दुरि मोह निरंता। बिमल ग्यान मन एक अनंता॥
सांधु संगति सभ कुमति बिहाई। सुनि गुन ग्यान अम्रित फल पाई॥[12]

हीता=कल्याण; **ढारेउ**=ढालना; **अम्रित पत्र**=अमृत का बर्तन; **पुनीता**=पवित्र; **दुरि**=दूर हो जाना; **निरंता**=सदा के लिए; **बिहाई**=त्यागकर, छोड़कर।

संत-सतगुरु के दर्शन जीव को सुख और कल्याण प्रदान करते हैं। वह उसके अंतर में अपने पवित्र दया के पात्र से प्रेमरूपी अमृत डालते हैं। जब जीव उनके प्रेमरूपी अमृत का पान कर लेता है तो उसका मोह सदा के लिए दूर हो जाता है। संतों के निर्मल ज्ञान को पाकर अनेक ओर भागनेवाला मन एकाग्र हो जाता है। इस प्रकार सत्संग के गुणों और ज्ञान को सुनने के फलस्वरूप जीव अमरत्व की प्राप्ति कर लेता है।

साधु दरस पद पंकज गहई। महा पाप दुख दारुन दहई॥
कोटि तीर्थ साधुन के पासा। भजन करे जाए जम त्रासा॥[13]

पद पंकज=चरण-कमल; **दारुन**=भयानक, घोर; **दहई**=जलना; **त्रासा**=कष्ट, यातना।

जो जीव साधु-संतों के दर्शन करके उनके चरणों की शरण ले लेता है उसके महापापों के भयानक दु:ख जलकर नष्ट हो जाते हैं। साधु-संतों के पास जाने से करोड़ों तीर्थों का फल प्राप्त होता है। यदि जीव उनके बताए तरीक़े के अनुसार भजन करता है तो उसे यम के कष्ट नहीं भोगने पड़ते।

दरसन करिए साधु का, पल पल बृगसे प्रेम।
कांट ऊपर पैठा मिले, यह गुन अतीत अनेम॥[14]

बृगसे=विकसित होना, पैदा होना; **पैठा**=रास्ता; **गुन अतीत**=तीनों गुणों से परे; माया की तीन अवस्थाओं को तीन गुण कहा जाता है, ये हैं – सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण; **अनेम**=सभी नियमों से परे।

साधु-संतों के दर्शन करने से पल-पल पवित्र प्रेम पैदा होता है। जिसके फलस्वरूप जीव को संसार के काँटों (कष्टों या कठिनाइयों) के ऊपर से परमात्मा तक पहुँचने का रास्ता मिल जाता है। यह बात तीनों गुणों और सभी नियमों से परे है।

कल्पना मेटे कल्पतरु, कि साधुन के साथ।
कि मेटावहिं साहेब धनी, जीवन-मरन जेहि हाथ॥[15]

कल्पतरु=मुँह माँगी वस्तु देनेवाला वृक्ष; **साहेब धनी**=समर्थ परमात्मा।

मन की सोची हुई सभी अभिलाषाएँ या तो तब पूरी हो सकती हैं यदि किसी को कल्प वृक्ष प्राप्त हो जाए या किसी साधु की संगति मिल जाए; या फिर समर्थ परमात्मा ही हमारी सभी अभिलाषाओं को पूरा कर दे, जिसके हाथ में जीवन-मरण है।

होए मुक्ति संत कर संगा। कुमति काल नहिं ब्यापेउ अंगा॥
दुख दारुन जम जाल बिकारा। नस्ट जाहिं नहिं जम के द्वारा॥[16]

दारुन=भयानक, घोर।

संतों के सत्संग से मुक्ति प्राप्त होती है। सत्संग प्राप्त होने से कुमति और काल का प्रभाव नहीं पड़ता। जीव के भयानक दु:ख तथा यम के जाल नष्ट हो जाते हैं और फिर जीव यम के द्वार पर नहीं जाता।

बिनु दिल दया धरम नहिं लोका। बिनु सतसंग मेटे नहिं सोका॥
सीतल परिमल बास सुबासा। निकट ब्रिच्छ सभ लेहि नेवासा॥
परिमल पारस तामे लागा। मेटा कर्म काठ को दागा॥
संत निकट सुभ बचन बेलासा। सुनत स्रवन धुनि ब्रह्म नेवासा॥
सीतल अंग कमल ब्रिगसाना। पुहुप बास भंवरा लपटाना॥
सतगुर मिले सभ सोक मेटाई। दया करहि फेरि देहि देखाई॥
मुक्ति पदारथ फल सभ चारी। रहत रहित रस ग्यान बिचारी॥

निर्मल ग्यान बिचारहु, भक्ति करहु लव लाए।
सत्त सरन सतगुर सेवा, आवागवन मेटाय॥

ज्यों सतसंग सदा चित राखै। प्रेम सुधा अम्रित रस चाखै॥
संत सुधा रस करै बिनाई। ज्यों मराल नीर छीर बिलगाई॥
छोड़ि नीर छीर जो पिबई। नाम निरख ऐसे चित धरई॥
संसृत जल पय भीतर रहई। बिबरन बिलगि सो इमि कर कहई॥
करहु बिबेक बिचारहु ग्यानी। जीवन जन्म सुधा रस बानी॥[17]

सोका=दुःख; **परिमल**=सुगंधि; **बास सुबासा**=ख़ुशबू; **बेलासा**=प्रसन्नता देनेवाला; **स्रवन**=कान; **ब्रिगसाना**=विकसित होना; **पुहुप**=पुष्प, फूल; **फल...चारी**=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; **रहित रस**=सांसारिक रसों से अलग रहकर; **लव लाए**=लिव लगाकर; **सत्त सरन**=सतगुरु की शरण; **प्रेम सुधा**=प्रेमामृत; **बिनाई**=बीनना, छाँटकर अलग चुनना; **छीर**=दूध; **पिबई**=पीता है; **संसृत**=मिला-जुला; **पय**=दूध; **बिबरन**=स्पष्ट करना, सामने लाना; **बिलगि**=अलग करके।

हृदय में दया के बिना संसार में कोई धर्म नहीं है। सत्संग के बिना कभी दुःख नहीं मिटते। शीतल सुगंध-युक्त चंदन के वृक्ष के समीप रहनेवाले सभी वृक्ष उसकी सुगंधि को ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार पारसरूपी चंदन की उस सुगंधि के स्पर्श से वे वृक्ष भी चंदन ही बन जाते हैं, फिर वे धब्बेदार साधारण लकड़ी नहीं रह जाते। सत्संग के वचन सुनकर सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है और जीव आंतरिक कानों से शब्द-धुन को सुनकर ईश्वर से मिलाप कर लेता है। उसके अंतर में शीतलता छा जाती है तथा अंतर का कमल खिल उठता है जिसकी सुगंधि में आत्मारूपी भँवरा लीन हो जाता है। इस प्रकार सतगुरु के मिलाप से सभी दुःख दूर हो जाते हैं और सतगुरु दया करके शिष्य को अंतर में सब कुछ दिखा देते हैं। उनकी दया से जीव सांसारिक रसों से अलग रहकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थों का फल प्राप्त कर लेता है। इसलिए हे मनुष्य! तू इस निर्मल ज्ञान पर विचार कर और संतों के सत्संग में लवलीन होकर ईश्वर की भक्ति कर, क्योंकि सतगुरु की शरण लेने तथा उनकी सेवा में लगने से ही आवागमन से छुटकारा होगा।

हे ज्ञानी! यदि तू अपने चित्त को हमेशा सत्संग में लगाए रखेगा, तभी प्रेमामृत के अविनाशी रस को चख पाएगा। संत इस ईश्वर-प्रेमरूपी अमृत के रस को सांसारिक रसों से इस प्रकार अलग करके छाँट लेते हैं, जैसे हंस पानी और दूध को अलग कर लेता है। जैसे हंस पानी को छोड़कर केवल दूध को पीता है, उसी प्रकार संत केवल नाम में ही अपना चित्त लगाए रहते हैं। संसार में दूध में पानी मिला रहता है, परंतु संत उसे अलग

करके सामने लाते हैं। तू अपने विवेक द्वारा इस बात पर विचार कर और इसी मनुष्य-जीवन में शब्द-धुनरूपी अमृत-रस को छाँटकर ग्रहण कर ले।

धन सो ग्राम वोए ठांव है, जहाँ भजन निर्बान।
मलयागिर के बास में, बेधेवो काठ अजान॥

खुसबोई चहुं ओर नेवासा। संत निकट निजु करहु बेलासा॥[18]

धन=धन्य; **ठांव**=स्थान; **भजन निर्बान**=संसार-सागर से मुक्ति दिलानेवाला भजन; **मलयागिर**=दक्षिण भारत का एक पर्वत जहाँ चंदन के वन होते हैं; **बेधेवो**=बिंध दिया; **काठ अजान**=अनजान काठ; **खुसबोई**=सुगंधि; **चंहु...नेवासा**=चारों ओर व्याप्त होना, ओत-प्रोत होना; **बेलासा**=विलास करना, आनंद मनाना।

वह गाँव और स्थान धन्य है जहाँ संतों का बताया हुआ संसार-सागर से मुक्ति दिलानेवाला भजन किया जाता है। मलयागिरि पर्वत पर होनेवाले चंदन की सुगंधि से अनजान वृक्षों का काठ भी बिंधा जाता है और सारे वृक्ष चंदन की सुगंधि से सुवासित हो जाते हैं। उसी प्रकार हे जीव! तू भी संतों के पास जाकर मुक्ति का सच्चा आनंद प्राप्त कर।

सतसंग है सुख सार, अमि बैन प्रेम अधार॥
छप लोक छापा दीन्ह, तिनि लोक से है भीन्ह॥
सभ दहेव दुर्मति आए, इमि भाग दरशन पाए॥
गुरू ज्ञान अगम सरूप, सब भएव निर्मल रूप॥
सब करम काटेउ आई, निज प्रेम पारस पाई॥[19]

अमि बैन=अमृत वचन; **छप लोक**=सतलोक; **छापा दीन्ह**=छाप दी जाती है; **भीन्ह**=भिन्न; **दहेव**=जल गई; **भाग**=भाग्य से; **काटेउ**=काट दिए, नष्ट कर दिए।

सारे सुखों का सागर सत्संग में ही निहित है। सत्संग के अमृत वचन ईश्वर प्रेम का आधार हैं। संतजन सतलोक जाने की दीक्षा या आंतरिक छाप प्रदान करते हैं। यह सतलोक त्रिलोकी से परे है। वहाँ बड़े भाग्य से सतगुरु के दर्शन प्राप्त होते हैं जिससे सारी कुबुद्धि जल जाती है। सतगुरु अगम परमात्मा के ज्ञान के साक्षात् रूप हैं जिनसे सब जीव अपने निर्मल रूप को प्राप्त कर लेते हैं। वह अपने प्रेमरूपी पारस के द्वारा जीव के सभी कर्मों को काट डालते हैं।

साधु मिले सभ सुफल काम। आनंद मंगल तीरथ धाम॥
धन सो ग्राम धन्य वोए लोग। धन्य सोई जेहि पूरन जोग॥
धन्य सतगुर जिन्हि कथहीं ज्ञान। धन्य सोइ जो धरहीं ध्यान॥
कोटि तीरथ जाहां साधू होए। उछिलत प्रेम प्रवाह सोए॥
मंजन करहिं सीतल सभ अंग। दुर्मति दुर तिनि ताप भंग॥
जैसे मनि आगे दीपक छीन। उदित उजागर भानु दीन॥
एह सुख कहियै संतन्हि पास। छुटि गौ त्रीमिर तम को नास॥
अस्तुति करहि सो सेस महेस। नारद ब्रह्मा गौर गणेस॥
साधु महिमा नहिं सेंधु समाए। निगम थाकि गुन कहा न जाए॥
घ्रीत घ्रीनि सभ मल भौ दूर। पीवहि अम्रित जन कोइ सूर॥
साधु दरस अघ पातख खोए। दरिया दरसन अमिय सोए॥[20]

पूरन जोग=संयोग का पूरी तरह जुट जाना; **कथहीं**=कहना, उपदेश देना; **सोए**=वहाँ पर; **मंजन**=स्नान; **तिनि ताप**=तीन प्रकार के कष्ट – आध्यात्मिक कष्ट, आधिभौतिक कष्ट, और आधिदैविक कष्ट; **भंग**=दूर होना, मिटना; **त्रीमिर**=कालिख, अंतर की मैल; **तम**=अज्ञानरूपी अंधकार; **अस्तुति**=स्तुति, प्रशंसा; **सेस**=शेषनाग; **महेस**=शिव जी; **गौर**=गौरी, पार्वती; **सेंधु**=सागर; **निगम**=वेद; **घ्रीत**=घी; **घ्रीनि**=सुगंधि; **सभ...दूर**=सारी मैल दूर हो गई; **अम्रित**=अमृत; **दरसन...सोए**=वे दर्शन ही अमृत हैं।

साधु-संत सच्चे आनंद और कल्याण की प्राप्ति करानेवाले सच्चे तीर्थ स्थान हैं। उनके मिलाप से सभी काम सफल हो जाते हैं। वे गाँव, वे स्थान और लोग धन्य हैं जिन्हें सतगुरु के दर्शन और सत्संग का लाभ उठाने का पूरा संयोग प्राप्त हो गया है। धन्य हैं वे जिन्हें सतगुरु परमात्मा के सच्चे ज्ञान का उपदेश देते हैं। धन्य हैं वे जो सतगुरु का ध्यान करते हैं। वे स्थान करोड़ों तीर्थों के समान हैं जहाँ साधु-संत निवास करते हैं। वहाँ प्रेमरूपी पवित्र नदी की लहरें उछलती रहती हैं। जो भी उसमें स्नान करता है उसकी कुबुद्धि दूर हो जाती है, तीनों प्रकार के कष्ट मिट जाते हैं तथा पूर्ण शीतलता प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार आंतरिक मणि के प्रकाश के सामने दीपक फीका पड़ जाता है और जगमगाते सूर्य का प्रकाश भी धीमा पड़ जाता है, उसी प्रकार सतगुरु की प्राप्ति होने पर अन्य सभी सांसारिक सुख फीके लगने लगते हैं। परमात्मा की प्राप्ति का यह सुख केवल संतों के पास ही मिलता है। उनके पास जाकर जीव के अंतर की मैल धुल जाती है और अज्ञानरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। ऐसे संत की प्रशंसा शेष जी, शिव जी, नारद जी, ब्रह्मा जी, पार्वती जी तथा गणेश जी भी करते हैं। साधु-संतों की महिमा सागर में भी नहीं समा सकती। वेद भी उनकी महिमा करते हुए थक गए हैं, अतः उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी संगति से परमार्थरूपी घी की सुगंधि आती है तथा जीव की सारी मैल दूर हो जाती है। साधु-संतों का दर्शन ही वह अमृत है जिसके द्वारा जीव के पाप और दुष्कर्म नष्ट हो जाते हैं। पर संसार के असंख्य लोगों में से कोई सूरमा ही इस अमृत का पान करता है।

संत समाज सदा सुख साज, सो काज से कारण जाय मेटाएव।
प्रेम सो मंदिर प्रीति पिऊषण, सो पद पंकज लोचन लाएव।
धन्य सो जीवन जन्म फल, कीर्ति सदा गुन साधुन गाएव।
'दरिया' जो कहे दिल एक हुआ, तब टंड सटे कहीं दूरि बोहाएव॥[21]

सो...से=सत्संग में जाने का वह कार्य करके; **कारण...मेटाएव**=दुःख के मूल कारण को ही मिटा दिया; **पिऊषण**=अमृत; **लोचन लाएव**=दृष्टि लगना,

प्रीति लगाना; **फल**=फलदायक; **टंड सटे**=टंटा-बखेड़ा, ढोंग; **दूरि बोहाएव**=दूर फेंक देना।

दरिया साहिब कहते हैं कि संतों का सत्संग सदा के लिए सुख प्राप्त करने का साधन है। सत्संग में जाने का यह कार्य करके मैंने दु:खों के मूल कारण को ही मिटा दिया है। मेरे सतगुरु प्रेम के मंदिर हैं जहाँ ईश्वर-प्रेमरूपी अमृत की प्राप्ति होती है। मैंने उनके चरण-कमलों को अपनी आंतरिक आँख में बसा लिया है अर्थात् उनमें प्रीति लगा ली है। सदा साधु-संतों का गुणगान करने में ही सच्ची कीर्ति है, ऐसा करनेवाले लोगों का जीवन धन्य है और जन्म सदा फलदायक है। जब संतों के साथ मिलाप करके हृदय में एकता आ गई तो मैंने अन्य सभी टंटे-बखेड़े दूर फेंक दिए।

सत्संग-त्याग का फल

संसारी जीव संतों के सत्संग से दूर रहते हैं। इससे उनकी आंतरिक आँख और कान बंद पड़े रहते हैं। संतों के दर्शन के बिना सच्चा ज्ञान प्रकट नहीं होता और उन्हें कभी भी आवागमन के चक्र से छुटकारा नहीं मिलता। जैसे लालची बंदर तंग मुंह वाले बर्तन से अन्न निकालने में अपनी अन्न से भरी हुई मुट्ठी को ढीली न करने के कारण अपने हाथ को उसमें फँसा लेता है और पकड़ा जाता है, उसी प्रकार सांसारिक विषय-वासनाओं के मोह में पड़ा हुआ जीव अपनी सांसारिक आसक्ति कम न करने के कारण अपने को काल के जाल में और कसकर फँसा लेता है और काल द्वारा पकड़ा जाता है। जैसे मृग शिकारी के बाजे की मधुर धुन में मग्न होकर पकड़ा जाता है, वैसे ही संसार की लुभावनी वस्तुओं के लोभ में पड़कर जीव काल के चंगुल में फँस जाता है। सत्संगरूपी अमृत के सरोवर का सुख छोड़कर संसारी जीव विष-तुल्य विषयों के समुद्र में डूबते हैं और काल के हाथों घोर कष्ट पाते हैं:

साच शब्द ही परिहरि, झूठा से करु प्रीति।
साधु देखहिं उठि भागहीं, ऐसी जग की रीति॥[22]

परिहरि=छोड़ना।

संसार की रीति ही ऐसी है कि वह साधुओं को देखकर उठ भागता है तथा सच्चे शब्द के मार्ग को छोड़कर झूठे पदार्थों से प्रेम करता है।

साधुन से भागा फिरे, चक्षु विहुना अंध।
अघ पातक प्रबल हुआ, मुँदा स्रवण का रंध॥[23]

चक्षु विहुना=जिसकी आँखें न हों; **अघ पातक**=पाप और दुष्कर्म; **मुँदा**=बंद करना; **स्रवण**=कान; **रंध**=छिद्र।

जो साधुओं से दूर भागता फिरता है, आंतरिक आँख के न खुलने से वह अंधे के समान है। उसके पाप और दुष्कर्म इतने बढ़ जाते हैं कि वह सच्ची बात सुन ही नहीं पाता।

अमी सरोवर त्यागि के, बिष सरोवर वास।
साधु संगति सभ त्यागि के, कियो मुक्ति का नास॥[24]

अमी=अमृत; **बिष**=विषयरूपी विष।

जो मनुष्य सत्संगरूपी अमृत के सरोवर को छोड़कर विषयरूपी विष के सरोवर में निवास करता है वह संसार से मुक्त होने के अवसर को खो देता है।

बिखै भाव रस मांगत, त्यागत संत सनेह।
चउरासी के भवन में, फिरि फिरि धरिहैं देह॥[25]

बिखै भाव=विषय-विकार; **संत सनेह**=संतों का प्रेम; **भवन**=योनियाँ।

जो मनुष्य संतों के पवित्र प्रेम को छोड़कर विषय-विकारों के रस की याचना करता रहता है, वह चौरासी लाख योनियों में बार-बार शरीर धारण करता है।

पसुअत ग्यान ताहि कंह जानी। जे नहिं संत दरस कंह मानी॥[26]

पसुअत=पशु के समान; **मानी**=मानना।

जो संतों के दर्शन के महत्त्व को नहीं मानते, ऐसे लोग सचमुच ज्ञान-विहीन हैं। उनका ज्ञान तो अधूरा समझना चाहिए।

संत निकट बिनु निपट दुखारी। मरकट मुठ जम जाल पसारी॥
निकट फंदा नहिं चीन्है कोई। ज्यों मिर्गा मद आंधर होई॥
अकरम को कसि काल बिसाला। निकट बसै बुझै नहिं जम जाला॥
अम्रित तेजि बारुनि करु पाना। नाम भजन बिनु बिखिधर जाना॥
जाके दया धरम नहिं राता। जम जालिम जिव करु उतपाता॥

सतगुर बचन परवान, जो जन चाहै मुक्तिफल।
सुनो स्रवन निजु ग्यान, उर अंतर जबहीं बसै॥[27]

निपट=नितांत, एकदम; **मरकट मुठ**=बंदर की मुट्ठी; **चीन्है**=पहचानना; **मिर्गा**=मृग; **मद**=कस्तूरी (की गंध); **आंधर**=बावला; **अकरम को**=बुरे कर्म करनेवाले को; **तेजि**=छोड़कर; **बारुनि**=शराब; **पाना**=पीना; **बिखिधर**=विषधर, विषैला साँप; **राता**=अनुरक्त होना, लीन होना; **जम जालिम**=निर्दयी यम; **उतपाता**=कष्ट देना, यातनाएँ देना; **परवान**=प्रामाणिक तथा विश्वसनीय सत्य; **स्रवन**=कान; **उर**=हृदय।

जो लोग संतों के पास नहीं जाते वे नितांत दुःखी रहते हैं। जैसे बंदर अपनी मुट्ठी कसकर बाँधने के कारण तंग मुँहवाले बर्तन में अपना हाथ फँसा लेता है, उसी प्रकार जीवों को फँसाने के लिए भी यम ने बड़ा ज़बरदस्त

जाल फैला रखा है। पर जैसे मृग अपनी कस्तूरी की मादक गंध के नशे से बावला हो जाता है, वैसे ही जीव अपने अज्ञानवश अंधा हो जाता है और अपने निकट पड़े फंदे को नहीं पहचान पाता। अज्ञान में पड़कर बुरे कर्म करनेवाले जीवों को शक्तिशाली काल अपने जाल में फँसा लेता है। जो लोग नाम का भजन नहीं करते वे तो मानो नाम के अमृत को छोड़कर शराब पीते रहते हैं। ऐसे लोग अपने अंदर विष धारण करनेवाले विषधर के समान हैं। जो लोग जीव मात्र के प्रति दया-भाव के धर्म का पालन नहीं करते, ऐसे जीवों को निर्दयी यम घोर कष्ट देता है।

सतगुरु का कहा यह वचन प्रामाणिक सत्य है कि सतगुरु के दिए हुए ज्ञान को मनुष्य जब अपने कानों से सुनता है और उसे अंतर में बसाता है, तभी उसकी मुक्ति का चाह पूरी होती है अर्थात् उसे मुक्ति का सुंदर फल प्राप्त होता है।

5

नाम-भक्ति

नाम की श्रेष्ठता

नाम परमात्मा की वह शक्ति है जो शब्द-धुन के रूप में परमात्मा के आंनद धाम यानी सतलोक से प्रकट होती है। सतगुरु की कृपा के बिना कोई भी इस नाम को प्राप्त नहीं कर सकता और बिना इसे प्राप्त किए कोई भी इस भवसागर को पार नहीं कर सकता।

सच्चा नाम जिसे सतनाम कहते हैं, सबका सिरताज है। यह अविनाशी नाम ही आदि, मध्य और अंत में रहनेवाला है। इसकी महिमा युग-युग से चली आ रही है। इस नाम यानी शब्द ने ही धरती, आकाश आदि समस्त रचना को पैदा किया है और यही सब का अवलंब या आधार है। नाम-भक्ति हमारे सारे पापों को नष्ट कर देती है। सतगुरु द्वारा नाम-भक्ति का भेद प्राप्त कर हम काल के जाल से निकल जाते हैं तथा परमात्मा के अविनाशी आनंद धाम को प्राप्त कर लेते हैं।

काल का जाल तीनों लोकों में फैला हुआ है। वेदों को उत्पन्न करनेवाले ओंकार और उसके परे पारब्रह्म तक की रचना महाप्रलय के समय नष्ट हो जाती है, पर नाम की नौका हमें इन सबसे परे अचल अविनाशी धाम में पहुँचा देती है।

सत्त सत्त सभ करे पुकारा। सत चीन्हे सो उतरे पारा॥
सत चीन्हा वैसो गुर ग्यानी। सत्त सब्द छपलोक की बानी॥
बिनु सतगुर नहिं सत पहचानी। बिनु पद परचे कवनि गति ठानी॥[1]

सत्त=सत्य, नाम; **छपलोक**=सतलोक; **परचे**=परिचय।

सभी लोग सत या परमात्मा की बात करते हैं, पर जो उस सत को पहचान लेता है वह भवसागर से पार उतर जाता है। वास्तव में सत शब्द, सतलोक से निकलनेवाली वाणी है। इसे कोई सच्चा ज्ञानी गुरु ही पहचानता है। सतगुरु के बिना इस सत्य की पहचान नहीं हो सकती और इस सत पद का परिचय प्राप्त किए बिना जीव भला किस तरह अपने असली ठिकाने पहुँच सकता है?

कहे दरिया सुन पंडित, सतनाम है सार।
अपने आपु विचारि के, उतरहु भवजल पार॥[2]

सार=असली सत्ता, असलियत; **अपने...के**=अपने-आप में सत् को पहचानकर।

दरिया साहिब कहते हैं कि हे पंडित! सुन, इस संसार में केवल सतनाम यानी परमात्मा ही असली सत्ता है। आंतरिक अभ्यास द्वारा इसे अपने अंतर में अनुभव करके ही संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है।

सत्तनाम सब को सिरताजा। आदी अंत मध्य है छाजा॥
सोई सत्त गहो चित लाई। सत्त नाम निजु प्रेम बढ़ाई॥[3]

सिरताजा=सबसे श्रेष्ठ, सब का सिरमौर; **आदी**=आरंभ; **मध्य**=मध्य में; **छाजा**=सुशोभित होना; **गहो**=ग्रहण करो।

सतनाम ही सबका सिरमौर है। आदि, मध्य और अंत में केवल यही सुशोभित हो रहा है। यही सत्य है। हे मनुष्य! तू सच्चे नाम के प्रति अपना प्रेम बढ़ा और अपने चित्त को एकाग्र करके इसे पकड़।

शब्द सांगि सम सेर है, गहि लीजै जन सोय।
सिकिलि करे मुर्चा छूटे, ऐना दरसन होय॥[4]

सांगि=बरछी; **सम सेर**=तलवार; **सिकिलि**=माँजना; **मुर्चा**=लोहे आदि पर लगनेवाली ज़ंग; **ऐना**=हृदय के दर्पण में।

शब्द तलवार या बरछी के समान है। परंतु हमारे हृदय में संसार की ज़ंग लगी होने के कारण शब्द की चमक दिखाई नहीं देती। जब हृदय को माँजकर उसकी सारी मैल दूर कर दी जाती है तो शब्दरूपी तलवार की चमक सामने आ जाती है और हृदयरूपी दर्पण में परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं।

सब्दे तारै सब्दे उबारै। सब्दे चढ़ि छपलोक सिधारै॥
सब्दे घोर हंस असवारा। सब्दे चाभुक ग्यान करारा॥
सब्दे पैठे मांझ मंझारा। सब्दे पीबै प्रेम अधारा॥
कहे दरिया जिन्हि सब्द निमेरा। ताको हंसा पहुंचु सबेरा॥

सब्द सरासन बान है, सत्ते सब्द निसान।
कहे दरिया नर बाचिया, सतगुर की पहचान॥...
दरिया भवजल अगम है, सतगुर करो जहाज।
तापर हंसा चढ़ि कै, जाए करो सुखराज॥[5]

छपलोक=सतलोक; **सिधारै**=प्रस्थान करना, जाना; **घोर**=घोड़ा; **असवारा**=सवार होना; **चाभुक**=चाबुक; **करारा**=असली, विशुद्ध; **पैठे**=प्रवेश करना; **मांझ मंझारा**=बीचो-बीच में; **निमेरा**=मुक्त करना; **सरासन**=धनुष; **निसान**=निशाना।

शब्द ही जीव को मुक्त करके उसका उद्धार करता है। शब्दरूपी घोड़े पर चढ़कर ही जीव सतलोक को प्रस्थान करता है। जब पवित्र आत्मा शब्दरूपी घोड़े की सवारी करती है तो शब्द से प्राप्त विशुद्ध ज्ञान ही चाबुक का काम करता है। इस प्रकार शब्द पर सवार होकर आत्मा विकट स्थानों के बीचो-बीच निकलकर सतलोक में प्रवेश कर जाती है। वह शब्द के सहारे ही पवित्र ईश्वर-प्रेम का पान करती है। दरिया साहिब कहते हैं कि जिन्हें शब्द ने बंधनों से मुक्त कर दिया है, ऐसी आत्माएँ शीघ्र ही अपने मूल धाम पहुँच जाती हैं।

शब्द धनुष-बाण है जिसका निशाना सत अर्थात् परमात्मा है। वही मनुष्य काल के जाल से बच सकता है जो सतगुरु के माध्यम से शब्द को पहचान लेता है। इसलिए दरिया साहिब कहते हैं कि इस अगम संसार-सागर से पार उतरने के लिए सतगुरुरूपी जहाज़ का सहारा लो और उस पर अपनी आत्मा को चढ़ाकर परमात्मा से मिलाप करके सच्चा सुख प्राप्त करो।

सब्दे धरती सब्द अकासा। सब्दे भगति प्रेम परकासा॥
सब्दे रचा सकल संसारा। सब्दे बंधन लोक बिस्तारा॥
चोथा लोक सब्द की बानी। सब्द समुंदर बांधल ग्यानी॥
सब्द बिना नहिं होखै पारा। सब्दे पंडित करो बिचारा॥
ऊँकार बेद जगत फैलाई। मूल भेद बिरला केहु पाई॥[6]

चोथा लोक=काल के अधीन रचना के तीन भाग हैं-पिंड, अंड और ब्रह्मांड, ये नाशवान् हैं। इन सबसे परे अखंड, अविनाशी और परम-चेतन सतलोक है जिसे संतों ने चौथा लोक कहा है; **बांधल**=पुल बाँधना, पार होना; **ऊँकार**=अंतर में स्थित दूसरे रूहानी मंडल को त्रिकुटी या ब्रह्म लोक कहा जाता है जो तीन गुणों और वेदों का उद्गम स्थान है। वहाँ के स्वामी को ही ओंकार पुरूष कहते हैं। त्रिकुटी की धुन भी ॐ या ओंकार है।

शब्द ने धरती और आकाश की रचना की है। इसी से भक्ति और प्रेम प्रकाशित होते हैं। शब्द ने ही सारे संसार की रचना की है। शब्द की डोर से बँधकर ही संसार का विस्तार हुआ है। शब्द की धुन चौथे लोक अर्थात् सतलोक में गूँजती है। शब्द के माध्यम से ही ज्ञानीजन संसार-सागर को पार करते हैं। शब्द के बिना कोई भी संसार-सागर से पार नहीं हो सकता। ओंकार पुरुष, वेदों और संसार के समस्त विस्तार का मूल स्रोत शब्द है जिसका भेद कोई विरला मनुष्य ही प्राप्त करता है। इसलिए हे पंडित! तू अच्छी तरह सोच-विचार करके उस शब्द की ही साधना कर।

दूजा दोबिधा डारि, एक नाम संसार में।
भवजल जाहि न हारि, निस्चै नाम बिचारिए॥

एक नाम जो हिरदै लावै। जनम जनम के पाप कटावै॥
सत्तनाम सभ ते अधिकारा। पूजहु देव का करहु बिचारा॥[7]

दूजा दोबिधा=द्वैत की दुविधा; **सभ ते अधिकारा**=जिसका सभी पर अधिकार है।

एक नाम ही संसार में सत्य है। इसलिए द्वैत की दुविधा को दूर करो। नाम की साधना करनेवाला निश्चित रूप से संसार-सागर से हारकर नहीं जाता। जो उस एक नाम को अपने अंतर में प्रकट कर लेता है उसके जन्म-जन्मांतर के पाप कट जाते हैं। सच्चा नाम सबसे बड़ा है। आख़िर तुम किस विचार में पड़े हो? तुम इसी देव की पूजा करो।

नाम प्रताप जुग जुग चलि आवै। सकल संत गुन महिमा गावै॥[8]

प्रताप=तेज, प्रभाव।

नाम का प्रभाव युग-युग से चला आ रहा है। सभी संत इसके गुणों की महिमा गाते हैं।

भवजल अगम अपार, नाम बिना नहिं बाचहीं।
नौका नाम अधार, जौं चाहो भव तरन कहं॥

तीनि लोक जम जाल पसारा। बिना भेद नहिं उतरै पारा॥
गुप्त सब्द जो पावै कोई। ताहि देखि चला जम रोई॥
होए चेतनि तब मनि उजियारा। सब्द सिंघासन चला असवारा॥[9]

बाचहीं=बच पाओगे; **जम**=यम; **पसारा**=फैलाया हुआ है; **मनि उजियारा**=मणियों का प्रकाश।

नाम के बिना इस अगम और अथाह भवसागर में कोई नहीं बच सकता। जो कोई इस भवसागर से पार होना चाहता है, उसके लिए नामरूपी नौका ही एकमात्र सहारा है। तीनों लोकों में काल ने अपना जाल फैला रखा है। नाम का भेद प्राप्त किए बिना कोई भी इस संसार-सागर से पार नहीं जा सकता। जिसे इस गुप्त शब्द का भेद मिल जाता है उसे देखकर काल रोकर चला जाता है। जब शब्द जाग्रत हो जाता है तो अंतर में मणियों के प्रकाश के समान उजाला छा जाता है तथा जीव शब्द के इस सिंहासन पर सवार होकर अपने मूल स्रोत परमात्मा के पास चला जाता है।

तीनि लोक रहु डोरि से बंधा। ह्रिदै न सूझै चछु का अंधा॥
छुटै डोरि चेतनि जब होई। एक नाम निजु पावै सोई॥
पावे बस्तु अनूपम बानी। पूरन पद उपजै जहं ग्यानी॥[10]

डोरि=अज्ञान की डोरी; **चछु**=आँख, चक्षु; **अनूपम बानी**=अनुपम शब्द-धुन।

तीनों लोक अज्ञान की डोरी से बँधे हुए हैं। इसमें रहनेवालों को अपने अंतर में कुछ भी दिखाई नहीं देता, क्योंकि उनकी आंतरिक आँख बंद है इसलिए वे अंधे हैं। जब जीव चेतन या जाग्रत हो जाता है तब उसके अज्ञान की डोरी टूट जाती है और तब वह अंतर में सच्चा नाम प्राप्त कर लेता है। जब वह अनुपम शब्द-धुनरूपी परम पदार्थ को प्राप्त कर लेता है तब उस ज्ञान के उत्पन्न होने से उसे पूर्ण-पद प्राप्त हो जाता है।

एक अलंम सो नाम सदा फल पीअत प्रेम गुंगे गुर खायो।
तींत ना मीठ खटा खटतूरस कासे कहें मानों आम्रित पायो।
सूरति मूरति नीरति नीरषि सूइ में जाए सुमेर समायो।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं कथनी कथि मूरख मूल गंवायो॥[11]

अलंम=सहारा, भरोसा; **सदा फल**=सदा फल देनेवाला; **गुंगे... खायो**=अवर्णनीय अवस्था; **तींत**=तीखा, चटपटा; **खटतूरस**=खट्टा-मीठा; **सूरति**=आत्मा की अंतर में शब्द-धुन को सुनने की शक्ति; **मूरति**=परमात्मा की प्रत्यक्ष मूरत; **नीरति**=आत्मा की अंतर में देखने की शक्ति; **नीरषि**=देखना; **सुमेर**=सुमेर पर्वत।

नाम ही एकमात्र ऐसा सहारा है जो सदा सच्चा फल देता है। प्रेमपूर्वक उसका रस-पान करना गूँगे द्वारा गुड़ खाने के समान है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह रस न तीखा है, न मीठा, न खट्टा और न ही खट्टा-मीठा है। उसके बारे में किससे कहें? उसकी प्राप्ति तो अमृत पीने के समान है। शब्द को सुनने से परमात्मा की प्रत्यक्ष मूरत प्रकट हो जाती है जिसे निरत द्वारा देखा जाता है। तब यह अनुभव होता है कि सूई के छिद्र में सुमेर पर्वत समाया हुआ है। जब तक नाम का ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक मूर्ख जीव केवल बातें बनाते रहते हैं और अपना मूलधन भी खो देते हैं।

जल में तुमहीं थल में तुमहीं जीव जहान सभे बरता।
साधु असाधु सभै गुन ज्ञाता जीवनिमुक्ति नहीं मरता।
तुम देहु दिआवहु दया सरूपी बूड़त नाव कियो तरता।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा एक नाम अलंम सही करता॥[12]

सभे बरता=सभी जीवों और संसार में तुम्हारी ही शक्ति काम कर रही है; **सभै...ज्ञाता**=सभी के गुणों को जाननेवाले; **जीवनिमुक्ति... मरता**=जीते-जी मुक्ति प्राप्त करने से तुम्हें कभी नहीं मरना पड़ेगा; **देहु दिआवहु**=देते और दिलवाते हो; **तरता**=तैरनेवाली; **नाम अलंम**=नाम का सहारा।

हे नामरूपी परमात्मा! तुम जल में हो, भूमि पर हो, संसार में सभी जीवों में तुम्हारी ही शक्ति कार्य कर रही है। तुम सबके गुण जानते हो – फिर चाहे

वह साधु हो या दुष्ट। संसार में रहते हुए भी तुम उससे मुक्त हो। तुम्हारा कभी विनाश नहीं होता। तुम्हीं देते हो और तुम ही दिलवाते हो। तुम दया के प्रत्यक्ष स्वरूप हो, तुमने तो मेरी संसार-सागर में डूबती नाव को भी तैरनेवाली बना दिया है। दरिया साहिब अपने अंतर में विचार करके कहते हैं कि नाम ही जीव का एकमात्र सहारा तथा सृष्टि का वास्तविक कर्ता है।

"बेबाहा" बेबाक गनि हो, जिन्दा जन के दुख हरता।
तुम हो सतवर्ग सदा सिर ऊपर, दुल्लह जग को नहिं मरता॥
तुम तेग बली को भुजा विशाला, काल बली को दलि मलता।
'दरिया' दिल देखि बिचारि कहा एक नाम अवलम्ब सही करता॥[13]

बेबाक=निर्भय; **गनि**=धनी, दाता; **जिन्दा**=जीवित; **दुख हरता**=दुःखों को हरनेवाला; **सतवर्ग**=सर्वोपरि; **दुल्लह**=स्वामी; **तेग...को**=शक्तिशाली की तलवार; **विशाला**=विशाल; **दलि**=मारना; **अवलम्ब**=सहारा।

हे नामरूपी परमात्मा! तुम अनमोल हो, निर्भय और दाता हो। तुम जीवित सतगुरु के रूप में जीवों के दुःख हरनेवाले हो। तुम सर्वोपरि हो, तुम सदा सबके ऊपर रहकर सबकी सँभाल करते हो अर्थात् तुम ही संसार के स्वामी हो और तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होती। तुम्हारी छत्र-छाया सदा सबके सिर पर रहती है, तुम शक्तिशाली योद्धा की तलवार के समान हो। तुम विशाल भुजाओं वाले योद्धा हो और शक्तिशाली काल को मसल डालते हो। दरिया साहिब अपने अंतर में विचार करके कहते हैं कि नाम ही जीव का एकमात्र सहारा तथा सृष्टि का वास्तविक कर्ता है।

अवधू सब्दहि करो बिचारा।
सो पद गहों सरन रहो अस्थित पार ब्रह्म ते न्यारा॥
पार ब्रह्म वारे एह लटका अंचुता चुत में लूटा।
अबिनासी बिनसत हम देखा अचल नाहिं चलि फूटा॥

बिंदरी कहे बीधि तेहि लूटा अवर जाहां तक पोया।
नाथ नाथि के कैद कियो है इन्द्र महेसहि खोया॥
बड़ बड़ गीध पकरि के साधा किमि करि पर फहरायो।
चुंगत चारा जिमि पर रहेऊ उड़ि कांहां तुम धायो॥
एक सरन सतगुर का जानो सो तुम किमि करि जावै।
वार पार एह रहट लगा है एक बूड़े एक आवै॥
सतगुर सब्द साधि जौ आवै वार पार ते भीना।
कहें दरिया कोइ संत बिबेकी निकलि गया परमीना॥[14]

अवधू=अवधूत योगी, संन्यासी; **पद**=अवस्था; **अस्थित**=पूर्वी हिंदी में स्थित का उच्चारण अस्थित के रूप में होता है; **अंचुता**=विष्णु को उनके भक्त अच्युत (नष्ट न होनेवाला) कहते हैं, स्थिर; **चुत**=च्युत, नाशवान् रचना; **अबिनासी**=आत्मा; **बिनसत**=नष्ट होते हुए; **बिंदरी**=ब्रह्मा; **बीधि**=भावी; **पोया**=पिरोया हुआ, संसार; **नाथ**=नाथ-पंथी; **नाथि**=बाँधकर; **महेसहि**=शिव जी को; **खोया**=बरबाद किया; **पर**=पंख; **चुंगत**=चुगना; **चारा**=आहार; **जिमि...रहेऊ**=भूमि पर रहते हो; **रहट**=कुँए से पानी निकालने का यंत्र; **साधि**=साधना, अभ्यास करना; **भीना**=भिन्न, अलग; **बिबेकी**=भले-बुरे की समझ रखनेवाला; **परमीना**=प्रवीण, निपुण।

हे योगी! शब्द के बारे में विचार कर। ऐसे शब्द की शरण लेकर तू उस स्थिर या अविनाशी अवस्था को प्राप्त कर, जो पारब्रह्म से भी अलग स्थित है। यह जीव पारब्रह्म से नीचे नाशवान् रचना में ही हमेशा फँसा रहता है। अच्युत (सदा स्थिर रहनेवाले) कहे जानेवाले विष्णु भगवान् भी अंत में विनाशशील बनकर लूटे गए अर्थात् नष्ट हो गए। कई अविनाशी माने जानेवालों को हमने (दरिया साहिब) नष्ट होते हुए देखा है, वास्तव में अचल एक परमात्मा है जिसका कभी विनाश नहीं होता। ब्रह्माजी कहते हैं कि उन्हें और जहाँ तक भी उन्होंने इस संसार की रचना है, सभी को

भावी ने लूट लिया। उसने नाथ-पंथियों को भी बाँधकर क़ैद किया है तथा इंद्र और शिव जी को भी बरबाद किया है। उसने बड़े-बड़े गीधों को भी पकड़कर निशाना बनाया है, चाहे किसी ने कितने ही पंख क्यों न फड़फड़ाए हों। वे इस मृत्यु लोक की भूमि पर दाने चुगते रहे थे, इसलिए मृत्यु (काल) ने उन्हें पकड़कर कहा कि अब तुम यहाँ से उड़कर कहाँ भागे जा रहे हो। संसार में हर जीव आवागमन के चक्र में इस प्रकार पड़ा हुआ है जैसे कुएँ के रहट में एक के बाद एक ठलिया पानी में डूबती तथा बाहर निकलती रहती है। जो सतगुरु की शरण में चला जाता है, केवल वही फिर इस चक्र में नहीं पड़ता। जो सतगुरु के मार्गदर्शन में शब्द का अभ्यास करता है वह जन्म-मरण के चक्र से अलग हो जाता है। दरिया साहिब कहते हैं कि सत यानी अविनाशी की सूझ-बूझ रखनेवाला कोई शब्द-मार्ग में निपुण संत ही संसार के इस आवागमन के चक्र से निकल पाता है।

सार शब्द या नि:अक्षर नाम

सार शब्द या सच्चा नाम केवल सतगुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है। यह वर्णों या अक्षरों में लिखे जानेवाले या जीभ से उच्चारण किए जानेवाले अक्षरात्मक या वर्णात्मक नामों से भिन्न होता है। इसे नि:अक्षर या धुनात्मक नाम भी कहते हैं। तीनों गुणों से परे होने के कारण इसे निर्गुण नाम भी कहते हैं।

सतगुरु के बताए हुए वर्णात्मक नाम के सुमिरन से ही सच्चा धुनात्मक नाम प्रकट होता है। जब सुमिरन के अभ्यास से मन एकाग्र हो जाता है और भक्ति में दृढ़ता आ जाती है, तब आत्मा की अंदर देखने और सुनने की शक्तियाँ, जिन्हें क्रमश: निरत और सुरत कहते हैं, जाग्रत होती हैं। इन्हीं शक्तियों के सहारे आत्मा अंतर में प्रवेश करती है और अंतर के दिव्य प्रकाश को देखती तथा मधुर शब्द-धुन को सुनती हुई आगे बढ़ती है। प्रेमामृत को पीकर आत्मा विभोर हो जाती है। नाम की निर्मल डोरी को पकड़कर आगे बढ़नेवाली आत्मा के ऊपर काल का कोई ज़ोर नहीं चलता।

इस प्रकार सार शब्द या सच्चे नाम की साधना द्वारा आत्मा अपने मूल धाम में, जिसे अकह लोक भी कहते हैं, पहुँच जाती है। यह परम पवित्र धाम है जहाँ परमात्मा का श्वेत सिंहासन सजा हुआ है और हीरे-मोतियों की अपार छटा छाई हुई है। नाम की महिमा से परिचित सच्चा साधक अपने कुल-परिवार या समाज की निंदा या अपमान की परवाह न कर, सतगुरु से नाम का भेद लेकर शब्द-साधना में लग जाता है और इस साधन द्वारा अंतर का कपाट खोलकर परमात्मा से मिलाप कर लेता है:

निर्गुन नाम निअच्छर नीका। सदा बिमल रस बेद का टीका।
होखे मुक्ति अमर पद पावे। सतगुर मिले सत सब्द बतावे॥[15]

निर्गुन=तीन गुणों के दायरे से परे का; **निअच्छर**=वर्णात्मक नामों से भिन्न; **बिमल**=निर्मल; **बेद...टीका**=वेदों का सिरताज, शिरोमणि।

नाम तीनों गुणों से परे और वर्णात्मक नामों से भिन्न है। वह वेदों का शिरोमणि है तथा सदा ही निर्मल आनंद प्रदान करनेवाला है। जब सतगुरु मिल जाते हैं तो वह सच्चे शब्द का भेद बताते हैं। इस सच्चे शब्द के द्वारा ही जीव को मुक्ति की प्राप्ति होती है तथा वह अमर हो जाता है।

जौं लगि सत्त संदेस न पावै। तौं लगि जीव लोक नहिं जावै॥
जब लगि सतगुर मिलै न ग्यानी। तब लगि कमल न ब्रिगसे बानी॥...
सत्त सुक्रित एह मुकुति बखाना। संत समुझि के सुरति समाना॥
सहज जोग निजु सब्द बिबेखा। निरछर नाम सुरति सत देखा॥[16]

सत्त संदेस=सच्चा संदेश, शब्द; **लोक**=सतलोक; **ब्रिगसे**=खिलना, प्रकट होना; **सत्त सुक्रित**=सतगुरु।

जब तक जीव को सच्चे नाम की प्राप्ति नहीं होती, तब तक उसे अपना सच्चा धाम, सतलोक प्राप्त नहीं हो सकता। नाम का भेद जाननेवाले जानकार गुरु जब तक नहीं मिलते, तब तक अंतर का कमल नहीं खिलता

और शब्द-धुन प्रकट नहीं होती। सत यानी परमात्मा का संदेश लानेवाले सतगुरु ने इस प्रकार की मुक्ति का वर्णन किया है। उनकी बताई युक्ति को समझकर संतजन अपनी सुरति (आत्मा) को शब्द के साथ लीन कर देते हैं। इस प्रकार शब्द-मार्ग के द्वारा अभ्यास करना सहज-योग कहलाता है। सुरति के द्वारा ही इस नि:अक्षर नाम का सच्चा अनुभव प्राप्त किया जा सकता है।

वह तो मुख रसने नहिं कहिया। गहै सत्त परगट होए रहिया॥[17]

रसने=जीभ से।

सच्चे नाम को मुँह या जीभ से नहीं बोला जा सकता। सतगुरु के बताए सच्चे अभ्यास के द्वारा ही वह प्रकट होता है।

बानी एक घट घट में समानी। एहि बानी को मरम न जानी॥
जंगम जोगी है बहुतेरा। जो न करै घट भीतर डेरा॥...
मन थिर होए तो भगति द्रिढावै। सार सब्द का परचै पावै॥...
अग्र नख हंसा बैठावै। अपने निरति तब सुरति समावै॥...
निअछर निरखि प्रेम पद पावै। छुटि जाए तिमिरि गगन झरि लावै॥
प्रेम पंथ महं पैठे सोई। तामें संसै जात बिगोई॥
सीस उतारि दछिना जो देवै। को हमको तुम्ह का कहि लेवै॥
अक्खर भेद कहै सभ जाई। अच्छर माँह निहच्छर पाई॥
कहे दरिया सो संत सुजाना। यह भेद बिरला केहु माना॥[18]

बानी=शब्द-धुन; **जंगम**=शैव संप्रदाय के गुरु; **घट**=शरीर; **थिर**=स्थिर, एकाग्र; **अग्र नख**=बिल्कुल नुकीला बनाना जैसे सूई की आँख; **निरति**=आत्मा की अंतर में देखने की शक्ति; **सुरति**=आत्मा की अंतर में शब्द-धुन को सुनने की शक्ति; **निअछर**=वह नाम जो अक्षरों या वर्णों में लिखा या बोला न जा सके, वर्णन की सीमा में न आनेवाला परमात्मा;

निरखि=देखकर; **तिमिरि**=अँधेरा; **झरि लावै**=बरसना; **पैठे**=प्रविष्ट होना; **संसै**=संशय; **बिगोई**=नष्ट होना; **सीस उतारि**=आपाभाव या अहंकार को मिटाना; **दछिना**=दक्षिणा, भेंट; **अक्खर**=वर्ण; **सुजाना**=पूरा जानकार।

शब्द-धुन सबके शरीर में समाई हुई है। लेकिन इस शब्द का भेद कोई नहीं जानता। संसार में ऐसे बहुत-से योगी और विभिन्न संप्रदायों के गुरु हैं जो कभी भी अपने शरीर के अंदर स्थित उस शब्द में ध्यान को केंद्रित नहीं करते। मन के एकाग्र होने से भक्ति दृढ़ होती है और तब उस शब्द से मिलाप होता है जो सार वस्तु है। उसे प्राप्त करने के लिए पहले ध्यान को पूरी तरह एकाग्र करके स्थिरतापूर्वक आत्मा को ठहराना चाहिए, जैसे धागे को स्थिर करके सूई की आँख में से निकाला जाता है। ऐसा करने से आत्मा की अंतर में देखने की शक्ति, निरत तथा सुनने की शक्ति, सुरत, अपने आप अंदर चली जाती हैं। अंदर जाने से धुनात्मक नाम का अनुभव प्राप्त होता है जिससे प्रेम उमड़ पड़ता है। माया का अंधकार दूर हो जाता है तथा आंतरिक आकाश में अमृत की वर्षा होने लगती है। इस प्रकार अभ्यासी प्रभु-प्रेम के मार्ग पर चलने लगता है तब उसके सभी संशय दूर हो जाते हैं। अपने अहंकार को पूरी तरह से मिटाकर जब वह अपने आप को पूरी तरह सतगुरु के हवाले कर देता है तो उसे फिर किसी के कहने की कोई परवाह नहीं रहती। संसार में सभी लोग अक्षरात्मक नाम का ही भेद कहते हैं, पर इस मार्ग में अक्षरात्मक नाम के सुमिरन से नि:अक्षर नाम यानी धुनात्मक नाम की प्राप्ति की जाती है। जो इस नि:अक्षर नाम को जानता है वही पूरा जानकार संत कहलाता है। नाम के इस भेद को कोई विरला ही जानता है।

जिमि कोई वस्तु नाम धरी, बोलिहिं अच्छर मांहि॥
तेहि पुनि उलटि निरेखइ, तब वह अच्छर नाहिं॥[19]

नाम धरी=नाम रखकर; **निरेखेइ**=देखना।

जैसे किसी वस्तु का नाम रखकर उसे अक्षरों के द्वारा बोला जाता है, परंतु यदि उसकी ओर बोलकर संकेत करने के बदले हम उस वस्तु को ही देखें तो वह अपने आपमें अक्षर नहीं होती। इसी प्रकार अक्षरात्मक (वर्णात्मक) और धुनात्मक नाम का भेद है।

नाम नि:अक्षर निर्मल डोरी। तासे काल करे नहिं चोरी॥[20]

तासे=उससे।

जो नि:अक्षर नाम की डोर को अपने अंतर में पकड़ लेता है, उसे काल धोखे में नहीं डाल सकता।

मन पवना का साधिऐ, साधो सब्दहिं सार।
मूल अकह में गमि करो, मोती घना पसार॥
दरिया अगम गंभीर है, लाल रतन की खानि।
जौं मीलै जन जौहरी, लेहि सब्द पहचानि॥[21]

पवना=प्राणवायु; **का**=क्या; **साधो**=साधना करना; **अकह**=सचखंड; **घना पसार**=भंडार फैला है।

मन और प्राणवायु को रोकने के अभ्यास से भला क्या लाभ होगा? सार शब्द का अभ्यास करो। इस साधना द्वारा अपने मूल स्थान अकह में पहुँच जाओ जहाँ रूहानी मोतियों का भंडार फैला हुआ है। शब्द तक पहुँचना कठिन है, इसका रहस्य बहुत गहरा है, पर परमार्थ का ख़ज़ाना इसी से निकलता है। इसलिए ऐसे पारखी भक्तजन जिन्हें परमार्थ की पहचान है, अन्य किसी साधना के बजाय शब्द को पहचानकर इसे ही अपनाते हैं।

दफा हमारा सबते न्यारा, भेख भर्म में न परिये॥
चले बिचारा एहि संसारा, सार शब्द के इमि धरिये॥

शहर बड़ा गुलजार, अमर पूर ताके कही।
तिरदेवा ते पार, तख्त श्वेत सादा सही॥[22]

दफा=मत या पंथ; **न्यारा**=अनोखा, अलग; **परिये**=पड़ना; **धरिये**=थामना, रखना; **गुलजार**=खिला हुआ, चहल-पहल वाला; **तख्त श्वेत**=श्वेत या पवित्र सिंहासन।

दरिया साहिब कहते हैं कि मेरा शब्द-सुरत योग का पंथ और पथों से अलग है। किसी बाहरी दिखावे या भ्रम में न पड़कर इसे ही धारण करना चाहिए। यही विचार इस सारे संसार में चलेगा पर इसके लिए जीव को सार शब्द को पकड़कर इसे स्थिरता से थामे रखना होगा। इसके द्वारा वहाँ पहुँचा जा सकता है जहाँ तीर्थों और देवी-देवताओं से परे परमात्मा का पवित्र श्वेत सिंहासन है, वह बड़ी चहल-पहल वाला एक आनंदमय शहर है जिसे अमरपुर कहा जाता है।

कुल कुटुंम सब निंदिहै, निंदिहिं यह संसार।
सब्द हमारा जनि छोड़ो, उतरहु भवजल पार॥[23]

निंदिहिं=निंदा करें; **जनि**=मत, न।

भले ही कुल, परिवार या सारा संसार ही क्यों न निंदा करे; सतगुरु के बताए हुए शब्द के अभ्यास को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। तभी जीव संसार-सागर से पार उतरता है।

पंडित सार सब्द एक होई।
बुद्धि बिचार देखो हृदया में क्रोध छेमा करु सोई।
सास्त्र गीता बेद पुरान ढुंढ़हि संगति सभ लोई।
जौं लगि सार सब्द नहिं पावै पढ़ि गुन सभे बिगोई।
कर कागद लिखनी का लिखिए प्रेम मगन नहिं होई।

जल पैठि मंजन का करिये अन्दर मइलि ना धोई।
संझा तरपन औ गाइत्री अजपा जपे न मन लाई।
कपट कपाट खोलि नहिं पैठे आवागमन मेटाई॥
कहें दरिया सूनो भाइ पंडित बूझै बिरला कोई।
होए दास दासन्हि में आवै ब्रह्म पुनीतं सोई॥[24]

छेमा=क्षमा; **लोई**=लोग; **बिगोई**=नष्ट करना; **लिखनी**=लेखनी; **मंजन**=स्नान; **मइलि**=मैल, दोष; **संझा**=संध्या, हिंदू-धर्म में आम तौर पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय मंत्रों के जाप आदि के द्वारा संध्या-वंदन किया जाता है। त्रिकाल संध्या करनेवाले लोग दोपहर में भी संध्या करते हैं; **तरपन**=देवताओं, ऋषियों तथा पितरों को जलदान करना तर्पण कहलाता है; **गाइत्री**=ब्रह्मा जी ने वेदों की रचना करने से पहले चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र की रचना की थी। गायत्री मंत्र के द्वारा संध्या-वंदन आदि करने की परंपरा हिंदू-धर्म में है; **अजपा जपे**=अपने आप चलनेवाला शब्द का सुमिरन; **कपट कपाट**=कपट के किवाड़; **सूनो**=सुनो।

हे पंडित! अंदर में एक सार शब्द हो रहा है अर्थात् गूँज रहा है। बुद्धिपूर्वक विचार करके और क्रोध को क्षमा में बदलकर इसे अपने हृदय के अंतर में झाँककर देखो। सब लोग परमात्मा से मिलने के लिए वेद, शास्त्र, गीता और पुराणों को ढूँढ़ते फिरते हैं, परंतु जब तक सार शब्द को प्राप्त नहीं किया जाता, इन सब धर्म-पुस्तकों को पढ़कर इन पर विचार करना सब कुछ नष्ट करने के समान है। तुम जब तक परमात्मा के प्रेम में लीन नहीं होते, तब तक हाथ में काग़ज़ और लेखनी लेकर ग्रंथों को क्या लिखते रहते हो? इसका क्या लाभ होगा? जब तक तुम अपने अंतर की मैल नहीं धो लेते, पानी में जाकर स्नान क्या करते हो? इसका क्या लाभ होगा? जब तक अपने आप चलते रहनेवाले सुमिरन में तुम्हारा मन लीन नहीं हो जाता तब तक संध्या, तर्पण और गायत्री मंत्र का पाठ क्यों करते हो? इसका क्या लाभ होगा? जब तक अपने अंतर के कपट के मज़बूत

किवाड़ खोलकर अंतर में प्रवेश नहीं कर लेते, तब तक आवागमन का चक्र समाप्त नहीं हो सकता। दरिया साहिब कहते हैं कि हे भाई पंडित! सुनो, इस तथ्य को कोई विरला ही समझ पाता है कि जो सेवक बनकर सेवकों के बीच आते हैं, वास्तव में यह सतगुरु पवित्र परमात्मा ही हैं।

सुमिरन का प्रभाव

सतगुरु के दिए हुए पवित्र वर्णात्मक नामों का सुमिरन ही परमार्थी साधना की नींव है। प्रेमपूर्वक सुमिरन करने से सच्चा धुनात्मक नाम अपने आप प्रकट हो जाता है। पर इसके लिए तुच्छ सांसारिक विषयों की ओर से ध्यान को हटाकर एकाग्र भाव से भक्तिपूर्वक सुमिरन का अभ्यास करना आवश्यक है। जैसे ज़ंग लगी धातु को अच्छी तरह रगड़कर साफ़ करने से वह चमक उठती है, वैसे ही जमकर भक्तिपूर्वक सुमिरन का अभ्यास करने से हमारा हृदय निर्मल हो जाता है। अंतर में प्रकाश प्रकट हो जाता है तथा शब्द-धुन सुनाई देने लगती है। इस प्रकाश में सतगुरु का ज्योतिर्मय स्वरूप दिखाई पड़ता है। इस स्वरूप का पूरी एकाग्रता और प्रेम के साथ ध्यान करना चाहिए तथा शब्द-धुन को पूरी भक्ति और तन्मयता के साथ सुनना चाहिए। शब्द-धुन को भक्तिपूर्वक सुनने से उससे अमृत के समान मीठा रस प्राप्त होता है। इस अमृत-रस को अपने अंदर पीना चाहिए, पर अपने इस आंतरिक अनुभव को भूलकर भी किसी दूसरे के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए। शब्द-धुन के सुनने को ही भजन करना कहते हैं, जो हमारी सभी मैलों को काटकर तथा पापों को दूर करके हमें निर्मल बनाता है। यही शब्द-धुन हमें ऊपरी मंडलों में ले जाती है तथा अलख और अगम लोक में पहुँचाती है। इस प्रकार सुमिरन का आधार लेकर हम संसार-सागर को पार कर जाते हैं और परमात्मा से मिलाप प्राप्त कर लेते हैं। परंतु यह सब सतगुरु की कृपा और उनके पथ-प्रदर्शन द्वारा ही संभव होता है:

सुमिरु ग्यान सतगुर चित लाई। का भूलहु एही दुनिआई॥
काम क्रोध मद तेजहु भाई। काम न आवै एह चतुराई॥

एक नाम निजु साहब गाई। काटहिं फंद पाप सभ जाई॥
सुमिरहु सुख संपति बिसराई। दिना चारि का रंग बड़ाई॥...
एक नाम छत्र सिर साजै। अनहद धुनी ग्यान तहं गाजै॥
जब संसै भव के बिसरावै। तव निजु नाम प्रेम पद पावै॥
गुर गमि ग्यान प्रेम लौ लावै। ताते संपति सभ बिसरावै॥
जानहु सठ सत्त एह नामा। जन्म जात बेअर्थ बेकामा॥
सतगुर सब्द सत्त परवाना। ताहि संत कर निरमल ग्याना॥[25]

मद=अहंकार; **तेजहु**=त्यागो; **दिना...का**=थोड़े दिनों का; **अनहद धुनी**=निरंतर होनेवाली शब्द की धुन; **गाजै**=गरजती है; **संसै...के**=संसार के संदेह; **गमि**=जाना; **लौ लावै**=लवलीन होकर; **सठ**=मूर्ख; **सत्त**=सच; **परवाना**=फ़रमान।

सतगुरु ने जिस नाम का भेद दिया है उसका मन लगाकर सुमिरन करो। इस दुनियादारी में क्यों भूले हुए हो? काम, क्रोध और अहंकार को त्याग दो। यह बुद्धि की चतुराई काम नहीं आएगी। सच्चे साहिब सतगुरु ने केवल एक नाम की ही महिमा गाई है जो हमारे बंधनों को काटकर सब पापों को नष्ट करता है। संसार की चकाचौंध तथा मान-बड़ाई चार दिनों की है, इसलिए यहाँ की सुख-संपत्ति को भुलाकर नाम के सुमिरन में लगो। जिसके सिर पर एक नाम का छत्र सुशोभित होता है, उसके अंतर में सच्चे ज्ञान का प्रकाश करनेवाली नाम की अनहद धुन गूँजने लगती है। जब जीव संसार के सभी संदेह और दुविधाओं को भुलाकर इस साधना में लग जाता है, तब उसके अंतर में सच्चे नाम के प्रति सच्चा प्रेम उमड़ पड़ता है। जब मनुष्य गुरु कृपा से नाम का सच्चा ज्ञान प्राप्त करके प्रेमपूर्वक इसके अभ्यास में लवलीन हो जाता है तो संसार की सारी संपत्ति से अपने आप विमुख हो जाता है। हे नादान, तू यह बात जान ले कि केवल यह नाम ही सच है। इसके बिना मनुष्य-जन्म व्यर्थ चला जाता है। सतगुरु द्वारा बताया हुआ शब्द ही मुक्ति का सच्चा फ़रमान है और वही संतों का निर्मल ज्ञान है।

इह द्रिढ़मति करि लीजै अपना। कहे दरिया संत सुनु बचना॥
इह अच्छर मंह निअच्छर पावै। ग्यान भगति जब द्रिढ़ता लावै॥
पल पल रहै चरन लौ लाई। सत साहब सामर्थ सहाई॥
भगतबछल संतन्ह सुखदाई। काटि पाप जन निजु पुर जाई॥
निरभै नाम तन होहि सहाई। सुमिरत नाम सुधासम पाई॥
तूह नाम गति अलख लखाई। ताते रहो चरन चित लाई॥
तूह नाम गति अगम अपारा। केते अधम तरे अधिकारा॥
दीन देयाल सदा किरपाला। तुह सुमरत दुःख दंद मेटाला॥[26]

द्रिढ़मति=विचार पक्का कर लेना, अटल भरोसा; **अच्छर**=अक्षरात्मक या वर्णात्मक नाम; **निअच्छर**=वर्णात्मक नामों से भिन्न धुनात्मक शब्द; **लौ लाई**=लिव लगाना; **सत साहब**=सच्चे स्वामी, सतपुरुष; **भगतबछल**=भक्तों से प्यार करनेवाले; **निजु पुर**=अपने असली धाम; **निरभै नाम**=भय समाप्त करनेवाला नाम; **सुधासम**=अमृत के समान; **तूह**=तुम्हें; **लखाई**=दिखता है; **ताते**=इसलिए; **अधम**=नीच, पापी; **अधिकारा**=ताक़त, इस नाम की ताक़त से; **दीन देयाल**=दीन-दुःखियों पर दया करनेवाला; **दुःख दंद**=दुःख और दुविधाएँ; **मेटाला**=मिटा।

संतों के वचनों को सुनकर उन पर अपना अटल भरोसा कर लो। सतगुरु के बताए नाम के अभ्यास से जब ज्ञान और भक्ति में दृढ़ता आती है तब सुमिरन किए जानेवाले अक्षरात्मक नाम से ही निःअक्षर या धुनात्मक नाम की प्राप्ति होती है। सर्व-समर्थ और जीव के सच्चे स्वामी सत्पुरुष हैं, वह सदा सहायता करते हैं। उनके चरणों में प्रत्येक क्षण लिव लगाए रखनी चाहिए। वह भक्तों पर दया करनेवाले और संतों को सुख देनेवाले हैं। वह अपने भक्तों के पापों को नष्ट कर देते हैं और जीव अपने निजधाम सतलोक चला जाता है। भय को दूर करनेवाला नाम शरीर के अंदर है, वही अभ्यासी की सहायता करता है। सुमिरन के द्वारा अमृत के समान नाम

की प्राप्ति होती है। हे मनुष्य! नाम ही तुम्हें अलख लोक को दिखाता है। इसलिए (नाम यानी शब्द के प्रकट रूप) सतगुरु के चरणों में ध्यान को लगाए रखना चाहिए। केवल नाम की गति अथाह तथा अपार है, इसकी शक्ति से कितने ही पापियों का उद्धार हुआ है। प्रभु सदा कृपालु और दीन-दुःखियों पर दया करनेवाले हैं। तू भी उनके नाम का सुमिरन करके अपने सांसारिक दुःखों और दुविधाओं को मिटा ले।

समुझि सुमिरु गुन साहब नीका। सभ से सरस भला मनि टीका॥
जौं तरनी जल जहाँ तराई। नाम सुमिरु जल बोहित पाई॥[27]

नीका=सुंदर; **सरस**=रस प्रदान करनेवाला; **मनि टीका**=मणियों का सिरताज; **जौं**=जिस प्रकार; **तरनी**=नाव; **बोहित**=जहाज़।

मेरा प्यारा साहिब सबसे अधिक रस प्रदान करनेवाला तथा सभी मणियों का सिरताज नाम है। उसके ऐसे गुणों को समझकर हमें उसका सुमिरन करना चाहिए। जैसे जहाँ भी जल है वहाँ नाव तैर सकती है, वैसे ही संसार-सागर के जल को पार करनेवाली नाव नाम के सुमिरन से प्राप्त होती है।

भग्ति हेतु सुनिए जो प्रानी। मिलै बिमल रस अम्रित सानी॥
संत दरस पद पावन करई। चिंतामनि चिंता सभ हरई॥
सुनै स्रवन अभिअंतर राखै। लोचन ललचि नाम रस चाखै॥
रसना रसि बसि अम्रित पीवै। या जग माह सोइ जन जीवै॥[28]

भग्ति हेतु=भक्ति और प्रेम; **अम्रित सानी**=अमृत मे सना हुआ; **दरस पद**=चरणों के दर्शन; **पावन**=पवित्र; **चिंतामनि**=सब कुछ देनेवाली मणि; **हरई**=हर लेती है, दूर कर देती है; **सुनै स्रवन**=आंतरिक कानों से सुने; **अभिअंतर राखै**=अपने अंतर में ही रखे अर्थात् बाहर प्रकट न करे; **रसना**=जीभ; **बसि**=वश होना; **माह**=में।

जो जीव प्रेम और भक्ति-भाव से शब्द-धुन को सुनता है, उसे अमृत में सना हुआ निर्मल रस प्राप्त होता है। संतों के चरणों का आंतरिक दर्शन जीव को पवित्र करता है। यह ऐसी मनोकामना पूर्ण करनेवाली मणि है जो जीव की सभी चिंताओं को दूर कर देती है। जीव को चाहिए कि अपने अंतर में शब्द-धुन को सुनकर अंदर ही अंदर उसका आनंद लेता रहे, बाहर प्रकट न करे और बड़े चाव से आंतरिक आँखों से नाम का रस चखता रहे। इस संसार में उसी का जीवन सफल है जिसकी आंतरिक जीभ नाम का अमृत पीकर उसके रस के वश में हो जाती है।

गोप गुपुत छापा कर भाऊ। गहिर गूंगा निश्चय लै लाऊ॥
कतनो छल बल काल जो करई। छापा सनदि गोप करि धरई॥[29]

गोप...छापा=गोपनीय नाम की गुप्त छाप; **गहिर**=गंभीर; **गूंगा**=मौन; **लै लाऊ**=लवलीन रहना, ध्यान लगाना; **छापा सनदि**=प्रामाणिक मोहर, छाप।

सतगुरु द्वारा दी गई नाम की छाप अर्थात् शब्द-भेद गोपनीय है; इसे गुप्त रखना चाहिए और गंभीरतापूर्वक मौन भाव धारण करके दृढ़ निश्चय के साथ अपने अंतर में नाम की साधना में ध्यान लगाना चाहिए। काल की विरोधी शक्तियाँ चाहे कितना भी ज़ोर लगाएँ या धोखा देने की कोशिश करें, इस नाम की प्रामाणिक छाप को गुप्त ही रखना चाहिए।

अकुफ कहेव समुझाइ के, गहिर गूंगा होय जाय।
फहस कतहींनहिं कीजिए, काल नोमेरो आय॥[30]

अकुफ=ज्ञान, गूढ़ रहस्य; **फहस**=भेद खोलना, कानाफूसी करना; **नोमेरो**=निवाला या ग्रास होना।

नाम का आंतरिक रहस्य समझाकर सतगुरु अपने शिष्य को इस बात की हिदायत करते हैं कि इस संबंध में अब तुम्हें बिल्कुल मौन और गंभीर

रहना चाहिए। इस रहस्य को भूलकर भी किसी को नहीं बताना चाहिए, नहीं तो अभ्यासी काल का ग्रास या शिकार बन जाता है।

भाव भगति जो द्रिढ़ता लावै। हीरा नाम सौ परगट पावै॥
भूले फिरहिं बिना गुर ग्यानी। सत सब्द नहिं पावहिं बानी॥
सुनहु सत्त सब्द निजु सारा। दयानिधी भवसेंधु उबारा॥
भगतबछल संतन्ह सुखदाई। जनके दुख मेटै प्रभुताई॥
भगति हेतु प्रगट होए जाई। जब सुमिरै द्रिढ़ प्रेम लगाई॥
जग महिमा गति अपरमपारा। नाम ना तूलै करो बिचारा॥

कहै दरिया एक नाम है, मिरथा है संसार।
प्रेम भगति जब ऊपजै, उतरि जाए भव पार॥[31]

भाव भगति=प्रेमपूर्ण भक्ति; **हीरा नाम**=नामरूपी हीरा; **सत सब्द**=सच्चा शब्द; **सारा**=सार वस्तु; **भवसेंधु**=संसार-सागर; **भगतबछल**=भक्तों से प्यार करनेवाले; **जनके**=भक्तों के; **हेतु**=मक़सद, लक्ष्य, उद्देश्य; **ना तूलै**=बराबरी नहीं हो सकती; **मिरथा**=मिथ्या, व्यर्थ।

जब अभ्यासी की प्रेमपूर्ण भक्ति में दृढ़ता आ जाती है तो वह अपने अंतर में नामरूपी हीरे को प्रकट रूप में प्राप्त कर लेता है। गुरु के बिना ज्ञानीजन भटकते फिरते हैं। वे सच्चे शब्द की धुन को प्राप्त नहीं कर पाते। सच्चा शब्द ही सार वस्तु है। इसी के सहारे परमात्मा जो दया के भंडार हैं, जीव को संसार-सागर से पार करते हैं। भक्तों से प्यार करनेवाले और संतों को सुख प्रदान करनेवाले परमात्मा नाम के प्रभाव से अपने भक्तों का दुःख दूर करते हैं। जब दृढ़ प्रेम के साथ नाम का सुमिरन किया जाता है तो भक्ति के कारण अर्थात् भक्त की भक्ति के वश होकर वह परमात्मा भक्त के अंतर में प्रकट हो जाते हैं। हे मनुष्य! विचार करके देख, नाम की तुलना किसी अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती। संसार में इसकी महिमा

अपरंपार है। संसार मिथ्या है, केवल एक नाम ही सच है। जब नाम के प्रति प्रेम और भक्ति पैदा होती है तो जीव संसार-सागर से पार उतर जाता है।

केवल निरभै नाम सहाई। भजन मैलि काटे सभ जाई॥
साहब ध्यान धरै चित लाई। रूप अनूप जोति छबि छाई॥[32]

निरभै=भय रहित करनेवाला; **भजन**=अंतर में शब्द-धुन को सुनने का अभ्यास; **साहब...धरै**=सतगुरु के स्वरूप का ध्यान करना; **चित लाई**=चित्त को एकाग्र करके; **अनूप**=अनुपम; **छबि**=शोभा।

भय दूर करनेवाला नाम ही हमारा एकमात्र सहायक हो सकता है। उस नाम के भजन से अंतर की सारी मैल दूर हो जाती है। जब चित्त को एकाग्र करके सतगुरु के स्वरूप का ध्यान किया जाता है तो सतगुरु के अनुपम स्वरूप के प्रकाश की शोभा अंतर में छा जाती है।

प्रेम प्रीति लगाए निस्चै बहुरि ना भवजल आवहीं।
काया खोलु कपाट अजपा अर्ध में झरि आवहीं॥
भगति भाव अनूप दिढ़ता ग्यान जो गुन गावहीं।
सार सब्द प्रतीति करि करि मूल निगम लखावहीं॥[33]

बहुरि=फिर; **कपाट**=द्वार, भ्रूमध्य; **अजपा**=त्रिकुटी यानी दूसरे रूहानी मंडल में नाम के सरोवर में कर्मों की मैल को साफ़ करने के बाद आत्मा की निरंतर शब्द-धुन को सुनते रहने की अवस्था, अजपा की अवस्था कहलाती है; **प्रतीति**=पक्का विश्वास; **निगम**=वेद।

जिसकी शब्द के साथ प्रीति लग जाती है, वह निश्चित ही फिर संसार-सागर में नहीं आता। शरीर के अंतर में दोनों भौहौं के बीच में

स्थित अंतर का कपाट खोल लेने से लगातार हो रही अमृत की झड़ी के साथ अंतर में उठ रही शब्द-धुन अपने आप निरंतर सुनाई देने लगती है। नाम के प्रभाव से भक्ति-भाव में अनुपम दृढ़ता आ जाती है और सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सार शब्द से प्रेम करके साधक उस स्थान को देख लेता है जहाँ से वेदों की उत्पत्ति हुई है।

सिंह ठवनि ठनकत रहे, पलक न करिए भोर।
कसे कमान बान गहि, निकट ना आवहिं चोर॥[34]

सिंह ठवनि=शेर का ढंग; **भोर**=भुलाना, बेख़बर होना; **कमान**=धनुष; **गहि**=पकड़कर; **चोर**=धोखेबाज़ काल।

शेर की तरह सावधान होकर हमेशा अंतर की टंकार को सुनते रहना चाहिए, उससे क्षण भर के लिए भी बेख़बर नहीं होना चाहिए। ध्यान के धनुष को पकड़कर शब्दरूपी बाण से आंतरिक लक्ष्य पर कसकर निशाना साधना चाहिए। ऐसा करने से काल निकट नहीं आ सकता।

रगरत रगरत रगर करु, मल के कीजै दूर।
मल गये निर्मल हुआ, ग्यान बसा भरपूर॥[35]

मल=माँजकर; **मल गये**=विकार दूर हो गए।

सुमिरन द्वारा रगड़-रगड़कर मन की मैल निकालने से मन निर्मल हो जाता है अर्थात् रोज़-रोज़ अभ्यास करने से मन की मैल दूर हो जाती है और परमात्मा का भरपूर ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

जैसे फूल जो तील में, बास जो रहा समाए।
ऐसो सब्द सजीवनी, सभ घट सुरति दिखाए॥

पेरै तील तेल अलगाना। सब्द चिन्है अइसे बिलगाना॥[36]

तील=तिल; **सजीवनी**=जीवन प्रदान करनेवाला; **घट**=शरीर; **पेरै**=पेरना, कोल्हू आदि में दबाकर किसी चीज़ का रस या तेल निकालना; **अलगाना**=पृथक् करना; **बिलगाना**=निकलना, प्रकट होना।

जैसे तिल में फूल का सुगंधित फुलेल समाया होता है, उसी प्रकार जीवन प्रदान करनेवाला शब्द सबके अंतर समाया हुआ है। जैसे तिल को पेरने से तेल अलग हो जाता है, उसी प्रकार सुमिरन और भजन का अभ्यास करने से वह आंतरिक शब्द प्रकट हो जाता है।

सुमिरु सतनाम निजु काम है जाहि ते
तेजु रसभोग सुख भौन छाजे।
ल्याउ दिल दाया तुम दरद की नजरि में
तेजु कुल कर्म सभ लोक लाजे।
होए निहकर्म सभ भर्म के ढाहि दे
गहो सत चरन सुख अचल राजे।
तेजु दुख दंद तुम फंद निकंद करु
धरो दिढ़ ध्यान सोइ काम काजे।
जाहां अमी परगास भौ कमल फूल फूलित
तहां खूलित धुनि गगन सुनि काल भाजे।
ताहां झलक झलकार सत सब्द उजियार
ताहां अगम अघ काटि सिर छत्र छाजे।
ताहां भाग्य बड़ भक्ति के जक्त के जोतिया
जानि एह जुक्ति ताहां जोग गाजे।
कहें दरिया है गगन में मगन
ताहां अगम निसान धुनि तार बाजे॥[37]

तेजु=त्यागो; **रसभोग**=भोगों के रस; **सुख...छाजे**=अंतर का घर सुखों से सुशोभित हो जाएगा; **ल्याउ**=लाना; **दाया**=दया-भाव;

लोक लाजे=लोक-लाज; **निहकर्म**=निष्कर्म; **ढाहि**=ढहा देना, दूर करना; **दंद**=द्वंद्व, मानसिक दुविधा का संघर्ष; **फंद**=जाल; **निकंद करु**=तोड़ दो, नष्ट करो; **काम काजे**=काम आएगा; **अमी**=अमृत; **परगास भौ**=प्रकाश हो जाता है; **फूलित**=खिले हुए; **खूलित धुनि**=शब्द-धुन के खुलने से; **भाजे**=भागता है; **अघ**=पाप-कर्म; **सिर...छाजे**=सिर पर मुकुट शोभा देता है, आशय अंतर का राज्य प्राप्त होने से है; **जक्त**=संसार; **गाजे**=गूँजता है; **मगन**=मग्न; **अगम निसान**=दुर्लभ नगाड़ा; **तार**=सितार, वीणा।

सच्चे नाम का सुमिरन करो, उसी से अपना काम होगा और विषय-भोगों के रसों को त्यागो, फिर अंतर का घर सुखों से सुशोभित हो जाएगा। सब लोक-लाज और कुल में चलते आए बहिर्मुखी कर्मों को त्यागकर जीवों की पीड़ा अनुभव करते हुए अपने हृदय में दया-भाव लाओ। नाम के अभ्यास द्वारा निष्कर्म (सांसारिक कामनाओं या इच्छाओं से रहित) होकर कर्म करते हुए सभी भ्रमों को दूर करो और अंतर में सतगुरु के चरणों को पकड़कर अपने अचल राज्य का सुख प्राप्त कर लो। मानसिक दुविधाओं के संघर्ष और दुःखों को दूर करके काल के जाल को नष्ट करो तथा सतगुरु का ध्यान धरो, यही अभ्यास काम आएगा। इससे जहाँ अंतर में खिले हुए कमल से नामरूपी अमृत का प्रकाश प्रकट होता है, वहाँ आंतरिक आकाश में शब्द-धुन खुल जाती है जिसे सुनकर काल जीव से दूर भाग जाता है। वहाँ सच्चे शब्द के झलकते प्रकाश में पहुँचकर जीव के अथाह पाप-कर्म कट जाते हैं और उसका सिर राजछत्र से सुशोभित हो जाता है अर्थात् वह अपने खोए हुए वैभव को प्राप्त कर लेता है। भक्ति की युक्ति द्वारा संसार की बाज़ी जीतकर वह ऊँचे भाग्य वाला बन जाता है। भक्तियोग की जानकारी प्राप्त करके उसकी साधना में लगनेवाले साधक के अंतर में शब्द की गर्जना होने लगती है। दरिया साहिब कहते हैं कि वह जीव आंतरिक आकाश में मग्न हो जाता है जहाँ दुर्लभ नगाड़े की आवाज़ तथा वीणा की धुन बज रही है।

सुमिरहु सतपद प्रान अधार, सत्त सब्द ले उतरहु पार।
गुरु के बचन पावल जब बीरा, अचल अमर निश्चे घर धीरा।
हंसा जाय मिले करतारा, बहुरि ना आवहि एहि सौंसारा।
तीनि लोक ते न्यारे डेरा, पुर्ख पुरान जहां हंस घणेरा।
गुरु के बचन सीख जौं धरई, जाय सतलोक नर्क नहिं परई।
कहैं दरिया जब बीरा पावै, जाए छपलोक बहुरि नहिं आवै॥[38]

सतपद=सच्चा शब्द या नाम; **बीरा**=बीड़ा; **घर धीरा**=स्थिर या अपरिवर्तनशील घर; **हंसा**=पवित्र आत्मा; **करतारा**=परमात्मा; **बहुरि**=फिर; **सौंसारा**=संसार; **डेरा**=निवास-स्थान; **घणेरा**=बहुत-से; **सीख**=शिष्य; **धरई**=धारण करता है; **बीरा**=नाम का बीड़ा; **छपलोक**=सतलोक।

नाम का सुमिरन करो जो अविनाशी जीवन का आधार है। इसके द्वारा सच्चे शब्द को प्राप्त करके संसार-सागर से पार उतर जाओ। जब गुरु के वचनों के द्वारा नाम का बीड़ा (प्रसाद) प्राप्त होता है तो आत्मा अवश्य ही अपने अटल, अविनाशी और अपरिवर्तनशील घर, सतलोक पहुँच जाती है। वह पवित्रात्मा वहाँ जाकर परमात्मा से मिल जाती है तथा फिर इस संसार में लौटकर नहीं आती। आत्मा का यह निवास-स्थान तीन लोकों से अलग है, वहाँ सदा से विद्यमान सत्पुरुष के साथ बहुत-सी पवित्रात्माएँ निवास करती हैं। जो शिष्य गुरु के वचनों को ग्रहण करता है, वह सतलोक को जाता है तथा फिर नरकों में नहीं पड़ता। जो सतगुरु से नाम का बीड़ा प्राप्त कर लेता है वह उस गुप्तलोक (सतलोक) को चला जाता है और फिर इस संसार में नहीं आता।

बिहंगम बोलु बचन बनबासी।
उड़ि उड़ि आय तरिवर पर बैठो निस दिन रहत उदासी॥
अति चीकन तरिवर सुठि सुंदर ताहां अमी फल आसी।
पिय पिय प्रेम मगन तन वारो तब वा फलहि गरासी॥

डोरिअहिं डोरियै गगन चढ़ि जेंहो परिमल मलहिं निकासी।
अति सुगंध गगन घन बरिसे सकल भर्म भौ नासी॥
ब्याधा बधिक ताहां नहिं जैहें काटु कर्म की फांसी।
कहें दरिया तू दायापुर बसि ले होए रहु नाम उपासी॥[39]

बिहंगम=आत्मारूपी चिड़िया; **बनबासी**=संसाररूपी वन में निवास करनेवाली; **तरिवर**=वृक्ष, यहाँ आत्मा के द्वारा धारण किए जानेवाले अनेक शरीरों से आशय है; **उदासी**=दु:खी, उदास; **चीकन**=चिकना, चमचमाता हुआ; **सुठि**=अत्यंत सुंदर; **अमी...आसी**=अमृत का फल है; **पिय**=पीकर; **वारो**=न्योछावर करना; **गरासी**=खाना; **डोरिअहिं डोरियै**=शब्द की डोर के सहारे धीरे-धीरे एक मंज़िल से दूसरी मंज़िल में जाकर; **परिमल**=सुगंधि; **मलहिं निकासी**=मैल निकल जाएगी; **घन**=बादल; **बरिसे**=बरसते हैं; **भौ**=हो गए; **नासी**=नष्ट करना; **ब्याधा**=कालरूपी शिकारी; **बधिक**=वध करनेवाला; **दायापुर**=दयाल की नगरी, सतलोक।

संसाररूपी वन में निवास करनेवाली ऐ आत्मारूपी चिड़िया! तू उड़-उड़कर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर (एक जीवन से दूसरे जीवन में) बैठती है, परंतु सभी जगह दु:खी ही तो रहती है! एक अत्यंत चमचमाता हुआ सुंदर वृक्ष है जहाँ पर अमृत का फल है। अपने प्रियतम परमात्मा के प्रेम को पीकर मग्न हो स्वयं को न्योछावर करने पर उस फल को खाया जा सकता है। शब्द की डोर के सहारे धीरे-धीरे एक मंज़िल से दूसरी मंज़िल पर जाकर आकाश में चढ़ जा। वहाँ की सुगंधि से तेरी सारी मैल निकल जाएगी। उस सुगंधि में आकाश से अमृत-वर्षा करते बादलों से सारे भ्रम नष्ट हो जाएँगे। तेरा वध करनेवाला शिकारी काल भी वहाँ नहीं जा सकता। तेरे कर्मों का फंदा कट जाएगा। इसलिए तू नाम का अभ्यास करके इस दयाल की नगरी में निवास कर।

प्रकाश और शब्द रूप में नाम का प्रकट होना

साधक के अंतर में नाम प्रकाश और शब्द-धुन के रूप में प्रकट होता है और इसी प्रकाश और शब्द-धुन के सहारे साधक परमार्थी यात्रा को पूरा करके अंत में मूल शब्द यानी सतनाम में समा जाता है।

साधक पहले दोनों भौंहों के बीच तीसरे तिल में अपना ध्यान जमाता है, जिसे चाँद और सूर्य के मिलने का स्थान कहते हैं। जब साधक का ध्यान अच्छी तरह इस केंद्र में जम जाता है, तब वह शब्द-धुन के संपर्क में आ जाता है। यह शब्द-धुन सतलोक के मूल शब्द से उठती है। इस शब्द-धुन के साथ दिव्य प्रकाश भी आता है। यह शब्द मुँह से नहीं बोला जा सकता और न यह परमार्थी यात्रा पैरों से चलकर पूरी की जा सकती है। आत्मा अपनी निरत और सुरत नामक दो शक्तियों के सहारे अंदर के प्रकाश को देखती और शब्द-धुन को सुनती हुई परमार्थ की आंतरिक यात्रा तय करती है। आंतरिक गगन में उसे सूर्य, चाँद और तारे दिखाई देते हैं और झीं-झीं शब्द की झंकार सुनाई देती है। साधक का सुमिरन अपने आप चलने लगता है जिसे अजपा जाप कहते हैं। वह पाँचों तत्त्वों को प्रकट रूप में देखता है। इन तत्त्वों से वह इनके मूल आधार, सार शब्द को छाँट लेता है और उसके सहारे सहस्रदल कमल नामक केंद्र में पहुँच जाता है। वहाँ की अपूर्व सुगंधि और शोभा को पाकर आनंद-विभोर हो जाता है।

आगे का मार्ग अत्यधिक सूक्ष्म है। केवल सतगुरु के प्रति प्रगाढ़ भक्ति और गहरे प्रेम के सहारे ही साधक उसे पार कर सकता है। जैसे भौंरा कमल के प्रेम में, चकोर चाँद के प्रेम में, पतंगा दीपक के प्रेम में और पतिव्रता स्त्री अपने पति के प्रेम में अपने आप को भुला देती है, वैसे ही सच्चा शिष्य भी सतगुरु के प्रेम में अपने आप को न्योछावर कर देता है। अपने तन-मन को सतगुरु पर न्योछावर कर प्रेमी शिष्य, सार शब्द को प्राप्त करता है और उसके सहारे अपने मूल धाम में पहुँचता है:

मूल सब्द धुनि होत अंजोरा। सुरति बांधि राखे एक ठौरा॥
सुरति डोरि चेतै चित लाई। मूल सब्द के एहि उपाई॥

सूर चंद जब एक घर आवै। तबहीं डोरी लै बिलमावै॥
मूल सब्द धुनि होत उचारा। तहवां जाइ करो पैठारा॥
अकह कंवल के ऊपर मूला। सहस्र कंवल तहवां रहु फूला॥
परिमल अग्र बास तहं आवै। हंसा पियत बहुत सुख पावै॥
होए दास सतगुर के पासा। सेवा भग्ति प्रेम परगासा॥[40]

धुनि=ध्वनि; **अंजोरा**=उजाला, प्रकाश; **ठौरा**=स्थान; **बिलमावै**=टिकाए; **उचारा**=गूँजना; **पैठारा**=प्रवेश; **अकह**=जिसका वर्णन न किया जा सके; **मूला**=उद्गम स्थल, मूल स्रोत; **सहस्र कंवल**=संतमत के अनुसार आंतरिक जगत् में पहले रूहानी मंडल में स्थित हज़ार पँखुड़ियों वाला कमल, इसे तुरिया पद भी कहते हैं; **परिमल**=सुगंधि; **अग्र बास**=उत्तम ख़ुशबू; **परगासा**=प्रकाशित होना, प्रकट होना।

मूल शब्द को प्राप्त करने का यही उपाय है कि साधक अपनी सुरत को भ्रू-मध्य के केंद्र में एकाग्र करे जहाँ मूल शब्द की धुन का प्रकाश हो रहा है। फिर सचेत होकर सुरत की डोर को एकनिष्ठ भाव से शब्द-धुन की डोर में लीन किए रहे। इस प्रकार जब सूर्य और चंद्रमा एक हो जाएँ तब वहाँ पर अपनी सुरत की डोर को टिका दे। (सूर्य और चंद्रमा का मिलन स्थान, इड़ा और पिंगला के मिलने का स्थान अर्थात् तीसरा तिल है।) फिर उस स्थान पर जाकर प्रवेश करे जहाँ वह मूल शब्द निरंतर गूँज रहा है। शब्द का मूल स्रोत उस सहस्रदल कमल से भी ऊपर है जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उस स्थान पर शब्द की उत्तम सुगंधि आ रही है जिसको पीकर आत्मा बहुत ही सुख प्राप्त करती है। सतगुरु के पास जाकर उनकी शरण लेने, सेवा करने, उनके कहे अनुसार भक्ति करने तथा उनसे प्रेम करने से यह शब्द प्रकट होता है।

जब निजु ग्यान गमी करि पेखै। अबिगति जोति द्रिस्टि महं देखै॥
अनहद की धुनि करै बिचारा। ब्रम्ह द्रिस्टि होए उजियारा॥

यह जो कोइ गुर ग्यानी बूझै। सब्द अनाहद आपुहिं सूझै॥...
छन छन होखै अनहद बानी। देखि सरूप भवन रहु ठानी॥
गुरु ग्यानी जो होखै कोई। सत्तनाम निजु पावै सोई॥[41]

गमी=पहुँच; **पेखै**=देखता है; **अबिगति जोति**=दिव्य अविनाशी प्रकाश; **सरूप**=स्वरूप; **ठानी**=टिकाना।

जब जीव ख़ुद अपने आंतरिक ज्ञान के अनुभव से जाकर देखता है, तब उसे शब्द का दिव्य अविनाशी प्रकाश अपने अंतर में दिखाई देता है। अनहद शब्द की धुन का अभ्यास करने से अंतर में परमात्मा का प्रकाश प्रकट हो जाता है। अपने अंतर में अनहद शब्द का यह प्रकाश उसे ही दिखाई देता है जो अनुभवी गुरु के द्वारा इसे अच्छी तरह समझ लेता है। जीव को चाहिए कि निरंतर सतगुरु के दिव्य स्वरूप को देखते हुए अपने ध्यान को मज़बूती के साथ वहाँ टिकाए जहाँ अंतर में हर क्षण अनहद शब्द की धुन हो रही है। इस सच्चे नाम को वही प्राप्त कर सकता है जिसे कोई अनुभवी गुरु मिला होता है।

बिनु मुख बचन सब्द एक बोला। बिनु पगु निरति जगत में डोला॥
वोए अनहद लागै जब ताला। सूर चढ़ाए चंद मनिमाला॥
झिनझिन जंतर बाजै भाला। पिबै प्रेम होए मतवाला॥
अजपा के एह भेद बताई। पांच तत्तु तहं परगट पाई॥
तंतु पाए निहतंतु में जाई। तंतु में तंतु रहा छबि जाई॥
तंतु कियारी जोतै किसाना। तंतुहिं गहै सब्द निरबाना॥
बिना तंतु नहिं सब्द समोई। कहै दरिया समुझै जन कोई॥
सत्त नाम परचै नहिं पाई। सुर नर मुनि सभ चले भुलाई॥[42]

पगु=पाँव; **निरति**=आत्मा की अंतर में देखने की शक्ति; **डोला**=घूमना; **वोए**=उस; **ताला**=ताल, लय-युक्त संगीत; **सूर**=सूर्य; **जंतर**=वीणा; **भाला**=मस्तक; **मतवाला**=मस्त; **अजपा**=त्रिकुटी यानी दूसरे रूहानी मंडल में नाम के सरोवर में कर्मों की मैल को साफ़ करने के बाद आत्मा की निरंतर शब्द-धुन को सुनते रहने की अवस्था, अजपा की अवस्था कहलाती है; **पांच तत्तु**=पाँच तत्त्व: पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश; **कियारी**=क्यारी; **सब्द निरबाना**=मुक्तिदायक सार शब्द; **जन**=भक्त, भजन करनेवाला।

मुख से वचन बोले बिना आत्मा की सुनने की शक्ति सुरत के द्वारा शब्द को सुना जा सकता है। आत्मा की देखने की शक्ति, निरत के सहारे बिना पाँवों के संसार में घूमा जा सकता है। जब अंतर में उस अनहद शब्द का लय-युक्त संगीत गूँजने लगता है तो वहाँ सूर्य, चंद्रमा और मणियों का प्रकाश हो जाता है। मस्तक में वीणा की झंकार बज उठती है जिसका रस पीकर जीव प्रेम में मस्त हो जाता है। त्रिकुटी यानी दूसरे रूहानी मंडल में नाम के सरोवर में कर्मों की मैल को साफ़ करने के बाद आत्मा जब निरंतर शब्द-धुन को सुनने लगती है, तब उसे भौतिक रचना करनेवाले पाँच तत्त्वों का भेद पता चल जाता है। पाँच तत्त्वों का प्रकट रूप देखने के बाद ध्यान उनके मूल स्रोत नि:तत्त्व में चला जाता है। वहाँ पर लीन हुए तत्त्वों की शोभा छाई रहती है। इस स्थान से तत्त्व उसी प्रकार पैदा होते हैं जैसे किसी क्यारी में किसान फ़सल उगाता है। तत्त्वों के ज्ञान के बाद आत्मा उनके मूल स्रोत अर्थात् मुक्तिदायक सार शब्द को पकड़ लेती है। तत्त्वों के इस ज्ञान के बिना सार शब्द में लीन नहीं हुआ जा सकता। शब्द का यह भेद कोई भजन करनेवाला ही समझ सकता है। अन्यथा देवता, साधारण मनुष्य और मुनि – सभी भुलावे में पड़कर संसार से चले गए, कोई भी नाम को नहीं जान सका।

आगे मारग झीन अति है सब्द सुरति बिचारहीं।
अजर जोति अनूप बानी देखि तहं सुख पावहीं॥
अगम गमी तहं अति झलाझलि नेकु मन ठहरावहीं।
सत सुक्रित के सिरहिं पगु है अम्रितफल तहं चाखहीं॥

अजरा जोति बराए, मूल सब्द निजु सार है।
गहो सुरति चित लाए, कहे दरिया भवरहित है॥[43]

झीन=सूक्ष्म; **अनूप बानी**=अनुपम शब्द-धुन; **गमी**=पहुँचना; **झलाझलि**=झलकता हुआ प्रकाश; **नेकु**=अकेला न होनेवाला, स्थिर न रहनेवाला; **सत सुक्रित**=सतगुरु; **अजरा**=अक्षय, कभी न बुझनेवाली; **बराए**=जलना; **सुरति**=आत्मा की शब्द-धुन को सुनने की शक्ति; **भवरहित**=संसार से पार होना।

आगे की राह अत्यंत सूक्ष्म है जहाँ सुरत द्वारा शब्द का अनुभव किया जाता है। वहाँ की अविनाशी ज्योति और अद्‌भुत शब्द-धुन को अनुभव करके आत्मा आनंदित हो जाती है। उस अगम्य स्थान पर पहुँचकर अत्यधिक झलकते प्रकाश में कभी स्थिर न रहनेवाले मन को पहले थोड़ा-सा ठहराया जाता है। फिर सतगुरु की शरण लेकर आत्मा अमृतफल को चखती है। वहाँ कभी न बुझनेवाली ज्योति जलती रहती है, वही सार पदार्थ है जिसे ध्यान को एकाग्र करके सुरत के द्वारा पकड़ना चाहिए। यही साधना जीव को संसार से पार ले जा सकती है।

सतगुर साहब सांच है, देखो सब्द बिचार।
डोरी गहै सब्द की, तन मन डारौ बारि॥

सतगुर आगे तन मन दीजै। प्रेम प्रीति रस कबहिं न छीजै॥
मन की ममिता सभ दुरि डारा। परखि लेहु सब्द निजु सारा॥
सब्द एक मैं कहौं बुझाई। जौं तोह पंडित बूझो आई॥
मूल बिहंगम डोरी भाई। रबि ससि पवन जो सुरति समाई॥
सतगुर सब्द तबहिं लखि आवै। मूल फूल अम्रित मुख पावै॥
होए निरति तब सुरति देखावै। सार सब्द तब परगट पावै॥
गगन मंडल विच सुरति संवारी। इंगला पिंगला सुखमन नारी॥

साधहु सब्द जीव जग मुकुता। पाप पुन्य कबहीं नहिं भुगता॥
ऐसी जुगति जो जानै कोई। कहै दरिया निजु जोगी सोई॥

दरिया सब्द बिचारिए, झलकै सेत निसान।
जो सत सब्द ना पाइए, काह कथै गुर ग्यान॥[44]

बारि=जलाना; **छीजै**=क्षीण, कम होना; **ममिता**=ममता, अपनापन, अहंकार; **दुरि डारा**=दूर करना, फेंकना; **सारा**=सार तत्त्व; **बिहंगम डोरी**=पक्षी की तरह ऊपरी मंडलों में जाना-आना; **निरति**=आत्मा की अंतर में देखने की शक्ति; **सुरति**=आत्मा की सुनने की शक्ति; **इंगला**=इड़ा, आँखों के ऊपर बाईं ओर की सूक्ष्म नाड़ी। इसे चंद्रमा या यमुना भी कहा जाता है; **पिंगला**=आँखों के ऊपर दाईं ओर स्थित सूक्ष्म नाड़ी। इसे सूर्य या गंगा भी कहते हैं; **सुखमन**=आँखों के ऊपर तीसरे तिल से शुरू होकर ऊपर के रूहानी मंडलों में जानेवाली सूक्ष्म नाड़ी या मार्ग; **नारी**=नाड़ी; **साधहु**=साधना करो; **मुकुता**=मुक्ति प्राप्त करना; **सेत निसान**=श्वेत पताका।

जीव के सच्चे स्वामी सतगुरु हैं, उनके बताए शब्द का अभ्यास करके देखिए। उनके आगे अपने तन-मन को न्योछावर करके शब्द की डोर को पकड़ना चाहिए। जब उनके आगे तन-मन को समर्पित किया जाता है तो प्रेम का वह रस प्राप्त होता है जो कभी कम नहीं होता। इसलिए हे पंडित! यदि तू सचमुच ज्ञानी है तो तू अपने मन के अंधकार को दूर फेंककर अपने अंतर में उस सार तत्त्व शब्द की पहचान कर ले जिसे मैं तुझे समझाकर कहता हूँ। मूल शब्द एक ऐसी डोर है जिसके सहारे आत्मारूपी पक्षी की सुरत ऊपरी मंडलों में उड़कर अंतर के सूर्य, चंद्रमा और पवन में समा जाती है। जब आत्मा संसार के मूल स्रोत (चार पँखुड़ियों वाले कमल) पुष्प में समाने के बाद अमृत का पान करती है तब उसे सतगुरु के द्वारा दिए गए शब्द का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। तब निरत के साथ-साथ सुरत प्रकट हो जाती है तथा आत्मा सार शब्द

को प्रकट कर लेती है। वह स्थान आँखों के ऊपर बाईं ओर की सूक्ष्म नाड़ी – इड़ा, दाईं ओर स्थित सूक्ष्म नाड़ी – पिंगला तथा तीसरे तिल से शुरू होकर ऊपर के रूहानी मंडलों में जानेवाली सूक्ष्म नाड़ी – सुषुम्ना का समागम-स्थल आंतरिक गगन-मंडल है। उस गगन-मंडल में (कर्मों से मैली) अपनी सुरत को निर्मल करो। इस प्रकार जीव को संसार से मुक्ति दिलानेवाले शब्द की साधना करो, जिससे कभी भी पाप-पुण्य का भुगतान न करना पड़े। दरिया साहिब कहते हैं कि जो कोई शब्द-अभ्यास की यह युक्ति जानता है, वही सच्चा योगी है।

इसलिए शब्द की साधना करो जिससे अंतर में उज्ज्वल श्वेत पताका झलक उठती है अर्थात् प्रकाश हो जाता है। इसके विपरीत यदि तुम्हें सच्चा शब्द ही प्राप्त नहीं हुआ तो गुरु बनकर क्या ज्ञान कहते फिरते हो?

जब लगि प्रेम जुगति नहिं होई। कतनो ग्यान कथै नर लोई॥
सतगुर सीतल सब्द समाई। अमी प्रेम रस सहजे पाई॥
अलि पंकज ज्यों रहे लोभाई। बिलगि बिहरि फिरि हिलिमिलि जाई॥
ज्यों चंदा चित दीन्ह चकोरा। ऐसी प्रीति करै नहिं भोरा॥[45]

कतनो=कितना भी; **लोई**=लोग; **अमी...रस**=प्रेम-रस का अमृत; **सहजे**=सहज अवस्था प्राप्त करके: सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि हर प्रकार के द्वैत और परिवर्तन से परे आत्मा की स्वाभाविक अवस्था को सहज-अवस्था कहा जाता है। यह अवस्था आत्मा द्वारा दसम द्वार में अपना निज-स्वरूप प्राप्त कर लेने से आरंभ होती है तथा सतलोक पहुँचकर परमात्मा से अभेद हो जाने को इस अवस्था की पूर्णता कहा जाता है; **अलि**=भौंरा; **बिलगि**=अलग होना, अनासक्त; **बिहरि**=इधर-उधर घूमना; **भोरा**=भुलाना।

जब तक मनुष्य के पास प्रेमरूपी युक्ति नहीं, तब तक कोई कितना ही ज्ञान का वर्णन क्यों न करता रहे, कोई लाभ नहीं। सतगुरु के मार्गदर्शन में

शीतलता या शांति प्रदान करनेवाले शब्द में समाकर सहज-अवस्था प्राप्त करके ही प्रेमरूपी अमृत को प्राप्त किया जाता है। शब्द में समाने के बाद जीव उसी प्रकार अपनी सुध-बुध खो देता है जैसे कमल के फूल पर भौंरा मस्त हो जाता है। वह संसार में अनासक्त होकर घूमता भी है, पर फिर आकर शब्द में समा जाता है। वह शब्द को कभी नहीं भुलाता तथा उससे ऐसा प्रेम करता है जैसा चंद्रमा के साथ चकोर का प्रेम होता है।

भक्ति हेतु है ग्यान के मूला। ब्रिगसित कमल सहस दल फूला॥
सत सरन प्रीति लए लावै। निर्गुन निरखि बिमल जस गावै॥
गहे टेक सतनाम सनीपा। दुरमति दुरि दिल कमल अनूपा॥
कमल भंवर जेंवो बास सुबासा। रहत रहित रस करत बेलासा॥...
फनि मनि गनि जिमि धरत उतारी। चरत चरा दिठि द्रिस्टि ना वारी॥...
ज्यों पतंग मुख मोरत ना टारी। सन्मुख द्रिस्टि दीपक मंह जारी॥
साहस नारि करे पिय पासा। अगिनि जरे नहिं तन के त्रासा॥
सनमुख छोड़ि पिया संग जाई। नाम निरखि ऐसे चित लाई॥[46]

हेतु=प्रेम; **मूला**=मूल; **ब्रिगसित**=खिलना; **कमल...दल**=आंतरिक जगत् में पहले रूहानी मंडल में स्थित हज़ार पँखुड़ियों वाला कमल, इसे तुरिया पद भी कहते हैं; **सत सरन**=सतगुरु की शरण; **लए**=लिव; **निर्गुन**=तीन गुणों के दायरे में न आनेवाला; **निरखि**=देखकर, प्रत्यक्ष अनुभव करके; **बिमल जस**=निर्मल यश; **टेक**=सहारा; **सनीपा**=समीप, पास; **बेलासा**=विलास; **फनि मनि**=मणियारा साँप; **दिठि**=दृष्टि; **मोरत**=मोड़ना; **टारी**=टलना; **जारी**=जलाना; **पिय**=प्रियतम, पति।

सच्चे ज्ञान का मूल प्रेम और भक्ति हैं जिनके आधार पर अंतर में खिले हुए सहस्रदल कमल को प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए जीव को चाहिए कि वह सतगुरु की शरण में जाकर उनके प्रेम में लीन होकर तीन गुणों के दायरे में न आनेवाले परमात्मा का दर्शन करके निर्मल यश प्राप्त करे।

सतगुरु के पास जाकर सच्चे नाम का सहारा ले। ऐसा करने से हृदय का अनुपम कमल खिलने से कुबुद्धि दूर हो जाती है। वह शब्द की अलौकिक सुगंध में इस प्रकार मस्त हो जाता है जैसे कमल पर भौंरा। तब वह सबसे अनासक्त रहकर अपने अंतर में कमल-रस में विलास करता रहता है। जिस प्रकार मणियारा साँप जब चारा चरते हुए अपनी मणि को ज़मीन पर उतारकर रखता है, तब भी वह अपनी दृष्टि को उससे नहीं हटाता, उसी प्रकार शब्द में मग्न रहनेवाला जीव संसार का काम-काज करता हुआ भी शब्द से अपने ख़याल को नहीं हटाता। नाम का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करके उसकी अवस्था ऐसी हो जाती है जैसे पतंगे की दृष्टि केवल सामने दिखाई दे रहे दीपक में होती है और वह उसमें जलते समय मुँह नहीं मोड़ता। ठीक वैसे ही जैसे पुराने ज़माने में सब कुछ त्यागकर साहसी स्त्री अपने मृत पति के पास जाकर उसके साथ चिता में जल जाती थी, शरीर छूटने का ज़रा भी डर उसे नहीं होता था। सामने की सभी सांसारिक वस्तुओं को छोड़ वह अपने पति से जा मिलती थी। ऐसे ही एक चित्त होकर नाम का ध्यान करना चाहिए।

प्रेम प्रीति करु नाम से, भवजल जाहि न हारि।
बिना प्रेम नहिं भक्ति है, कमल सुखा बिनु बारि॥[47]

बारि=जल।

हे मनुष्य! तू नाम से प्रेम और प्रीति लगा। ऐसा करने पर तू संसार-सागर में कभी हार नहीं सकता। जैसे जल के बिना कमल सूख जाता है, उसी प्रकार प्रेम के बिना भक्ति नहीं हो सकती।

नाम के प्रकट होने की कुछ उपमाएँ

सतगुरु जब दया कर जीव के अंदर नाम का बीज डालते हैं तो समय पाकर जीव के अंदर सच्चा नाम प्रकट हो जाता है। यह नाम ही परम सत्ता या परमात्मा की निशानी है और यही जीव को परमात्मा से मिलाता है। सच्चे नाम के प्रकट होने का रहस्य कुछ उपमाओं द्वारा समझा जा सकता है।

केले की नई कोंपल में जब स्वाति की बूँद पड़ती है, तो कुछ दिनों के बाद उसमें सुगंधित कपूर पैदा हो जाता है। मनुष्य का शरीर ही मानो वह केले की कोंपल है जिससे स्वाति-रूप सतगुरु, बूँद-रूप नाम का बीज डालते हैं, जो समय पाकर सुगंधित कपूर के समान मधुर शब्द-धुन यानी सच्चे नाम के रूप में प्रकट होता है। जिस तरह फूल की सुगंधि को पाकर तिल का तेल सुवासित फुलेल बनकर मँहगे मोल बिकता है, उसी तरह सतगुरु के दिए निर्मल नाम को पाकर जीव पवित्रात्मा बनकर अमर लोक का निवासी हो जाता है। जिस प्रकार भृंग अपने संपर्क से कीट को भृंग बना लेता है, उसी प्रकार सतगुरु भी जीव को अपनी शरण में लेकर नाम की युक्ति द्वारा उसे अपने स्वरूप में मिला लेते हैं। स्वाति की बूँद को पाकर ज़हरीला सर्प मणि धारण करनेवाला मणियारा सर्प बन जाता है और सीप में मोती पैदा हो जाता है। जब चुंगल पक्षी हाथी के मस्तक पर चोंच मारकर स्वाति की बूँद को हाथी के मस्तक के अंदर कर देता है तो वह बूँद गजमुक्ता का रूप धारण कर लेती है। उसी तरह जब सतगुरु दया करके जीव के अंदर नाम का बीज बो देते हैं तो वह बीज सार शब्द यानी मधुर शब्द-धुन के रूप में प्रकट हो जाता है।

सतगुरु का दिया हुआ नाम ही ऐसी पारस-मणि है जो जीव का कायापलट कर देती है और उसे जीते-जी मुक्ति दिला देती है। सच्चे सतगुरु जीते-जी मुक्ति प्राप्त करने का भेद देते हैं। जो जीते-जी मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता, वह भला मरने के बाद मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है?

सब्द सरासन बान है, सत्ते सब्द निसान।
कहे दरिया नर बाचिया, सतगुर की पहचान॥[48]

सरासन=धनुष; **बान**=वाण; **निसान**=निशाना।

शब्द धनुष-वाण है जिसका निशाना सत् अर्थात् परमात्मा है। वही मनुष्य काल के जाल से बच सकता है जो सतगुरु के माध्यम से शब्द को पहचान लेता है।

दरिया भवजल अगम है, सतगुर करो जहाज।
तेहि पर हंसा चढ़ि के, जाए करो सुखराज॥
पहुंचे हंसा सत सब्द ते, सतगुर मिले जो मीत।
कहै दरिया भव भरम तेजी, बसै चरन महं चीत॥[49]

अगम=जहाँ तक पहुँचा न जा सके; **हंसा**=पवित्र आत्माएँ; **मीत**=मित्र; **भव...तेजी**=संसार के भ्रम को त्यागकर; **चीत**=चित्त।

इस अगम संसार-सागर से पार उतरने के लिए सतगुरुरूपी जहाज़ का सहारा लो और उस पर अपनी आत्मा को चढ़ाकर परमात्मा से मिलाप करके सच्चा सुख प्राप्त करो। आत्मा को यदि सतगुरुरूपी मित्र का साथ मिल जाए तो वह उनके बताए सच्चे शब्द के द्वारा अपने निज-घर पहुँच जाती है। इस प्रकार उसके सभी सांसारिक भ्रम मिट जाते हैं और सतगुरु के चरणों में उसका सच्चा प्रेम लगा रहता है।

अब कहों कपूर की खानी। यह भेद बिरला केहु जानी॥...
नव कोंपर सुरवाती जो आना। केदली भाग जो आय तुलाना॥
वहि औसर स्वाती झरि लाई। पहिला बूंद पड़ा जौं आई॥
मास एक मंह गोटा बंधाना। कपूर बास जो आय तुलाना॥
पारखी जन निकालि ले आवे। हाट मांह ले सबहीं देखावे॥
कोई केदली नहिं करे बखाना। नाम कपूर सभे कोई जाना॥
बहुत स्वेत जो सुबुक सोहाई। बहुत जतन करि राखहिं जाई॥
स्वाति तो गुरु भये, केदली काया बन्धान।
नाम सजीवन प्रेम रस, मिला सो निर्मल ज्ञान॥[50]

खानी=पैदा होना, उत्पत्ति; **नव कोंपर**=नई कोंपल; **सुरवाती... आना**=शुरुआत में जो आती है; **केदली**=केले का वृक्ष; **आय तुलाना**=आ मिला; **स्वाती**=स्वाति बूंद-भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार चंद्रमा एक मास में बारी-बारी से 28 नक्षत्रों में विचरण करता है। नक्षत्रों में चंद्रमा की स्थिति के अनुसार अनेक शुभ-मुहूर्तों की गणना की जाती है। स्वाति भी उन्हीं में से एक नक्षत्र का नाम है; **झरि**=वर्षा; **गोटा**=टिकिया; **कपूर बास**=कपूर की सुगंधि; **पारखी**=जिसे पहचान हो; **हाट**=बाज़ार; **स्वेत**=श्वेत; **सुबुक**=सुंदर; **सोहाई**=सुहावना; **सजीवन**=मृतक को जीवन प्रदान करनेवाला।

अब मैं तुमसे कपूर की उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ। इस भेद को कोई विरला ही जान सकता है। केले के वृक्ष में शुरू में जो नई कोंपल आती है, यदि सौभाग्य से उस समय स्वाति नक्षत्र हो और वर्षा की झड़ी लग जाए तो उस पर पड़ी वह स्वाति नक्षत्र की वर्षा की बूँद एक मास में टिकिया बन जाती है तथा उसमें कपूर की सुगंधि आ जाती है। जिसे कपूर की परख है, वह आकर उसे ले जाता है तथा बाज़ार में सभी को दिखाता है। केले के वृक्ष की बात कोई नहीं करता, सभी कपूर का नाम जानते हैं। वह कपूर अत्यंत सफ़ेद और सुंदर है। लोग उसे बहुत उपाय करके अपने पास रखते हैं। इसी प्रकार स्वातिरूपी गुरु के द्वारा केलेरूपी शरीर में मृतक को जीवन प्रदान करनेवाले नामरूपी प्रेम-रस को डालने से परमात्मा का निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है।

काया अगम फूल तहां फूला। शब्द सजीवनि है गा मूला॥...
तिल पर फूल जो दिया बिछाई। घैंचि बासना तिल समाई॥
सब घट नाम सजीवन गावे। बिनु परिचै कोई बास ना पावे॥
पेरे तिल तेल अलगाना। शब्द चीन्हि ऐसे बिलगाना॥

तिल के तेल फुलेल भौ, मेटा तिल को नांव।
सतगुरु शब्द समानेऊ, बसे अमरपुर गांव॥[51]

अगम फूल=परमात्मा; **घैंचि**=खींची; **बासना**=सुगंधि; **अलगाना**=पृथक् करना; **बिलगाना**=संसार से निकल जाना; **फुलेल**=सुगंधित तेल; **भौ**=हो गया; **नांव**=नाम, संज्ञा; **समानेऊ**=समा गया; **अमरपुर गांव**=अविनाशी सतलोक।

इस शरीर में परमात्मारूपी दुर्लभ फूल खिला हुआ है जिसका मूल शब्दरूपी संजीवनी है। जैसे जब तिल पर फूलों को बिछा दिया जाता है तो फूलों की सुगंधि उनसे निकलकर तिलों में समा जाती है, इसी प्रकार नामरूपी संजीवनी सबके अंदर है, परंतु सतगुरु द्वारा पहचान कराए बिना कोई भी उसकी सुगंधि को प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे तिल को पेरने से तेल अलग होकर निकल जाता है, उसी प्रकार सतगुरु के मार्गदर्शन में नाम का अभ्यास करने पर जीवात्मा संसार से निकल जाती है। जैसे फूल के संपर्क में आने से तिल का तेल सुगंधित फुलेल बन जाता है तथा फिर तिल का नाम मिट जाता है, उसी प्रकार सतगुरु के संपर्क में आने पर जीव, शब्द में समा जाता है तथा अविनाशी परमात्मा का रूप बनकर सतलोक में जाकर निवास करता है।

स्वाति को जल पारस लीन्हा। भृंग प्रेम युक्ति जो कीन्हा॥
कीट को पांखि तोरि के लीन्हा। घर अंधियारे बैठि का कीन्हा॥
मुख से पारस मुख में दीन्हा। सात रोज में भृंगा कीन्हा॥
भया पंख मुख औरी आना। कहो कीट कर कौन बखाना॥
कीट के गुरु भृंगा कीन्हा। मानुष के गुरु सतगुरु चीन्हा॥
सतगुरु चीन्हि प्रेम लव लावे। कीट से ब्रह्म साफ होई जावे॥

बलिहारी सतगुरु की, जिन्हि कहा मुक्ति का भेद।
सत्त शब्द पारस हुआ, कोई ग्यानी करे निखेद॥[52]

स्वाति=एक नक्षत्र का नाम; **पारस**=अपने स्पर्श से लोहे को सोना बनानेवाला एक काल्पनिक पत्थर; **भृंग**=भृंगी नाम का एक पतंगा जो कीड़े को अपना रूप बना देता है; **तोरि**=तोड़कर; **बैठि का**=बैठक; **आना**=कोई दूसरा ही; **लव लावे**=ध्यान लगाए; **साफ**=निर्मल, स्पष्ट, प्रकट; **निखेद**=खोदकर प्रकट करना, निखारना।

भृंगी नामक पतंगा कीड़े को अपना रूप बनाने के लिए प्रेमपूर्वक यह उपाय करता है। वह सबसे पहले स्वाति-जलरूपी पारस लेता है। फिर वह कीड़े

के पंख तोड़ देता है और अँधेरी जगह में बैठक लगाकर अपने मुख से स्वाति-जलरूपी पारस कीड़े के मुख में डाल देता है। इसके प्रभाव से सात दिनों में ही वह कीड़ा भृंगी बन जाता है। उसके पंख उग आते हैं, मुख पहले से बदलकर भृंगी जैसा हो जाता है; अब उसे कीड़ा कौन कह सकता है? जैसे भृंगी उस कीड़े का गुरु है उसी प्रकार मनुष्य का गुरु सतगुरु है। जब मनुष्य सतगुरु को पहचानकर प्रेमपूर्वक शब्द के अभ्यास में ध्यान लगाता है, तो वह कीड़े के समान संसार की मैल में फँसा, निर्मल परमात्मा का रूप बन जाता है। बलिहारी उस गुरु की है जिन्होंने जीव को मुक्ति का भेद कहा। गुरु से प्राप्त सच्चा शब्द ही पारस है जिसके द्वारा कोई ज्ञानी साधक सत्य को अंतर से खोज निकालता है अर्थात् प्रकट कर लेता है।

भुवंग मुख मनि कैसे पाई। कौने युक्ति मनि उपजी आई॥
सहस्र वर्ष भुवंग विषि पासा। मानुष पांव कबे नहिं ग्रासा॥
योग युक्ति सुरज कहं विनवे। त्रिमिर छुटी जबे भौ दिनवे॥
विषि से मांति जला जल भैऊ। स्वाती को बूंद आमृत पैऊ॥
मिटिगो विषि मनि उपजी आई। भया सिद्धि तन तप्त बुझाई॥...
ऐसे जोगी युक्ति जो करई। होय ग्यान मुक्ति फल लहई॥...

कहे दरिया सतगुरु खोजो, शब्दहिं करो विचार।
और गुरु सस्ता जकत में, निर्मल मिला न सार॥[53]

भुवंग=साँप; **मनि**=मणि; **युक्ति**=तरीक़ा; **उपजी**=उत्पन्न हुई; **सहस्र**=हज़ार; **ग्रासा**=डसा; **विनवे**=प्रार्थना करना; **त्रिमिर**=अंधकार; **मांति**=मतवाला या मस्त होना, नशे में चूर होना; **भैऊ**=हो गया; **पैऊ**=पड़ी; **तप्त**=जलन; **और गुरु**=अज्ञानी गुरु, ढोंगी गुरु।

सर्प ने अपने मुख में मणि को कैसे प्राप्त किया? किस विधि से मणि उत्पन्न हुई? अत्यंत विषैला सर्प एक हज़ार वर्ष तक विष के साथ रहा, उसका शरीर जलता रहा। फिर भी उसने कभी भी किसी मनुष्य के पाँव

को नहीं डसा। योग की विधि के अनुसार वह सूर्य से प्रार्थना करता रहा। जब उसके अंदर नम्रता का भाव आ गया तो अंतर का अंधकार दूर हो गया। विष से पूरी तरह मतवाले हुए सर्प के मुख में स्वाति की बूँद पड़ी, उसका विष समाप्त हो गया और मणि उत्पन्न हो गई। उसे सिद्धि प्राप्त हो गई तथा उसके शरीर की जलन समाप्त हो गई। परमात्मा का मिलाप प्राप्त करने के लिए भी यदि इसी प्रकार उपाय किया जाए तो सच्चा ज्ञान प्राप्त होकर मुक्तिरूपी सुंदर फल प्राप्त होता है। उपाय यह है कि सतगुरु की खोज करके उनके मार्गदर्शन में सच्चे शब्द का अभ्यास करें। सतगुरु का मिलना संसार में अत्यंत दुर्लभ है। अज्ञानी (झूठे) गुरु तो संसार में बहुत सस्ते हैं अर्थात् आसानी से मिल जाते हैं, परंतु शब्दरूपी सार वस्तु का भेद देनेवाला निर्मल सतगुरु नहीं मिलता।

गज मुक्ता कहु कैसे होई। स्वाती के जाने सब कोई॥
बिन पारस मुक्ता नहिं होई। परे बूंद फेरि ढरि जावे सोई॥
स्वाती के सभ कहे बखानी। चुंगल का कोई मर्म न जानी॥
परा बुंद मस्तक पर आई। बिनु चुंगल कांजी होय जाई॥
चुंगल चोंच मस्तक पर दीन्हा। छुवत जल भीतर के लीन्हा॥
उपजे मुक्ता निर्मल सारा। चुंगल पारस भेद निनारा॥...

जैसे दूध बिनु जावन, सरि के जाय नसाय।
जाय जीव सतगुरु बिना, खोजो शब्द बनाय॥[54]

गज मुक्ता=एक प्रकार का मोती जो हाथी के मस्तक में पाया जाता है; **ढरि**=गिरना; **चुंगल**=एक पक्षी; **कांजी**=फटे दूध जैसा अर्थात् बेकार; **निनारा**=न्यारा, अनोखा; **जावन**=दूध को दही बनाने के लिए उसमें डाला जानेवाला दही, जोरन; **सरि के**=सड़कर।

हाथी के मस्तक में गजमुक्ता कैसे बनता है? स्वाति-बूँद को तो सभी जानते हैं पर चुंगल पक्षीरूपी पारस के बिना वह स्वाति-बूँद गजमुक्ता का

रूप नहीं हो सकता क्योंकि हाथी के मस्तक पर पड़ी हुई स्वाति-बूँद तो वहाँ से लुढ़ककर नीचे गिर जाती है, मस्तक में प्रवेश नहीं करती। स्वाति के बारे में तो सभी कहते हैं, परंतु चुंगल पक्षी का भेद किसी को पता ही नहीं है। यदि स्वाति की बूँद हाथी के मस्तक पर पड़े भी तो वह चुंगल पक्षी के बिना बेकार हो जाती है। चुंगल पक्षी हाथी के मस्तक पर बैठकर अपनी चोंच मारकर उस बूँद को मस्तक के भीतर डाल देता है जिससे सार वस्तु निर्मल गजमुक्ता उत्पन्न होता है। इस प्रकार चुंगलरूपी पारस का यह भेद अनोखा है। जिस प्रकार बिना जामन के दूध सड़कर बरबाद हो जाता है, उसी प्रकार सतगुरु के बिना नाम का भेद नहीं मिलता और जीव भी बरबाद हो जाता है। अतः सतगुरु की शरण लेकर शब्द की खोज करनी चाहिए।

सीप आस स्वाती लाई। बिनु पारस मोती नाहिं पाई॥
वर्षि बुंद स्वाती दीन्हा। सुपट खोलि इच्छा भरि लीन्हा॥...
जाके सतगुरु भेद बतावे। पारस मूल शब्द सो पावे॥...

सीप तो यह जन भए, स्वाती भै गयो ग्यान।
पुरुष तो सतगुरु भये, प्रेम युक्ति दीन्हों दान॥[55]

वर्षि=बरसना; **सुपट खोलि**=सुंदर ढक्कन खोलकर; **पारस...शब्द**=मूल शब्दरूपी पारस; **भै गयो**=हो गया।

सीप स्वाति की आस लगाए रहती है, क्योंकि वह स्वाति के बिना मोती को नहीं पा सकती। जैसे ही स्वाति नक्षत्र में वर्षा की बूँद बरसती है, सीप अपने सुंदर ढक्कन को खोलकर उसे अपनी इच्छा के अनुसार भर लेती है जिससे मोती बनता है। इसी प्रकार जिसको सतगुरुरूपी पारस भेद बताते हैं, वही जीव इस पारस के सहारे मूल शब्द को प्राप्त करता है। वास्तव में साधक सीप के समान है और सतगुरुरूपी पारस का दिया हुआ ज्ञान स्वाति-जल है। सतगुरु ही जीव को प्रभु प्रेम के ज्ञान की युक्ति अर्थात् नाम दान देते हैं।

ऐसो मोती सिरजनिहारा। सतगुरु खोजहु ग्यान बिचारा॥...
सतगुरु प्रेम प्रीति लौ लाई। तबहीं मुक्ति नाम निजु पाई॥...

सतगुरु शब्द परतीति करि, रहो प्रेम लवलीन।
दरिया दर्पण देखिये, कबहीं ना होय मलीन॥[56]

सिरजनिहारा=बनानेवाला; **परतीति**=पक्का विश्वास; **लवलीन**=आसक्त; **दर्पण**=आईना; **मलीन**=मैला।

नामरूपी मोती का निर्माण करनेवाले ऐसे सतगुरु की खोज करो जो परमात्मा की प्राप्ति के सच्चे ज्ञान का उपदेश देते हों। उनसे प्रेम करके लिव लगाने से ही सच्चे नाम के द्वारा मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसलिए हे मनुष्य! सतगुरु के बताए शब्द पर पक्का विश्वास कर और उनके प्रेम में लवलीन रह। इससे परमात्मा का दर्शन करानेवाला अंदर का ऐसा आईना दिखाई देगा जो कभी मैला नहीं होता।

असल भेद बूझहु निजु ग्याना। सतगुरु शब्द करहु परवाना॥...
सोई असल टकसार कहावे। जो यह सनदि हजूरी पावे॥[57]

बूझहु=समझो; **परवाना**=प्रामाणित; **टकसार**=सिक्का ढालने की जगह; **सनदि हजूरी**=परमात्मा के हुक्म का प्रमाण-पत्र, आदेश-पत्र।

सतगुरु से प्राप्त शब्द का असली भेद जो सच्चा ज्ञान है, परमात्मा के पास जाने का हुक्मनामा है। असली सिक्का ढालनेवाला वही होता है जिसके पास ऐसा करने का आधिकारिक प्रमाण-पत्र हो। इसी प्रकार जिसे परमात्मा के हुक्म से जीवों को नाम का भेद देकर सतलोक ले जाने का अधिकार प्राप्त होता है, वही सच्चा सतगुरु है।

पिये प्रेम होय मस्त दीवाना। राव रंक एक सम जाना॥
जियते मुक्ति जाने सो ग्यानी। भौ जल लाँघ चले सो प्रानी॥

भौ जल अगम गम्भीर है, बहे कहर दरियाव।
नाम जहाजे चढ़ि के, गया अमरपुर गाँव॥[58]

कहर=संकट, आफ़त।

जो सतगुरु के प्रेम की मदिरा पी लेता है वह मस्त और दीवाना हो जाता है। फिर उसके लिए अमीर और ग़रीब एक समान हो जाते हैं। जो सुमिरन के द्वारा अपने ध्यान को शरीर के नौ द्वारों से समेटकर भृकुटी-मध्य में स्थित तीसरे तिल में एकाग्र करके जीते-जी मुक्ति प्राप्त करने का तरीक़ा जानता है, वही ज्ञानी है। ऐसा प्राणी संसार-सागर को लाँघकर पार चला जाता है। संसार-सागर अथाह और गहरा है जिसमें आफ़त का बहाव है। केवल नामरूपी जहाज़ पर सवार होकर ही अविनाशी सतलोक पहुँचा जा सकता है।

जियतहिं मुकुति होए तब सांचा। मुए चौरासी करिहै नाचा॥
तब नहिं यार मिलन संजोगा। एहि भव चौरासी परसंगा॥[59]

जियतहिं मुकुति=जीते-जी मुक्ति; **चौरासी**=चौरासी लाख योनियाँ; **नाचा**=नाचते रहते हैं, घूमते रहते हैं; **यार**=प्रियतम, परमात्मा; **संजोगा**=संयोग; **भव**=संसार।

जीते-जी प्राप्त होनेवाली मुक्ति ही सच्ची है। मरने के बाद मुक्ति की आशा रखनेवाले को तो चौरासी लाख योनियों के चक्कर काटने पड़ते हैं। तब प्रियतम परमात्मा से जीव के मिलने की संभावना नहीं हो पाती, क्योंकि वह चौरासी लाख योनियों के संसार में फँसा रहता है।

सोइ गुर निस्चै चित महं भावै। जो जन जियतहिं मुक्ति बतावै॥
तन छूटै फिरि परहिं अंदेसा। कैसे सूझेहिं मुक्ति संदेसा॥
राह छेंकि जम करहिं अहारा। देह धरै भरमे संसारा॥
तन छूटै पुनि कहां समाई। कहु कैसे नाम भजन लौ लाई॥
जियतहिं सत पद जो मन लाई। तन छूटै सत सब्द समाई॥[60]

निस्चै=निश्चित रूप से; **अंदेसा**=चिंता, ख़तरा; **राह छेंकि**=रास्ते को रोककर; **अहारा**=भोजन; **समाई**=मिलना, जन्म लेना; **सत पद**=सच्चे धाम।

निश्चित रूप से वही गुरु हृदय को भाता है जो अपने शिष्य को जीते-जी मुक्ति का साधन बताता है। शरीर छूट जाने पर तो चिंता और ख़तरे घेर लेते हैं, फिर कोई मुक्ति के संदेश को कैसे समझ सकता है? मृत्यु के बाद तो यमराज रास्ता रोककर जीव का आहार करता है तथा बाद में जीव संसार में शरीर धारण करके भटकता रहता है। शरीर छूट जाने के बाद फिर न जाने कहाँ जाकर जन्म लेना पड़ेगा? वहाँ फिर कैसे नाम के भजन में लिव लगाएँगे? इसलिए यदि जीते-जी सच्चे धाम (सतलोक) को पाने के मार्ग यानी नाम-मार्ग में मन लगाया जाए तो मृत्यु के समय शरीर छूटने के बाद जीव सच्चे शब्द में जाकर समा जाता है।

नाम-विहीन जीवों का हाल

वे जीव सचमुच अभागे हैं जो नाम प्राप्त नहीं करते। नाम प्राप्त न करने के कारण वे आवागमन के चक्र में भटकते रहते हैं। अज्ञानवश वे अपनी धन-संपत्ति का अहंकार करते तथा कुल-परिवार के मोह में फँसे रहते हैं। सतगुरु की भक्ति से विमुख होकर वे सांसारिक विषय-वासनाओं में आसक्त रहते हैं। वे भूल जाते हैं कि इस संसार के महल-ख़ज़ाने और सगे-संबंधी कभी भी हमारे साथ नहीं जाते और अंत में हमें यमराज के हाथों कष्ट भोगना पड़ता है। यमराज ऐसे जीवों को नरकों में डालता है और उन्हें उनके कर्मानुसार बंदर, सर्प और कीड़ों तक की गंदी योनियों में जन्म देता है। नाम-विहीन जीव पंख-रहित पक्षी जैसे लाचार बने, यमराज के धक्के सहते रहते हैं और उन्हें कहीं कोई ठिकाना नहीं मिलता।

नाम चीन्हे बिनु कोई न बांचे। देह धरि धरि भौ जल नाचे॥[61]

बांचे=बच पाता; **धरि**=धारण करके; **भौ जल**=संसार-सागर।

नाम के अभ्यास के बिना कोई नहीं बच सकता। ऐसे में जीव बार-बार शरीर धारण करके संसार-सागर में भटकता रहता है।

भरमि रहा नर नाम बिहूना। पलपल होखै मूल महं छीना॥...
जोग जुगति तेजि भोग सभ करई। नाम बिना नर नरकहिं परई॥[62]

बिहूना=विहीन; **छीना**=क्षीण, कमी होना; **तेजि**=छोड़कर; **परई**=पड़ता है।

जो व्यक्ति नाम के बिना भटक रहा है, वह प्रतिपल अपने सीमित स्वाँसों के मूलधन को गँवा रहा है। परमात्मा से मिलने के लिए नाम की साधना न करके लोग विषयों का भोग करने में लगे रहते हैं। ऐसे मनुष्य मृत्यु के बाद नरकों में पड़ते हैं।

एक नाम बिनु काम न होई। सदा जात नर जन्म बिगोई॥
भौ मतहीन ग्यान नहिं चीन्हा। सतगुर चरन प्रेम बिनु हीन्हा॥[63]

बिगोई=गँवाना, नष्ट करना; **भौ मतहीन**=बुद्धिहीन हो गया; **चीन्हा**=पहचाना; **हीन्हा**=हीन, तुच्छ।

नाम की साधना के बिना जीव का (मुक्ति प्राप्त करने का) कार्य नहीं हो सकता और वह इस अमूल्य मनुष्य-जन्म को व्यर्थ में गँवाकर चला जाता है। सतगुरु के बताए शब्द के ज्ञान को न पहचान पानेवाला व्यक्ति बुद्धिहीन है तथा जिसका सतगुरु के चरणों में प्रेम नहीं, वह तुच्छ है।

जाके पूंजी नाम है, कबहिं ना होखै हानि।
नाम बिहूना मानवा, जमके हाथ बिकान॥[64]

पूंजी=दौलत; **होखै**=होती है; **बिकान**=बिकना।

जिसके पास नाम की दौलत है, उसकी कभी कोई हानि नहीं होती। जबकि नाम-विहीन मनुष्य यमराज के ख़रीदे हुए ग़ुलामों की तरह हैं।

सत्तनाम जपहु बेवहारा। बिना नाम पसुआ अवतारा॥

सत्तनाम अम्रित नहिं चाखेउ, नहिं पाएउ पैसार।
कहे दरिया जग अरुझेउ, एक नाम बिना संसार॥[65]

बेवहारा=व्यावहारिक रूप में; **पैसार**=प्रवेश (परमात्मा के दरबार में); **अरुझेउ**=उलझना।

नाम का जाप (सुमिरन) करना ही हमारे नित्य दिन का व्यवहार या नियम होना चहिए। नाम के बिना मनुष्य पशुओं की योनि में जन्म लेता है। सच्चे नामरूपी अमृत के रस को चखे बिना परमात्मा के दरबार में प्रवेश नहीं किया जा सकता। नाम के बिना सभी जीव इस संसार में ही उलझे रहते हैं।

जेहि नहिं बिमल चरन चित आना। मर्कट होएके भरमि निदाना॥
सुनत स्रवन संका नहिं आना। होए भुअंग बिखि करहिं अपाना॥
लोचन ललचि नाम नहिं पेखा। नैन बिहून क्रिमी कै लेखा॥[66]

मर्कट=बंदर; **निदाना**=अंत में; **स्रवन**=कान से; **संका**=भय; **भुअंग**=साँप; **बिखि**=विष; **अपाना**=अंदर को साँस खींचना; **लोचन**=आँखें; **पेखा**=देखा; **बिहून**=विहीन; **क्रिमी**...**लेखा**=कीड़े की तरह।

यदि सतगुरु के पवित्र चरणों से प्रेम नहीं किया तो अंत में बंदर की तरह भटकना पड़ेगा। यदि सतगुरु के उपदेश को अपने कानों से सुनकर भी विषय-भोगों के परिणाम का भय मन में नहीं आया तो फिर मरने के बाद साँप बनकर विष-भरी साँसें लेते फिरोगे। यदि ललचाई आँखों से नाम के प्रकाश को नहीं देखा तो यह मनुष्य-जन्म नेत्र-विहीन कीड़ों की तरह है।

नाम ना जाना रे अभागा तें।
पानी को ऐसो बून्द बुला छन मांह बिलाना रे॥

कोठा महल अटारिया बहु सुख बखाना रे॥
जेंव आया तेंव जाएगा बिखिया लपटाना रे॥
हाथी घोड़ा बहल खजाना सभ गर्द समाना रे।
छन में परले होत है पीछे पछताना रे॥
मातु पिता सुत बंधवा सभ कहत एगाना रे॥
कहें दरिया सतगुर बिना जम हाथ बिकाना रे॥[67]

तें=तू; **बुला**=बुलबुला; **छन**=क्षण; **मांह**=में; **बिलाना**=गलना, ग़ायब हो जाना, नष्ट होना; **अटारिया**=ऊँचा पक्का महल; **जेंव**=ज्यों; **तेंव**=त्यों; **बिखिया**=विषयों में; **बहल**=बहुल (बहुत सारे); **गर्द**=धूल; **परले**=प्रलय; **बंधवा**=भाई-बंधु; **एगाना**=अपना।

हे मनुष्य! यदि तूने नाम को नहीं जाना, तो तू सचमुच अभागा है, क्योंकि तेरा यह शरीर तो पानी की बूँदों के बीच बने वायु के बुलबुले की तरह क्षण भर में नष्ट हो जाएगा। तेरे ये विशाल कोठे, झरोखे और पक्के महल, जिनको बहुत बड़ा सुख कहा जाता है, तेरे किसी काम नहीं आएँगे। यदि तू विषय-भोगों में ही उलझा रहा तो अंत समय में उसी प्रकार ख़ाली हाथ जाना पड़ेगा जैसे तू इस दुनिया में ख़ाली आया था। हाथी, घोड़े, महल और ख़ज़ाने मिट्टी में मिल जाएँगे। मृत्यु के समय एक ही क्षण में सब कुछ नष्ट हो जाएगा और बाद में पछताना पड़ेगा। जिन माता-पिता, पुत्र, भाई-बंधुओं को तू अपना कहता है, उनके होते हुए भी एक सतगुरु के बिना तुझे यमराज का गुलाम बनना पड़ेगा।

बिहंगम कौन दिसा उड़ि जइहो।
नाम बिहुना सो पर हीना, भरमि भरमि भव रहिहो॥
गुरु निन्दक मद संत के द्रोही, निन्दहिं जन्म गंवइहो।
पर दारा प्रसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहो॥
मदपी मांति मदन तन व्यापेव, अमृत तेजि विष खइहो।

बिसरि गयी तेहि दिन की बातें, अब बहु घात लगइहो॥
चरन कमल बिनु सो नर बूड़े, उभि चुभि थाह न पइहो।
कहें 'दरिया' सतनाम भजन बिनु, रोई रोई जनम गंवइहो॥[68]

बिहंगम=आत्मारूपी पक्षी; **नाम बिहुना**=नाम-रहित; **पर हीना**=बिना पंख का; **भव**=संसार; **पर दारा**=परस्त्री; **प्रसंग**=रतिकर्म, सहवास; **लहिहो**=पाओगे; **मदपी मांति**=नशा पीकर मतवाला होना; **मदन**=काम-भावना; **तन व्यापेव**=शरीर में छा गई; **तजि**=छोड़कर; **घात**=छल-कपट, धोखाधड़ी; **उभि चुभि**=ग़ोते खाना।

हे आत्मारूपी पक्षी! तू उड़कर किस ओर जाएगा? यदि तुझे नाम का भेद नहीं मिला तो तू मानो बिना पंख के है और इस संसार में भटकता ही रहेगा। तू गुरु की निंदा करने में मस्त रहता है और संतों से वैर करता है—इस प्रकार तूने निंदा करते हुए ही सारा जन्म गँवा दिया है। तू परस्त्री के साथ दुष्कर्म भी करता है। ऐसे में कहो तो, तूने कौन-से गुण पाए हैं? नशा पीकर मस्त रहने से काम-भावना तेरे शरीर में छा गई है, इस प्रकार तू नामरूपी अमृत को त्यागकर विषयरूपी विष खा रहा है। तू जब गर्भ में कष्ट सहता था तो बार-बार परमात्मा के आगे प्रार्थना करता था कि गर्भ से बाहर निकलने पर कभी भी उसे नहीं भूलेगा, परंतु संसार में आकर तू उन दिनों की बातें भूल गया है और अब तरह-तरह की धोखाधड़ी में लगा हुआ है। सतगुरु के चरण-कमल प्राप्त न होने के कारण तू ग़ोते खाता हुआ इस संसार-सागर में इस तरह डूबेगा कि तुझे कहीं भी थाह नहीं मिलेगी। सच्चे नाम के भजन के बिना तू रो-रोकर यह मनुष्य-जन्म गँवा देगा।

6

सच्चा प्रेम

सतगुरु का बताया सच्चा प्रेम-पंथ

इस संसार में अनेक मत फैले हुए हैं। कोई जप-तप, पूजा-पाठ और कर्मकांड के अनेक विधि-विधानों में लगा हुआ है और कोई हठ-कर्मों द्वारा अपने शरीर को सुखा रहा है। इन साधनों से न कोई ज्ञान होता है और न कोई शांति ही मिलती है। फिर भी अंध-परंपरा में पड़े जीव इनमें जूझते रहते हैं। मुक्ति के सच्चे मार्ग का पता हमें तभी लगता है जब हम सतगुरु के संपर्क में आते हैं। केवल सतगुरु ही हमें सच्चे मार्ग, प्रेम-पंथ का रहस्य बता सकते हैं।

प्रेम ही परमार्थ का मूल है। यही हमारे अंदर का अज्ञान मिटाता है तथा आंतरिक प्रकाश और शब्द-धुन को प्रकट करता है। इसी के द्वारा काम-क्रोध आदि विकार दूर होते हैं, सांसारिक मोह और आसक्ति मिटती है, पाप नष्ट होते हैं और प्रेमी प्रेम-रस के अमृत को आनंद मग्न होकर पीता है। प्रेम-मार्ग से चलकर ही प्रेमी अपने प्रियतम के पास पहुँचता है। पर इसके लिए उसका अपने आप को सतगुरु के चरणों में पूरी तरह समर्पित करना आवश्यक होता है।

कमल पानी में ही उगता और सदा पानी में ही रहता है, पर वह पानी से विकसित नहीं होता। सूर्य की किरणें उसकी पँखुड़ियों को खोलती हैं। ठीक उसी प्रकार मनुष्य के हृदय-कमल के पास ही परमात्मारूपी जल है, पर जब तक उसे सतगुरु के प्रेम की किरणें नहीं मिलतीं, वह विकसित नहीं होता।

सतगुरु की दया से जब प्रेम की पीड़ा उभरती है, तब प्रेमी प्रियतम से मिलने के लिए व्याकुल हो उठता है। तीव्र विरह वेदना ही सच्चे प्रेम की

निशानी है और विरही-जन ही अपने प्रियतम से मिलाप का सच्चा सुख प्राप्त करता है। प्रेम और भक्ति के बिना केवल तीर्थ-व्रत और दान-पुण्य आदि भी निरर्थक हैं। प्रेम और भक्ति से रहित जीव यम की नगरी में जाते हैं। केवल प्रेमी ही परमात्मा को पाता है:

अब किछु कहों पन्थ कर भाऊ। जानि बूझि गति ज्ञान प्रभाऊ॥
आपन कहा सभे हित लागा। मुक्ति पन्थ बिरला जन जागा॥
कह्यो पन्थ सब सन्त संवारी। औ अनेक मुनि कथा बिचारी॥
डंड कवंडल कहा बखानी। जोगिन्ह कहा आपु मत जानी॥
मेरूदंड आसन कहं साधी। द्वादश पवन रहे तन राधी॥
होखे ज्ञान न आवे जोगा। तन भौ छीन व्यापेउ रोगा॥
डंडिन्हि जप तप कीन्ह बिधाना। जपे गायत्री सांझ बिहाना॥...
पंडित सुमिरहिं वेद पुराना। कर्मकांडी सभ करे बखाना॥...
जैसे द्रुम लता लपटाना। बिबिध पंथ भेख अरुझाना॥
खारी खांड एक मोल आना। केशरि कुसुम एक सम जाना॥...
कनक पीतर के एक शरीरा। पारस करे सो ज्ञान गंभीरा॥...
सतगुरु शब्द विवेक विचारी। विवरण करो ज्ञान निरुआरी॥
जाते होय मुक्ति फल काजू। बैठि अमरपुर अटल राजू॥[1]

भाऊ=प्रेम; **गति**=पहुँच; **प्रभाऊ**=प्रभाव; **हित लागा**=हितकारी या अच्छा लगना; **मुक्ति पन्थ**=मुक्ति का मार्ग; **संवारी**=सँवारकर; **डंड कवंडल**=डंडा और कमंडल; **जोगिन्ह**=योगियों ने; **आपु मत**=अपना मत; **मेरूदंड**=मेरुदंड, रीढ़ की हड्डी; **साधी**=साधना करना; **द्वादश**=दस इंद्रियाँ, मन और बुद्धि; **राधी**=रोककर; **भौ**=हो गया; **छीन**=क्षीण, कमज़ोर; **व्यापेउ**=व्याप्त होना; **डंडिन्हि**=डंडाधारियों ने, संन्यासियों ने; **बिधाना**=विधान करना; **सांझ बिहाना**=शाम सवेरे; **द्रुम**=वृक्ष; **लता**=बेल; **खारी**=नमकीन मिट्टी; **खांड**=शक्कर; **केशरि**=केसर का बहुमूल्य फूल; **कुसुम**=कुसुंभे का फूल जिसका रंग जल्दी ही उतर जाता है;

कनक=सोना; **पीतर**=पीतल; **शरीरा**=वर्ण देखने पर; **गंभीरा**=गहराई से; **विवरण**=वर्णन करना; **निरुआरी**=सुलझाकर, निर्णय करके; **काजू**=कार्य; **अमरपुर**=अविनाशी सतलोक; **अटल राजू**=अटल, अविनाशी राज्य।

दरिया साहिब कहते हैं कि मैं सच्चे ज्ञान के प्रभाव को जानकर अब प्रेम-मार्ग का वर्णन करता हूँ। सभी लोगों को अपनी कही हुई बात या अपना ही विचार अच्छा लगता है, सच्चे मुक्ति-मार्ग का ज्ञान तो किसी विरले को ही हुआ है। सभी संतों ने मुक्ति के मार्ग को भली-भाँति समझाकर कहा है। मुनियों ने अनेक कथाओं का वर्णन किया है, तथा डंडा और कमंडल धारण करने के अपने मत का वर्णन किया है। योगियों ने अपना मत बताया है। वे दस इंद्रियों, मन और बुद्धि को प्राणायाम के द्वारा रोकते हैं तथा आसनों के द्वारा मेरुदंड की साधना करते हैं। इन सबके बावजूद उन्हें न सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और न उनका परमात्मा से मिलाप ही हो पाता है। उलटे शरीर दुर्बल हो जाता है और वे रोग के शिकार हो जाते हैं। संन्यासियों ने अपने मत में जप-तप का विधान किया है। वे शाम-सवेरे गायत्री मंत्र का जाप करते हैं। पंडित वेदों-पुराणों को बार-बार पढ़ते हैं और अनेक प्रकार के कर्मकांड के बारे में बताते हैं। जैसे वृक्ष में बेल लिपटी होती है उसी प्रकार विभिन्न प्रकार के मत-मतांतर बाहरी दिखावे में उलझे हुए हैं। यहाँ तो नमकीन मिट्टी और शक्कर एक ही भाव बिक रही है। परमात्मा के सच्चे मार्ग से अनजान लोग सुगंधित केसर के बहुमूल्य फूल और कुसुंभे के फूल को जिसका रंग जल्दी ही उतर जाता है, एक समझ बैठे हैं। बाहर से देखने पर सोना और पीतल का एक ही रंग दिखाई देता है, परंतु जिसे दोनों के गुणों का गहराई से ज्ञान होता है, वही इनकी परख कर सकता है। सतगुरु संसार की इन सभी विचारधाराओं, मतों से अलग शब्द के सच्चे मार्ग को विवेकपूर्वक समझाते हैं। इस शब्द-मार्ग के द्वारा मुक्तिरूपी फल प्राप्त होता है और जीव का मनुष्य-शरीर में आना सफल होता है। फिर वह अविनाशी सतलोक में बैठकर अटल राज करता है।

खोजहु सतगुरु सो पन्थ लागा। पियहु सुधा सम प्रेम सुभागा॥

पीयहु सुधा सम ग्यान रस, सुन्दर सुभग शरीर।
भजसि काहे नहिं प्रेम पंथ, दयासिन्धु के तीर॥

पुरुष पुरान अछै सम तूला। छोड़ी अनंत एक गहु मूला॥
कमल सुमंडित परसु सुभागा। मूल शब्द प्रेम अनुरागा॥
सतगुरु चरण रहो लवलीना। बिघ्नि अनेक पाप होय छीना॥
अघ पातक सब जात ओराई। परसहु प्रेम प्रीति लव लाई॥[2]

पियहु=पीना; **सुधा**=अमृत; **सुभागा**=सौभाग्यशाली; **सुभग**=भाग्यवान्, सुंदर, प्रिय; **भजसि**=भजन करना; **काहे**=क्यों; **दयासिन्धु**=दया के सागर; **तीर**=तट या किनारे पर; **पुरुष पुरान**=सनातन पुरुष; **अछै**=नाश न होनेवाला; **सम तूला**=समान; **अनंत**=अनेक; **गहु**=पकड़ो; **मूला**=मूल शब्द; **सुमंडित**=सुशोभित; **परसु**=स्पर्श करना; **लवलीना**=अनुरक्त; **छीना**=नष्ट; **अघ पातक**=पाप और दुष्कर्म; **ओराई**=समाप्त होना; **परसहु**=स्पर्श करो, अपनाओ; **लव लाई**=लवलीन होना, लिव लगाना।

जो सतगुरु की खोज कर लेता है वही संतों के मार्ग पर चलता है तथा अमृत के समान प्रेम का पान करता है। जिन्होंने अमृत के समान परमात्मा के सच्चे ज्ञान का रस पी लिया है, उन्ही का शरीर सुंदर है यानी उनका मनुष्य-जीवन में आना सफल है। इसलिए हम दया के समुद्र सतगुरु की शरण लेकर प्रेम-मार्ग पर चलते हुए ईश्वर का भजन क्यों नहीं करते? हमें अनेक को छोड़कर सबके मूल स्रोत एक शब्द को पकड़ना चाहिए जो सनातन पुरुष परमात्मा से ही प्रकट होता है और उन्हीं के समान है। जब हम अंतर में सुशोभित कमल का स्पर्श करेंगे तो हमारे अंदर मूल शब्द से प्रेम पैदा हो जाएगा। अंतर में सतगुरु के दिव्य चरणों में लवलीन रहने से अनेक कष्ट और पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रेमपूर्वक उनके स्पर्श से सभी पाप और दुष्कर्म समाप्त हो जाते हैं।

येहि बीसु पन्थ अहे बहुतेरा। समुझि ग्यान निजु करो निमेरा॥
होखे सन्त बिबेकी ग्यानी। मुक्ति पन्थ लेत पहचानी॥...
कीन्हों पन्थ बिबिध प्रकासा। मुक्ति पन्थ सतगुरु के पासा॥
सो सतगुरु सतपन्थ निनारा। और ग्यान गमि जगत पसारा॥

प्रेम ग्यान जब उपजे, चले जगत कंह झारी।
कहे दरिया सतगुरु मिले, पारख करे सुधारी॥[3]

बीसु=विश्व में; **पन्थ**=मार्ग; **अहे**=हैं; **बहुतेरा**=अनेक; **निजु**=अपना; **निमेरा**=सुलझाना, निपटारा करना; **होखे**=होना; **प्रकासा**=प्रकाशित करना, चलाना; **सतपन्थ**=सच्चा शब्द-मार्ग; **निनारा**=न्यारा, अद्भुत, अलग ही प्रकार का; **और**=अन्य; **गमि**=गण, बहुत से मार्ग; **पसारा**=फैले होना; **कंह**=को; **झारी**=झाड़ना, छोड़ना; **पारख...सुधारी**=ठीक से पहचान करनी चाहिए।

इस विश्व में अनेक पंथ हैं। उनमें से परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए सही मार्ग को अच्छी तरह सोच-विचार करके छाँट लेना चाहिए। जो अपने भले-बुरे का ज्ञान रखनेवाले संत हैं, वे मुक्ति का सच्चा मार्ग पहचान लेते हैं। वैसे तो संसार में अनेक पंथ चल रहे हैं, परंतु जीव की मुक्ति का सच्चा मार्ग सतगुरु से प्राप्त होता है। सतगुरु का यह सच्चा शब्द-मार्ग उन सबसे न्यारा है। ज्ञान के अन्य अनेक मार्ग यों ही संसार में फैले हुए हैं। शब्द के अभ्यास द्वारा जब जीव के अंदर परमात्मा का प्रेम और सच्चा ज्ञान पैदा होता है, तो वह संसार को छोड़कर परमात्मा की प्राप्ति के प्रयत्न में लग जाता है। इसलिए संसार में जब कोई सतगुरु मिलें तो अच्छी तरह से उनकी पहचान कर लेनी चाहिए।

प्रेम जुक्ति निजु मूल है, गुरुगमि करो सुधार।
दया दीपक जबहीं बरै, दरशन नाम अधार॥[4]

जुक्ति=युक्ति; **निजु मूल**=हमारा मूल; **गुरुगमि**=गुरु के पास जाकर; **सुधार**=अनुसरण करना; **बरै**=जलना, प्रकाशित होना।

हमारे परमार्थ का मूल प्रेम की युक्ति है। हमें गुरु के बताए ज्ञान के अनुसार अभ्यास करके अपने आप को निर्मल बनाना चाहिए। गुरु की दया से जब अंतर का दीपक जल उठता है तभी नाम (शब्द धुन) का, जो प्रेम का आधार है, प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

ज्यों कमल जल में बसे, जल से नहिं बृगसान।
भान कला प्रकट करें, तब दृग देखे ध्यान॥
त्यों नर सर में कमल है, जल जावन है पास।
सतगुरु परसे प्रेम से, भया चरन को दास॥
बिना प्रेम नहिं पंथ है, पंथ है प्रेम के पास।
बिनु सतगुर नहिं दरस है, का कहि कथे उदास॥[5]

बृगसान=खिलता; **भान कला**=सूर्य की किरणें; **दृग**=आँखें; **नर... में**=मनुष्य शरीररूपी सरोवर में; **जावन**=जामन, कमल को उत्पन्न करनेवाला तत्त्व; **भया**=हो गया, बन गया; **दास**=सेवक, भक्त; **का**=क्या; **कथे**=कहते हो; **उदास**=वैराग्य लेना।

जल में रहते हुए भी कमल का फूल जल के द्वारा नहीं खिलता। जब सूर्य अपने प्रकाश को प्रकट करता है, तब कमल अपनी पँखुड़ीरूपी आँखों को खोलकर ध्यान से उसे देखता है। उसी प्रकार मनुष्य-शरीररूपी तालाब में आंतरिक कमल है। उसे उत्पन्न करनेवाला परमात्मारूपी जल भी उसके पास ही है। परंतु जब उसे सतगुरुरूपी सूर्य के प्रेम की किरणें प्राप्त होती हैं और सेवक सतगुरु के चरणों का दास बन जाता है, तब अंतर का कमल खिल उठता है। प्रेम के बिना परमात्मा से मिलने का कोई मार्ग है ही नहीं। परमात्मा से मिलाप का मार्ग वहीं है जहाँ उसका प्रेम है। परमात्मा का दर्शन सतगुरु के बिना नहीं हो सकता, इसलिए उसे पाने के लिए संसार से वैराग्य लेने की बातें कहने से भला क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है?

सतगुर से करु प्रेम यह, तजो भरम बिकार।
शीतल सर्बदा प्रेम रस, समुझि लीजै ततुसार॥[6]

तजो=त्यागो; **भरम**=भ्रम; **सर्बदा**=सदा के लिए; **ततुसार**=सार तत्त्व।

संसार के भ्रमों और विकारों को त्यागकर सतगुरु से प्रेम करना चाहिए। इस सार तत्त्व को समझ लो कि संसार के दुःखों में जलते हुए जीव को प्रेमरूपी रस ही सदा के लिए शीतलता प्रदान कर सकता है।

संत समुझि आमृत पीवे, शीतल प्रेम भरिपूर।
काम, क्रोध, मद लोभ तेजि, जलद झलके नूर॥[7]

मद=घमंड; **जलद**=बादल; **नूर**=प्रकाश।

संतों से समझकर शीतलता प्रदान करनेवाले प्रेमरूपी अमृत का भरपूर पान करो जिससे काम, क्रोध, अहंकार और लोभ छूट जाते हैं और अंतर में बादल की गर्जना और प्रकाश की चमक का अनुभव होता है।

बिना प्रेम नहिं भक्ति बिबेखा। होए प्रेम एह गुरगमि पेखा॥
प्रेम हि प्रेम मिलै निजु बैना। ज्यों जल कमल रहो सुख चैना॥
ऐसो प्रेम प्रीति गहि लावै। नाम सजीवनि ता सुख पावै॥
प्रेम प्रीति गहि गांठि लगावै। करे भक्ति निजु प्रेम सो पावै॥
करहु प्रेम पद पंकज ग्यानी। जीवन थोर तेजहु बहु बानी॥[8]

बिबेखा=विवेक, भले-बुरे का ज्ञान होना; **गुरगमि पेखा**=गुरु की गम्यता या पहुँच का अनुभव करना; **निजु**=अपनी; **बैना**=सच्ची वाणी, शब्द-धुन; **गहि**=ग्रहण करना; **सजीवनि**=मृतक को जीवन प्रदान करनेवाला; **गांठि लगावै**=गाँठ बाँधना; **सो**=वह; **पद पंकज**=चरण-कमल; **थोर**=थोड़ा-सा; **तेजहु...बानी**=बहुत-सी यानी व्यर्थ की बातें छोड़कर।

प्रेम के बिना न तो परमात्मा की भक्ति होती है और न जीव को अपने भले-बुरे का ज्ञान ही होता है। प्रेम के द्वारा ही गुरु के बताए आंतरिक रहस्य का अंतर में अनुभव होता है। प्रेमपूर्ण गुरु और प्रेमी शिष्य – दोनों के प्रेमपूर्ण मिलाप से अंतर में सच्ची शब्द-धुन प्रकट हो जाती है और जीव उसी प्रकार सुख-शांतिपूर्वक रहने लगता है जैसे जल में कमल रहता है। जब शिष्य कमल की जल से प्रीति के समान गुरु से प्रेम करता है, तब जाकर उसे नामरूपी संजीवनी बूटी का सुख प्राप्त होता है। जो प्रेमपूर्वक नाम को पकड़कर गुरु के साथ प्रेम की गाँठ बाँध लेता है और उनके बताए अनुसार भक्ति करता है, उसे ही परमात्मा का सच्चा प्रेम प्राप्त होता है। जीवन थोड़े दिनों का है, अत: हमें व्यर्थ की बातें छोड़कर ज्ञानी सतगुरु के चरण-कमलों से प्रेम करना चाहिए।

प्रेम ज्ञान जब उपजे, चले जगत कंह झारी।
कहे दरिया सतगुरु मिले, पारख करे सुधारी॥[9]

उपजे=उत्पन्न, पैदा होता है; **कंह**=को; **झारी**=त्यागकर; **पारख**...**सुधारी**=ठीक से पहचान करना।

जब सतगुरु के प्रेम द्वारा सच्चा ज्ञान पैदा होता है तब साधक मोह को त्यागकर संसार से निर्लिप्त हो जाता है। इस प्रकार सतगुरु के मिलने पर ही साधक निर्मल होकर सच्चे प्रेम को पहचान पाता है।

जौ लगि आशिक इश्क न होवे। तौ लगि पाप दुर्मति नाहि खोवे॥
ज्यों लगि गगन मगन नहिं बासा। किमि करि देखे अजब तमासा॥[10]

जौ लगि=जब तक; **आशिक**=प्रेमी; **तौ लगि**=तब तक; **दुर्मति**=दुर्बुद्धि; **खोवे**=दूर होना; **बासा**=निवास करना, रहना; **किमि करि**=किस प्रकार; **अजब तमासा**=अद्भुत दृश्य।

जब तक प्रेमी जीव को सतगुरु से सच्चा प्रेम नहीं हो जाता, तब तक उसकी पापों के कारण उत्पन्न दुर्बुद्धि दूर नहीं होती। जब तक वह आंतरिक

आकाश में ध्यान मग्न होकर अपने आप को स्थिर नहीं कर लेता, तब तक वह वहाँ के अद्भुत दृश्यों को भला कैसे देख सकता है?

जब लगि विरह न उपजे, हिये न उपजे प्रेम।
तब लगि हाथ न आवहिं धरम किये व्रत नेम॥[11]

जब लगि=जब तक; **हिये**=हृदय में; **नेम**=नियम, धार्मिक क्रियाओं का पालन।

जब तक विरह उत्पन्न नहीं होता, हृदय में सच्चा प्रेम पैदा नहीं हो सकता और सच्चे प्रेम के बिना केवल बाहरी धर्म-साधनाओं, व्रतों और नियमों का पालन करने से परमात्मा नहीं मिल सकता।

भक्ति बिना कहिं ठौर ना पावै। केतनो दान पुन्य कथि लावै॥...
सतगुरु बचन सुनो चितलाई। मुक्ति महातम भेद बताई॥
सुनो ज्ञान निजु करो बिचारा। कबहिं न जइहो यम के द्वारा॥[12]

ठौर=ठिकाना; **केतनो**=कितना ही; **महातम**=महिमा, महत्त्व; **निजु**=स्वयं; **जइहो**=जाओगे; **द्वारा**=द्वार।

जीव को भक्ति के बिना कहीं ठिकाना नहीं मिलता। भले ही वह कितने ही दान-पुण्य क्यों न करे। सतगुरु मुक्ति का महत्त्व और उसे प्राप्त करने का भेद बताते हैं, उनके वचनों को ध्यानपूर्वक सुनो। यदि उनके उपदेश को सुनकर अभ्यास में लग जाओगे तो कभी भी यम के द्वार पर नहीं जाना पड़ेगा।

भक्ति भाव निश्चय धरो, प्रेम तत्त्व है सार।
सुकृत बचन बिचारिये, भवजल होय उबार॥[13]

भाव=प्रेम; **सार**=सार तत्त्व; **सुकृत**=सतगुरु; **उबार**=उबरना, पार होना।

खोजहु सतगुरु सो पन्थ लागा। पियहु सुधा सम प्रेम सुभागा॥

पीयहु सुधा सम ग्यान रस, सुन्दर सुभग शरीर।
भजसि काहे नहिं प्रेम पंथ, दयासिन्धु के तीर॥

पुरुष पुरान अछै सम तूला। छोड़ी अनंत एक गहु मूला॥
कमल सुमंडित परसु सुभागा। मूल शब्द प्रेम अनुरागा॥
सतगुरु चरण रहो लवलीना। बिघ्नि अनेक पाप होय छीना॥
अघ पातक सब जात ओराई। परसहु प्रेम प्रीति लव लाई॥[2]

पियहु=पीना; **सुधा**=अमृत; **सुभागा**=सौभाग्यशाली; **सुभग**=भाग्यवान्, सुंदर, प्रिय; **भजसि**=भजन करना; **काहे**=क्यों; **दयासिन्धु**=दया के सागर; **तीर**=तट या किनारे पर; **पुरुष पुरान**=सनातन पुरुष; **अछै**=नाश न होनेवाला; **सम तूला**=समान; **अनंत**=अनेक; **गहु**=पकड़ो; **मूला**=मूल शब्द; **सुमंडित**=सुशोभित; **परसु**=स्पर्श करना; **लवलीना**=अनुरक्त; **छीना**=नष्ट; **अघ पातक**=पाप और दुष्कर्म; **ओराई**=समाप्त होना; **परसहु**=स्पर्श करो, अपनाओ; **लव लाई**=लवलीन होना, लिव लगाना।

जो सतगुरु की खोज कर लेता है वही संतों के मार्ग पर चलता है तथा अमृत के समान प्रेम का पान करता है। जिन्होंने अमृत के समान परमात्मा के सच्चे ज्ञान का रस पी लिया है, उन्ही का शरीर सुंदर है यानी उनका मनुष्य-जीवन में आना सफल है। इसलिए हम दया के समुद्र सतगुरु की शरण लेकर प्रेम-मार्ग पर चलते हुए ईश्वर का भजन क्यों नहीं करते? हमें अनेक को छोड़कर सबके मूल स्रोत एक शब्द को पकड़ना चाहिए जो सनातन पुरुष परमात्मा से ही प्रकट होता है और उन्हीं के समान है। जब हम अंतर में सुशोभित कमल का स्पर्श करेंगे तो हमारे अंदर मूल शब्द से प्रेम पैदा हो जाएगा। अंतर में सतगुरु के दिव्य चरणों में लवलीन रहने से अनेक कष्ट और पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रेमपूर्वक उनके स्पर्श से सभी पाप और दुष्कर्म समाप्त हो जाते हैं।

येहि बीसु पन्थ अहे बहुतेरा। समुझि ग्यान निजु करो निमेरा॥
होखे सन्त बिबेकी ग्यानी। मुक्ति पन्थ लेत पहचानी॥...
कीन्हों पन्थ बिबिध प्रकासा। मुक्ति पन्थ सतगुरु के पासा॥
सो सतगुरु सतपन्थ निनारा। और ग्यान गमि जगत पसारा॥

प्रेम ग्यान जब उपजे, चले जगत कंह झारी।
कहे दरिया सतगुरु मिले, पारख करे सुधारी॥[3]

बीसु=विश्व में; **पन्थ**=मार्ग; **अहे**=हैं; **बहुतेरा**=अनेक; **निजु**=अपना; **निमेरा**=सुलझाना, निपटारा करना; **होखे**=होना; **प्रकासा**=प्रकाशित करना, चलाना; **सतपन्थ**=सच्चा शब्द-मार्ग; **निनारा**=न्यारा, अद्भुत, अलग ही प्रकार का; **और**=अन्य; **गमि**=गण, बहुत से मार्ग; **पसारा**=फैले होना; **कंह**=को; **झारी**=झाड़ना, छोड़ना; **पारख...सुधारी**=ठीक से पहचान करनी चाहिए।

इस विश्व में अनेक पंथ हैं। उनमें से परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए सही मार्ग को अच्छी तरह सोच-विचार करके छाँट लेना चाहिए। जो अपने भले-बुरे का ज्ञान रखनेवाले संत हैं, वे मुक्ति का सच्चा मार्ग पहचान लेते हैं। वैसे तो संसार में अनेक पंथ चल रहे हैं, परंतु जीव की मुक्ति का सच्चा मार्ग सतगुरु से प्राप्त होता है। सतगुरु का यह सच्चा शब्द-मार्ग उन सबसे न्यारा है। ज्ञान के अन्य अनेक मार्ग यों ही संसार में फैले हुए हैं। शब्द के अभ्यास द्वारा जब जीव के अंदर परमात्मा का प्रेम और सच्चा ज्ञान पैदा होता है, तो वह संसार को छोड़कर परमात्मा की प्राप्ति के प्रयत्न में लग जाता है। इसलिए संसार में जब कोई सतगुरु मिलें तो अच्छी तरह से उनकी पहचान कर लेनी चाहिए।

प्रेम जुक्ति निजु मूल है, गुरुगमि करो सुधार।
दया दीपक जबहीं बरै, दरशन नाम अधार॥[4]

जुक्ति=युक्ति; **निजु मूल**=हमारा मूल; **गुरुगमि**=गुरु के पास जाकर; **सुधार**=अनुसरण करना; **बरै**=जलना, प्रकाशित होना।

हमारे परमार्थ का मूल प्रेम की युक्ति है। हमें गुरु के बताए ज्ञान के अनुसार अभ्यास करके अपने आप को निर्मल बनाना चाहिए। गुरु की दया से जब अंतर का दीपक जल उठता है तभी नाम (शब्द धुन) का जो प्रेम का आधार है, प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

ज्यों कमल जल में बसे, जल से नहिं बृगसान।
भान कला प्रकट करें, तब दृग देखे ध्यान॥
त्यों नर सर में कमल है, जल जावन है पास।
सतगुरु परसे प्रेम से, भया चरन को दास॥
बिना प्रेम नहिं पंथ है, पंथ है प्रेम के पास।
बिनु सतगुर नहिं दरस है, का कहि कथे उदास॥[5]

बृगसान=खिलता; **भान कला**=सूर्य की किरणें; **दृग**=आँखें; **नर... में**=मनुष्य शरीररूपी सरोवर में; **जावन**=जामन, कमल को उत्पन्न करनेवाला तत्त्व; **भया**=हो गया, बन गया; **दास**=सेवक, भक्त; **का**=क्या; **कथे**=कहते हो; **उदास**=वैराग्य लेना।

जल में रहते हुए भी कमल का फूल जल के द्वारा नहीं खिलता। जब सूर्य अपने प्रकाश को प्रकट करता है, तब कमल अपनी पँखुड़ीरूपी आँखों को खोलकर ध्यान से उसे देखता है। उसी प्रकार मनुष्य-शरीररूपी तालाब में आंतरिक कमल है। उसे उत्पन्न करनेवाला परमात्मारूपी जल भी उसके पास ही है। परंतु जब उसे सतगुरुरूपी सूर्य के प्रेम की किरणें प्राप्त होती हैं और सेवक सतगुरु के चरणों का दास बन जाता है, तब अंतर का कमल खिल उठता है। प्रेम के बिना परमात्मा से मिलने का कोई मार्ग है ही नहीं। परमात्मा से मिलाप का मार्ग वहीं है जहाँ उसका प्रेम है। परमात्मा का दर्शन सतगुरु के बिना नहीं हो सकता, इसलिए उसे पाने के लिए संसार से वैराग्य लेने की बातें कहने से भला क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है?

सतगुर से करु प्रेम यह, तजो भरम बिकार।
शीतल सर्बदा प्रेम रस, समुझि लीजै ततुसार॥[6]

तजो=त्यागो; **भरम**=भ्रम; **सर्बदा**=सदा के लिए; **ततुसार**=सार तत्त्व।

संसार के भ्रमों और विकारों को त्यागकर सतगुरु से प्रेम करना चाहिए। इस सार तत्त्व को समझ लो कि संसार के दुःखों में जलते हुए जीव को प्रेमरूपी रस ही सदा के लिए शीतलता प्रदान कर सकता है।

संत समुझि आमृत पीवे, शीतल प्रेम भरिपूर।
काम, क्रोध, मद लोभ तेजि, जलद झलके नूर॥[7]

मद=घमंड; **जलद**=बादल; **नूर**=प्रकाश।

संतों से समझकर शीतलता प्रदान करनेवाले प्रेमरूपी अमृत का भरपूर पान करो जिससे काम, क्रोध, अहंकार और लोभ छूट जाते हैं और अंतर में बादल की गर्जना और प्रकाश की चमक का अनुभव होता है।

बिना प्रेम नहिं भक्ति बिबेखा। होए प्रेम एह गुरगमि पेखा॥
प्रेम हि प्रेम मिलै निजु बैना। ज्यों जल कमल रहो सुख चैना॥
ऐसो प्रेम प्रीति गहि लावै। नाम सजीवनि ता सुख पावै॥
प्रेम प्रीति गहि गांठि लगावै। करे भक्ति निजु प्रेम सो पावै॥
करहु प्रेम पद पंकज ग्यानी। जीवन थोर तेजहु बहु बानी॥[8]

बिबेखा=विवेक, भले-बुरे का ज्ञान होना; **गुरगमि पेखा**=गुरु की गम्यता या पहुँच का अनुभव करना; **निजु**=अपनी; **बैना**=सच्ची वाणी, शब्द-धुन; **गहि**=ग्रहण करना; **सजीवनि**=मृतक को जीवन प्रदान करनेवाला; **गांठि लगावै**=गाँठ बाँधना; **सो**=वह; **पद पंकज**=चरण-कमल; **थोर**=थोड़ा-सा; **तेजहु...बानी**=बहुत-सी यानी व्यर्थ की बातें छोड़कर।

प्रेम के बिना न तो परमात्मा की भक्ति होती है और न जीव को अपने भले-बुरे का ज्ञान ही होता है। प्रेम के द्वारा ही गुरु के बताए आंतरिक रहस्य का अंतर में अनुभव होता है। प्रेमपूर्ण गुरु और प्रेमी शिष्य—दोनों के प्रेमपूर्ण मिलाप से अंतर में सच्ची शब्द-धुन प्रकट हो जाती है और जीव उसी प्रकार सुख-शांतिपूर्वक रहने लगता है जैसे जल में कमल रहता है। जब शिष्य कमल की जल से प्रीति के समान गुरु से प्रेम करता है, तब जाकर उसे नामरूपी संजीवनी बूटी का सुख प्राप्त होता है। जो प्रेमपूर्वक नाम को पकड़कर गुरु के साथ प्रेम की गाँठ बाँध लेता है और उनके बताए अनुसार भक्ति करता है, उसे ही परमात्मा का सच्चा प्रेम प्राप्त होता है। जीवन थोड़े दिनों का है, अत: हमें व्यर्थ की बातें छोड़कर ज्ञानी सतगुरु के चरण-कमलों से प्रेम करना चाहिए।

प्रेम ज्ञान जब उपजे, चले जगत कंह झारी।
कहे दरिया सतगुरु मिले, पारख करे सुधारी॥[9]

उपजे=उत्पन्न, पैदा होता है; **कंह**=को; **झारी**=त्यागकर; **पारख...सुधारी**=ठीक से पहचान करना।

जब सतगुरु के प्रेम द्वारा सच्चा ज्ञान पैदा होता है तब साधक मोह को त्यागकर संसार से निर्लिप्त हो जाता है। इस प्रकार सतगुरु के मिलने पर ही साधक निर्मल होकर सच्चे प्रेम को पहचान पाता है।

जौ लगि आशिक इश्क न होवे। तौ लगि पाप दुर्मति नाहि खोवे॥
ज्यों लगि गगन मगन नहिं बासा। किमि करि देखे अजब तमासा॥[10]

जौ लगि=जब तक; **आशिक**=प्रेमी; **तौ लगि**=तब तक; **दुर्मति**=दुर्बुद्धि; **खोवे**=दूर होना; **बासा**=निवास करना, रहना; **किमि करि**=किस प्रकार; **अजब तमासा**=अद्भुत दृश्य।

जब तक प्रेमी जीव को सतगुरु से सच्चा प्रेम नहीं हो जाता, तब तक उसकी पापों के कारण उत्पन्न दुर्बुद्धि दूर नहीं होती। जब तक वह आंतरिक

आकाश में ध्यान मग्न होकर अपने आप को स्थिर नहीं कर लेता, तब तक वह वहाँ के अद्भुत दृश्यों को भला कैसे देख सकता है?

जब लगि विरह न उपजे, हिये न उपजे प्रेम।
तब लगि हाथ न आवहिं धरम किये व्रत नेम॥[11]

जब लगि=जब तक; **हिये**=हृदय में; **नेम**=नियम, धार्मिक क्रियाओं का पालन।

जब तक विरह उत्पन्न नहीं होता, हृदय में सच्चा प्रेम पैदा नहीं हो सकता और सच्चे प्रेम के बिना केवल बाहरी धर्म-साधनाओं, व्रतों और नियमों का पालन करने से परमात्मा नहीं मिल सकता।

भक्ति बिना कहिं ठौर ना पावै। केतनो दान पुन्य कथि लावै॥...
सतगुरु बचन सुनो चितलाई। मुक्ति महातम भेद बताई॥
सुनो ज्ञान निजु करो बिचारा। कबहिं न जइहो यम के द्वारा॥[12]

ठौर=ठिकाना; **केतनो**=कितना ही; **महातम**=महिमा, महत्त्व; **निजु**=स्वयं; **जइहो**=जाओगे; **द्वारा**=द्वार।

जीव को भक्ति के बिना कहीं ठिकाना नहीं मिलता। भले ही वह कितने ही दान-पुण्य क्यों न करे। सतगुरु मुक्ति का महत्त्व और उसे प्राप्त करने का भेद बताते हैं, उनके वचनों को ध्यानपूर्वक सुनो। यदि उनके उपदेश को सुनकर अभ्यास में लग जाओगे तो कभी भी यम के द्वार पर नहीं जाना पड़ेगा।

भक्ति भाव निश्चय धरो, प्रेम तत्त्व है सार।
सुकृत बचन बिचारिये, भवजल होय उबार॥[13]

भाव=प्रेम; **सार**=सार तत्त्व; **सुकृत**=सतगुरु; **उबार**=उबरना, पार होना।

प्रेम ही सार तत्त्व है। अत: दृढ़ निश्चय के साथ प्रेमपूर्वक परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। इस प्रकार सतगुरु के उपदेश के अनुसार अभ्यास करने से जीव संसार-सागर से पार हो जाता है।

बिना प्रेम नर यमपुर जावै। होय प्रेम अमृत फल पावै॥...
नैन सोई जेहि प्रेम समाना। बिना प्रेम है शील पखाना॥...
बिना प्रेम नैन है खाली। बिना बाटिका जैसे माली॥
बिना प्रेम मानुष है कैसा। मधु काढ़ि छार मुख जैसा॥
बिना प्रेम शुद्ध नहिं बानी। बृगसे प्रेम सुबास बखानी॥[14]

नैन=आँखें; **समाना**=समाया हुआ होना; **शील**=शिला, चट्टान; **पखाना**=पत्थर; **बाटिका**=बग़ीचा; **मानुष**=मनुष्य; **मधु काढ़ि**=मीठी वस्तु निकालकर; **छार**=राख; **बानी**=शब्द-धुन; **बृगसे**=विकसित होना; **सुबास**=सुगंधि।

सच्चे प्रेम के बिना जीव यमपुर जाता है, लेकिन यदि उसके पास प्रेम है तो वह अविनाशी परमात्मा को प्राप्त करके मुक्तिरूपी फल प्राप्त करता है। आँखें वही हैं जिनमें प्रेम समाया हुआ है, प्रेम के बिना तो वे पत्थरों और चट्टानों के समान हैं। प्रेम के बिना नयन उसी प्रकार ख़ाली हैं जैसे बग़ीचे के बिना माली व्यर्थ है। प्रेम के बिना मनुष्य वैसे ही नीरस लगता है, जैसे मुँह से शहद निकालकर उसके स्थान पर बेस्वाद राख डालने से लगता है। प्रेम के बिना उस निर्मल शब्द-धुन का भेद प्राप्त नहीं होता। प्रेम की सुगंधि को पाकर ही शब्द-धुन विकसित होती है।

दीया सो दीया जिन्ही लेसि लिया, हिया में हिया नहिं दर्द धरे।
जहाँ प्रेम लगा निजु नाम जगा, सोई नाम पगो जन फर्क परे॥
जब चन्द चकोर से प्रीति लगी, यह रीति भली नहिं राई टरे।
'दरिया' जो कहे दर लागि रहो, यह भाग्य भला जीव जाय तरे॥[15]

दीया=दीपक; **जिन्ही**=जिन्होंने; **लेसि लिया**=जला लिया; **हिया**=हृदय; **दर्द**=दरार, वियोग होना; **जगा**=जागना; **सोई**=वह; **पगो**=रँगा हुआ; **जन**=नहीं; **फर्क**=अलग होना; **टरे**=टलता, हटाना; **दर...रहो**=द्वार से लगे रहो; **भाग्य भला**=अच्छे भाग्य; **तरे**=पार होना।

जिसने सतगुरु के ज्ञानरूपी दीपक से अपने हृदयरूपी दीपक को जला लिया, उसका जलता हुआ हृदय फिर प्रियतम का वियोग सहन नहीं कर पाता। अंतर में नाम की सोई हुई ताक़त तभी जागती है, जब सतगुरु के साथ प्रेम होता है। इस प्रकार नाम के रंग में रँगा हुआ प्रेमी अपने प्रियतम से अलग होना नहीं चाहता। वह अपने सतगुरु से ऐसे प्रेम करने लगता है जैसे चकोर चंद्रमा से करता है। वह अपनी दृष्टि एक पल के लिए भी प्रियतम के मुख से हटाना नहीं चाहता। इसी प्रकार यदि हम प्रेमी हैं तो हमें अपने प्रियतम सतगुरु का द्वार कभी नहीं छोड़ना चाहिए। प्रियतम का दर बड़े अच्छे भाग्य से प्राप्त होता है और जीव संसार-सागर से पार हो जाता है।

चैत मास सखी चीत चेतहुं, चंचल मन करु थीर।
साधु निरेखहिं गगन डोरी से हरहु कठिन तन पीर ए सखी॥
वृषभ मास सखी घाम बड़ो है, पिया विरह मोरा संग है।
कंत उपदेश सखी कोइ न बतावल, लहरी उठेला आठो अंग ए सखी॥
जेठ मास सखी भइलो मैं ब्याकुल, सतगुरु अलख लखाय।
दरिया दरसन मिली गइलै से, प्रेम विरह उर लाय ए सखी॥[16]

चैत=चैत्र; **चीत चेतहुं**=हृदय से सचेत हो जाओ; **करु**=करो; **थीर**=स्थिर; **साधु**=साधुजन; **निरेखहिं**=देखना; **गगन डोरी**=आकाश में शब्द की डोर; **हरहु**=दूर करना; **कठिन**=कठोर, घोर; **पीर**=पीड़ा; **वृषभ**=बैसाख; **घाम**=धूप, ताप; **विरह**=वियोग; **मोरा**=मेरा; **कंत**=प्रियतम, स्वामी; **बतावल**=बताता; **लहरी उठेला**=लहरें उठती हैं, तरंगें उठती हैं;

आठो अंग=सारे अंगों में; **भइलो**=हो गई; **ब्याकुल**=बेचैन; **अलख**=देखा न जा सकनेवाला, परमात्मा; **लखाय**=दिखाना; **गइलै**=गए; **उर**=हृदय।

हे सखी! मैं चैत्र मास में हृदय से सचेत होकर अपने चंचल मन को स्थिर कर रही हूँ। साधुजनों की आत्माएँ अंतर के आकाश में शब्द की डोर को पकड़कर अपने प्रियतम की राह देखती हैं और उनसे अपने शरीर की घोर वेदना को दूर करने की प्रार्थना करती हैं। हे सखी! वैशाख मास आने पर भी प्रियतम का वियोग मेरे साथ है, जिसके कारण विरह की तपन बहुत अधिक बढ़ गई है। मेरे प्रियतम की बात मुझे कोई नहीं बताता, उसे सुनने के लिए मेरे सारे अंगों में विरह की तरंगें उठ रही हैं। हे सखी! ज्येष्ठ मास आने पर जब मैं विरह के कारण व्याकुल हो उठी, तब मेरे सतगुरु ने मुझे मेरे प्रियतम अलख परमात्मा के दर्शन करा दिए। प्रेम और विरह को अपने हृदय से लगाए रखने के कारण मुझे अपने प्रियतम के दर्शन प्राप्त हुए हैं।

नाम-भक्ति से सच्चे प्रेम की प्राप्ति

नाम के प्रति प्रेम होने पर ही प्रभु-प्रेम का रंग निखरता है और सच्चे प्रेम की प्राप्ति होती है। सच्चा प्रेम ही वह पारस-मणि है जो सब कुछ सुलभ करा देता है। प्रेम के बिना कोई सच्चा भक्त नहीं बन सकता। प्रेम-जल के अभाव में भक्तिरूपी कमल सूख जाता है।

जब सतगुरु नाम का भेद देते हैं और शिष्य उस नाम की भक्ति-भाव से कमाई करता है तो सच्चा नाम अपने आप प्रकट हो जाता है और उसके साथ ही सच्चा प्रेम भी उभर आता है। इस प्रकार सतगुरु का दिया हुआ नाम ही प्रेम का स्रोत है और यह प्रेम ही हमें अंतिम पद पर पहुँचाकर परमात्मा से मिलाता है।

सच्चे प्रेम के उभरने पर हृदय के अंदर उजियारा छा जाता है, सारे पाप मिट जाते हैं, सभी दुःख दूर हो जाते हैं और प्रेमी प्रेम के मधुर अमृत को पीकर सदा के लिए तृप्त हो जाता है।

जैसे सुगंधि-युक्त घी दूध के अंदर ही रहता है, पर वह तब तक प्रकट नहीं होता जब तक उचित युक्ति से मथकर उसे बाहर नहीं निकाला जाता, वैसे ही सच्चे प्रेम से युक्त सच्चा नाम भी हमारे अंदर ही रहता है, पर वह तब तक प्रकट नहीं होता जब तक सतगुरु की बताई युक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता। इस युक्ति का प्रयोग करने पर हमारे हृदय-कमल की पँखुड़ियाँ खुल जाती हैं और आत्मारूपी भौंरा उसकी सुगंधि को पाकर आनंद-विभोर हो जाता है। प्रेम-रस के मधुर अमृत को पीकर प्रेमी अपनी भूख-प्यास भूल जाता है और उसे किसी लोक-लाज की भी परवाह नहीं रहती। ऐसा सच्चा प्रेमी ही आवागमन के चक्र से छुटकारा पाकर अपने प्रियतम परमात्मा से मिलाप करता है:

प्रेम प्रीति करु नाम से, भवजल जाहि न हारि।
बिना प्रेम नहिं भक्ति है, कमल सुखा बिनु बारि॥[17]

भवजल=संसार-सागर; **जाहि**=जाना; **हारि**=खो जाना; **बारि**=जल।

हमें नाम से प्रेम करना चहिए। ऐसा करने पर हम संसार-सागर में कभी खो नहीं सकते। जैसे जल के बिना कमल सूख जाता है, उसी प्रकार प्रेम के बिना भी भक्ति नहीं हो सकती।

जो जन प्रेम नाम बसि भयऊ। सतगुरु चरण सुधारस पयऊ॥
प्रेम बसी भक्ति अनुरागा। प्रेम प्रीति दिल भव बैरागा॥[18]

जन=भक्त; **बसि भयऊ**=वश में हो जाता है; **सुधारस**=अमृत-रस; **पयऊ**=प्राप्त होना; **दिल**=हृदय; **भव**=हो गया; **बैरागा**=वैराग्य।

जो साधक नाम के प्रेम के वश में हो जाता है उसे अंतर में सतगुरु के चरणों का अमृत-रस प्राप्त हो जाता है। प्रेम से ही अनुराग और भक्ति होती है तथा हृदय में प्रेम-प्रीति होने पर अपने आप संसार से वैराग्य हो जाता है।

जब लगि प्रेम दिया नहिं बरई। भवन कूप अंधियारे परई॥
ज्ञान ज्योति जब निर्मल बरई। सकल पाप किल बिखि सब हरई॥...
सतनाम प्रेम निजु लागा। प्रेम प्रीति सोइ सन्त सुभागा॥[19]

जब लगि=जब तक; **प्रेम दिया**=प्रेम का दीपक; **बरई**=जलना; **भवन**=घर; **कूप**=घोर; **परई**=पड़ना; **बरई**=जलना; **सकल**=सारे; **किल बिखि**=दोष, कपट; **हरई**=दूर हो जाते हैं; **सुभागा**=भाग्यवान्।

जब तक प्रेम का दीपक नहीं जलता, तब तक शरीररूपी आंतरिक घर में घोर अँधेरा छाया रहता है। पर जब अंतर में प्रेम की निर्मल ज्योति जल उठती है तो जीव के सभी पाप-दोष दूर हो जाते हैं। तब सतनाम के प्रति सच्चा प्रेम लग जाता है। इस प्रकार का प्रेम और प्रीति कोई सौभाग्यशाली संत ही करता है।

कहे दरिया करु प्रीति, सत्तनाम निश्चय गहो।
चले सो भौजल जीति, पद पंकज लोचत रहो॥[20]

सत्तनाम=सच्चा नाम; **गहो**=पकड़ो; **भौजल**=संसार-सागर; **जीति**=विजय पाना; **पद पंकज**=चरणरूपी कमल; **लोचत**=ललचाना।

प्रेम करके सच्चे नाम को दृढ़तापूर्वक पकड़ना चाहिए। इस प्रकार प्रियतम के चरण-कमलों के लिए ललचाते रहनेवाला प्रेमी संसार-सागर पर विजय पा जाता है।

गुरु जौहरी जो भेद बतावे। शीतल शब्द प्रेम सो पावे॥[21]

सो=वह, उसे; **पावे**=प्राप्त होता है।

हमें शब्द का पारखी गुरु जब शब्द यानी नाम का भेद बता देता है तो उसका प्रेमपूर्वक अभ्यास करने पर हृदय को शीतल करनेवाला शब्द प्राप्त हो जाता है।

बलिहारी सतगुर की, जिन्हि कहा मुक्ति का भेद।
सत्त सब्द पारस हुआ, कोई ज्ञानी करे निखेद॥[22]

बलिहारी=वारी जाती हूँ; **जिन्हि**=जिन्होंने; **पारस**=अपने स्पर्श से लोहे को सोना बना देनेवाला काल्पनिक पत्थर; **निखेद**=खोदकर प्रकट करना, निखारना, गहराई से समझना।

मैं अपने सतगुरु पर वारी जाती हूँ जिन्होंने शब्द के रूप में मुक्ति का भेद मुझे बताया। संतों द्वारा दिया सत् शब्द पारस के समान है जिसे कोई सच्चा ज्ञानी या अनुभवी ही गहराई से समझ सकता है।

सतगुरु शब्द परतीति करि, रहो प्रेम लवलीन।
दरिया दर्पण देखिये, कबहीं न होय मलीन॥[23]

परतीति=पक्का विश्वास; **लवलीन**=मग्न; **दर्पण**=अंतर के आईने में; **होय**=होता; **मलीन**=मैला।

हमें सतगुरु के शब्द यानी नाम में विश्वास करके उसमें प्रेमपूर्वक लवलीन रहना चाहिए। अंतर के आईने में परमात्मा का दिव्य स्वरूप देखिए जो कभी मैला नहीं होता।

करो भक्ति प्रेम नै नीता। चरन कमल पद गहो पुनीता॥
जाते मुक्ति अमर पद पाई। एहि भव भर्मि बहुरि नहिं आई॥
सतनाम सत चित गहिहो। पुरुष नाम निजु हृदय लइहो॥
देवा देई सब भरम बिकारा। सभ तेजि गहो नाम ततु सारा॥[24]

नै नीता=नित्य नया; **गहो**=पकड़ो; **पुनीता**=पवित्र; **जाते**=जिससे; **अमर पद**=अविनाशी लोक; **पाई**=प्राप्त होता है; **भव**=संसार; **भर्मि**=भटकना; **बहुरि**=फिर से; **सतनाम**=सच्चा नाम; **सत चित**=सच्चे हृदय से;

गहिहो=ग्रहण करो; **पुरुष**=सत्पुरुष; **निजु**=सच्चा, अपना; **लइहो**=लेना, स्मरण करना; **देवा देई**=देवी-देवता; **बिकारा**=बेकार, व्यर्थ; **तेजि**=छोड़कर; **गहो**=पकड़ो।

नित्य नए प्रेम के साथ सतगुरु की भक्ति करनी चाहिए और उनके पवित्र चरण-कमलों को पकड़े रहना चाहिए, जिससे आवागमन से छूटकर अविनाशी सतलोक प्राप्त होता है और जीव इस संसार में भटकने को वापस नहीं आता। इसलिए हमें सतनाम को सच्चे हृदय से ग्रहण करके सत्पुरुष का नाम अपने हृदय में बसा लेना चाहिए। देवी-देवताओं की पूजा व्यर्थ का भ्रम है। सभी भक्तियों को छोड़कर सार तत्त्व रूप नाम को पकड़ना चाहिए।

नाम प्रेम प्रीति निजु लागे। पारस प्रेम ज्ञान तहं जागे॥
अर्ध निअक्षर शब्द संयोगा। मेटे कष्ट कल्पना रोगा॥

चकमक चित जब चुभे, बरे सो निर्मल ज्ञान।
दृष्टि दिया तहां पेखिये, जगमग ज्योति अमान॥[25]

पारस=अपने स्पर्श से लोहे को सोना बना देनेवाला काल्पनिक पत्थर; **तहं**=वहाँ; **जागे**=जाग्रत हो जाता है; **अर्ध**=अंतर का आकाश; **निअक्षर**=जो वर्णातमक नहीं है, धुनात्मक; **संयोगा**=संपर्क; **कल्पना**=रोना, बिलखना; **चकमक**=एक प्रकार का पत्थर जिसको टकराने से आग निकलती है; **चित**=हृदय; **चुभे**=चुभ जाता है, टकराता है; **बरे**=जलाए, उजाला करे; **दृष्टि दिया**=दृष्टिरूपी दीपक; **पेखिये**=देखते हैं; **जगमग**... **अमान**=असीम ज्योति की जगमगाहट।

जिसे नाम से प्रेम हो जाता है उसके अंतर में उस प्रेमरूपी पारस से सच्चा ज्ञान जाग्रत हो जाता है। अंदर में धुनात्मक शब्द के संपर्क में आने से सभी कष्ट, दुःख और रोग मिट जाते हैं। जब शब्दरूपी चकमक पत्थर

हृदय से टकराता है तो निर्मल ज्ञानरूपी प्रकाश प्रकट हो जाता है। उससे दृष्टिरूपी दीपक को जलाकर अर्थात् शब्द द्वारा आंतरिक प्रकाश को प्रकट करके जब अंतर में देखते हैं तो परमात्मारूपी असीम ज्योति की जगमगाहट दिखाई देती है।

पारस मूल यह शब्द है, सुनहु सन्त सुजान।
कहे दरिया दिल देखिये, गहो प्रेम निर्बान॥[26]

सुजान=समझदार; **गहो**=पकड़ो; **निर्बान**=मुक्ति।

हे ज्ञानी संतजन! सुनिए: यह शब्द ही मूल पारस है (जो ज्ञान, प्रेम और भक्ति को प्रकट करता है)। इसके द्वारा अपने हृदय में देखिए और इससे प्रेम कीजिए। फिर मुक्ति देनेवाले इस प्रेम को अपने हृदय में बसा लीजिए।

पारस प्रेम बुझो चित लाई। जीव कारन सभ किया बिनाई॥...
प्रथमहिं दूध सभे कोइ जाना। दूध में बास जो रहा समाना॥
पावक पर औंटा जो कीन्हा। ठंडा कर जोरन तब दीन्हा॥

जोरन जावन देइके, दही भया जब थीर।
वास बिमल तब पाइये, मथनी मथो सरीर॥

जावन देत फेरि भै गयो दही। तबहूं घृत बास नाहीं कही॥
मथनी मथ लैन जो लीन्हा। लैन लीन्ह बास नहीं दीन्हा॥
घृत के पारस पावक अहई। बिनु पारस घृत नाहीं लहई॥...
हुआ थीर बास बिलगाना। बास सुबास सभे कोई जाना॥...
जब लगि प्रेम युक्ति नहिं होई। तब लगि बास पावे नहिं कोई॥...

जैसे परिमल पारस, मल के कीन्हों दूर।
ऐसे शब्द संजीवनी, सदा रहे भरिपूर॥[27]

बुझो=समझो; **जीव कारन**=जीव के लिए; **बिनाई**=चुनकर, छाँटकर या चुनकर निकाल लेना; **प्रथमहिं**=पहले; **सभे कोइ**=सब कोई; **बास**=सुगंधि; **समाना**=समाई हुई; **पावक**=आग; **औंटा**=उबालना; **जोरन**=जामन; **दीन्हा**=दिया; **जावन**=जमाने के लिए जोरन; **देइके**=देकर; **भया**=हो गया; **थीर**=स्थिर, जमा हुआ; **बिमल**=निर्मल; **भै गयो**=हो गया, बन गया; **लैन**=ताज़ा मक्खन; **अहई**=है; **लहई**=पाना; **बिलगाना**=पृथक्, अलग हो गया; **सुबास**=सुगंधि; **जब लगि**=जब तक; **परिमल**=सुगंधि; **के**=को; **भरिपूर**=परिपूर्ण।

पारसरूपी प्रेम की बात मन लगाकर समझो। जीव को उबारने के लिए ही छाँटकर यह सारी प्रक्रिया बनाई गई है कि नाम के अभ्यास द्वारा प्रेम की उत्पत्ति होती है और प्रेम द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। जैसे दूध को तो हर कोई जानता है। पर दूध में पहले से जो घी की सुगंधि समाई रहती है, वह कैसे प्रकट होती है? जब दूध को आग पर उबालकर ठंडा करके उसमें जावन डाला जाता है तो वह दूध, जमा हुआ दही बन जाता है जिसको मथने से घी की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जब अभ्यासरूपी मथानी से शरीर को मथा जाता है तब परमात्मारूपी सुगंधित निर्मल घी प्राप्त होता है। जावन मिलाने से वह दूध दही बना, लेकिन तब भी उसे सुगंधित घी नहीं कहा जा सकता। फिर मथानी से मथकर ताज़ा मक्खन प्राप्त हुआ, परंतु वह भी घी नहीं है, उसमें भी घी की सुगंधि नहीं है। जब मक्खन को किसी बर्तन में रखकर आग पर पिघलाया जाता है और उसे अच्छी तरह गर्म करके फिर उसे स्थिर किया जाता है, तब घी बनकर उसकी सुगंधि अलग रूप से प्रकट हो जाती है। तब उसे घी की सुगंधि के रूप में सभी जानते हैं। इसी प्रकार जब तक प्रेम की युक्ति का पता न हो तब तक कोई भी परमात्मारूपी सुगंधि को नहीं पा सकता। जैसे मक्खन की सब प्रकार की मैल को दूर करके अग्निरूपी पारस द्वारा सुगंधित घी प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार प्रेमपूर्वक अभ्यास द्वारा अंतर की

मैल को दूर करके सदा परिपूर्ण रहनेवाली शब्दरूपी संजीवनी प्राप्त की जाती है।

जब उनमुनी प्रेम परगासा। खुलै कंज पुंज निजु बासा॥
मधुकर राज बास सुख पावै। लपटि घ्रानि सुपट खुलि आवै॥
सो पद पंकज दिल में लागा। प्रेम प्रीति मन भौ बएरागा॥
औ संसै भव जात ओराई। प्रेम प्रीति नाम निजु पाई॥
मन के संसै जे निरुआरी। अभै लोक ताकर पएसारी॥
पुर्ख नाम निस्चै तब पावै। सपने कबहिं ना इह जग आवै॥[28]

उनमुनी=ध्यान का पलटकर अंदर लगना; **परगासा**=प्रकाशित होना; **खुलै**=खिल उठते हैं; **कंज**=कमल; **पुंज**=समूह; **निजु बासा**=अपनी सुगंधि; **मधुकर राज**=आत्मारूपी भँवरों का राजा; **बास**=सुगंधि; **लपटि**=लिपटकर; **घ्रानि**=सुगंधि; **सुपट**=सुंदर कपाट; **पद पंकज**=चरणरूपी कमल; **मन...बएरागा**=मन में संसार के प्रति सच्ची अनासक्ति आ गई; **औ**=और; **संसै**=संशय; **भव**=संसार के; **ओराई**=समाप्त होना, दूर होना; **निजु**=सच्चा, अपना; **निरुआरी**=समाप्त करना, निवारण करना; **अभै लोक**=अविनाशी सतलोक; **ताकर**=उसका; **पएसारी**=प्रवेश करना; **पुर्ख**=सत्पुरुष; **निस्चै**=निश्चित रूप से; **कबहिं**=कभी भी।

जब ध्यान पलटकर अंतर में लग जाता है तो वहाँ सतगुरु के नूरी चरण-कमल अपनी सुगंधि के साथ खिल उठते हैं। उनकी सुगंधि से आत्मारूपी भौंरों का राजा सुख प्राप्त करता है। उस सुगंधि में लिपटकर अंतर के सुंदर कपाट खुल जाते हैं। सतगुरु के वे चरण-कमल हृदय में समा जाते हैं। उनके प्रेम में मन संसार से अनासक्त हो जाता है। संसार के सभी संशय दूर हो जाते हैं और जीव प्रेमपूर्वक सच्चे नाम को पा लेता है। जो कोई इस प्रकार प्रेम के द्वारा अपने मन के संशयों का निवारण करता है, उसी को परमात्मा के अविनाशी निर्भय लोक में प्रवेश मिलता है।

तब वह निश्चय ही सत्पुरुष का नाम पा जाता है और कभी सपने में भी फिर इस संसार में लौटकर नहीं आता।

बिना प्रेम भोजन नहिं भावे। प्रेम प्रसाद अमृत फल पावे॥...
ऐसन पारस सतगुरु दीन्हा। जाति बरण सभे मेटि लीन्हा॥[29]

भावे=अच्छा लगना; **प्रसाद**=कृपा; **ऐसन**=ऐसा; **दीन्हा**=दिया; **जाति बरण**= जाति-वर्ण; **मेटि**=मिट गए।

प्रेमी सेवक को सतगुरु के प्रेम के बिना भोजन अच्छा नहीं लगता। वह सतगुरु के प्रेम के प्रसाद से नामरूपी अमृतफल को प्राप्त कर लेता है। सतगुरु ने उसे ऐसा नामरूपी पारस दिया है कि उसके जाति-वर्ण, रंग-रूप आदि के सब भेद-भाव मिट गए हैं और वह परमात्मा का रूप हो गया है।

ऐसो प्रेम शीतल होय जाई। लोक लाज कुल सभे मेटाई॥
प्रेम पंथ महं पैठे सोई। अब किछु बात कहे का होई॥...
तोरे नाता जाति का जन निजुपुर पहुंचै जाय।
आपे बुझे प्रेम है, निरखि नाम निजु पाय॥[30]

मेटाई=मिटा देता है; **प्रेम पंथ**=प्रेम-मार्ग; **महं**=में; **पैठे**=प्रवेश करना; **सोई**=वह; **का होई**=क्या होता है? **तोरे**=तोड़े; **जन**=प्रेमी जन; **निजुपुर**=अपने असली धाम; **बुझे**=समझना, अनुभव करना; **निरखि**=प्रत्यक्ष अनुभव करना।

प्रेम इतना शीतल होता है कि वह प्रेमी जीव की तपन को बुझा देता है और उसकी लोक-लाज तथा कुल के अहंकार को भी मिटा देता है। जब वह प्रेम के मार्ग में प्रवेश कर जाता है, तब उसे कोई कुछ भी कहे, वह परवाह नहीं करता। जाति-पाँति के नाते तोड़कर प्रेमी अपने असली धाम पहुँच जाता है। सच्चे नाम को पाकर और उसे पहचानकर वह प्रेम के महत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता है।

कहें दरिया सांचो दिल, दुर्मति सकल बोहाय।
प्रेम सुरति वासा करे, आवागमन मेटाय॥
कमल भंवर बासा करे, बिलगि विहरि मिलि जाय।
ऐसो नाम विमल रस, रहे चरण लपटाय॥[31]

दुर्मति=कुमति; **सकल**=सारी; **बोहाय**=दूर करना; **सुरति**=आत्मा; **बासा**=बसना; **बिलगि**=अलग होना; **विहरि**=इधर उधर भटकना; **विमल**=निर्मल; **लपटाय**=लिपटा रहना।

प्रेमी के निर्मल हृदय से कुमति दूर हो जाती है। उसकी सुरत में प्रेम बस जाता है और उसका आवागमन समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार कमल से प्रेम करनेवाला भौंरा कमल में ही बसता है और उसी के आसपास मँडराता हुआ उसी से लिपटा रहता है, उसी प्रकार प्रेमी जीव भी नाम के निर्मल रस को पाकर सतगुरु के चरण-कमलों में लिपटा रहता है।

निस्चै नाम प्रेम लौ लावै। सो हंसा छपलोक सिधावैं॥
जाइहिं लोक बहुरि नहिं अवना। जन्म जन्म के मेटै कलपना॥[32]

निस्चै=निश्चयपूर्वक; **लौ लावै**=लिव लगाए; **हंसा**=आत्मा; **छपलोक**=सतलोक; **सिधावैं**=प्रस्थान करना, जाना; **बहुरि**=फिर; **अवना**=वापस आना; **मेटै**=मिटना, अंत होना; **कलपना**=दुःख।

जो जीव दृढ़ विश्वास और भरोसे के साथ नाम से लिव लगा लेता है, वह अवश्य ही सतलोक को जाता है। वहाँ जाकर वह फिर कभी इस संसार में वापस नहीं आता। उसके जन्म-जन्म के दुःखों का अंत हो जाता है।

कहे दरिया प्रेम मतवाला। खुले पत्र प्रेम का प्याला॥...
अमी कूप पत्र भरि पीजे। ब्रह्म सजीवन सो फल लीजे॥
अमृत चाखहिं हंस भौ सारा। त्यौं त्यौं दृष्टि भई उजियारा॥

सत्त सब्द जाके बसे, अमर लोक के जाय।
अमृत फल जहां प्रेम रस, युग युग क्षुधा बुताय॥[33]

मतवाला=मस्त; **खुले पत्र**=हृदयरूपी पात्र खुल जाता है; **अमी कूप**=अमृत का कुआँ; **पत्र**=पात्र, बरतन, पत्ते से बना दोना; **पीजे**=पीना; **ब्रह्म सजीवन**=मृतप्राय जीव को नवजीवन प्रदान करनेवाला ब्रह्म; **सो**=वह; **चाखहिं**=चखकर; **हंस**=पवित्रात्मा; **भौ**=होना; **सारा**=असलियत, शक्तिशाली; **भई**=हो गई; **उजियारा**=उजली; **सत्त सब्द**=सच्चा शब्द; **जाके**=जिसके; **के**=को; **क्षुधा**=प्यास; **बुताय**=बुझाना, मिटाना।

जो प्रेमी प्रेम में मस्त हो जाता है उसका अमृत पीनेवाला हृदयरूपी बर्तन खुल जाता है और वह अंतर में स्थित अमृत के कुएँ में से अपना पात्र भर-भरकर अमृत पीता है, जिससे जीव को नया जीवन प्रदान करनेवाला ब्रह्मरूपी सुंदर संजीवनी फल प्राप्त होता है। वहाँ अमृत को चखकर आत्मा अपनी असलियत को पहचानकर हंस (पवित्रात्मा) बन जाती है और उसकी निरत क्रमशः उजली होती जाती है अर्थात् उसका प्रकाश बढ़ता जाता है। सच्चा शब्द जिसके अंतर में बस जाता है वह अविनाशी सतलोक को जाता है। वहाँ पर प्रेमरस-रूपी अमृत फल को खाकर आत्मा की युग-युग की भूख मिट जाती है।

जब दिनमनि दिन परकास कमल दल फूलेव।
तब खुलि गौ सकल कपाट भंवर रस भूलेव॥
उछिलेव प्रेम प्रवाह सघन ते सलिल सेंधु महं मीलेव।
भौ झनकार उचार गगन में मनि मानिक झरि झूलेव॥
हंस बंस गुन गहिर ज्ञान भौ इमि करि बग नहिं तूलेव।
दरिया दरस परस रस आम्रित मेटु सकल सभ सूलेव॥[34]

दिनमनि=सूर्य; **परकास**=प्रकाश; **कमल दल**=कमल की पँखुड़ियाँ; **फूलेव**=खिलना; **खुलि...कपाट**=सारे कपाट खुल गए; **भंवर**=भौंरा;

भूलेव=भूल गया; **उछिलेव**=उछलना; **प्रेम प्रवाह**=प्रेम की धारा; **सघन**=घनी; **सलिल**=नदी; **सेंधु**=सागर; **मीलेव**=मिलना; **भौ**=हुई; **उचार**=आवाज़ होना, बजना; **मनि**=मणि; **मानिक**=माणिक्य, रत्न; **झरि**=झड़ी; **झूलेव**=झूला झूलना; **हंस बंस**=पवित्र आत्माओं के कुल में; **गुन गहिर**=गहरे गुण; **इमि करि**=इस प्रकार; **बग**=बगुले; **तूलेव**=तुलना कर पाना; **दरस**=दर्शन; **मेटु**=मिटना; **सकल**=सारे; **सूलेव**=दुःख-दर्द।

जब मनुष्य-जीवनरूपी दिन में गुरुरूपी सूर्य का प्रकाश हुआ और हृदयरूपी कमल की पँखुड़ियाँ खिल उठीं तो अंतर के बंद कपाट खुलने से जीवरूपी भौंरा उसकी सुगंधि के रस में सब कुछ भूलकर मस्त हो गया। जीव के अंदर से प्रियतम के प्रेम की प्रबल धारा उछलती हुई चली तो आत्मारूपी नदी परमात्मारूपी समुद्र में जा मिली। आंतरिक गगन में शब्द की झंकार बजने लगी तथा दिव्य मणियों और रत्नों की झड़ी के बीच आत्मा झूला झूलकर आनंद करने लगी। आत्मा को अपने पवित्र कुल के गुणों का गहरा ज्ञान हो गया। अब इसकी तुलना में विषय-विकारों में लिप्त अज्ञानी जीवरूपी बगुले नहीं आ सकते। इस प्रकार अंतर में अपने प्रियतम के दर्शन कर, उनसे मिलाप करके अमृत का रस पीने से जीव के सारे दुःख-दर्द मिट गए।

सच्चे प्रेम का स्वरूप

सच्चा प्रेम कितना मधुर, प्यारा और आकर्षक होता है, इसका वर्णन करना कठिन है। कुछ उदाहरणों द्वारा इसके स्वरूप पर प्रकाश डाला जा सकता है। सच्चे प्रेम के उमड़ने पर प्रेमी प्रियतम के प्रेम में उसी तरह लीन हो जाता है जैसे भौंरा कमल के प्रेम में, मृग नाद के प्रेम में, कमलिनी चाँद के प्रेम में, चात्रिक स्वाति बूँद के प्रेम में, चकोर चंद्रमा के प्रेम में, पतंगा दीपक के प्रेम में, पतिव्रता स्त्री अपने पति के प्रेम में, योद्धा युद्ध के प्रेम में और मछली जल के प्रेम में निमग्न रहती है। जैसे मछली जल के बिना प्राण त्याग देती है, वैसे ही सच्चा प्रेमी भी प्रियतम के लिए अपने तन-मन

और प्राण को न्योछावर करने के लिए सदा तैयार रहता है। जैसे समुद्र का जल कभी घटता नहीं, वैसे ही सच्चे प्रेमी का प्रेम भी कभी कम नहीं होता, बल्कि वह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

संतजन ही सच्चे प्रेमी होते हैं। वे परमात्मा के रंग में पूरी तरह रँगे होते हैं। अपने प्रियतम परमात्मा का दर्शन पाकर और उनके प्रेमरस में निमग्न होकर वे संसार की निंदा और अपमान को प्रेमपूर्वक सहन कर लेते हैं। सर्वसमर्थ परमात्मा की उन पर सदा प्यार भरी दृष्टि रहती है और वे अपने मालिक की मौज में ही सदा प्रसन्न रहते हैं।

वे जीव धन्य हैं जो ऐसे संत-सतगुरु की शरण में आकर उनके चरणों में अपना प्रेम बढ़ाते हैं। संसार के क्षणिक और झूठे सुख-ऐश्वर्य को छोड़कर वे सतगुरु के प्रेम में रम जाते हैं और उन्हें संसार की सुख-संपत्ति का कोई मोह नहीं रह जाता। प्रेम का अनुपम फूल अपनी सुगंधि से उन्हें आनंद-विभोर कर देता है और उन्हें मुक्ति का फल प्राप्त होता है। प्रेम के अमृत को पीकर प्रेमी तृप्त हो जाता है और संत-सतगुरु की उस पर सदा कृपा बनी रहती है। जैसे पेड़ को सींचकर उसे बड़ा करनेवाला जल, पेड़ के सूखे काठ से बनी नाव को सदा अपने ऊपर रखता है, वैसे ही शिष्य को अपने प्रेम-जल से सींचकर उसे विकसित करनेवाला सतगुरु शिष्य का हृदय प्रेम से सूखा होने पर भी, उसकी सदा प्रेमपूर्वक सँभाल करता है। सतगुरु के प्रेम-जल पर तैरनेवाली उसकी जीवन-नौका आसानी से संसार-सागर को पार कर जाती है:

प्रेम कमल जल भीतरे, प्रेम भंवर ले बास।
होत प्रात संपुट खुले, भान तेज परकास॥

भंवर पुहुप में बासा कीन्हा। गंध सुगंध प्रेम रस भीन्हा॥...
जैसे मृगा नाद लव लाई। सुनत श्रवन ध्वनि प्रेम समाई॥
प्रेम बसी होय प्राणहिं दीन्हा। सन्मुख जीव हाथ कै लीन्हा॥...
चन्द जोति कुमुदिनी रहु फूला। प्रेम प्रीति बृगसा निजु मूला॥
जल में कुमुदिनी चंद अकाशा। ऐसो प्रेम प्रीति परगाशा॥

चातृक प्रीति स्वाती लागा। जीवन जन्म सो भया सुभागा॥
औरि सृष्टि सभै जल तीता। प्रेम प्रीति नाम निजु हीता॥
सलिता सागर या जग अहई। अनल समान सभे वोय कहई॥
व्रत एक सत्त जिनि जाना। सत्तनाम निजु प्रेम समाना॥
ज्यों टेक चित चातृक राखा। बरिषु बुन्द अमृत रस चाखा॥
रहे विश्वास तब वरसे आई। बिना प्रेम नहिं सतगुरु पाई॥[35]

भंवर=भँवरा; **बास**=निवास; **होत**=होता है; **प्रात**=सुबह; **संपुट खुले**=कमल के बंद फूल के दोने खुल जाते हैं; **भान तेज**=सूर्य की किरण; **परकास**=प्रकाश; **पुहुप**=पुष्प; **बासा**=निवास; **कीन्हा**=किया; **भीन्हा**=ओतप्रोत; **मृगा**=हिरण; **नाद**=संगीत; **लव लाई**=लिव लगाना; **श्रवन**=कान; **प्रेम समाई**=प्रेम से भरकर; **बसी**=वश; **होय**=होकर; **प्राणहिं दीन्हा**=जान दे देना; **सन्मुख**=सामने; **चन्द जोति**=चाँदनी; **कुमुदिनी**=सफ़ेद कमलिनी; **रहु फूला**=फूली रहती है; **बृगसा**=खिलना; **निजु**=अपना; **अकाशा**=आकाश में; **चातृक**=चातक; **स्वाति**=स्वाति नक्षत्र; **सुभागा**=सौभाग्यशाली; **औरि**=अन्य; **तीता**=तीखा, चरपरा जैसा मिर्च का स्वाद होता है; **हीता**=भला, कल्याण करनेवाला; **सलिता**=नदी; **अहई**=है; **अनल**=आग; **जिनि**=जिन्होंने; **सत्तनाम**=सच्चा नाम; **समाना**=समा गए; **टेक**=प्रण; **चित**=हृदय में; **बरिषु**=बरसना; **वरसे आई**=बरस आती है।

कमल रहता तो जल में है, परंतु प्रेम सूर्य से करता है और सुबह होते ही सूर्य की किरणों को पाकर वह खिल उठता है। प्रेम के कारण ही भौंरा कमल की सुगंध लेता है और उसी में बंद हो जाता है। वह तभी बाहर निकल पाता है जब प्रातः सूर्य आकर कमल के बंद फूल की पँखुड़ियों को खोल देता है। सुगंधमय प्रेम-रस से भिना हुआ भौंरा कमल के फूल से अपना निवास बनाता है और फूल के बंद होने पर फूल में ही बंद हो जाता है। हिरन को सुरीली आवाज़ से प्रेम होता है। तभी तो शिकारी द्वारा

बजाए गए बाजे की सुरीली आवाज़ के कान में पड़ते ही वह शिकारी के सामने आकर अपनी जान दे देता है। प्रेम और प्रीति के ही कारण चाँदनी को पाकर सफ़ेद कमलिनी अपने प्रेम के मूल चंद्रमा को देख, विकसित होकर खिल उठती है। प्रेम का प्रकाश ही ऐसा है कि सफ़ेद कमलिनी पानी में होती है, चंद्रमा आकाश में होता है; फिर भी वह चाँदनी को देखकर खिल जाती है। चातक को स्वाति से प्रेम होता है, जिसके कारण उसका जन्म और जीवन सौभाग्यशाली हो जाता है। उसके लिए और सभी जल अप्रिय या तीखा है। इस संसार की सभी नदियों और समुद्र को वह आग के समान कहता है। जिन्होंने भी उस एक सच्चे नाम के प्रति एकनिष्ठ व्रत लिया, उनके हृदय में भी सच्चे नाम (शब्द-धुन) के प्रति ऐसा ही प्रेम-प्यार प्रकट हो गया। वे प्रेम के कारण उस सतनाम के समुद्र परमात्मा में जाकर समा गए। चातक अपने मन में स्वाति जल को ही पाने का प्रण रखता है और स्वाति नक्षत्र में एक बूँद भी बरसने पर वह अमृत का सा रस चखता है। उसके विश्वास को देख स्वाति जल बरसता भी है। इसी प्रकार यदि जीव के अंतर में सतगुरु के प्रति सच्चा प्रेम है तो वे उस पर अपनी दया-मेहर की वर्षा अवश्य करते हैं। प्रेम के बिना सतगुरु को पाया नहीं जा सकता।

चकोर प्रीति पावक से कीन्हा। चुगत अग्नि प्रेम रस भीन्हा॥
ऐसी प्रीति है प्रेम पियारा। आशिक प्रेम सदा उजियारा॥[36]

पावक=आग; **चुगत**=चुग लेता है; **आशिक**=प्रियतम; **उजियारा**=उजाला, प्रसन्न रहना।

चकोर अग्नि से प्रेम करता है। इसलिए प्रेम में मग्न होकर वह अपनी चोंच के जलने की परवाह न करते हुए आग को चुग लेता है। इसी प्रकार की प्रीति सच्चा प्रेमी अपने प्यारे प्रियतम से करता है और अपने प्रियतम के प्रेम में मग्न होकर सदा प्रसन्न रहता है।

प्रेम पतंग दीपक महं हूला। तन सभ जरि गयो लागु न शूला॥
साहस नारि करे पिय लागी। भसम भया तन देखत आगी॥
प्रेम प्रगास अग्नि नहिं जाना। भया प्रेम जनु चढ़ी बेवाना॥
सन्मुख शूरा रन महं जूझे। साहस प्रेम बान नहिं सूझे॥
बिनु साहस होखे नहिं कामा। साहस प्रेम बसे निजु धामा॥[37]

हूला=तेज़ी से समा जाना, टूट पड़ना; **जरि गयो**=जल गया; **शूला**=पीड़ा; **पिय लागी**=प्रियतम के लिए; **देखत**=देखते ही; **आगी**=अग्नि; **प्रगास**=प्रकट होना; **भया**=हुआ; **जनु**=मानो; **बेवाना**=विमान; **शूरा**=वीर योद्धा; **रन**=रण, लड़ाई; **सूझे**=दिखाई पड़ना; **होखे**=होता; **कामा**=कार्य; **बसे**=निवास करना; **निजु धामा**=अपना धाम।

प्रेम के कारण पतंगा दीपक पर टूट पड़ता है। उसका सारा शरीर जल जाता है और उसे दर्द भी महसूस नहीं होता। अपने मृत पति से प्रेम होने के कारण ही नारी साहस करके, देखते ही देखते चिता की अग्नि में अपने शरीर को भस्म कर देती थी। प्रेम के प्रभाव के कारण उसे आग का अहसास ही नहीं होता। प्रियतम के प्रेम में उसे तो ऐसा लगता है मानो विमान पर चढ़ रही हो। अपने प्रेम के कारण ही साहसी वीर योद्धा युद्ध में वीरों के सामने लड़ाई में जूझ पड़ता है। प्रेम के बिना साहस नहीं आता और साहस के बिना कोई कार्य भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार का साहस और प्रेम होने पर ही जीव अपने धाम में निवास पा सकता है।

मोहिं पे कृपा कीन्ह बहु भांती। बरिसु सुजल जल साली सुखाती॥...
चरण कमल दल मैं अनुरागी। सदा रहों पद पंकज लागी॥...
जल बिनु मीन न जीवन हारा। अहो प्राणपति प्रेम अधारा॥
बाहर भये मीन नहिं जीवे। उलटी जाय जल तबहीं पीवे॥...
या तन मन जीव देउ सब वारी। लेहु कृपा करि हाथ पसारी॥
तुम ते और दूजा नहिं कोई। चरण सदा चित रहों समोई॥[38]

मोहिं पे=मुझ पर; **कीन्ह**=की; **बहु भांती**=अनेक प्रकार से; **बरिसु**=बरसना; **सुजल**=सुंदर जल; **साली सुखाती**=धान के सूखते हुए पौधे को; **चरण**... दल=चरण-कमल की पँखुड़ियाँ; **पद पंकज**=चरण-कमल; **लागी**=लगे रहना, आसक्त रहना; **मीन**=मछली; **बाहर भये**=जल से बाहर रहने पर; **या**=इस; **जीव**=जीवात्मा; **हाथ पसारी**=हाथ फैलाकर; **समोई**=लगाए रखना, अनुरक्त रखना।

हे मेरे प्रियतम! आपने मुझपर अनेक प्रकार से ऐसी कृपा की मानो सूखते हुए धान के पौधे को वर्षा का सुंदर जल मिल गया हो। मैं आपके चरण-कमलों का प्रेमी हूँ, इसी लिए हमेशा उन चरण-कमलों में ही लगा रहता हूँ। जैसे मछली पानी के बिना नहीं जी सकती, उसी प्रकार आप मेरे प्राणपति और जीवन के आधार हो। तुम्हारे बिना मेरी हालत वैसी ही है, जैसे पानी से बाहर होने पर मछली की होती है। पानी के बिना वह जीवित नहीं रह सकती और जब वह वापस जल में जाती है तभी पानी को पीकर जीवन प्राप्त करती है। मैं अपना तन-मन-प्राण सब कुछ आपको समर्पित करता हूँ, आप कृपा करके अपनी दया-मेहर का हाथ बढ़ाकर सँभाल लो। मुझे आपके अलावा किसी और का सहारा नहीं है। मैं सदा आपके चरणों में ही अपने चित्त को लगाए रखता हूँ।

प्रगट प्रेम गुन गहिर गंभीरा। सींचेवो सुधा सम सकल शरीरा॥
प्रीति रीति जेहि सुमति शरीरा। सन्त सदा मति ज्ञान गंभीरा॥
सामर्थ्य करहिं सन्त सो रीती। राखहिं सदा नैन भरि प्रीती॥
सुमति करे सुख सदा शरीरा। कुमति बिहाय प्रेम रस धीरा॥
प्रेम न घटे बढ़े निति अंगा। ज्यौं सागर जल होत न भंगा॥
सिंधु सुखा न सुना कवि गाई। अति गंभीर गुन तरनि तराई॥
बारिध बारि बरोबरि तरनी। जल की प्रीति जात नहिं बरनी॥
आपुहिं सींचि साखा प्रतिपाला। तदपि प्रीति जल काष्ठ तराला॥

हृदये कमल जल प्रीति समाना। छुटेवो तबहिं तन त्यागेवो प्राणा॥...
चरण में चित्त चेतनि होय लागा। छुटे कबहीं नहिं भौ अनुरागा॥[39]

गुन=गुण; **गहिर गंभीरा**=गहरे और गंभीर; **सींचेवो**=सींचा; **सुधा सम**=अमृत के समान; **सकल**=सारा; **सुमति**=सुबुद्धि; **मति**=बुद्धि; **सामर्थ्य**=समर्थ परमात्मा; **नैन...प्रीती**=प्रेम-भरी दृष्टि; **बिहाय**=छोड़कर; **धीरा**=धैर्यपूर्वक; **निति**=नित्य, प्रतिदिन; **भंगा**=समाप्त; **सिंधु**=समुद्र; **गंभीर**=अथाह; **तरनि तराई**=नाव को अपने ऊपर तैराता है; **बारिध**=सागर; **बारि**=जल; **बरोबरि**=बराबर, सतह के ऊपर; **तरनी**=नाव; **बरनी**=वर्णन करना; **सींचि**=सींचकर; **साखा**=शाखा; **प्रतिपाला**=पालन-पोषण करना; **तराला**=तैराता है; **हृदये कमल**=हृदयरूपी कमल; **समाना**=समान होना; **तबहिं**=तब; **चेतनि**=सचेत होकर; **भौ**=होना; **अनुरागा**=प्रेम।

प्रेम के गहरे और गंभीर गुण प्रकट होने पर ऐसा लगता है मानो सारा शरीर ही अमृत के समान जल से सींचा गया हो। संत प्रीति की रीति जानते हैं और उनका शरीर सुबुद्धि से भरा होता है। उनकी बुद्धि परमात्मा के गहरे ज्ञान से भरी होती है। समर्थ परमात्मा संतों के माध्यम से ही अपना कार्य करते हैं और अपनी प्यार-भरी दृष्टि सदा संतों के ऊपर रखते हैं। उनके पास सुबुद्धि होने से उनका शरीर भी सदा सुखी रहता है। वे कुबुद्धि को त्यागकर धैर्यपूर्वक प्रेम के रस में मग्न रहते हैं। उनका प्रेम कभी घटता नहीं, बल्कि नित्य बढ़ता ही रहता है जैसे समुद्र में जल कभी समाप्त नहीं होता। कवि कहते हैं कि समुद्र का सूखना कभी नहीं सुना गया। अत्यंत अथाह होने पर भी उसका गुण है कि वह नाव को अपने ऊपर तैराता है। नाव हमेशा समुद्र के जल के बराबर ही रहती है। जल के प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता। जल ने सींचकर वृक्ष की शाखा का प्रतिपालन किया है। जब वह शाखा सूखे काठ में बदल गई, तब भी जल की उसके साथ वैसी ही प्रीति है, तभी तो वह काठ की

नाव को अपने ऊपर तैराता है। इसी प्रकार शिष्य को अपने प्रेम के जल से सींचनेवाला सतगुरु, शिष्य के हृदय के सूख जाने पर भी (शिष्य के हृदय में गुरु के प्रति प्रेम न होने पर भी) उसकी सँभाल करता है। वास्तव में शिष्य का सतगुरु के प्रति प्रेम वैसा ही होना चाहिए जैसा कमल का जल के प्रति होता है। कमल जल से बिछड़ जाने पर अपने प्राण त्याग देता है। इसी प्रकार सच्चे शिष्य का चित्त सचेत होकर सतगुरु के चरणों में लगा हुआ है, उसे उनसे इतना प्रेम हो जाता है कि वह कभी भी छूट नहीं सकता।

जगत धक्का सहे सन्त विवेकी। जिन्ह-जिन्ह चरण कमल दल देखी॥
ज्ञान विवेक बिचारहिं ज्ञाता। नाम प्रतीति प्रेम रस माता॥
प्रबल माया है मोह विकारा। ज्यौं तप्त पर पावक जारा॥
नाम सुधा तुम अमृत बानी। पावक जरत बुतावहिं पानी॥[40]

चरण...दल=प्रभु के चरण-कमल की पँखुड़ियों को; **प्रतीति**=पक्का विश्वास; **माता**=मतवाला होना; **तप्त**=तपे हुए (शरीर को); **पावक जारा**=आग से जलाया जाए; **सुधा**=अमृत; **तुम**=तुम्हारा; **बुतावहिं**=बुझाता है।

प्रभु के चरण-कमल का दर्शन करनेवाले विवेकी संत संसार के धक्के सहते हैं। नाम पर भरोसा रखनेवाले और प्रेमरूपी रस में मतवाले संतजन ही परमात्मा का सच्चा ज्ञान रखते हैं तथा वे विवेकपूर्वक भले-बुरे का विचार करते हैं। संसार में माया इतनी प्रबल है तथा यहाँ मोह का इतना विकार फैला हुआ है, मानो तपते हुए पर आग डाल दी गई हो। हे सतगुरु! केवल तुम्हारे नाम का अमृत अर्थात् अमृतरूपी शब्द-धुन ही माया की जलती आग को अपने शीतल जल से बुझाता है।

धन्य भाग जो तुम कहं लागा। मातु-पिता सुख-सम्पत्ति त्यागा॥
राज-काज सुख सम्पत्ति नाना। बिना भक्ति बादि सब जाना॥

तरुवर छांह थीर नहिं रहई। आवत जात मध्य फेरि कहई॥
ऐसी माया है चलन चलाना। आवत जात आपु मन माना॥[41]

भाग=भाग्य; **राज-काज**=राज-कार्य; **नाना**=अनेक; **बादि**=व्यर्थ, दुश्मन, बैरी; **तरुवर**=वृक्ष; **थीर**=स्थिर; **चलन चलाना**=चलती रहनेवाली।

हे मेरे सतगुरु! मेरे धन्य भाग्य हैं जो मैं माता-पिता और सांसारिक सुखों को सब प्रकार से छोड़कर आपके चरणों में लग गया हूँ। भक्ति के बिना राज-कार्य और अनेक प्रकार की सुख-संपत्ति व्यर्थ है। जिस प्रकार वृक्ष की छाया कभी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती, वह कभी आती है, कभी जाती है और कभी सिर के ऊपर होती है, ठीक इसी प्रकार माया भी चलती रहनेवाली है, वह अपनी मर्ज़ी से आती-जाती रहती है।

सभ तेजि राज समाज जग को, भक्ति दृढ़ता लावहीं।
गहिर ज्ञान अमान निर्गुन, मुक्ति को फल पावहीं॥
मूल महिमा गगन झरि तहाँ, फूल परिमल आवहीं।
तहाँ उदित ब्रह्म पुनीत जगमग, प्रेम मंगल गावहीं॥

सतगुर चरन सनेह, करो भक्ति दया धरो।
प्रेम प्रीति निति नेह, भव सागर तरि जाइहौ॥[42]

तेजि=छोड़कर; **राज**=राज्य; **गहिर**=गहरा; **अमान**=असीम; **निर्गुन**=तीनों गुणों के दायरे से परे का; **झरि**=वर्षा की झड़ी; **तहाँ**=वहाँ; **परिमल**=सुगंधि; **उदित**=प्रकट होना; **पुनीत**=पवित्र; **मंगल गावहीं**=ख़ुशी के गीत गाने लगती हैं; **सनेह**=प्रेम; **निति**=नित्य; **भव सागर**=संसार-सागर।

जो संसार के राज्य और समाज की रीति-रिवाज को छोड़कर पक्के इरादे के साथ परमात्मा की भक्ति करता है, उसे असीम परमात्मा का ऐसा गहरा और गंभीर ज्ञान प्राप्त होता है जो तीन गुणों के दायरे से परे है। ऐसा व्यक्ति ही मुक्तिरूपी फल प्राप्त करता है। वह अपने मूल स्रोत को प्राप्त कर लेता है

जिसकी महिमा अपार है। वहाँ के आंतरिक गगन में अमृत की वर्षा होती रहती है और दिव्य फूलों की सुगंधि आती है। वहाँ परमात्मा का प्रकट दर्शन होता है और वह स्थान पवित्र प्रकाश से जगमगाता रहता है। वहाँ आत्माएँ प्रेमपूर्वक ख़ुशी के गीत गाती हैं। इसलिए हे मनुष्य! तू सतगुरु के चरणों से प्रेम कर, उनके कहे अनुसार भक्ति कर तथा अपने अंदर दया धारण कर। उनसे नित्य प्रेम, प्यार और प्रीति करके तू संसार-सागर से पार हो जाएगा।

प्रेम पियाला पाए कै, तन मन डारहु बारि।
होहु बेहोस जग से रहो, ग्यान सरोद बिचारि॥[43]

पाए कै=पाकर; **डारहु बारि**=न्योछावर करना; **होहु**=हो जाओ; **बेहोस**=सुध-बुध खोना, ख़याल हट जाना; **सरोद**=स्वरोदय, शब्द-धुन के उठने से उत्पन्न ज्ञान।

सतगुरु से प्रेम का प्याला पाकर अपना तन-मन उन पर न्योछावर कर दो। इस प्रकार संसार में विरक्त रहकर अंतर में उठ रही शब्द-धुन के संगीत का सच्चा ज्ञान प्राप्त करो।

प्रेम की खेलि फुलेल सुगंध है प्रेम की नैन नहिं औरि तूला।
कमल का फूल जौं प्रेम जल भीतरै प्रेम के कारने भंवर भूला।
प्रेमहि चन्द चकोर दिबि द्रिस्टि में प्रेम के कारने उलटि झूला।
पिया संग प्रेम बसि नारि साहस करे प्रेम के अंग अगिनि बेइलि फूला।
प्रेम से सूर एह खेत पर हेत करि प्रेम से जीव एह जानि हूला।
प्रेम से म्रीग एह नाद लौ लाइया प्रेम से संक नहि लागु सूला।
प्रेम से संत एह मोह के काटिया प्रेम से त्यागिया कूल मूला।
कहें दरिया जन प्रेम आसिक हुआ जेंव जल कलि प्रेम पत्र खूला॥[44]

फुलेल=सुगंधित तेल, इत्र; **नैन**=आँखें; **औरि**=अन्य, दूसरी; **तूला**=तुलना, समानता; **दिबि द्रिस्टि**=दिव्य दृष्टि; **प्रेम...कारने**=प्रेम के कारण; **उलटि झूला**=गर्दन उलटकर झूल जाना; **बसि**=वश होकर; **बेइलि फूला**=लताएँ और फूल; **सूर**=शूरवीर; **खेत...करि**=संग्राम-क्षेत्र से प्रेम करके; **हूला**=टूट पड़ना; **म्रीग**=मृग; **नाद**=संगीत; **लौ लाइया**=लिव लगाना, ध्यान लगाना; **संक**=डर; **सूला**=पीड़ा; **के**=को; **काटिया**=काटना; **कूल मूला**=सारे संसार का मूल कारण; **आसिक**=प्रियतम; **जेंव**=ज्यों; **कलि**=कली।

प्रेम के खेल में इत्र की सी सुगंध है। प्रेम की नज़र की तुलना में और कोई चीज़ नहीं है। प्रेम के कारण ही जल के भीतर रहते हुए भी कमल सूर्य के प्रकाश से खिलता है। प्रेम के कारण ही कमल फूल की सुगंधि में भूला भँवरा फूल के अंदर बंद हो जाता है। प्रेम के कारण ही चंद्रमा पर टकटकी लगाए हुए चकोर की गरदन उलटकर लटक जाती है। प्रेम के वश होकर ही नारी साहस करके अपने पति के साथ चिता में जल जाती है। प्रेम की अग्नि में जलता हुआ शरीर भी उसे सुंदर लताओं के विकसित होने का सा आनंद देता है। संग्राम-क्षेत्र से प्रेम करके ही योद्धा शत्रुओं पर टूट पड़ता है और अपनी जान दे देता है। प्रेम के कारण ही मृग संगीत में लवलीन हो जाता है, फिर उसे न तो कोई डर रहता है और न ही शिकारी के आघात की पीड़ा अनुभव होती है। प्रेम के द्वारा ही संत सारे संसार के मूल कारण मोह के बंधन को काट देते हैं। जब भक्त प्रेम में अनुरक्त हो जाता है तो उसका हृदयरूपी कमल उसी प्रकार खिल उठता है जैसे जल से कली की प्रेम-पत्र जैसी पँखुड़ियाँ खुलकर खिल उठती हैं।

प्रेमी का प्रियतम के स्वरूप में मिलना

सच्चे प्रेम से प्रेमी का कायापलट हो जाता है और वह अपने प्रियतम में मिलकर प्रियतम का ही रूप बन जाता है। जैसे समुद्र में मिलकर बूँद समुद्र बन जाती है, भृंगी के संपर्क में आकर कीट भृंगी बन जाता है, आग में पड़कर लकड़ी आग बन जाती है और सोने में पड़कर सुहागा सोना हो जाता है, ठीक वैसे ही परमात्मा के प्रेम में पड़कर प्रेमी भी परमात्मा बन जाता है।

सतगुरु ही सच्चे प्रेम को जगाता है। इस प्रेम को पाकर काम-क्रोध आदि विकारों से भरा और दूसरों को दु:ख देनेवाला दुष्ट व्यक्ति भी परोपकारी महात्मा बन जाता है, जैसे विष से भरा ज़हरीला सर्प स्वाति की बूँद को पाकर मणियुक्त सर्प बन जाता है। अत: हमें इस प्रेम को जगानेवाले सतगुरु के चरणों में सदा अपनी प्रीति बढ़ानी चाहिए।

नागरी ते आगरी भली, नागरी सागरी संग।
बुन्द परा एह सिन्धु में, कौन परिखे रंग॥[45]

नागरी=धूर्त स्त्री; **ते**=से; **आगरी**=गुणवती स्त्री; **सिन्धु**=सागर; **कौन**... **रंग**=कौन पहचान सकता है?

सच्चे प्रेम द्वारा सांसारिक जीवरूपी धूर्त स्त्री गुणवती बन गई। जैसे बूँद सागर में मिल जाती है, उसी प्रकार उसे परमात्मारूपी पति प्राप्त हो गया। जब बूँद सागर में मिल गई तो अब उसे बूँद के रूप में कौन पहचान सकता है?

कवनो जल समुद्र में परई। दूजा नाम नाहिं कोई धरई॥
सभ कोइ जानै सिंधु अपारा। सो जल को बिलगावनिहारा॥[46]

कवनो=कौन-सा; **परई**=पड़ता है; **धरई**=रखता; **सिंधु**=समुद्र; **को**=कौन; **बिलगावनिहारा**=अलग करनेवाला।

कोई भी जल जब समुद्र में मिल जाता है तो उसे कोई दूसरे नाम से नहीं पुकारता। सभी उसे अथाह समुद्र के रूप में ही जानते हैं। उस जल को अब कोई समुद्र से भला कैसे अलग कर सकता है?

कीट को गुरु यह भृंग है, मानुष को गुरु ग्यान।
कीट सो भृंग बनाइया, पद पंकज को ध्यान॥
कि कोइ पंडित जानही, कि कवि करे बखान।

कि सतगुरु पद प्रेम रस, पारस को पहचान॥...
गुरु हमारे भृंग हैं, मेटा भर्म को भाव।
कहें दरिया दर्शन सही, भला बना है दांव॥
सतगुरु चरन सुधा सम, विमल मुक्ति का मूल।
पद पंकज लोचत हिया, अजर अनूपम फूल॥[47]

कीट=कीड़ा; **को**=का; **मानुष**=मनुष्य; **पद पंकज**=चरण-कमल; **कि**=या; **बखान**=वर्णन करना; **पद**=चरण; **पारस**=नामरूपी पारस; **मेटा**=मिटाया; **दांव**=अवसर; **सुधा सम**=अमृत के समान; **विमल**=निर्मल; **पद पंकज**=चरणरूपी कमल; **लोचत हिया**=हृदय ललचाता है; **अजर**=जिसका नाश न हो, अविनाशी।

भृंगी कीड़े को अपना रूप बना लेता है, अत: कीड़े का गुरु भृंगी है। इसी प्रकार मनुष्य को भी ज्ञानी गुरु की आवश्यकता है, जिसके चरण-कमल के ध्यान से मनुष्य उसी का रूप बन जाता है। नामरूपी पारस को या तो कोई ज्ञानी पहचानता है या कवि इसकी महिमा का वर्णन करते हैं या फिर सतगुरु के चरण-कमलों के प्रेम-रस से इसका ज्ञान होता है। हमारे गुरु भृंगी के समान हैं जिन्होंने हमारे अंदर से सारे भ्रम मिटा दिए हैं। गुरु ही हमें परमात्मा का भली-भाँति दर्शन करा सकते हैं जिसके लिए यह मनुष्य-जन्म एक सुंदर अवसर है। सतगुरु के चरण अमृत के समान हैं। इनके प्रति प्रेम हमें निर्मल करता है और हमारी मुक्ति का मूल कारण बनता है। हमारा हृदय सतगुरु के चरण-कमलों के लिए ललचाता है, जो हमें अविनाशी परमात्मारूपी अनुपम फूल की प्राप्ति करा देता है।

अगिनि में जाए काठ जो परई। जरि कै अगिनि होए सो रहई॥
भएउ अदग सौ लाल अंगोरा। कहै आगि में अगिनि अंजोरा॥
को अब काठ कहै तब आई। चीन्है कवन काठ तेहि भाई॥[48]

परई=पड़ जाती है; **जरि कै**=जलकर; **सो**=वह; **रहई**=रहती है; **भएउ**=बन गई; **अदग**=साफ़, तपता हुआ, बेदाग़; **लाल अंगोरा**=लाल अंगारा; **अंजोरा**=प्रकाशमय; **को**=कौन; **चीन्है**=पहचाने; **कवन**=कौन; **तेहि**=उस को।

जो लकड़ी अग्नि में पड़ जाती है वह जलकर अग्नि का ही रूप हो जाती है। वह बेदाग़ होकर लाल अंगार बन जाती है, इस प्रकार आग में मिले हुए को तो केवल प्रकाशमय अग्नि ही कहा जा सकता है। अब उसे कौन लकड़ी कहे और उसे लकड़ी के रूप में कौन पहचाने?

जैसे कनक सोहागा रासा। ऐसो प्रेम पुरुष के पासा॥[49]

कनक=सोना; **सोहागा**=सुहागा; **रासा**=अपने में मिला लेना; **पुरुष**=सत्पुरुष, परमात्मा; **पासा**=पास।

जैसे सुहागा सोने को अपने में मिला लेता है, उसी प्रकार प्रेम में पड़कर प्रेमी परमात्मा के पास पहुँचकर परमात्मा का ही रूप बन जाता है।

दारुन विष भुवंग है, डंसे बिराना अंग।
कैसे मनि उन्हि पाइया, कहु ताके पर संग॥...
करे जोग भोग कहं त्यागे, रोग ना रहे शरीर।
दिनमनि दिन बिनवन करे, जानि बिरानी पीर॥
सहस वर्ष सर्प रूप में, रूप गया तब फिर।
माते विष भौ बावरे, मिला स्वाति नीर॥
पियत जल जावन हुआ, मनि उपजी निरलेप।
विष भाजन औ भर्म सब, दिया तुरंत ही खेप॥
वोए भुवंग के बिष नहिं, मनि उपजे मुख आए।
सो जोगी यह जोग में, भोग रोग मिटी जाए॥
काम क्रोध और वाम रस, विषि भाजन कह खोय।
पूरा जोगी जोग में, मुक्ति पदारथ होय॥[50]

दारुन=कष्टदायक; **भुवंग है**=सर्प; **बिराना**=दूसरे का; **मनि**=मणि; **उन्हि**=उसने; **ताके**=उसका; **पर संग**=किसी विषय के संबंध में; **कहं**=को; **दिनमनि**=सूर्य; **बिनवन**=प्रार्थना; **बिरानी**=पराया, दूसरे का; **पीर**=पीड़ा; **सहस**=हज़ार; **फिर**=बदलना; **माते**=नशे में चूर, मस्त; **भौ**=हो जाना; **बावरे**=पागल; **स्वाति नीर**=स्वाति नक्षत्र का जल; **पियत**=पीना; **जावन**=जोरन, जमाने या उत्पन्न करनेवाला; **उपजी**=पैदा हुई; **निरलेप**=शुद्ध; **विष भाजन**=विष का बर्तन, संग्रह स्थल; **औ भर्म**=संसार के भ्रम; **खेप**=समाप्त; **वाम रस**=काम-वासना का स्वाद; **खोय**=त्यागकर।

अपने घोर कष्टदायक विष से दूसरों के शरीर को डँसनेवाले सर्प को कैसे मणि की प्राप्ति हुई; उसके बारे में कहता हूँ। जब उसने योग की विधि द्वारा भोगों को त्यागा तो उसके शरीर के सभी रोग समाप्त हो गए। तब दूसरों की पीड़ा को समझते हुए सर्प ने दिन में सूर्य से प्रार्थना की। वह एक हज़ार वर्ष तक सर्प के रूप में रहा। फिर उसका कायाकल्प हो गया। जब विष के नशे में मस्त वह पागल-सा हो गया था, तब उसे स्वाति का जल प्राप्त हुआ। इस जल से उसके अंदर शुद्ध मणि उत्पन्न हो गई। तब वह विषैला सर्प नहीं रहा और उसके संसार के सभी भ्रम दूर हो गए। इस प्रकार अब सर्प के पास विष नहीं रहा, बल्कि उसके मुख में मणि उत्पन्न हो गई। इसी प्रकार युक्ति द्वारा योगी भोगों से उत्पन्न होनेवाले सभी रोगों को मिटा देते हैं। यदि जीव भी काम, क्रोध और वासना के स्वाद को विष-रूप समझकर उनको त्याग दे तो वह पूरा योगी बनकर मुक्तिरूपी दुर्लभ पदार्थ को प्राप्त कर सकता है।

प्रेम मुक्ति निजु खोजहु भाई। जाते जीवन सुफल होय जाई॥
सतगुरु बिना न होखे कामा। सतगुरु प्रेम बसे निजु धामा॥[51]

निजु=अपनी; **खोजहु**=तलाश करो; **जाते**=जिससे; **होखे कामा**=कार्य होना; **बसे**=निवास करना; **निजु धामा**=अपने मूल धाम।

हमें प्रेम के द्वारा अपनी मुक्ति की तलाश करनी चाहिए जिससे हमारा जीवन सफल हो जाए। यह कार्य सतगुरु के बिना नहीं होता, सतगुरु से प्रेम होने पर ही जीव अपने मूल धाम में निवास पा सकता है।

प्रेम की साँकरी गली में केवल शूरवीर का प्रवेश

प्रेम के मार्ग को तलवार की धार के समान तीक्ष्ण कहा गया है। यह सचमुच शूरवीर का मार्ग है। केवल चिकनी-चुपड़ी बातें करनेवाला कायर और व्यसनी व्यक्ति इस मार्ग में नहीं टिक सकता। अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर ही प्रेमी इस मार्ग पर पैर रखता है। प्रेमी को डर और लज्जा छू तक नहीं सकती। जो जीते-जी मरना जानता है, वही इस मार्ग में सफल हो सकता है।

प्रेम की साँकरी गली में प्रेमी और प्रियतम, दोनों के एक साथ प्रवेश करने के लिए जगह नहीं होती। प्रेमी अपने को प्रियतम में विलीन कर अर्थात् अपने आपाभाव को बिल्कुल मिटाकर ही प्रेम-गली में प्रवेश कर सकता है। प्रेम की समर-भूमि में प्रेमी को मन जैसे कट्टर योद्धा से लड़ाई लड़नी होती है और काम-क्रोधादि प्रबल शत्रुओं का सामना करना पड़ता है। जो निडर होकर लड़ना जानता है और प्रेम की वेदी पर वीरतापूर्वक अपने आप को न्योछावर करने के लिए तैयार है, वही इस मार्ग में विजयी होता है और उसे ही अपने प्रियतम से मिलाप का अमर सुख प्राप्त होता है। तब बूँद समुद्र में मिलकर समुद्र बन जाती है:

प्रेम मारग बांको बड़ो। समुझि चढ़े कोई जानि।
ज्यों खांडो की धारि है। सतगुरु कहा बखानि॥[52]

बांको=टेढ़ा, कठिन; **खांडो**=तलवार।

सतगुरु ने यह समझाकर कहा है कि प्रेम का मार्ग तलवार की धार के समान बहुत ही पैना या तेज़ धार वाला होता है। इस पर सोच-समझकर क़दम रखना चाहिए।

इसिक प्रेम पंथ बड़ कठिनाई। ठग बटवार लगै बहु भाई॥

दरिया डरु मत ताहिसै, ग्यानवान तोहि पास।
मदत बेबाहा साह का, ठग बटवारन्हि नास॥[53]

इसिक=इश्क़; **पंथ**=राह; **बटवार**=राहगीरों को लूटनेवाला; **ताहिसै**=उससे; **ग्यानवान**=ज्ञानी सतगुरु; **तोहि**=तुम्हारे; **मदत**=सहायता; **बेबाहा**=अनमोल, परमात्मा; **साह**=शाह, सच्चा शहंशाह; **नास**=नष्ट करना।

इश्क़ या प्रेम की राह बहुत कठिन है। इस राह में बहुत-से ठग और लुटेरे हैं। लेकिन हमें इनसे डरने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमारे साथ ज्ञानी सतगुरु है जो अंतर के मार्ग में शिष्यों के साथ उनके हर क़दम पर साथ रहता है। सच्चे शहंशाह परमात्मा की मदद से, ये सब ठग और लुटेरे नष्ट हो जाते हैं।

सुरा नाम धराइके, अब का डरते वीर।
लड़िए तो दिल खोलके, सनमुख सहिए तीर॥
सुरा सोई सराहिए, सरव धनी का हेत।
मुख पर तीर बिराजही, तबहुं ना छोड़े खेत॥[54]

सुरा=योद्धा; **का**=क्या; **सोई**=वही; **धनी**=स्वामी; **हेत**=प्रेम; **बिराजही**=शोभा देना, लगे होना; **तबहुं**=फिर भी; **खेत**=लड़ाई का मैदान।

हे वीर योद्धा! तू युद्ध के मैदान में आकर अब क्यों डरता है? जब लड़ना है तो दिल खोलकर लड़ना चाहिए और सामने से आते हुए बाणों को सहना चाहिए। वही योद्धा प्रशंसा के योग्य है, जिसके लिए अपने स्वामी का प्रेम ही सब कुछ है अथवा जो यह समझता है कि उसका सर्वस्व स्वामी के लिए है। उसके मुख पर बाण लगे होते हैं और वह फिर भी लड़ाई का मैदान छोड़कर नहीं जाता।

आशिक है तबि डर कहां, डरते आशिक जाय।
लज्या चलि लजाई के, तब पिया प्रेम लोभाय॥[55]

आशिक=प्रेमी; **लज्या**=शर्म; **लजाई**=शरमाना; **के**=कर; **पिया**= प्रियतम; **लोभाय**=अच्छा लगता है।

जब प्रेमी बन गया तो भला उसे डर कहाँ हो सकता है? प्रेमी से तो डर भी दूर भागता है। प्रेमी का प्रेम तभी प्रियतम को अच्छा लगता है, जब शर्म भी शरमाकर उससे दूर चली जाए।

भक्ति करे सो सूरमा, तन मन लज्जा खोय।
छैल चिकनिया बिसनी, वा से भक्ति ना होय॥[56]

सूरमा=शूरवीर; **खोय**=खोना, न्योछावर करना; **छैल चिकनिया**=सुंदर शृंगार के शौक़ीन; **बिसनी**=व्यसनी; **वा से**=उनसे।

अपने तन, मन और लोक-लाज को न्योछावर कर, कोई शूरवीर ही भक्ति कर सकता है। सुंदर शृंगार के शौक़ीन व्यसनी जीवों से भक्ति नहीं हो सकती।

ऐसी भक्ति है पन्थ निनारा। या तन त्यागि जो पन्थ सुधारा॥
जब लगि प्रेम आपु नहिं जागे। ज्ञान कहे कहवाँ सुख त्यागे॥
पहिले तन मन या जीव वारे। पीछे प्रेम पन्थ पगु डारे॥
का भौ ज्ञान कथे बहुतेरा। जौ लगि दृष्टि गगन नहिं हेरा॥
अमृत प्रेम देखे नहिं नैना। तब लगि काह कहे मुख बैना॥

जब लगि प्रेम न पाइया, तब लगि पिया न नेह।
प्रेम सुरति साचो बसे, मिलि गौ शब्द स्नेह॥[57]

निनारा=अद्भुत; **या**=इस; **पन्थ सुधारा**=मार्ग पर चलना; **जब लगि**=जब तक; **जागे**=जागता; **कहवाँ**=कहाँ; **वारे**=न्योछावर करे; **पीछे**=बाद में, फिर; **प्रेम पन्थ**=प्रेम-मार्ग; **पगु डारे**=क़दम रखे; **का भौ**=क्या हुआ या होगा; **कथे**=कहने से; **बहुतेरा**=अनेक प्रकार का; **हेरा**=देखा; **नैना**=आँखों से; **तब लगि**=तब तक; **काह कहे**=क्या कहते हो; **प्रेम सुरति**=ईश्वर के प्रति प्रेम; **साचो**=सच्चा; **मिलि गौ**=प्राप्त हुआ; **शब्द स्नेह**=शब्द-धुन से प्रेम।

भक्ति की राह ऐसी विचित्र है कि अपने शरीर को त्यागकर ही कोई इस पर चल सकता है। जब तक अपने अंतर में प्रेम नहीं जागता, तब तक संसार के सुखों को त्यागकर ज्ञान का बखान करते रहने से भला क्या लाभ है? पहले जीव को अपने इस तन और मन को न्योछावर करना पड़ता है, तभी प्रेम के मार्ग पर क़दम रखा जा सकता है। जब तक अपनी निरत से आंतरिक आकाश को नहीं देखा, तब तक अनेक प्रकार से ज्ञान का बखान करने से क्या होगा? जब तक अंतर में स्थित नामरूपी प्रेमामृत को अपनी आंतरिक आँखों से नहीं देखा या उसका अंतर में अनुभव नहीं किया, तब तक बातें क्या करते हो? जब तक प्रेम की प्राप्ति नहीं होती, तब तक प्रियतम से प्रेम नहीं लग सकता। जब सच्चा प्रेम अंदर बसता है, तभी शब्दरूपी प्यारे प्रियतम का प्रेम प्राप्त होता है।

मरना मरना सब कहे, मरिगौ बिरला कोय।
एक बेरि एह ना मुआ, जो बहुरि ना मरना होय॥[58]

मरिगौ=मरा; **कोय**=कोई; **एक बेरि**=एक बार; **बहुरि**=फिर।

मरने की बात तो सभी कहते हैं पर कोई विरला जीव ही सही युक्ति से मरता है। कोई एक बार भी कभी ऐसे नहीं मरा कि उसे फिर से संसार में जन्म लेकर मरना ही न पड़े।

मरना सो पहिले मरि रहहू। असली जो हद जौं तुम चहहू॥
जीयत ही मुरदा होए रहना। अवसि तुमहिं तब पारा कहना॥

निकट जाय जमराज नहीं, सिर धुनि धुनि पछताय।
बूंद सिंधु में मिलि रहा, कवन सकै बिलगाय॥[59]

मरना...**पहिले**=मृत्यु से पहले; **मरि रहहू**=मरकर देख लो; **असली**... **हद**=परमधाम, सतलोक; **चहहू**=चाहते हो; **जीयत**...**रहना**=सुमिरन के द्वारा अपने ध्यान को शरीर के बाहरी नौ द्वारों से समेटकर भृकुटी-मध्य में स्थित तीसरे तिल में एकाग्र करने के आंतरिक अभ्यास को जीते-जी मरना कहते हैं; क्योंकि इस अभ्यास द्वारा शरीर से चेतना का सिमटाव उसी प्रकार होता है जैसे मरने के समय होता है; **अवसि**=अवश्य ही; **पारा**=जो पार हो चुका हो; **सिंधु**=समुद्र; **कवन**=कौन; **बिलगाय**=अलग करना।

यदि तुम अपने परमधाम सतलोक को पाना चाहते हो तो मरने से पहले मरकर देखो। इसके लिए सतगुरु के बताए सुमिरन के द्वारा अपने ध्यान को शरीर के बाहरी नौ द्वारों से समेटकर भृकुटी-मध्य में स्थित तीसरे तिल में एकाग्र करो। इस अभ्यास द्वारा जब तुम जीते-जी मर जाओगे, तभी यह कहा जा सकता है कि तुम अवश्य ही संसार से पार हो गए हो। फिर काल भी निकट नहीं जा सकता और अपना सिर पीट-पीटकर पछताता है। इस अभ्यास द्वारा जब आत्मारूपी बूँद परमात्मारूपी समुद्र में मिल जाती है तो भला फिर उसे कौन अलग कर सकता है?

भूलि परा गुर ज्ञान तबे जब मान मया महं आनि रते।
प्रेम गली अति सांकरि सुन्दरि तामें बात ना दूह गते।
चाषन चाहत भूखि ना लागत मांगत बासन छूंछ जते।
दरिया जो कहें फल दूरि बसे खल चाहत है बिनु साधु मते॥[60]

भूलि परा=भूल गया; **तबे**=तब, तो; **मया**=माया; **महं**=में; **आनि रते**=आसक्त हो गए, लीन हो गए; **अति सांकरि**=अत्यधिक संकरी, तंग; **तामें**=उसमें; **बात**...**गते**=दो आदमियों के एक साथ जाने की बात हो ही नहीं सकती; **चाषन**=चखना; **लागत**=लगना; **बासन**=बर्तन; **छूंछ**=ख़ाली; **फल**...**बसे**=फल दूर हैं; **खल**=मूर्ख; **साधु मते**=साधुओं या संतों के मत के अनुसार।

माया और मान-बड़ाई में लीन होने से तो गुरु का दिया हुआ सारा ज्ञान भी भूल जाता है। हे आत्मा! प्रेम की तंग गली में दो के एक साथ जाने की बात हो ही नहीं सकती। तू प्रेम के रस को चखना चाहती है, लेकिन विरह की चुभन तो तेरे अंदर उठी ही नहीं। ऐसी हालत में प्रेम की भीख माँगने पर तो तेरा बर्तन ख़ाली का ख़ाली ही रह जाएगा। दरिया साहिब कहते हैं कि दुष्ट लोग बिना साध या संतमत को अपनाए ही इस प्रेम को पाना चाहते हैं, पर ऐसी हालत में प्रेमरूपी फल उनसे दूर ही रहेगा।

केहरि कैद किजे नहिं साहब रोर के सोर कुते धरि खाई।
सिंघ ठनके तबे मन कम्पे सो कुंजल भागि पैठा बन धाई।
सूर के साथ भली तरवार सो तर्कि किया सनमूख लराई।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा रन पैठि गए कोइ संत सिपाई॥[61]

केहरि=शेर; **रोर**=शेर की गर्जना; **सिंघ ठनके**=शेर गरजे; **कुंजल**=हाथी, मनरूपी हाथी; **पैठा**...**धाई**=भागकर जंगल में छिप गया; **सूर**=शूरवीर; **तर्कि**=तड़प या जोश के साथ; **लराई**=लड़ाई; **रन**...**गए**=लड़ाई में जुट गए।

ऐ मेरे स्वामी बने हुए मन! मुझ आत्मारूपी शेर को अब अपनी क़ैद में रखने की कोशिश न कर। शब्द-धुनरूपी गर्जना के प्रकट होते ही आत्मारूपी शेर, मनरूपी कुत्ते को पकड़कर खा जाएगा। आत्मारूपी शेर की गर्जन को सुनकर ही मनरूपी हाथी काँप उठता है और भागकर कहीं जंगल में छिप जाता है। आत्मारूपी शूरवीर के पास शब्दरूपी तलवार है, जिसके द्वारा वह पूरे जोश से मन के साथ आमने-सामने की लड़ाई लड़ता है।

दरिया साहिब कहते हैं कि हम यह बात प्रत्यक्ष अनुभव करके अच्छी तरह से सोच-विचारकर कहते हैं कि कोई विरले संतरूपी सच्चे सिपाही ही मन के साथ होनेवाली इस लड़ाई में जुटे हैं।

घोरा तेज चला मैदान में रे, ज्यों खैंचि कमान पनच न्यारे॥
सन्मुख शहीद मासुक के कारने, देखि विचारी जीव वारि डारे॥
वाह वाह किया सभ तेजि दिया, तुम जानि लिया शब्द के रे॥
जिन्हिं आपहिं आप सन्मुख दिया, जुग जुग जीवे कवन मारे॥
तेहि आप साहब नेवाजी लिया, रहम करम आसिक इयारे॥
तारीफ किया छपलोक दिया, ज्यों धन तुम, धन तुम, धन प्यारे॥
बहु तत्त तरीक की राह है रे, कोई आए जगत में जीति झारे॥
कहें 'दरियाव' शहीद मर्दान है, तुम्ह एक तुम ना एक दम टारे॥[62]

कमान=धनुष; **पनच न्यारे**=अद्‌भुत प्रत्यंचा, धनुष की डोरी; **सन्मुख**=सामने; **मासुक...कारने**=प्रियतम के लिए; **जीव...डारे**=प्राण न्योछावर कर दिए; **तेजि**=त्यागना; **शब्द...रे**=सार शब्द; **जिन्हिं**=जिन्होंने; **कवन मारे**=उसे भला कौन मार सकता है? **तेहि**=उसे, जिसे; **साहब**=स्वामी, सतगुरु; **नेवाजी लिया**=कृपा कर ली; **रहम करम**=दया-मेहर; **आसिक इयारे**=प्रेमी के प्रियतम; **तारीफ**=प्रशंसा; **छपलोक**=सतलोक; **बहु तत्त**=अनेक प्रकार से; **तरीक**=सूक्ष्म; **झारे**=अनासक्त होकर; **मर्दान**=बहादुर, वीर; **एक...टारे**=एक साँस के लिए भी पीछे नहीं हटते।

शरीररूपी मैदान में अपने चेतनारूपी घोड़े को तेज़ चलाकर, ध्यानरूपी अद्‌भुत धनुष की डोरी को खींचकर आत्मारूपी वीर योद्धा अंतर में अपने प्रियतम सतगुरु के सामने जीते-जी मरने की अवस्था में पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर अपने प्रियतम को पाने के लिए उसने प्रेम के संग्राम में बिना पैर पीछे किए प्रियतम के सामने अपनी जान दे दी अर्थात् वह जीते-जी मर गया जिसके लिए प्रियतम ने उसकी वाह-वाह या प्रशंसा की, क्योंकि आत्मा ने

सारे संसार को त्यागकर सार शब्द को जान लिया। जिसने प्रियतम के सच्चे प्रेम में अपने आप को अर्पित कर दिया, उसे फिर अविनाशी जीवन प्राप्त हो गया। उसे फिर कौन मार सकता है? उस प्रेमी के प्रियतम, दया-मेहर करनेवाले स्वामी सतगुरु ने उस पर अपनी कृपा की वर्षा कर दी और उसकी यह कहते हुए प्रशंसा की कि तुम सचमुच धन्य हो और उसे सतलोक प्रदान कर दिया।

यह मार्ग बहुत सूक्ष्म है। कोई विरला साधक ही सभी विषयों से अनासक्त हो इस मार्ग पर चलकर इस संसार से विजयी होकर जाता है। हे जीते-जी मरकर शब्द की दौलत पानेवाले जीव! एक तू ही ऐसा बहादुर वीर है जो लड़ाई के इस मैदान से एक साँस के लिए भी पीछे नहीं हटा।

प्रीतम के प्रेम में रंगी सच्ची सुहागिन

सच्ची सुहागिन आत्मा अपने प्रियतम के रंग में इस प्रकार रँग जाती है कि उसे सर्वत्र अपना प्रियतम ही दिखाई पड़ता है। अपने मन में सदा अधीनता का भाव लिए हुए वह भक्तिपूर्वक अपने प्रियतम का ध्यान करती है। अपने मन को मैदे के समान पीसकर वह अपने अहंभाव को बिल्कुल मिटा देती है और सभी विकारों से अपने आप को मुक्त कर लेती है। जैसे पपीहा स्वाति-बूँद के लिए आतुर होकर 'पीव-पीव की रट लगाता है, वैसे ही वह भाव-विभोर हो अपने प्रियतम के नाम का सुमिरन करती है। वह अपने आप को भड़कीली वेश-भूषा या गहनों से सजाकर बाहरी दिखावा नहीं करती। सादगी और पवित्रता ही उसका सच्चा शृंगार होता है। कुल और जाति के मिथ्या अभिमान तथा कर्मकांड के बाहरी आडंबर को त्यागकर वह एकमात्र अपने प्रियतम के प्रेम में पगी रहती है और इस प्रेम में मग्न हो अपनी सभी चिंताओं को भुला देती है।

उसे केवल अपने सतगुरु के चरण-कमलों की ही आस रहती है। किसी दूसरे से वह कुछ भी नहीं लेना चाहती। उसके इस अनन्य प्रेम से रीझकर सतगुरु उसके हृदय में नाम का दीपक जला देते हैं जिससे उसके हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म विकार भी दूर हो जाते हैं और वह पूर्ण पवित्रता के साथ अपने अमर प्रियतम से मिलाप प्राप्त करके सच्ची सुहागिन बन जाती है। इस प्रेम-रस की एक बूँद भी प्रेमी की युग-युग की प्यास बुझा देती है:

प्रेम दृष्टि चूभे चित सोई। जहां देखे तहां औरी न कोई॥[63]

चूभे चित=चित्त में चुभी हुई; **तहां**=वहाँ पर; **औरी**=दूसरा।

जिसके चित्त में प्रेम की दृष्टि चुभ जाती है, वह जहाँ भी देखती है उसे अपने प्रियतम के अतिरिक्त दूसरा कोई दिखाई ही नहीं देता।

प्रेम भक्ति जाके बसे, निशदिन रहे अधीन।
दरिया दिल कह देखिये, रहो चरण लौलीन।[64]

जाके बसे=जिसके हृदय में बसती है; **निशदिन**=रात-दिन; **अधीन**=विनीत; **दिल कह**=हृदय को; **लौलीन**=मग्न रहना।

जिसके मन में प्रेमपूर्ण भक्ति बस जाती है वह दिन-रात दास के समान विनीत बना रहता है। यदि उसके हृदय को देखा जाए तो वह सदा अपने प्रियतम के चरणों में ही मग्न रहता है।

सोहागिन तो कैसे होखे, केहि बिधि मिले पीव।
तन मन अरपेवो जानि के, तब बाचेगा जीव॥
जिन्ह तन मन अरपेवो सीस, सोई सोहागिनि जगत में।
कर्म भरम सभ पीस, पिया पर प्रेम लगाइया॥
सोई सोहागिनि साच है, पदुम झलके शीश।
औरि श्वान हैं शुकरी, करे खसम से रीश॥
पतिवरता पति जानहीं, सब बिधि पूरन काम।
त्रिया अनेक हम देखिया, रही रतन एक वाम॥
शाह मति सरकार में निस दिन धरती ध्यान।
जैसे पपीहा पिया-पिया, रटे सो सांझ बिहान॥[65]

होखे=होना; **केहि बिधि**=किस विधि से; **पीव**=प्रियतम, परमात्मा; **अरपेवो**=समर्पित या न्योछावर करना; **जानि के**=जानकर; **तब**=तभी;

सीस=सिर, आपाभाव; **पीस**=पीसना, दूर करना; **पिया**=प्रियतम; **साच**=सच्ची; **पदुम**=कमल; **औरि**=अन्य; **श्वान**=कुत्ता; **शुकरी**=सूअरी; **खसम**=पति; **रीश**=क्रोध, डाह; **सब बिधि**=हर प्रकार से; **पूरन काम**=कामनाएँ पूर्ण होना; **त्रिया**=स्त्री; **वाम**=स्त्री; **शाह...में**=अपने स्वामी में जिसका चित्त हो; **धरती**=धारण करती; **सो**=वह; **सांझ बिहान**=शाम-सवेरे।

आत्मा सच्ची सुहागिन कैसे बनेगी और किस विधि से प्रियतम प्राप्त होगा? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यदि आत्मारूपी स्त्री अच्छी तरह समझ-बूझकर प्रियतम परमात्मा के पास अपने तन-मन को समर्पित कर दे, तभी वह अपने प्रियतम को पाकर सुहागिन बन सकती है और उसके प्राण बच सकते हैं। संसार में केवल वही सुहागिन है जिसने अपने तन, मन और सिर (आपाभाव) को प्रियतम के आगे समर्पित कर दिया तथा कर्मकांड के समस्त भ्रमों को छोड़कर अपने पति से प्रेम लगा लिया। सच्ची सुहागिन वही है, जिसके मस्तक पर कमल जैसी सुहाग की निशानी झलकती है। परमात्मारूपी पति से क्रोध या डाह करनेवाली बाक़ी आत्माएँ तो पतित हैं। जो पतिव्रता स्त्री पति को ही सब कुछ मानती है, उसकी सभी प्रकार की कामनाएँ पूर्ण होती हैं। वैसे तो हमने अनेक स्त्रियों को देखा है, परंतु इन सबमें से एक यही आत्मारूपी स्त्री सबसे श्रेष्ठ रत्न है। सच्ची पतिव्रता वह है जिसका ख़याल हमेशा अपने पति में लगा हो और जो दिन-रात उसका ही ध्यान धरती हो। ठीक वैसे ही जैसे पपीहा अपने प्रियतम के लिए शाम-सवेरे पीव-पीव रटता रहता है।

भक्ति करे तो गुन भला, ऐगुन जात बिगोय।
मन मैदा करि पिसिये, तबे सोहागिन होय॥[66]

ऐगुन=अवगुण; **जात**=जाते हैं; **बिगोय**=नष्ट होना; **मैदा**=बहुत महीन आटा।

भक्ति करना ही सबसे बड़ा गुण है। इससे सारे अवगुण नष्ट हो जाते हैं। जब मन को मैदे के समान बारीक़ पीसा जाता है अर्थात् अहंकार को निकालकर पूरी तरह दीन बना लिया जाता है, तब आत्मारूपी स्त्री अपने पति परमात्मा से मिलाप करके सुहागिन बनती है।

सोइ सोहागिनि पिया रंग राती। सोइ सोहागिनि कुल नाहिं जाती॥
सोइ सोहागिनि पिया पहचानै। तन मन वारि भगति निजु ठानै॥
कपरा सेत सुगंध सोहाई। लाल पियर के नगीच न जाई॥
भई जुगल इमि पिया के साथा। आनंद मंगल सदा सनाथा॥
सोहागिनि पिया हुकुम जो गावै। निस दिन सेवा खसुम के लावै॥
अभरन दूरि किया कांचु की पोती। सब सखिअन्हि में निर्मलि मोती॥
पिया के चरन सदा इमि लोचै। रहे सनीप अघ पातख मोचै॥[67]

सोइ=वही; **पिया...राती**=प्रियतम के प्रेम के रंग में रँगी हुई; **कुल... जाती**=अपना कुल और जाति प्रियतम के कुल और जाति में समाप्त कर चुकी हो; **वारि**=न्योछावर करके; **ठानै**=दृढ़तापूर्वक करना; **कपरा सेत**=श्वेत वस्त्र, परमात्मा से प्रेम की निशानी; **सोहाई**=अच्छा लगता है; **लाल पियर**=लाल-पीला, दुनिया के रंग; **नगीच**=निकट; **भई**=हो गई; **जुगल**=जोड़ी; **इमि**=इस प्रकार; **मंगल**=ख़ुशियाँ मनाना; **सनाथा**=पति के साथ; **निस दिन**=रात-दिन; **खसुम**=पति; **अभरन**=गहने, बाहरी तड़क-भड़क; **कांचु...पोती**=काँच के समान टूट जानेवाला कच्चा दिखावा; **लोचै**=ललचाना; **सनीप**=निकट, साथ; **अघ पातख**=पाप और दुष्कर्म; **मोचै**=नष्ट होना।

वही आत्मारूपी स्त्री सुहागिन है जो अपने परमात्मारूपी पति के प्रेम के रंग में रँगी हुई है। जो उस परमात्मारूपी पति के साथ मिलकर अपनी कुल और जाति की अलग पहचान को समाप्त करके दृढ़तापूर्वक भक्ति करती है, वह दुनिया के लाल-पीले रंगों अर्थात् भड़कीले दिखावे के निकट भी

नहीं जाती, उसे तो सादे या सफ़ेद कपड़ों में ही सादगी की शोभा और सुगंधि प्राप्त होती है। इसी भाव से वह अपने परमात्मारूपी पति के साथ जुड़ी रहती है और सदैव पति के साथ आनंद और ख़ुशियाँ मनाती है। यह आत्मारूपी सुहागिन वही करती है जो उसके परमात्मारूपी पति की आज्ञा होती है। वह रात-दिन उन्हीं की सेवा में लगी रहती है। वह बाहरी शृंगार के गहनों को कच्चे काँच के समान टूट जानेवाले जानकर उन्हें उतार फेंकती है अर्थात् किसी भी प्रकार का बाहरी आडंबर उसे अच्छा नहीं लगता। वह आत्मा सभी सांसारिक जीवों के बीच रहते हुए परमात्मा से मिलकर एक पवित्र मोती के समान बन जाती है। इस प्रकार वह सदा परमात्मारूपी पति के चरणों के लिए ललचाती रहती है और उनके पास रहते हुए अपने सारे पाप-दोष समाप्त कर देती है।

भक्ति करे गृही मंह रहई। अपना स्वामी से सुख लहई॥
पतिव्रत करे दूजा नहिं जाना। सतगुरु प्रेम नित करे बखाना॥
सो तिरिया सुख युग-युग पावे। सतगुरु पद पंकज हिय लावे॥

तिरिया भवन बीच भक्ति में, रहे पिया के पास।
मन उदास नहिं चाहिये, चरण कमल की आस॥[68]

गृही=गृहस्थी; **रहई**=रहना; **लहई**=प्राप्त करना; **दूजा**=अन्य; **नित**=हरदम; **बखाना**=वर्णन करना; **सो**=वह; **तिरिया**=स्त्री; **युग-युग**=युगों-युगों तक; **पद पंकज**=चरणरूपी कमल; **हिय**=हृदय; **भवन**=घर।

पतिव्रता स्त्रीरूपी आत्मा गृहस्थ में रहते हुए ही परमात्मा की भक्ति करती है और अपने स्वामी परमात्मा से मिलाप का सुख प्राप्त करती है। वह पतिव्रता के धर्म में रहते हुए किसी अन्य पुरुष को ध्यान में नहीं लाती। वह तो हरदम अपने पति के प्रेम का ही वर्णन करती रहती है। वह अपने सतगुरु के चरण-कमलों में ध्यान लगाए रखती है और इस प्रकार युग-युग तक सुख प्राप्त करती है। घर में रहते हुए भी वह अपनी भक्ति के कारण

पति के ही पास रहती है। यह अवस्था प्राप्त करने के लिए मन में कभी उदास नहीं होना चाहिए और हमेशा सतगुरु के चरण-कमलों की आशा रखनी चाहिए।

रहे जुगल तब पिया के साथा। भक्ति प्रेम से भई सनाथा॥
सोई त्रिया सोई पुरुष विरागी। सोई पति जानी प्रेम अनुरागी॥[69]

जुगल=जोड़ा, दोनों का एक साथ रहना; **पिया**=पति; **साथा**=साथ; **भई**=हो गई; **सनाथा**=जिसका पति साथ हो; **सोई**=वही; **त्रिया**=स्त्री; **पुरुष**=परमात्मा।

आत्मारूपी स्त्री अपनी भक्ति और प्रेम के द्वारा सनाथ हो जाती है और परमात्मारूपी पति के साथ रहने लगती है। परमात्मारूपी पुरुष से मिलाप करके संसार से अनासक्त हो चुकी ऐसी आत्मा ही सच्ची सुहागिन है। प्रेम के रंग में रँगी हुई केवल वही आत्मारूपी सुहागिन अपने पति परमात्मा को जान पाती है।

सोइ सोहागिन पिया को भावे॥
तन मन धन जिन्ह अर्पन कीन्हा बहुरि न भवजल आवे॥
चित्त चन्दन के निशदिन रगरे चर्चित अंग चढ़ावे॥
अति सुगन्ध मुख बोलत बानी यहि विधि खसम मनावे॥
एक एक कलियां चुने महल में सुन्दर सेज बिछावे॥
सुरति चवंर लेइ सिर पर ढारे येहुं पलंग पवढ़ावे॥
दाबत चरन दगा नहिं दिल में काल कुबुद्धि बिसरावे॥
रजनी बीति बासर जब आवे कर जोरि हुकुम जोगावे॥
मगन रहे यह गगन झरोखे झांकत वदन दिखावे॥
चारों नयना आशिक माशूक है सुख सागर कहं पावे॥
मिले दुलह तब दुलहिन शोभे दिल ही में दिल मिलावे॥
कहे 'दरिया' धन भाग ताहि को जो पतिव्रत बनि आवे॥[70]

सोइ=वही; **पिया**=पति; **भावे**=अच्छी लगती है; **अर्पन**=न्योछावर; **कीन्हा**=किया; **बहुरि**=फिर; **चित्त चन्दन**=चित्तरूपी चंदन; **के**=को; **निशदिन**=दिन-रात; **रगरे**=रगड़े; **चर्चित**=लेप करना; **यहि विधि**=इस प्रकार से; **खसम**=पति; **सुरति**=आत्मा की अंतर में शब्द-धुन को सुनने की शक्ति; **चवंर**=पशुओं की पूँछ के लंबे बालों का बना गुच्छा जिसे दस्ते के अगले भाग में लगाकर राजाओं या देवताओं आदि के ऊपर मक्खियाँ आदि उड़ाने के लिए डुलाया जाता है; **लेइ**=लेकर; **ढारे**=डुलाए; **येहुं**=ऐसे; **पवढ़ावे**=सुलाए, लिटाए; **दाबत**=दबाना; **दगा**=धोखा, कपट; **बिसरावे**=भूल जाए, छोड़ दे; **रजनी**=रात; **बासर**=दिन; **कर जोरि**=हाथ जोड़कर; **हुकुम**=आज्ञा; **जोगावे**=आदरपूर्वक पूरा करे; **गगन झरोखे**=आंतरिक आकाश की खिड़की से; **चारों नयना**=आँखें चार होना, परस्पर प्रेमपूर्वक मिलाप होना; **आशिक माशूक**=प्रियतम और प्रेमिका; **सुख सागर**=सुखों का सागर; **कहं**=को; **दुलह**=दूल्हा; **शोभे**=सुशोभित होना; **धन**=धन्य; **ताहि को**=उसके।

वही आत्मारूपी सुहागिन परमात्मारूपी पति को अच्छी लगती है जो अपने तन-मन-धन को पति के चरणों में न्योछावर करके फिर कभी इस संसार सागर में नहीं आती। जो अपने चित्तरूपी चंदन को दिन-रात घिसकर उसका लेप अपने ऊपर लगाती है अर्थात् चित्त लगाकर सुमिरन का अभ्यास कर अपने चित्त को नम्र बनाती है। जिसके मुँह से बोलते समय अत्यधिक सुगंध आती है तथा इस प्रकार अपने पति को प्रसन्न कर लेती है। जो अपने महल में एक-एक कली को चुनकर सुंदर सेज बिछाती है और अपनी सुरत के चँवर को लेकर पति के सिर पर डुलाती है तथा इस प्रकार उसे पलंग पर सुलाती है। जो जीव सतगुरु के चरणों में अपना तन-मन-धन समर्पित करके अपना चित्त दिन-रात सुमिरन में लगाए रखता है, सभी से मधुर वचन बोलता है और शरीर के एक-एक रोम से सुरत को समेट लेता है; वही अंतर में पति के मिलाप का सुख प्राप्त करता है। इस प्रकार ऐसी आत्मारूपी स्त्री जिसके हृदय में कोई कपट नहीं होता,

वह काल के प्रभाव से उत्पन्न कुबुद्धि को छोड़कर पति के चरण दबाती है। रात के बाद जब दिन आता है तो वह आदरपूर्वक हाथ जोड़कर पति की हर आज्ञा पूरी करती है अर्थात् रात में सुमिरन भजन के अभ्यास से सतगुरु को संतुष्ट कर, दिन में बाहरी सेवा भी श्रद्धा-भक्ति के साथ करती है। अपने आंतरिक आकाश की खिड़की से पति को झाँकती है तथा उसे अपना रूप दिखाती है। इस प्रकार जब आत्मारूपी प्रेमिका और परमात्मारूपी प्रियतम की आँखें चार होती हैं अर्थात् दोनों का परस्पर मिलाप होता है, तो जीव को सुखों का सागर प्राप्त हो जाता है। अंतर में परमात्मारूपी दूल्हे से मिलने पर आत्मारूपी दुलहन सुशोभित होती है और दिल ही दिल दोनों मिल जाते हैं। दरिया साहिब कहते हैं, उनके भाग्य धन्य हैं जो इस प्रकार पतिव्रता स्त्री का धर्म निभाते हैं।

सोच किये किछु काम नहिं, निःसोच रहो करु रोच पिया ते॥
भव सिन्धु जो पार उतारि दिहें, जल बोहित बारि अवलम्ब लिया ते॥
तंत्र न मंत्र न योग न जाप है, पाप हरे मल जात हिया ते॥
'दरिया' दिल देखि विचारि कहा, एक नाम तुरी लेसि लेत दिया ते॥[71]

सोच=चिंता; **किछु**=कुछ; **निःसोच**=चिंता-मुक्त; **करु**=करो; **रोच**=प्रेम; **पिया**=प्रियतम; **भव सिन्धु**=संसाररूपी सागर; **दिहें**=देंगे; **बोहित**=जहाज़; **अवलम्ब**=सहारा; **हरे**=नष्ट होना; **मल**=मैल; **हिया ते**=हृदय से; **तुरी**=बत्ती; **लेसि**=जलाना; **दिया**=दीया।

चिंता करने से कोई काम नहीं होता, बस अपने प्रियतम परमात्मा से प्रेम करके चिंता-मुक्त हो जाओ। जैसे जहाज़ का सहारा लेने से समुद्र को पार किया जा सकता है, उसी प्रकार प्रियतम का सहारा भी जीव को संसार-सागर के जल से पार उतार देता है। दरिया साहिब कहते हैं कि मैंने प्रत्यक्ष अनुभव करके तथा अच्छी तरह सोच-विचारकर यह बात कही है

कि जब सतगुरु के ज्ञानरूपी दीपक से अपने अंतर में नाम की बत्ती को जला दिया जाता है तो बिना किसी यंत्र, मंत्र, योग या जप किए ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और अंतर की मैल दूर हो जाती है।

प्रीतम प्रीति बसे दिल मेरो, सो सुन्दर सोभा सुगंध बिराजै॥
गये सब लाज समाज संकोच सो, चात्रिक होय चित बुन्द में गाजै॥
हौं पत्नि पति हो तुम लायक, लोचन लाल चित्ते दृग राजै॥
'दरिया' जो कहे पिया प्रीति भली, ललनी बीच चंद है चारु जो छाजै॥[72]

बसे=बस गया; **दिल**=हृदय; **बिराजै**=सुशोभित हो रहा है; **गाजै**=हर्षित होना; **हौं**=मैं; **लायक**=योग्य; **लोचन**=नेत्र; **लाल**=प्रियतम; **चित्ते**=चित्त; **दृग**=आँखें; **दृग राजै**=आँख में सुशोभित; **ललनी**=प्रियतमा; **चंद**=प्रियतमरूपी चंद्रमा; **चारु**=सुंदर; **छाजै**=सुशोभित होना।

मेरे हृदय में अपने प्रियतम परमात्मा का प्रेम बस गया है जो अपनी सुंदरता, शोभा और सुगंध के साथ सुशोभित हो रहा है। इस प्रेम के कारण मेरी सारी लोक-लाज और समाज की हिचक चली गई है। मैं पपीहा बन गई हूँ जिसका चित्त स्वाति की बूँद को पीकर ही ख़ुश होता है। हे परमात्मा! मैं पत्नी हूँ और तुम मेरे योग्य पति हो। अब तो मेरे चित्त यानी हृदय की आँख में मेरे प्रियतम के नयन सुशोभित हो रहे हैं। यह आत्मा और परमात्मा का प्रेम भी क्या ख़ूब है जिसमें प्रियतमा के अंदर ही प्रियतमरूपी सुंदर चाँद सुशोभित होता है।

पतिव्रत करे सत धर्म सोई, पत्नि पति प्रेम निबाहि दई।
मगु जोहत है मुख लालन को, लघु बात नहिं निजु प्रेम लई॥
सेवत चरन चकोर ज्यों चंदहिं, कंज के पुंज में प्रीति नई।
'दरिया' जो कहे चित चातृक है, एक बुन्द के आस में त्रास गई॥[73]

सत धर्म=सच्चा धर्म; **मगु...है**=राह देखती है; **लालन को**=प्रियतम; **लघु बात**=ओछी बात; **सेवत**=सेवा या उपासना करना; **कंज...पुंज**=कमल का समूह, सतगुरु के चरण; **आस**=आशा; **त्रास**=कष्ट, दुःख।

सच्चे पतिव्रत धर्म का पालन करके पत्नी ने पति के प्रति अपने प्रेम को निभा लिया है। वह अपने प्रियतम का मुख देखने के लिए राह देखती रहती है। अपने प्रेम में लीन वह कोई ओछी बात मुँह से नहीं कहती। वह अपने प्रियतम सतगुरु के चरणों की सेवा में ऐसे लीन रहती है जैसे चकोर चंद्रमा के दर्शन करने में लीन रहता है। इन चरण-कमलों में उसका प्रेम नित नया होता रहता है। उसका चित्त चातक के समान अपने प्रियतम से उसके दर्शन की एक बूँद माँगता रहता है और इसे पाने की आशा में उसे कोई भी कष्ट अनुभव नहीं होता।

7

मन

त्रिलोकी को नचानेवाला करामाती मन

जीव जब से इस संसार में आया है तब से मन उसके साथ लगा हुआ है। इस सृष्टि के अंदर आदि से अंत तक मन से हमारा पिंड नहीं छूटता। तीनों लोकों में मन का ही राज है। यह ऋषि-मुनि तक को अपने इशारे पर नचाता है। रूप-रेखा से रहित मन बिना किसी को दिखाई दिए सबके गले में अपनी फाँस डाल देता है। इसके भुलावे में पड़े जीव इसे ही परमात्मा समझकर इसकी पूजा करते हैं, पर यह अपनी पूजा करनेवालों का भी विनाश ही करता है। मन काल का ही रूप है। वह कालरूपी क़साई जीवरूपी बकरे को केवल मारकर खाने के लिए ही पालता है। जीव बार-बार इस संसार में जन्म लेता और काल का आहार बनता है। सभी इस संसार में मरते हैं, पर यह मन नहीं मरता।

इस मन को भली-भाँति पहचानकर इसे वश में किए बिना हमारे कष्टों का कभी अंत नहीं हो सकता। पर मन की चाल इतनी सूक्ष्म और जटिल है कि इसे पहचानना अत्यंत कठिन है। केवल संत-सतगुरु की दया से ही जीव इस करामाती मन की चाल को पहचानकर इसके कठिन जाल से निकल पाता है:

एह मन आदि अंत चलि आवै। एह मन सुर मुनि ही नचावै॥
मन चिन्हला बिनु बड़ दुख पावै। मन चिन्हला बिनु मूल गंवावै॥
मन चिन्हहु मन ग्यान संजोगी। मन चिन्हला बिनु बहुत बियोगी॥
मन के सिव बिरंचि सभ लागे। मनहीं के जोगी सभ जागे॥

मनहीं बेद कितेब सुनावै। मनहीं खट दरसन सभ गावै॥
सतगुर भेद बुझहु निजु बानी। जेहि खोजे होए निरमल ग्यानी॥...
मन परमेसर मन है राजा। मनहीं तीनि लोक महं छाजा॥

मन संसै सागर भयो, बूड़त अगम अथाह।
सतगुर दया तरनी दियो, उतरि जाए भवपार॥[1]

आदि=आरंभ; **सुर**=देवता; **मन...बिनु**=मन को पहचाने बिना; **चिन्हहु**=पहचानो; **ग्यान संजोगी**=ज्ञान से जुड़ने की इच्छावाले; **बियोगी**=दु:खी; **बिरंचि**=ब्रह्मा; **बेद**=वेदों की संख्या चार है–ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद; **कितेब**=सामी धर्मों के चार ग्रंथ–यहूदियों के ज़बूर और तौरेत, ईसाइयों की बाइबल तथा मुसलमानों का क़ुरान शरीफ़; **खट दरसन**=षट् दर्शन–सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा; **बुझहु**=जानो; **निजु बानी**=अपने अंतर का शब्द; **परमेसर**=परमेश्वर; **छाजा**=छाया हुआ है; **संसै सागर**=भय का सागर; **भयो**=हो गया; **बूड़त**=डूबना; **अगम**=जिसको पार न किया जा सके; **तरनी**=नाव; **भवपार**=संसार से पार।

इस सृष्टि के अंदर आदि से अंत तक मन जीव के साथ लगा रहता है। यह देवता, मनुष्य और मुनियों तक को अपने इशारे पर नचाता है। इसे पहचाने बिना जीव बहुत दु:ख पाता है और अपने मूल यानी परमात्मा को भी खो देता है। यदि परमात्मा के ज्ञान से जुड़ने की इच्छा है तो मन को पहचानो। इसे पहचाने बिना जीव बहुत दु:खी रहता है। शिव, ब्रह्मा तथा अन्य सभी मन के पीछे लगे हुए हैं। सभी योगी मन के अनुसार ही चल रहे हैं। वेद, कितेब और षट्-दर्शन भी मन ने ही बनाए हैं। इस मन से उबरने का उपाय यही है कि सतगुरु की शरण में जाकर अपने अंतर में स्थित शब्द की खोज की जाए। इसे खोज लेने से जीव पवित्र होकर परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वरना मन तो स्वयं परमेश्वर बनकर राज कर रहा है तथा तीनों लोकों में छाया हुआ है। मन जीव के लिए भ्रमों का ऐसा सागर बन

गया है जिसकी अथाह गहराई में वह डूबा रहता है। जब सतगुरु दया करके जीव को नामरूपी नाव देते हैं तो यह संसार-सागर से पार उतर जाता है।

मन बीसंभर मन जगदीसा। मन अवतार धरि मन है ईसा॥
यह मन कौन कौन अरुझाना। सनकादिक ब्रम्हादिक जाना॥[2]

बीसंभर=विश्वंभर, विश्व का भरण पोषण करनेवाला-विष्णु ; **जगदीसा**=परमात्मा; **मन...धरि**=मन ही अवतार धारण करता है; **ईसा**=ईश, ईश्वर; **अरुझाना**=उलझाया; **सनकादिक**=ब्रह्मा के चार पुत्र–सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार; **ब्रम्हादिक**=ब्रह्मा आदि त्रिदेव।

मन विष्णु है और मन ही परमात्मा बना हुआ है। वही अवतार धारण करता है तथा अपने आप को ईश्वर बताता है। इस मन ने किस-किस को नहीं उलझाया? ब्रह्मा, उसके सनकादिक चार पुत्रों, विष्णु और शिव के उलझाने की बात सभी जानते हैं।

मन करता यहि जीव के साथा। छन छन पल पल सभ के साथा॥
जो मन चीन्है माया ऐसा। खरचै खाए भवन मे बैसा॥[3]

करता=कर्ता, रचयिता; **साथा**=साथ; **छन**=क्षण; **चीन्है**=पहचाने; **माया ऐसा**=माया के ही समान; **खरचै खाए**=सांसारिक व्यवहार करते हुए भी अनासक्त रहने की ओर संकेत है; **भवन**=अंतर में; **बैसा**=बैठाना।

मन, जिसे भ्रमवश संसार का रचयिता माना जाता है, हरदम जीव के साथ लगा हुआ है। जो माया के समान मन के धोखे को पहचान लेता है, वह अपने सभी सांसारिक व्यवहारों को अनासक्त भाव से निभाता हुआ अपने हृदयरूपी भवन में स्थिर होकर बैठ जाता है।

मन की जार करे तन छार, छलि छलि जीव के इमि करता।
फेरि धरी मारे नर्कहिं डारे, सो हरि जग में है बरता॥

रूप न रेखा किमि करि देखा, दर्स बिना जग किमि तरता॥
सब कल खैंचत पल मैं ऐंचत, ज्यों पुतरी पेखना धरता॥[4]

जार=जलाना; **छार**=भस्म; **छलि**=छल करना; **इमि**=इस प्रकार, यह; **धरी**=पकड़कर; **डारे**=डालता है; **हरि**=परमात्मा; **बरता**=बरत रहा है; **किमि करि**=किस प्रकार; **तरता**=पार करना, पार पाना; **कल खैंचत**=नकेल खींचता है; **ऐंचत**=खींचना; **पुतरी**=पुतली; **पेखना**=खेल-तमाशा दिखानेवाला; **धरता**=हाथ में पकड़े रखता है।

मन के जलाए हुए सभी जलकर भस्म हो जाते हैं। यह जीवों से छल करता है, उन्हें पकड़कर मारता है तथा नरकों में डाल देता है। वही मन संसार में परमात्मा बनकर बरत रहा है। उसका न तो कोई रूप है और न ही कोई निशानी है, तो भला उसे कैसे देखा जाए? जब मन को किसी ने देखा ही नहीं तो कोई उससे पार कैसे पा सकता है? वह पल भर में जीव की नकेल ऐसे खींचता है जैसे खेल-तमाशा दिखानेवाला अपने हाथ में पकड़ी हुई पुतली की डोर को खींचा करता है।

मन चंचल चतुर चित ऐसे। मन के साधि बने तन कैसे॥
मन की बुद्धि भर्म सभ करई। चीन्हे बिना सरबस सब हरई॥

मन परमेश्वर जानि के, करहिं भजन मुनि संत।
बिना बिबेक बिचार बिन, होत बीगुरुचन अंत॥[5]

साधि=साधना, वश में करना; **सरबस**=सर्वस्व; **हरई**=छीन लेता है; **बीगुरुचन**=कठिनाई या मुसीबत में पड़ना।

मन चंचल और चतुर वृत्ति का है, भला इस शरीर द्वारा उसे कैसे वश में किया जा सकता है? मन अपनी बुद्धि के द्वारा सारे भ्रम उत्पन्न करता है। यदि इसे न पहचाना जाए तो यह जीव का सर्वस्व छीन लेता है।

मुनिजन अपने मत के अनुसार मन को ही भ्रमवश परमेश्वर समझकर उसी की भक्ति करते हैं। इस प्रकार वे भले-बुरे का विचार किए बिना अंत में मुसीबत में पड़ते हैं।

सो मन रहु ब्रह्मा के पासा। सो मन सिव संग करै बिलासा॥...
सो मन चारों बेद बिस्तारा। सो मन ब्यास ग्रंथ अनुसारा॥

सो मन तीनी लोक में, काहु परा नहिं चीन्ह।
धन साहब सतगुर धनी, मोहि लखाए जो दीन्ह॥[6]

पासा=पास, साथ; **बिलासा**=मौज उड़ाना; **ब्यास**=पाराशर और सत्यवती के पुत्र व्यास जी। उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना की है; **परा**=पड़ा; **चीन्ह**=पहचान; **सतगुर धनी**=सतगुरुरूपी स्वामी; **मोहि**=मुझे; **लखाए**=दिखाना।

यह मन ब्रह्मा जी के साथ भी है और शिव जी के साथ भी मौज उड़ाता है। मन ने ही चारों वेदों का विस्तार किया है। व्यास जी के रचे हुए महान् ग्रंथ श्रीमद्भागवत महापुराण का आधार भी मन ही है। यह मन तीनों लोकों में व्याप्त है परंतु कोई भी इसे पहचान नहीं पाया। धन्य हैं मेरे स्वामी सतगुरु! जिन्होंने मुझे इस मन (की असलियत) को दिखा दिया है।

भुलि भवन में सबै भुलाना। कारन मन करता कै जाना॥
सो मुनि निगम निरुपनि कियेउ। बेद पुरान मता यह ठयेउ॥[7]

भुलि भवन=चौरासी लाख योनियों की भूलभुलैयाँ; **कारन मन**=मन के तीन रूप हैं—स्थूल मंडल (पिंड) में कार्यशील मन को पिंडी मन, सूक्ष्म मंडल (अंड) में कार्यशील, अंडी मन तथा कारण मंडल (ब्रह्मांड) में कार्यशील, कारण मन या ब्रह्मांडी मन कहलाता है; **निगम**=वेद; **निरुपनि**=विवेचना या व्याख्या करना; **ठयेउ**=स्थापित किया।

कारण मंडल अर्थात् अंतर में ब्रह्मांड में कार्यशील, मन को ही सृष्टिकर्ता परमात्मा समझकर सभी जीव चौरासी लाख योनियों की भूलभुलैयाँ में भूले हुए हैं। इसी भ्रम में पड़े हुए मुनियों ने वेदों की व्याख्या करके सभी वेदों और पुराणों में भ्रामक मत को स्थापित किया है।

मन करता कहँ सुमिरहिं, सो मन करै बिनास।
रुपरेखा देखे बिना, डारत है ग्रिव फाँस॥[8]

करता=कर्ता, सृष्टिकर्ता; **बिनास**=विनाश; **डारत है**=डालता है; **ग्रिव**=गर्दन; **फाँस**=फंदा।

मन को सृष्टिकर्ता मानकर लोग उसका सुमिरन करते हैं। पर यह मन तो सबका विनाश करता है। बिना किसी रूप और पहचान वाला यह मन जीव के गले में फंदा डाल देता है।

मन नहिं मुआ मुआ सब कोई। करामति सब मन ते होई।
सो मन करम है काल कसाई। अज्या पालि चीक फिरि खाई॥[9]

करामति=करामातें, चमत्कार; **होई**=होती है; **अज्या**=बकरी; **पालि**=पालकर; **चीक**=बकरे पालकर उसका मांस बेचनेवाला, क़साई।

सभी जीव मर जाते हैं परंतु मन नहीं मरता। संसार में सारे चमत्कार मन ही करता है। इस मन का कर्म उस कालरूपी क़साई जैसा है जो बकरे को पालकर फिर उसका मांस बेचता और खाता है।

संतो यह मन को निरूआरी।
सनकादिक ब्रह्मादिक नारद कहत भया युग चारी॥...
फिरे फिरंग फहम नहिं आवे एक अनंत होय डारी।
ज्यों पेखना पुतरी कल खैंचे मचि रहे नर नारी॥
योगी यती सभ पीर औलिया सुर नर मुनि सभ झारी।

ऋक् यजु साम अथर्वन थाके शेष सहस्र फन धारी॥
पंडित पढ़ि-पढ़ि अर्थ विचारहिं खग मीन पंथ दुवो भारी।
अगम अथाह थाह किमि पावे 'दरिया' कहा पुकारी॥[10]

निरूआरी=सुलझाना, छुटकारा पाना; **सनकादिक**=ब्रह्मा के चार पुत्र – सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार; **ब्रह्मादिक**=ब्रह्मा आदि त्रिदेव; **भया**=हो गए; **युग चारी**=चार युग – सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग; **फिरंग**=घर से संन्यास लेकर घूमने-फिरनेवाला साधु; **फहम...आवे**=समझ नहीं आता; **डारी**=डालता है; **पेखना**=कठपुतली का खेल तमाशा दिखानेवाला; **पुतरी**=कठपुतली; **कल**=नकेल, डोर; **मचि**=झूलना; **यती**=विरक्त, जिसने इंद्रियों को वश में किया हुआ हो; **पीर**=आध्यात्मिक गुरु; **औलिया**=फ़क़ीर; **सुर**=देवता; **नर**=मनुष्य; **झारी**=उजाड़ना; **ऋक्...अथर्वन**=चारों वेद; **थाके**=थक गए; **शेष... धारी**=हज़ार फनों वाला साँप शेषनाग, अंतर में स्थित पहले रूहानी मंडल सहस्रदल कमल के स्वामी निरंजन को ही एक हज़ार फनों वाला साँप, शेषनाग भी कहते हैं; **खग...पंथ**=जैसे मछली पानी की धारा के विपरीत भी ऊँची छलाँग लगा लेती है, उसी प्रकार ब्रह्म से ऊपर आत्मा की चाल मछली की तरह होती है। सतलोक में आत्मा की चाल पक्षी की तरह तेज़ होती है। ब्रह्मलोक से ऊपर के मंडलों में जानेवाले इन दो मार्गों को मीन-मार्ग और विहंगम-मार्ग कहते हैं जिन तक पहुँचना बहुत कठिन है; **किमि**=किस प्रकार।

हे सज्जन पुरुषो! इस मन की गुत्थी को सुलझाओ। सनकादिक मुनि, ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शिव जी तथा नारद जी को कहते-कहते तो चारों युग बीत गए, परंतु इस मन से भला कौन छुटकारा पा सका है? लोग घर से संन्यास लेकर साधु बनकर घूमते फिरते हैं, परंतु फिर भी उन्हें कुछ भी समझ नहीं आता। यह मन है कि एक होते हुए भी अनेक रूप धारण करता है। जैसे कठपुतली का तमाशा दिखानेवाला कठपुतली की डोर खींचकर उन्हें

नचाता है, उसी प्रकार सभी स्त्री-पुरुष मन के इशारों पर झूल रहे हैं। योगी, विरक्त, पीर-फ़क़ीर, देवता, साधारण मनुष्य और मुनि – इन सबको मन ने उजाड़ा है। चारों वेद तथा हज़ार फनों वाले शेषनाग भी मन के आगे हार गए। पंडित शास्त्रों को पढ़कर उसके अर्थ पर विचार करते हैं, लेकिन मन पर विजय पाने के लिए ब्रह्मलोक से ऊपर के मंडलों में जानेवाले मीन-मार्ग और विहंगम-मार्ग तक पहुँचना उनके लिए बहुत कठिन है। दरिया साहिब पुकारकर कहते हैं कि ये मन के पीछे चलनेवाले पंडित उस अगम-अपार परमात्मा की थाह कैसे पा सकते हैं?

मन के कठिन फंद

सारा संसार मन के फंदे में पड़ा हुआ है। एक मन के ही कारण सभी कष्ट भोग रहे हैं। मन एक होते हुए भी अनंत रूप धारण कर जीवों को ठगता है। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि और योगी भी मन के धोखे से नहीं बच पाए। काम-क्रोध आदि विकार मन से ही उत्पन्न होते हैं। मन ही अनेक प्रकार के कर्मकांड का जाल फैलाकर जीवों को बाहरी धर्म-कर्म में उलझाता है जिससे वे इसके चंगुल से निकल नहीं पाते। बहिर्मुखी क्रियाओं में उलझे हुए जीव बार-बार संसार में जन्म लेते और कालरूपी मन के शिकार होते हैं।

यह चतुर और चंचल मन किसी की भी पकड़ में जल्दी नहीं आता। इस निराकार मन की कोई छाया तक नहीं दिखती। आकाश में उड़नेवाले पक्षी और पानी में तैरनेवाली मछली की तरह मन अपने आने-जाने का कोई पदचिह्न भी नहीं छोड़ता। इससे मन का पीछा करना और इसे पकड़ पाना अत्यंत ही कठिन है।

त्रिकुटी में निवास करनेवाला यह मन समस्त त्रिलोकी में दौड़ लगाता है और पल-पल में कपट की अनेक चालें चलता है। काम और क्रोध इसके दो बड़े प्रबल योद्धा हैं। काम छिपकर अपना मोहक बाण मारता है और क्रोध विकराल रूप धारण करके प्रकट भाव से धावा बोलता है। इन दोनों से बच पाना बड़े-बड़े योगियों और तपस्वियों के लिए भी कठिन है।

केवल सतगुरु की शरण में आने पर ही मन की पहचान होती है और उनकी बताई शब्द यानी नाम की युक्ति से मन वश में आ जाता है:

मन के फंद परा संसारा। जाल मीन ज्यों करै अहारा॥
ऐसे काल सकल जिव मारै। उपजनि बिनसनि नरकहिं डारै॥[11]

फंद=जाल; **परा**=पड़ा; **मीन**=मछली; **अहारा**=आहार; **सकल**=सारे, सभी; **उपजनि बिनसनि**=जन्म-मरण; **डारै**=डालता है।

संसार मन के जाल में फँसा हुआ है। वह जाल में फँसी मछली की तरह जीवों का आहार करता है। इस प्रकार काल सभी जीवों को मारता है। वह उन्हें बार-बार जन्म और मृत्यु देता है तथा नरकों में डालता है।

तीनि लोक है मन कर ठाटा। मनहिं बिसंभर रोकै बाटा॥...
देखे कोइ नहिं सभे चोरावै। मुनि ग्यानी कोइ भेद न पावै॥
बड़े जोगी जोग बिधाना। उन्हहु के घैंचि मारै जम बाना॥
कोइ नहिं बाचे जम के फांसा। जो नहिं होए सतगुर के दासा॥[12]

मन कर=मन की; **ठाटा**=तड़क-भड़क, लंबी चौड़ी रचना, व्यवस्था; **बिसंभर**=पोषण करनेवाला; **रोकै बाटा**=राह रोकता है; **चोरावै**=छिपाना; **जोग बिधाना**=योग को बड़े विस्तार के साथ करना या समझाकर कहना; **उन्हहु के**=उनको भी; **घैंचि**=खींचकर; **जम**=यम; **बाना**=वाण; **बाचे**=बच सकता; **दासा**=सेवक।

तीन लोक मन की ही रचना है। मन को संसार का पोषक माना जाता है, परंतु वही जीव की राह रोकता है। उसे कोई नहीं देख पाता, पर वह सभी की चोरी करता है। कोई ज्ञानी-मुनि भी उसका भेद नहीं जान पाते। जिन बड़े-बड़े योगियों ने योग की विधि को बड़े विस्तार के साथ समझाकर कहा है, उनको भी यमराज ने खींचकर अपने बाणों से मारा है। जब तक

कोई सतगुरु का सेवक नहीं बनता अर्थात् उनकी शरण में नहीं आता, तब तक वह यमराज के फंदे से नहीं बच सकता।

मन के रंग बिरला केहु जाना। जाके सुरति सांच है ग्याना॥
एह मन चंचल चतुर है चोरा। मन मुरीद है मनहि कठोरा॥
मन बुधि बल कथै एह ग्याना। मन अनंत रूप धरे जहाना॥
एह मन काम क्रोध सुख भोगा। मन जोगी है मन है रोगा॥
मन ही त्रिगुन धरे एह छंदा। सुर नर मुनि परे मन के फंदा॥
एह मन आवै एह मन जाई। एह मन एह जग जिव सभ खाई॥[13]

रंग=कलाबाज़ियाँ; **केहु**=कोई; **जाके**=जिसके; **सुरति**=सुरत, आत्मा; **सांच**=सच्चा; **एह**=यह; **चोरा**=छिपकर काम करनेवाला, जिसे बाहर से देखने पर धोखा खा जाएँ; **मुरीद**=शिष्य, मुर्दे के समान, मुलायम; **कथै**=कहता है; **धरे**=धारण करता है; **जहाना**=संसार में; **रोगा**=विकार; **त्रिगुन**=माया की तीन अवस्थाओं को तीन गुण कहा जाता है। ये हैं—सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण; **छंदा**=छल, धोखा; **सुर**=देवता; **नर**=मनुष्य; **परे**=पड़े; **जिव**=जीव।

मन की कलाबाज़ियों को कोई ऐसा बिरला जीव ही जान सकता है जिसे अपनी सुरत द्वारा सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह मन चंचल, चतुर और छिपकर काम करनेवाला है। यह मुलायम भी है और कठोर भी। मन ही बुद्धि के बल पर ज्ञान का वर्णन करता है। यह संसार में अगणित रूप धारण करता है। काम और क्रोध भी मन के ही विकार हैं। यही सुखों का भोग भी करता है। कभी यह योगी बन जाता है, पर असल में यह एक विकार है। मन ही तीनों गुणों के सहारे छल करता है। देवता, मनुष्य और मुनिजन—सभी मन के फंदे में पड़े हुए हैं। यह मन ही आवागमन का कारण है। यही संसार के सभी जीवों का आहार करता है।

एके मन डहकै संसारा। छन महं निकट होए निनारा॥
मन के रंग बुझै जनि कोई। निरमल होए निरंतर सोई॥
एह मन जाल जंजाल जहाना। सो मन चीन्हि होखहु निजु ग्याना॥[14]

डहकै=धोखा खाना; **छन**=क्षण; **महं**=में; **निनारा**=अलग या दूर; **रंग**=कलाबाज़ियाँ; **बुझै**=परख होना, समझना; **जनि**=व्यक्ति, जीव; **जंजाल**=झमेला; **जहाना**=संसार; **होखहु**=होना; **निजु**=अपना।

एक मन के कारण ही सारा संसार धोखा खा रहा है। क्षण भर में यह निकट होता है तो अगले ही क्षण दूर हो जाता है। जिसे मन की कलाबाज़ियों की परख हो जाती है, वही सदा निर्मल रह सकता है। संसार में इस मन के जाल का ही झमेला है। इसे पहचानने पर ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

मन अझुरे सझुरे नहिं, रचि रचि कातिवो सूत।
चारि वेद कथनि किया, सुनहु पंडित के पूत॥[15]

अझुरे=उलझा हुआ; **सझुरे**=सुलझाया हुआ; **रचि रचि**=लग्नपूर्वक, सजाकर; **कातिवो**=कातना; **चारि वेद**=चारों वेद; **कथनि किया**=पाठ किया; **पंडित...पूत**=पंडित के बच्चे।

हे पंडितों की आज्ञा में रहनेवाले जीव! जिस प्रकार अनेक प्रकार से सजाकर काता हुआ महीन सूत उलझने पर फिर नहीं सुलझाया जा सकता, उसी प्रकार चारों वेदों को उलझाकर कहा गया है। इन्हें सुलझाया नहीं जा सकता।

मन की संघी घट घट में रहई। मो में तुम में सब में अहई॥...
आवत मन के देखै न कोई। घट में पइठे परगट होई॥[16]

संघी=संयोग, जुड़ा होना, साथ होना; **घट घट**=हर आदमी के अंदर; **अहई**=है; **पइठे**=घुसना; **परगट**=दिखाई देना।

हर आदमी अपने अंदर में मन से संबंधित है। वह हममें-तुममें सबमें है। मन को आते हुए कोई नहीं देख सकता। वह तो उन्हें दिखाई देता है जो शरीर के अंतर में प्रवेश करते हैं यानी अंतर्मुख हो जाते हैं।

मन के रंग चिन्हें चित लाई। अवघट घाट लखे इमि पाई॥
खग औ मीन जो पंथ में आवै। पीछै दृष्टि बाट नहिं पावै॥
किमि करि अयउ किमि करि गयऊ। यह मन के प्रतिमा नहिं पयऊ॥
घट घट सब में व्यापक अहई। मुनी पंडित कंह इमि करि दहई॥[17]

रंग=कलाबाज़ियाँ; **चित लाई**=ध्यानपूर्वक; **अवघट घाट**=दुर्गम स्थान; **लखे**=देखना; **इमि**=इस तरह; **खग**=पक्षी; **किमि करि**=किस प्रकार; **अयउ**=आया; **गयऊ**=जाएगा; **प्रतिमा**=परछाईं, पद चिह्न; **दहई**=जलाना।

मन की कलाबाज़ियों को ध्यानपूर्वक पहचानना चाहिए। इस तरीक़े से अर्थात् मन को पहचानकर ही अंतर में दुर्गम स्थान को देखा जा सकता है। मन पक्षी और मछली की तरह आता है, जिनके जाने के बाद पीछे देखने पर उनके रास्ते का पता नहीं चलता। मन किस प्रकार आया और चला गया, यह जानने के लिए उसके पदचिह्नों या उसकी परछाईं का कोई पता ही नहीं चलता। वह सबके अंतर में व्याप्त है तथा इस प्रकार मुनियों और विद्वान पंडितों तक को जलाता रहता है।

मन मकरंद माथे बसे, त्रिकुटी संगम तीर।
पल-पल छन छन बुद्धि रचे, काम क्रोध का बीर॥
दुई भ्राता है भवन में, लघु दीर्घ सभ के पास।
कंद्रप लघु दीर्घ क्रोध है, सुनो बचन निजु दास॥
क्रोध वीर रन में लरै, मुख पर तीर बिराजु।
तब कंद्रप कंद लाग्यो, छपित भये यह भागु॥[18]

मन मकरंद=मनरूपी भौंरा; **बसे**=निवास करता है; **संगम**=इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम जिसे मानसरोवर या त्रिवेणी भी कहते हैं; **छन**=क्षण; **बीर**=योद्धा; **भ्राता**=भाई; **भवन में**=शरीररूपी घर में; **कंद्रप**=काम; **लघु**=छोटा; **दीर्घ**=बड़ा; **लरै**=लड़े; **बिराजु**=सुशोभित होना; **कंद**=विनाश करनेवाला; **छपित**=छिप जाता है; **भागु**=भागकर।

हमारे माथे के अंदर दूसरे रूहानी मंडल त्रिकुटी या ब्रह्मलोक में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगम तट पर मनरूपी भौंरे का निवास है। वहीं से यह अपने दो प्रधान योद्धाओं – काम और क्रोध के माध्यम से हर क्षण अपनी चाल चलता रहता है। इनमें काम छोटा भाई है तथा क्रोध बड़ा भाई। ये दोनों सबके शरीर में निवास करते हैं। क्रोधरूपी योद्धा लड़ाई करता है और उसके मुख पर बाण सुशोभित होते हैं, जबकि जीव का विनाश करनेवाला काम जीव को अपना शिकार बनाकर भागकर छिप जाता है।

काम क्रोध दुई वीर है भाई। इनकी गति बिरले लखि पाई॥
कन्दर्प लघु दीर्घ क्रोध विचारी। कैसे कहौं करिय निरुआरी॥...
जब हृदय में करे अंकुरा। अति प्रचण्ड होय होय बलबीरा॥
लरै भीरै बहु बात सुनावै। अगिनि सरूप क्रोध वहाँ धावै॥
कन्द्रप कंदला जाय छिपाई। अति त्रास भौ निकट ना आई॥
क्रोध के तेज काम इमि माना। स्तुति बहुनिधि करे बखाना॥
क्रोध सीतल तन के तप गयऊ। तब कन्द्रप प्रगट होय रहेऊ॥
कामिनि कनक शोभा बहु भाँती। चित्र उरेह देख चहुं कांती॥
भौहें बान कमान जो ताना। तब कन्द्रप उठ भये दिवाना॥[19]

गति=चाल; **लखि**=समझना; **कन्दर्प**=काम; **लघु**=छोटा भाई; **दीर्घ**=बड़ा भाई; **निरुआरी**=अलग-अलग समझाकर कहना; **अंकुरा**=अंकुरित होना;

बलबीरा=शक्तिशाली वीर; **लरै**=लड़ाई करता है; **भीरै**=भिड़ जाता है; **धावै**=भागना; **कन्द्रप कंदला**=काम की नई कोंपल; **छिपाई**=छिपी हुई; **अति...भौ**= अत्यंत डरकर; **तेज**=तेजस्विता; **इमि माना**=इस प्रकार मान लेता है; **तन...तप**=शरीर की गर्मी, जलन या उग्रता; **कामिनि**=कामुक स्त्री; **कनक**=सोना, धन-दौलत; **चित्र उरेह**=जैसे चित्रकारी की गई हो; **चहुं कांती**=चारों ओर; **भौहें बान**=भौंहों के बान; **दिवाना**=पागल।

काम और क्रोध दो ऐसे योद्धा हैं जिनकी चाल कोई विरला ही समझ पाता है। इनमें काम छोटा भाई है तथा क्रोध बड़ा भाई। इनके बारे में अलग-अलग समझाकर कैसे कहूँ? क्रोध का अंकुर हृदय में उत्पन्न होते ही मनुष्य सोचता है कि मैं प्रचंड शक्तिशाली वीर हूँ। अग्नि के समान क्रोध जिसके अंतर में दौड़ता हुआ पहुँचता है, वह लड़ाई करता है, सभी से भिड़ पड़ता है और अनेक प्रकार की तीखी बातें करता है। काम की कोंपल अंतर में छिपी रहती है। काम के वश हुआ जीव अत्यंत डरा हुआ-सा क्रोधी के पास आता है। इस प्रकार काम पहले क्रोधी जीव की तेजस्विता को स्वीकार कर लेता है तथा अनेक प्रकार से उसकी स्तुति करता है। जब क्रोध शांत हो जाता है तब काम प्रकट होकर सामने आ जाता है। कामुक स्त्री और धन-दौलत की शोभा बहुत अधिक होती है। चारों ओर जिधर भी देखो इनका सौंदर्य इस प्रकार दिखाई देता है जैसे सुंदर चित्रकारी की गई हो। जब वासनात्मक दृष्टि से नारी अपनी भौंहों के तीर-कमान को तान लेती है तो काम-वासना के जागने से मनुष्य पागल हो उठता है।

मन की झांई काम बिगारे॥ जीव लेइ परले कर डारे॥...
मोहनी माया होए परसंगा। कबहिं के काल करे जिव भंगा॥[20]

झांई=परछाईं या धोखा; **बिगारे**=बिगाड़ना; **लेइ**=लेकर; **परले**=विनाश; **डारे**=डालता है; **मोहनी**=मोहित करनेवाली; **माया**=रचना की उत्पत्ति में कार्यशील भ्रामक तत्त्व को माया कहा जाता है। माया ही जीव को झूठे और नाशवान् संसार को सत्य होने का भ्रम पैदा करके रचना के मोह

में फँसाए रखती है; **परसंगा**=प्रसंग, लगाव, आसक्ति; **काल**=परमात्मा द्वारा रचित त्रिलोकी की रचना करनेवाली शक्ति। काल ही परिवर्तन, जन्म-मृत्यु, कर्म-फल आदि के नियमों को लागू करता है। काल और माया जीव को संसार में फँसाए रखने का प्रयास करते हैं; **भंगा**=नाश करना।

मन का धोखा जीव का कार्य बिगाड़ता है और जीव के लिए विनाश का कारण बनता है। संसार में जब जीव मोहित करनेवाली माया में आसक्त होता है तब काल उस जीव का विनाश कर देता है।

मन की झाँई झलक है, करे पलक मंह चोट।
ऊपर चिकन चातुरी, भीतर भरा है खोट॥[21]

झाँई=परछाईं या धोखा; **मंह**=में; **चिकन**=मोहक, स्वच्छ; **चातुरी**=चतुर; **खोट**=विकार, बुराई।

मन का धोखा प्रकट होकर पल भर में ही जीव पर चोट करता है। मन के धोखे में पड़े हुए जीव बाहर से देखने पर तो चतुर और मोहक नज़र आते हैं, जबकि उनके अंतर में विकार भरे रहते हैं।

मन के लागे करे बिनासा। सुर नर मुनि ग्रिव डारे फांसा॥
स्रिंगी रिखि जो मन के लागै। मनमत ग्यान जोग जो जागै॥*
बस्ती छोड़ि जंगल के गएऊ। जोगमता तहाँ जो ठएऊ॥

* पौराणिक कथाओं के अनुसार शृंगी ऋषि वन में रहकर घोर तपस्या किया करते थे तथा कभी किसी राजदरबार में नहीं आते थे। वह खाने के नाम पर केवल एक वृक्ष को जीभ छुआ देते थे। उन्हें राजा दशरथ को पुत्र प्राप्ति हेतु यज्ञ कराने के लिए राजदरबार में लाने के लिए भेजी गई वेश्या ने उस वृक्ष पर एक उँगली मीठे की लगा दी जिसे वह रोज़ जीभ से छूते थे। मीठे स्वाद को पाकर ऋषि दिन में कई-कई बार उस पर जीभ मारने लगे। धीरे-धीरे वेश्या ने उन्हें अन्य स्वादिष्ट मीठे व्यंजन आदि खिलाने शुरू कर दिए। समय बीतने के साथ उन्होंने वेश्या के साथ शारीरिक संबंध बना लिए।

कंद मूल जो कीन्ह अहारा। एता कस्ट जो तन के जारा॥
मोहनी एक जो कीन्ह सिंगारा। नख सिख सुंदरि रूप संवारा॥
लीन्ही मेवा फल दुइ चारी। चली डगावन रिखि के नारी॥

सो रिखि लूटा काल ने, भया कामिनि परसंग।
सत्त सब्द चीन्है बिना, काल करे जिव भंग॥[22]

सुर=देवता; **ग्रिव**=गर्दन; **डारे**=डालता है; **फांसा**=फंदा; **स्रिंगी रिखि**=शृंगी ऋषि; **बस्ती**=गाँव या घरबार; **के**=को; **जोगमता**=योग मत; **ठएऊ**=ठानना, स्थित होना, लगना; **तन...जारा**=शरीर को जलाया, तपाया या कष्ट दिया; **सिंगारा**=शृंगार; **नख...सुंदरि**=पाँव के नख से लेकर सिर की चोटी तक; **दुइ चारी**=दो-चार, थोड़े-से; **डगावन**=डिगाने, पथ-भ्रष्ट करने; **कामिनि**=कामुक स्त्री; **परसंग**=प्रसंग, मिलन, सहवास; **भंग**=नाश।

जो भी मन के कहे लगा उसका विनाश हुआ। यह मन देवता, मनुष्य और मुनिजनों की गर्दन में फंदा डाल देता है। शृंगी ऋषि अपने गाँव को छोड़कर जंगल में गए और योगमत के अनुसार साधना में लग गए। उन्होंने केवल कंदमूल का ही आहार करना शुरू किया और शरीर को कष्ट देकर जला दिया। एक मोहित कर देनेवाली स्त्री सिर से पाँव तक सुंदर रूप सजाकर अपने हाथों में कुछ-एक स्वादिष्ट मेवे तथा फल लेकर ऋषि को पथभ्रष्ट करने निकली। मोहित होकर ऋषि ने उस स्त्री के साथ सहवास किया। इस प्रकार उन्हें काल ने लूट लिया। काल सच्चे शब्द की पहचान न करनेवाले जीवों का इसी प्रकार नाश करता है।

महामहा मुनि जगत में, केता छलबल कीन्ह।
अहे अनंत अन्त किमि कहिये, सतगुरु परिचय दीन्ह॥[23]

अहे अनंत=अनंत है; **किमि**=कैसे।

संसार में कितने ही महामुनि हुए हैं उनके साथ मन ने न जाने कितने छल-बल किए हैं। ये वास्तव में अनंत हैं, इसके अंत करने की बात कैसे कही जाए? केवल सतगुरु ही जीव को मन के छल-बल से परिचित कराते हैं और समझाते हैं कि मन का अंत कैसे पाया जा सकता है।

समझोगे मन बावरे, जम धरि पटकिहें शीश।
बाजीगर के हाथ में, घर-घर नचिहों कीश॥
फुटुकाये फुटुके नहिं, मरकट ऐसी बांध।
कटकटात मरि जाहुगे, पूजा तुम्हारी साध॥
विष सम सतगुरु शब्द है, झूठ लागे तुम्हें मीठ।
बहुत लबेदा खाहुगे, तब टूटेगी पीठ॥[24]

बावरे=पागल; **धरि**=पकड़कर; **पटकिहें शीश**=सिर पटकेगा; **कीश**=बंदर; **फुटुकाये...नहिं**=छुड़ाने पर भी नहीं छूटते; **मरकट**=बंदर; **कटकटात**=दाँतों को आपस में घिसना, दाँत पीसना; **पूजा**=पूरी होना; **साध**=इच्छा; **लबेदा**=मोटा और छोटा डंडा।

ऐ मेरे पागल मन! तू तब समझेगा जब तुझे पकड़कर यम तेरा सिर पटकेगा। तू तो बाज़ीगर के हाथ पड़े हुए बंदर की तरह है जो घर-घर में नाचता फिरता है। जैसे बंदर तंग बर्तन में से दानों को निकालने के लिए अपनी मुट्ठी कसकर बाँध लेता है और शिकारी द्वारा पकड़ा जाता है, वैसे ही तू भी सांसारिक विषयों में चिपका हुआ है और तुझे भी यमदूत पकड़ेंगे तथा बुरी तरह पीटेंगे। तभी तेरी सांसारिक विषयों की इच्छाएँ पूरी होंगी। तब तू डर और घोर कष्ट से दाँत पीसते हुए मरेगा। तुझे सतगुरु के वचन विष की तरह कड़वे लगते हैं, जबकि यह झूठा संसार मीठा लगता है। परिणामस्वरूप तू यम के इतने डंडे खाएगा कि तेरी पीठ ही टूट जाएगी।

आदि अंत मन अरुझन अझुरा। नव मन सूत न सझुरत सझुरा॥
पहिले अरुझे बिरंचि बिधाता। जिन्हि एह बेद कथा बड़ ज्ञाता॥...
अरुझे कवि सभ कहि कहि गाई। झीनि जाल मन निकलि न जाई॥
सतगुर ज्ञान गमि जौ बूझे॥ कहें दरिया गति अबिगति सूझे॥[25]

आदि अंत=शुरू से अंत तक; **अरुझन**=उलझन; **अझुरा**=उलझा हुआ; **नव मन**=नौ मन; **सझुरत सझुरा**=सुलझाने से सुलझना; **बिरंचि बिधाता**=संसार को पैदा करनेवाले ब्रह्मा जी; **झीनि जाल**=सूक्ष्म जाल; **गमि**=गम्य, अनुभव में आया हुआ; **बूझे**=समझे; **गति**=अवस्था; **अबिगति**=अज्ञात, निराकार परमात्मा।

यह संसार शुरू से अंत तक मन की उलझन में उलझा हुआ है, जैसे उलझा हुआ नौ मन सूत सुलझाने पर भी नहीं सुलझाया जा सकता। औरों की बात छोड़ो, सबसे पहले संसार को पैदा करनेवाले ब्रह्मा जी मन की उलझन में उलझ गए, जो वेद-कथाओं के बहुत बड़े ज्ञानी हैं। कविजन भी इसी में उलझे रहे जो अनेक प्रकार से कह-कहकर इसी का गुणगान करते रहे। मन का जाल इतना सूक्ष्म है कि इसमें से कोई नहीं निकल पाता। सतगुरु के पास जाकर जो उनके अनुभव पर आधारित सच्चे ज्ञान को जान लेता है, उसे ही निराकार परमात्मा की सूझ होती है।

हरिजन हरि बाजी पहचानो।
एक भुलवना आगे आया सब्द हमारा मानो॥
बावन रूप होए बलि किहां गैऊ जग्य बिधंस सब कियऊ।
तीनि लोक तीनि पगु कीन्हा आधा पीठि नपैऊ॥
बावन का बावन वोह रहिगौ नाहिं बढ़ि लागु अकासा।
वाका कटक घुमन सभ लागा देखा अजब तमासा॥
बलि के पकरि जौ चाक घुमेऊ ले सुरसरि में डारा।
इन्द्रलोक इन्द्र के दीन्हा बांधि पताले मारा॥

हरिचंद मंद एह पल में भैऊ बहुत सासना कीन्हा।
राजा रानी सुत समेता पर्बस लेके दीन्हा॥...
एह मन आवै एह मन जावै मन का दस औतारा।
सुर नर मुनि के सभे नचाइसि डारिसि फंद बिकारा॥
अजर अमान पुर्ख जो आए परगट कथा सुनाई।
है छपलोक छापा एह जानो गुन गहि ज्ञान देखाई॥
मन के चीन्हि सभनि के चीन्हा एह मन आपु अनंता।
कहें दरिया कोइ सब्द बिबेकी उधरे बिरला संता॥[26]

बाजी=चाल, धोखा; **भुलवना**=भुलावा; **बावन रूप**=वामन अवतार का बौना रूप; **बलि...गैऊ**=राजा बलि के पास गए; **जग्य**=यज्ञ; **बिधंस**=विध्वंस; **तीनि पगु**=तीन पाँव रखने के बराबर; **पीठि**=पीठ; **नपैऊ**=नापना; **वाका**=उसका; **कटक**=सेना; **घुमन**=घूमने; **बलि...पकरि**=राजा बलि* को पकड़कर; **चाक**=चक्र; **घुमेऊ**=घुमाया; **सुरसरि**= गंगा; **डारा**=डाला; **इन्द्र...दीन्हा**=इंद्र को दिया; **हरिचंद**=राजा हरिश्चंद्र; **मंद**=मूर्ख; **भैऊ**=बन गए; **सासना**=कष्ट; **सुत**=पुत्र; **पर्बस**=दूसरे के अधीन; **दस औतारा**=विष्णु के दस अवतार माने जाते है – मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। माना जाता है कि कल्कि अवतार अभी प्रकट नहीं हुआ है। **नचाइसि**=नचाया है; **डारिसि**=डाला है; **फंद बिकारा**=विकारों का फंदा; **अजर...पुर्ख**=असीम अविनाशी सत्पुरुष; **छापा**=मोहर, प्राधिकार; **सभनि**=सभी को; **आपु अनंता**=स्वयं अनंत है; **सब्द बिबेकी**=शब्द की साधना करनेवाला; **उधरे**=पार होना, उबरना।

---

* राजा बलि को अश्वमेध यज्ञ संपूर्ण करने से रोकने के लिए वामन अवतार धारण करके विष्णु ने उससे तीन पग पृथ्वी दान स्वरूप माँगी थी। परंतु बलि के द्वारा दान देने का संकल्प करने के तुरंत बाद वामन का शरीर इतना बढ़ गया कि उन्होंने एक ही पग में सारी पृथ्वी तथा दूसरे पग में स्वर्ग को नाप लिया था। तीसरे पग के लिए बलि ने अपना सिर आगे बढ़ा दिया था।

हे भक्तजनों! इस मनरूपी ईश्वर के धोखे को पहचानो। लोग मन को ईश्वर मानकर इसकी भक्ति में लगे हुए हैं। यह मन हमारे सामने आनेवाला एक भुलावा है जो पहले भी बहुतों के सामने आ चुका है। इसलिए हमें संतों के वचनों को मानने की ज़रूरत है। मन ही वामन अवतार धारण करके राजा बलि के पास गया था और उसके यज्ञ को विध्वंस कर दिया था। वामन ने राजा बलि से तीन पग भूमि माँगी थी, परंतु उसने तीन पग भूमि में ही तीनों लोक नाप लिए थे। बाद में आधा पाँव भूमि के लिए तो उसे बलि की पीठ पर ही अपना पाँव रखना पड़ा था। जैसे ही राजा ने उसे तीन पग भूमि देने का संकल्प लिया तो वह बौना नहीं रहा था और आकाश तक बढ़ गया। बलि की सेनाएँ चारों ओर घूमने लगी थीं। परंतु उसने बलि को पकड़कर, अपना चक्र घुमाकर उसे गंगा में फेंक दिया था। उसके बाद वामन ने देवराज इंद्र को उसका इंद्रलोक सौंपकर, बलि को पाताल में बाँधकर रखा। इसी प्रकार राजा हरिश्चंद्र मन के धोखे में आकर क्षण-भर में मूर्ख बन गए थे। उन्हें मन ने बहुत कष्ट दिए। उन्हें स्वयं रानी और पुत्र सहित दूसरे के अधीन होकर दास बनना पड़ा था। यह मन ही संसार में अवतार बनकर आता-जाता है। दस अवतार मन ने ही धारण किए हैं। इसने देवता, मनुष्य और मुनियों – सभी पर विकारों का फंदा डालकर उन्हें अपने इशारों पर नचाया है। असीम-अविनाशी सत्पुरुष जब संतों के रूप में संसार में आते हैं तो वह हमें मन के भ्रमों से निकालकर सारी बातें खोलकर समझाते हैं कि जीव का वास्तविक धाम सतलोक है। जीवों को सतलोक ले जाने का अधिकार संतों को होता है। जो भी उनके गुणों को ग्रहण करता है, वह उसे अपने ज्ञान द्वारा सतलोक दिखा देते हैं। यह मन अपने आप में अनंत है, अत: यदि मन को पहचान लिया जाए तो अपने आप सभी की पहचान हो जाती है। शब्द की साधना करनेवाला कोई बिरला संत ही इस मन के जाल से उबर सकता है।

कंदर्प काहि ना काबू कीन्ह जक्त में जला ब्यापि तन मुनि मत रंजेव।
संकर सक्ति बिसारि तप साधे बाँधे पवन काम दल भंजेव।

जब लगेव पुहुपसर निपट निरंतर खुलि गौ नेत्र काम तन छीजेव।
सिंगी रिषी कुंज बन बैठे ऐंठि मेटेव गनिका प्रिय पगेव।
स्वारथ स्वाद जानु तन आपन मन के फन्द बिरला जन जगेव।
कहें दरिया जग कनक कामिनी हाथ पसारि कहु कीन्ह नहिं मंगेव॥[27]

कंदर्प=काम; **काहि ना**=किसको नहीं; **काबू कीन्ह**=वश किया; **जक्त**=संसार; **ब्यापि तन**=शरीर में व्याप्त होकर; **मुनि मत**=ऋषि मुनियों की बुद्धि; **रंजेव**=रँगा (ऋषि-मुनियों की बुद्धि को रँग दिया); **संकर**=शिव जी; **सक्ति**=पार्वती; **बिसारि**=भूलकर, छोड़कर; **साधे**=साधना; **बाँधे पवन**=प्राणायाम द्वारा पवन की गति को बाँधकर; **काम...भंजेव**=कामदेव की सेना को तहस-नहस कर दिया; **पुहुपसर**=फूलों का बाण; **निपट**=एकदम, अचानक; **खुलि गौ**=खुल गया; **काम...छीजेव**=कामदेव का शरीर नष्ट हो गया; **सिंगी रिषी**=शृंगी ऋषि; **कुंज**=लता मंडप; **ऐंठि**=घमंड, अहंकार; **मेटेव**=समाप्त हो गया; **गनिका...पगेव**=वेश्या के प्रेम में लिप्त हो हुए; **जगेव**=जागा; **कनक**=सोना, धन-दौलत; **कामिनी**=कामुक स्त्री; **कहु**=कहो; **कीन्ह**=किसने; **मंगेव**=भिखारियों की तरह माँगा।

काम ने किसको अपने वश में नहीं किया अर्थात् काम से भला कौन बच सका? शिवजी के क्रोध से वह इस संसार में जल तो गया, फिर भी किसी के भी शरीर में व्यापने की शक्ति होने के कारण इसने मुनियों की बुद्धि को भी रँग लिया। शिव जी ने पार्वती को भूलकर तप साधना की और प्राणायाम द्वारा साँसों की गति को बाँधकर कामदेव की सेना को तहस-नहस कर दिया। पर जब उन्हें कामदेव के मारे हुए फूलों के बाण अचानक तथा लगातार लगे तो उनका ध्यान भंग हो गया; भले ही ऐसा करने से कामदेव का शरीर नष्ट हो गया। इस प्रकार कामदेव शिव जी की तपस्या भंग करने के अपने उद्देश्य में सफल हो गया। शृंगी ऋषि जंगल में लताओं के बीच तपस्या में बैठे थे, उनका तप साधना का

घमंड भी उस समय चूर हो गया जब वह वेश्या के प्रेम में लिप्त हो गए। काम-वासना को उकसाने में ही कामदेव का स्वार्थ है। पर जीव भूल-वश इसे अपने ही शरीर का स्वाद या सुख मान लेता है। ऐसा समझकर कोई विरला ही जीव मन के फंदे से निकलकर जाग सका है। इस संसार में भला किस-किस ने काम-सुख और धन-दौलत को भिखारियों की तरह हाथ फैलाकर नहीं माँगा?

साधो नारि नैन सर बंका।
भौहें बान कमान चढ़ावति देति नगर में डंका॥
कंदर्प कसि कसि सभ मिलि थाके ऐन झरोखे झंका।
बिरला भागि गए सरनागत बांचे राव ना रंका॥
लीन्ह लपेटि जोग नहिं लाए भोग भया भौ भंका।
सुर सुरापति इंद्र बापुरे तिन्हि के परि गौ शंका॥
गोरख के गुरु महा मछीन्द्रा तिन्है पकरि सिर ठंका।
सिंघल दीप में दरस पदुमनी वाके बदन मयंका॥
ब्रह्मा बिस्नु के उर में बेधेव नारद कहं धरि हंका।
महादेव संग कंवला रानी उन्ह के परि गौ दंका॥
मैन मनोरथ सभ का दिल में का के कहौं निरंका।
कहें दरिया एह मुरलि मनोहर दम्पति प्रेम हिय हंका॥[28]

नारि...सर=स्त्री के नयनों के बाण; **बंका**=टेढ़ा, कठिन; **चढ़ावति**=चढ़ाती है; **देति**=देती है; **नगर**=संसार; **डंका**=डाका, लूट; **कंदर्प**=काम; **कसि कसि**=कसने, वश करने के प्रयास; **ऐन...झंका**=ऊँचे मंडलों में झाँका; **सरनागत**=सतगुरु की शरण में जाना; **बांचे**=बचे; **राव**=राजा; **रंका**=ग़रीब; **भोग**=काम का भोग; **भया**=बन गया; **भौ**=संसार; **भंका**=नाश; **सुर**=देवता; **सुरापति**=देवताओं के राजा इंद्र; **बापुरे**=बेचारे; **परि...शंका**=भ्रम में डाल दिया; **गोरख**=गोरखनाथ; **मछीन्द्रा**=मत्स्येंद्रनाथ; **पकरि**=पकड़कर; **सिर ठंका**=सिर में ठोकर मारी; **सिंघल दीप**=सिंहल द्वीप; **दरस**=देखना; **वाके...मयंका**=उसका चंद्रमा के समान शरीर, मुख; **उर**=हृदय; **बेधेव**=बेधे; **कहं**=को; **धरि**=पकड़कर; **हंका**=दौड़ाया; **महादेव**=शिव जी; **कंवला रानी**=कमल के समान मुखवाली रानी पद्मिनी; **परि गौ**=पड़ गया; **दंका**=हल्ला; **मैन मनोरथ**=काम की इच्छा; **का के**=किसको; **निरंका**=जिसे दाग़ न लगा हो; **मनोहर**=सुंदर, मन को भानेवाली; **दम्पति प्रेम**=स्त्री-पुरुष का पारस्परिक वासनात्मक प्रेम; **हिय हंका**=हृदय में सुलगा रखा है।

स्त्री के नयनों के बाण बड़े कठिन हैं। वह अपनी भौंहों के धनुष-बाण को चढ़ाकर सारे संसार में अपना डंका बजाती है। दरिया साहिब कहते हैं मैंने ऊँचे मंडलों में भी झाँककर देखा है कि काम को वश करने के प्रयास में सभी थक-हार गए। भागकर सतगुरु की शरण में जाने पर कोई विरला ही बच पाया है, अन्यथा न तो राजा और न ही ग़रीब बच पाए हैं। जिन्होंने परमात्मा से मिलाप करने का प्रयास नहीं किया उन्हें मन ने अपनी लपेट में ले लिया। इस प्रकार संसार में काम का भोग उनके नाश का कारण बन गया। देवताओं और उनके राजा, बेचारे इंद्र को भी मन ने भ्रम में डाल दिया। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येंद्रनाथ ने जब सिंहल द्वीप में चंद्रमा के समान मुखवाली पद्मिनी को देखा तो उन्हें भी मन ने अपने वश में करके सिर में ठोकर मारी। मन ने ब्रह्मा और विष्णु के हृदय भी बेध दिए तथा नारद मुनि को अपने वश में करके ख़ूब दौड़ाया। अपनी पत्नी पार्वती के साथ होते हुए भी मोहिनी के सामने आने पर शिव जी के मन ने उन्हें मचला दिया। काम की इच्छा सभी के हृदय में बसी हुई है, संसार में भला ऐसा कौन है जिस पर काम-वासना का शिकार होने का दाग़ न लगा हो? इस मनरूपी सुंदर बाँसुरी ने स्त्री-पुरुष का पारस्परिक वासनात्मक प्रेम सबके हृदय में सुलगा रखा है।

मन जीते जग जीत

मन सांसारिक विषय-वासनाओं को सुख का साधन समझकर सदा इनके पीछे दौड़ता रहता है। यह तब तक सांसारिक सुखों के पीछे दौड़ना बंद

नहीं करता, जब तक इसे इन सुखों से कहीं अधिक ऊँचा और मीठा सुख प्राप्त नहीं होता। जब सतगुरु की दया से अभ्यासी अपने बिखरे हुए ध्यान को बाहर से समेटकर अंतर में एकाग्र करता है, तब मन धीरे-धीरे निर्मल हो जाता है और अभ्यासी की आंतरिक दृष्टि खुल जाती है। उसके अंदर सतगुरु का दिव्य स्वरूप प्रकट हो जाता है और वह शांत और एकाग्र भाव से मधुर नाम की शब्द-धुन का आनंद लेने लगता है। नाम के इस अलौकिक सुख का स्वाद चखने के बाद उसके मन की चंचलता सदा के लिए दूर हो जाती है और वह सच्ची भक्ति में लग जाता है।

जैसे बंदर हीरे-जवाहरात का मूल्य न समझने के कारण उसे फेंककर बन में इधर-उधर भटकता फिरता है और तंग मुँह वाले बर्तन से मुट्ठी भर अन्न निकालने के लोभ में शिकारी द्वारा पकड़ा जाता है, ठीक वैसे ही जीव भी नाम के सुख का महत्त्व न समझने के कारण सांसारिक विषयों के पीछे दौड़ता फिरता है और उनके लोभ में पड़कर काल का शिकार बनता है।

मन ही हमारे सभी दुःखों और सुखों का कारण है। आत्मा तो अपने आप में निर्मल है। एक आत्मा का दूसरी आत्मा से कोई वैर नहीं होता। केवल मन ही हमें एक-दूसरे का वैरी बनाता है और क्रोध, द्वेष आदि के भाव उठाकर युद्ध, हिंसा आदि करवाता है और हमें पाप का भागी बनाता है। जब मन को पहचानकर हम इसे वश में कर लेते हैं तथा झूठ और कपट को दूर कर इसे विचारपूर्वक पारमार्थिक अभ्यास में लगाते हैं, तब हम सच्चे ज्ञान की प्राप्ति कर लेते हैं और हमारा जन्म-जन्म का भटकना दूर हो जाता है।

इस प्रकार मन को वश में करनेवाला अपने जीवन को सफल बना लेता है, पर मन के अधीन होकर विषय-वासनाओं के पीछे दौड़नेवाला आवागमन के चक्र में पड़कर कष्ट भोगता रहता है:

जानत नर मृत्यु लोक सुख पाई। ताते भूलि रहा दुनियाई॥
आगे सुख सागर बहुतेरा। जौं मन करे ज्ञान निजु फेरा॥

जौं मन की दौड़ि बुझि आवे। तब घट में परिचै कछु पावे॥
मनहिं में कर्ता धर्ता अहई। मन यह राह बिगारन चहई॥
जौं मन ज्ञान कैद करि आवे। तब मन साच सतगुरु पद पावे॥...

कहें दरिया मन कैद करू, जौं चाहो सतनाम।
कर्म काटि जन निजुपुर, जाय बसे निजु धाम॥

मनहिं चलावे मनहिं फिरावे। मनहिं तीर्थ व्रत करावे॥
जौं मन ज्ञान कसौटी लावे। तब मन ज्ञान नाम निजु पावे॥

मन के जीते जीतिया, मन के हारे भौ हानि।
मनहिं बिलोय ज्ञान करू मथनी, तब सुख उपजे जानि॥

कहे दरिया मन डंहकत फिरे। एके चोर सकल जीव पीरे॥
सो मन निर्मल निश्चै रंगा। उपजे ज्ञान साधु के संगा॥
एक नाम प्रेम सुख चैना। करे भक्ति बोले सत बैना॥
सोइ करो हंसा सुख पावे। नहिं तो फेरि-फेरि काल भर्मावे॥
जाहिं जन्म मिथ्या जग माहीं। सतगुरु चरण सुधा सम नाहीं॥

मरकट नग नहिं चीन्हहीं, नगन फिरे बन मांझ।
नाम बेमुख नर बिकल है, बरु जननी होय बांझ॥

जौं नग लाल नाम नहिं चीन्हा। मर्कट मूठि आपन जीव दीन्हा॥[29]

ताते=उससे; **दुनियाई**=संसार; **निजु फेरा**=अपने अंदर को मुड़कर; **घट**=शरीर; **परिचै**=परिचय; **बिगारन**=बिगाड़ना; **चहई**=चाहता है; **कैद**=वश में; **निजुपुर**=अपने घर, सतलोक; **ज्ञान...लावे**=यदि ज्ञान की कसौटी पर चढ़ाकर मन को अच्छी तरह पहचान लिया जाए; **भौ**=होना, बहुत; **मनहिं बिलोय**=मन को मथा जाए; **मथनी**=मथानी; **डंहकत फिरे**=रोना, बिलखना, विलाप करना; **पीरे**=पीड़ा पहुँचाना; **चैना**=चैन; **सत बैना**=सच्चे वचन; **मिथ्या**=व्यर्थ; **चरण सुधा**=चरण-कमल का अमृत;

मरकट=बंदर; **नग**=बहुमूल्य रत्न; **बिकल**=बेचैन; **बरु**=भले ही, बेशक; **नग...नाम**=नामरूपी बहुमूल्य रत्न, माणिक्य।

हम समझते हैं कि यहाँ, इस मृत्यु लोक में सुख प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए हम सांसारिकता में भूले हुए रहते हैं। यदि मन अपने अंतर की ओर मुड़कर सच्चा ज्ञान प्राप्त कर ले तो उसे सुखों का अनंत सागर प्राप्त हो सकता है। जब मन की गति की अपने आप में समझ आ जाती है, तब हमें अपने अंतर का परिचय प्राप्त हो जाता है। मन ही इस संसार का कर्ता-धर्ता है। यही हमें परमात्मा से मिलने के रास्ते से भटकाना चाहता है। यदि हमें सच्चे सतगुरु की शरण प्राप्त हो जाए तो उनके दिए ज्ञान के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है। इसलिए दरिया साहिब कहते हैं कि यदि तुम सतनाम का पद प्राप्त करना चाहते हो तो तुम मन को वश में करो, इसे स्थिर करो। तभी तुम अपने कर्मों को नष्ट करके अपने सच्चे धाम में जाकर निवास कर सकते हो।

यह मन ही है जो हमें सारे संसार में भटकाता रहता है। यही हमें तीर्थ-व्रत आदि करने के लिए प्रेरित करता है। यदि मन को सतगुरु के ज्ञान की कसौटी पर अच्छी तरह पहचान लिया जाए तो सच्चे नाम को प्राप्त किया जा सकता है। मन को जीतने में ही हमारी जीत है और मन से हारने में ही हमारी हार है। हम सच्चा सुख तभी प्राप्त कर सकते हैं यदि हम सतगुरु द्वारा बताए ज्ञान की मथानी से मन को मथें।

दरिया साहिब कहते हैं कि वास्तव में यह मन स्वयं अपने अंदर दु:खी होकर इधर उधर भटकता फिरता है। फिर भी यही छिपकर सारे जीवों को पीड़ा पहुँचाता है। साधुओं के सत्संग के द्वारा मन में सच्चा ज्ञान पैदा हो सकता है और यह नाम के निर्मल रंग में रँग सकता है। केवल नाम के प्रेम से ही इसे सुख और चैन प्राप्त हो सकते हैं, फिर यह परमात्मा की भक्ति में लग जाता है और सच बोलने लगता है। इसलिए हमें उसी नाम की भक्ति में लगना चाहिए जिससे हमारी आत्मा सुख प्राप्त कर सके, अन्यथा हमें

काल इसी प्रकार भ्रमों में भटकाता रहेगा। सतगुरु के चरण-कमलों के अमृत के समान कुछ भी नहीं है, उनके बिना संसार में मनुष्य-जन्म व्यर्थ ही चला जाएगा। जिस प्रकार बंदर बहुमूल्य रत्न को नहीं पहचानता और जंगल में नंगा फिरता रहता है, इसी प्रकार यदि हमें नाम प्राप्त नहीं हुआ तो हमें कभी भी चैन प्राप्त नहीं होगा, इससे अच्छा तो यही होता कि हमारी माता हमें जन्म ही न देती और बेशक वह बाँझ ही रहती। यदि हमनें नामरूपी बहुमूल्य रत्न की पहचान नहीं की तो जैसे बंदर तंग बर्तन में से दानों को निकालने के लिए अपनी मुट्ठी कसकर बाँध लेता है तथा अपनी जान शिकारी के हाथों गँवा बैठता है, उसी प्रकार हम भी अपने आप को इस संसार में फँसाकर अपने जीवन को बरबाद कर देंगे।

मन औंटे तो राज है, मन चिन्हे तो संत।
मन है जीव के साथ में, विसरी गया निजु मंत॥[30]

औंटे=तपाने से, कष्टपूर्ण तप करने से; **चिन्हे**=पहचानते हैं; **विसरी**=भूल।

जो मन को कष्ट देकर कठिन तपस्या करते हैं वे राजा बनते हैं, जबकि जो मन को पहचान लेते हैं वे परमात्मा से मिलाप करके संत बन जाते हैं। मन जीव के साथ रहता है। इसी कारण आत्मा अपने असली उद्देश्य को भूल गई है।

अति मन झीन झुला सब कोई। कीन्ह निरुआर सो कठिन बिलोई॥
मन की हारि सभे किछु हारी। मन की जीति सभे जीति डारी॥[31]

झीन=सूक्ष्म; **झुला**=झूल रहा है; **निरुआर**=सुलझा लिया; **बिलोई**=मथकर; **जीति डारी**=विजय प्राप्त हो जाती है।

मन अत्यंत सूक्ष्म है, सभी इसके कारण संसार में झूल रहे हैं। ऐसे जीवों का मिलना कठिन है जिन्होंने मन को मथकर इसे सुलझा लिया है।

यदि हमनें मन के आगे हार मान ली तो हम अपना सब कुछ हार गए, जबकि मन पर विजय पा लेने से सब पर विजय प्राप्त हो जाती है।

मन पवन पर खेल है, देखहु ग्यान बिचारि।
राधि साधि एक अंग मिलावै, उतरि जाए सो पार॥[32]

पवन=हवा के समान चंचल; **राधि**=प्रेम से समझा-बुझाकर; **साधि**=साधना करके; **एक...मिलावै**=एक बिंदु पर टिकाए।

इस ज्ञान को विचार करके देखें कि संसार में जीतने या हारने का खेल हवा के समान चंचल मन को वश में कर पाने और न कर पाने पर निर्भर है। इसी लिए मन को समझा-बुझाकर और इसे युक्तिपूर्वक रोककर दोनों आँखों के मध्य में स्थित एक बिंदु पर टिका लेना आवश्यक है। तभी हम संसार-सागर के पार जा सकते हैं।

जीव जीव के करे न क्रोधा। लड़ै भिड़ै यह मन बड़ योधा॥
मन है सबमें मने लड़ावे। मन ऐगुन करि जीव पर लावे॥
मन है कठिन क्रोध बड़ बीरा। कठिन कमान घैंचे यह तीरा॥
मन है सूर साधु जन सोई। मन बिनु काम कछु नाहीं होई॥
मन है तर्क त्याग यह योगा। मन संयोग ज्ञान रस भोगा॥
मन है तेग देग औ दाना। मन लिए ज्ञान गमी परवाना॥
जब निज मन होय मिथ्या त्यागे। मनहिं विचार ज्ञान निजु पागे॥
मन जागे मन जोगी साँचा। चिन्हे बिना सुर नर मुनि नाचा॥

मन औगुन मन ज्ञान है, मने सब ही के साथ।
मनहि विचार ज्ञान निज राखै, सो जन भये सनाथ॥[33]

बड़ योधा=बड़ा योद्धा; **लड़ावे**=लड़ता है; **ऐगुन**=अवगुण, पाप; **बीरा**=वीर, शक्तिशाली; **कठिन कमान**=धनुष; **सूर**=देवता (के समान पवित्र); **सोई**=वह; **मन संयोग**=मन को साथ लेकर; **ज्ञान...भोगा**=जीव ज्ञान के रस का आनंद लेता है; **तेग**=तलवार, शक्ति; **देग**=परमार्थ का भोजन पकाने का पात्र, परमार्थ का साधन; **दाना**=अन्न, जीविका प्रदान करनेवाला; **ज्ञान...परवाना**=ज्ञान प्राप्त करने का हुक्मनामा, आज्ञापत्र; **निज मन**=पिंड, अंड और ब्रह्मांड में कार्यशील मन की वृत्तियाँ भी अलग-अलग हैं। ब्रह्मांडी मन की वृत्ति सांसारिक भोगों की ओर न होकर ऊपर की ओर है, इसे ही निज-मन कहते है। **पागे**=निमग्न होना, डूबना; **चिन्हे**=पहचाने; **सनाथ**=जिनका स्वामी साथ हो।

एक आत्मा कभी भी दूसरी आत्मा पर क्रोध नहीं करती। आपस में लड़ने-भिड़नेवाला तो यह मनरूपी बड़ा भारी योद्धा है। मन सबके अंतर में है, वही सबको लड़ाता है। वह जो पाप करता है उनका फल भी जीव को भोगना पड़ता है। मन ही क्रोधरूप में वीर योद्धा है जो अपने कठोर धनुष को खींचकर तीर मारता है। मन ही वीर योद्धा है और फिर वही पवित्र साधु भी है। मन के बिना कोई भी कार्य नहीं होता। मन ही तर्क-वितर्क करता है, मन ही संसार को त्यागता है और फिर वही सच्चा योगी बन जाता है। मन के साथ ही जीव ज्ञान के रस का आनंद लेता है। मन ही हमारी तलवार यानी शक्ति, देग यानी परमार्थी भोजन बनाने का साधन तथा दाना यानी हमें जीविका प्रदान करनेवाला है। मन ही परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने का हुक्मनामा भी है। जब सच्चा ब्रह्मांडी मन इस झूठे संसार को त्याग देता है तो यह विचापूर्वक सच्चे ज्ञान में डूब जाता है। मन के जाग्रत होने से मनुष्य सच्चा योगी बन जाता है। परंतु इसे अच्छी तरह पहचाने बिना देवता, मनुष्य और मुनिजन-सभी इसके इशारों पर नाचते रहते हैं। मन सभी के साथ लगा हुआ है, वह संसार में आसक्त होने पर हमसे बुरे कार्य करवाता है, जबकि नाम की साधना में लगने पर सच्चा ज्ञान भी प्राप्त कराता है। जो इस प्रकार अच्छी तरह से सोच-विचार करके मन को सच्चे ज्ञान में लीन कर देते हैं, वे परमात्मा से मिलाप करके सनाथ हो जाते हैं।

मन को जीतने का उपाय

सतगुरु के उपदेश के अनुसार नाम यानी शब्द-धुन का अभ्यास करना ही मन को जीतने और संसार से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है। नाम के मीठे रस को पीकर मन अपनी चंचलता छोड़कर शांत और एकाग्र हो जाता है।

मन त्रिकुटी का रहनेवाला है। अत: त्रिकुटी को पार किए बिना मन के प्रहार से बचे रहना अत्यंत कठिन है। यही कारण है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी मन के धोखे में आकर अपने मार्ग से भ्रष्ट हो गए। सतगुरु की शरण लेकर नाम का अभ्यास किए बिना जीव कभी भी मन के जाल से निकल नहीं सकता।

संत या सतगुरु सत्पुरुषरूपी सिंह के अंश हैं। वे निर्भय होकर संसार में विचरण करते हैं और मनरूपी हाथी को तुरंत मरोड़ डालते हैं। सतगुरु के ज्ञानरूपी अंकुश से मनरूपी हाथी आसानी से वश में आ जाता है। नाम का रस पाकर साधक का ध्यान अंतर में उसी तरह एकाग्र भाव से लग जाता है, जिस तरह चकोर का ध्यान चंद्रमा में लगा रहता है। मनरूपी पक्षी साधकरूपी शिकारी के बाण से विद्ध होकर बिल्कुल स्थिर हो जाता है।

इस प्रकार सतगुरु के दिए हुए नाम के अभ्यास द्वारा मन वश में आ जाता है और आत्मा मन के चंगुल से छुटकारा पाकर अपने परम आनंदमय धाम में पहुँच जाती है:

चिन्हहुं ग्यान निजु सब्द हमारा। जौ चाहो निजु मुक्ति करारा॥...
रिखी मुनी सब रहे अरुझाई। मन की प्रतिमा भगति न आई॥

सब्द हमारा मानहु, करो बिबेक बिचारि।
सत्त सब्द यह चीन्हहु, उतरहु भौ जल पार॥[34]

चिन्हहुं=पहचानो; **मुक्ति करारा**=असली मुक्ति; **रिखी**=ऋषि; **अरुझाई**=उलझे हुए; **प्रतिमा**=परछाईं, प्रभाव।

दरिया साहिब कहते हैं कि यदि तुम सच्ची मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो तुम उस ज्ञान को पहचानो जो हमें शब्द के द्वारा प्राप्त होता है। सारे ऋषि-मुनि भी मन के कारण उलझे हुए हैं, मन ने अपने प्रभाव से उन्हें भरमा रखा है जिसके कारण वे परमात्मा की भक्ति नहीं कर सकते। इसलिए तुम अच्छी तरह विचारकर इसी बात को मान लो कि सच्चे शब्द को पहचानकर ही संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है।

चंचल मन एह थिर करि लीजै। गुपुत भाव अम्रिति रस पीजै॥...
जीवन मरन हए या तन खेहा। करो प्रेम सतगुर से नेहा॥[35]

करि लीजै=कर लो; **गुपुत भाव**=किसी को बताए बिना; **पीजै**=पीना चाहिए; **या**=यह; **खेहा**=धूल, राख; **नेहा**=प्रेम।

इस चंचल मन को एकाग्र करके अपने अंतर के अनुभव को किसी को बताए बिना, नामरूपी अमृत को पिओ। इस जीवन की मृत्यु निश्चित है, अंतत: यह शरीर धूल में मिल जाएगा, अत: हमें सतगुरु से प्रेम करना चाहिए।

कोइ नहिं बाचे जम के फांसा। जो नहिं होए सतगुर के दासा॥
सतगुर के गति पावै कोई। जाए छपलोक सिधारै सोई॥[36]

बाचे=बच सकता; **फांसा**=फंदा; **दासा**=सेवक, भक्त; **गति**=पहुँच; **छपलोक**=सतलोक; **सिधारै**=प्रस्थान करना, जाना।

सतगुरु का सेवक बने बिना कोई भी यम के फंदे से नहीं बच सकता। जो कोई सतगुरु तक पहुँच जाता है, वह फिर उनके माध्यम से सतलोक चला जाता है।

भरम छोड़ि सब्द कंह लागे। कहे दरिया प्रेमरस पागे॥
मन के चीन्हि राखै एक ठांई। जरा मरन कबहीं नहिं पाई॥...
जब लगि मूल सब्द नहिं पावै। तब लगि हंसलोक नहिं जावै॥[37]

प्रेमरस पागे=प्रेम के रस में लीन; **के**=को; **चीन्हि**=पहचानकर; **एक ठांई**=एक स्थान पर; **जरा मरन**=बुढ़ापा और मृत्यु, जन्म-मरण का चक्र; **जब लगि**=जब तक; **तब लगि**=तब तक; **हंसलोक**=सतलोक।

जो संसार के भ्रमों को छोड़कर शब्द की साधना में लग जाता है, वह परमात्मा के सच्चे प्रेम के रस में लीन हो जाता है। जो मन को पहचानकर उसे एक स्थान पर स्थिर करके रखता है, वह फिर कभी भी न तो जन्म लेता है और न ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जब तक जीव अपने मूल स्रोत शब्द को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह सतलोक नहीं जा सकता।

मन मकरंद तिर्कुटी अस्थाना। इमि करि करत है बान संधाना॥
दिव्य दृष्टि गहे तत्तसारा। काल छीन भव पलकन्हि मारा॥
मन मकरंद तब गए पराई। जीव रहा अस्तुति गुन गाई॥[38]

मन मकरंद=मनरूपी भौंरा; **तिर्कुटी**=अंतर में दूसरा रूहानी मंडल, इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं; **इमि करि**=इस प्रकार; **बान संधाना**=बाण का निशाना लगाना; **गहे**=पकड़ना; **तत्तसारा**=सार तत्त्व; **छीन भव**=क्षीण, नष्ट हो गया; **पलकन्हि मारा**=क्षण भर में; **पराई**=भागना।

मनरूपी भौंरे का स्थान हमारे अंतर में दूसरे रूहानी मंडल अर्थात् त्रिकुटी में है। इस प्रकार वह वहाँ से जीव पर अपने बाणों का निशाना लगाता रहता है। जब साधक अपनी आंतरिक दिव्य-दृष्टि द्वारा नामरूपी सार तत्त्व को पकड़ लेता है, तब वह क्षण भर में काल पर विजय प्राप्त कर उसे नष्ट कर डालता है। फिर मनरूपी भौंरा भी भाग जाता है और जीव नाम-निधान प्रभु की स्तुति और गुणगान करने लगता है।

माया मन तौ सभे नचावै। सीस पटकि के जिव जंहडावै॥
अरुझि मरे सभ भूपति राजा। भक्ति भाव नहिं एको काजा॥...
मन माया सुर नर मुनि मोहे। लालच कारन जिव सभ जोहे॥[39]

सीस=सिर; **पटकि**=पटककर; **जंहडावै**=ठगना, भुलाना; **अरुझि मरे**=उलझकर मर गए; **भूपति**=पृथ्वी के शासक; **भाव**=प्रेम; **नहिं... काजा**=एक भी कार्य नहीं, कुछ भी नहीं; **मोहे**=मोह लेती है; **जोहे**=खोजना, तलाश में रहना।

माया और मन तो सभी को अपने इशारों पर नचाते हैं। ये दोनों जीव को इस प्रकार ठगते हैं कि जीव सिर पटककर रह जाता है। पृथ्वी पर शासन करनेवाले सभी राजा भी इनके जाल में उलझकर मर गए। परमात्मा की भक्ति और प्रेम में न लगने के कारण वे कुछ भी नहीं कर पाए। मन और माया देवताओं, मनुष्यों तथा मुनियों को भी मोह लेते हैं। फिर भी सभी जीव लोभ में पड़कर मन-माया की ही तलाश में लगे रहते हैं।

करहु भग्ति जीवन है थोरा। मानहु सब्द कहा सुन मोरा॥
बिना भग्ति कछु काम न आवै। जन्म जन्म ऐसे जहड़ावै॥[40]

थोरा=थोड़े समय का, स्वल्प; **मानहु**=मानना, अनुभव करना; **मोरा**=मेरा (दरिया साहिब का); **जहड़ावै**=ठगना, भुलाना।

दरिया साहिब कहते हैं कि परमात्मा की भक्ति करो, क्योंकि संसार में यह जीवन थोड़े समय का है। मेरा कहना मानो और शब्द की साधना अर्थात् सच्ची भक्ति को अपनाओ। परमात्मा की भक्ति के बिना यह जीवन किसी काम नहीं आता और हम अनेक जन्मों तक इसी प्रकार भूले रहते हैं।

संत सावक है सिंह बचा, चलत मरोरे अंग।
जहाँ ठनके तहाँ ठक्का, मन गयंद भयो भंग॥
मन गयंद ग्यान आंकुस, उलटी जंजीरे बांधु।
मस्त हुआ माता फिरै, बिरला जग में साधु॥
रोम रोम रस मातिआ, पलक करे नहिं भोर।
दृष्टि जो लागी गगन में, जैसे चंद चकोर॥[41]

सावक=शावक, बच्चा; **सिंह**=शेर; **जहाँ ठनके**=जहाँ भी पाँव रखते है; **मन गयंद**=मनरूपी हाथी; **भंग**=नष्ट; **आंकुस**=हाथी को वश में करने के लिए प्रयुक्त होनेवाला लोहे का अंकुश; **उलटी...बांधु**=बाहर फैले हुए ध्यान को उलटकर अंदर ले जाकर बाँधो; **माता**=मतवाला, नशे में चूर; **मातिआ**=मस्त होना; **पलक...भोर**=पलक भर के लिए भी नहीं भुलाता; **चंद चकोर**=जैसे चकोर चंद्रमा से अपनी दृष्टि नहीं हटाता।

संत परमात्मारूपी शेर के बच्चे के समान होते हैं जो संसार में दिलेरी से चलते हैं। जब मनरूपी हाथी का सामना करते हैं तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। मनरूपी हाथी को वश में करने के लिए सतगुरु का ज्ञान अंकुश के समान है। बाहर फैले हुए ध्यान को उलटकर, अंदर ले जाकर शब्दरूपी ज़ंजीर से मनरूपी हाथी को बाँधना चाहिए। संसार में कोई विरला साधु ही इस प्रकार अपने मन को वश में करके मस्त होकर फिरता है। जैसे चकोर चंद्रमा से एक क्षण को भी अपनी दृष्टि नहीं हटाता, उसी प्रकार साधक की आंतरिक दृष्टि भी एकटक आंतरिक आकाश में लगी रहती है। यह रस उसके रोम-रोम में रचकर उसे ऐसे मस्त कर देता है कि वह पलक भर के लिए भी इसे नहीं भुलाता अर्थात् निरंतर अपने अंतर में देखते हुए मग्न रहता है।

मन पक्षी भौ ज्ञान अहेरी, ऐसे करो विचार।
जहां चले तहां घेरिए, खैंचि कमान करार॥[42]

भौ=हुआ, बन गया; **अहेरी**=शिकारी; **कमान करार**=कठोर धनुष।

इस बात को समझ लो कि मन पक्षी के समान निरंतर उड़ते रहनेवाला बन गया है। परमात्मा का ज्ञान उसका शिकारी है। जहाँ भी यह मनरूपी पक्षी उड़कर जाता है, हमें उसे वहीं पर इस ज्ञान का कठोर धनुष खींचकर घेर लेना चाहिए।

धरू मन धीरा ज्ञान गंभीरा। नाम हिरमर सो कहिअं॥
विवेक बिचारो शब्द सम्हारो। हारेव यम सब इमि लहिअं॥[43]

धरू=धारण करके; **धीरा**=धैर्य; **हिरमर**=बहुमूल्य पदार्थ, उत्तम हीरा; **शब्द सम्हारो**=शब्द की साधना करो; **इमि**=इस प्रकार; **लहिअं**=प्राप्त हो जाता है।

हमें अपने मन में धैर्य धारण करके उस गंभीर ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए जिसे नामरूपी उत्तम हीरा कहते हैं। इस प्रकार सूझ-बूझ के साथ शब्द की साधना करने से यमराज हार जाता है और हमें सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

अति सुख पावहिं हंसा, करहिं कुतोहल जाए।
छप लोक में अम्रित पिबहिं, जुग जुग छुधा बुताए॥[44]

कुतोहल=आनंद, अद्भुत आमोद-प्रमोद; **छप लोक**=सतलोक; **पिबहिं**=पीती है; **छुधा बुताए**=भूख मिटाना।

सतलोक पहुँचकर पवित्रात्मा अत्यधिक सुख पाती है तथा अद्भुत आमोद-प्रमोद करती है। सांसारिक रसों से हमेशा अतृप्त रहनेवाली आत्मा वहाँ अमृत को पीकर अपनी युगों की भूख मिटा लेती है।

चलु मन मगन गगन धुनि सुनेवो अनहद तान तार ताहां बाजेव।
झरि झरि परत सुरंग रंग ताहां परिमल अग्र बास छबि छाजेव।
महल मोकाम लाल जहां लटकेव मन मधुकर लपटि प्रेम पद कंजेव।
जागेव ब्रह्म कर्म सभ जारेव जगमग जोति भर्म भौ भंजेव।
मेटि गयो कफा करम करता भौ कलि मलि सभे साफ मन मंजेव।
दिल दरिया दरस नाम निजु परसेव परमहंस सुख सागर संजेव॥[45]

गगन=आंतरिक आकाश, अंतर में स्थित दूसरा रूहानी मंडल यानी त्रिकुटी या ब्रह्मलोक जो मन का उद्गम स्थान है, यहाँ के आकाश को गगन कहते हैं। इसी लिए त्रिकुटी को गगन-मंडल भी कहा जाता है; **धुनि**=शब्द-धुन; **अनहद तान**=अनहद शब्द; **तार**=सितार; **झरि**=बरसना; **सुरंग**=सुंदर; **परिमल**=सुगंधि; **अग्र बास**=उत्तम सुगंधिवाला; **छबि छाजेव**=शोभा देना; **महल मोकाम**=मूल धाम का महल; **लाल**=माणिक्य; **मन मधुकर**=मनरूपी भौंरा; **लपटि**=लिपट जाता है; **पद कंजेव**=चरणरूपी कमल; **जागेव ब्रह्म**=ब्रह्म के जाग्रत होने से; **जारेव**=जल गए; **भर्म...भंजेव**=संसार के भ्रम मिट गए; **कफा करम**=कर्मों के दुःख; **करता भौ**=संसार के कर्ता अर्थात् मन का भय; **कलि मलि**=कलियुग की मैल; **मन मंजेव**=मन माँजकर; **परसेव**=छूना, स्पर्श करना; **परमहंस**=पवित्रात्मा; **संजेव**=सुशोभित हो गई।

ऐ मन! आंतरिक आकाश में चलो और जहाँ सितार के समान अनहद शब्द की धुन बज रही है, उसे मग्न होकर सुनो। वहाँ उत्तम सुगंधिवाला नाम का सुंदर रंग निरंतर बरसते हुए शोभा दे रहा है। मन के मूल धाम के महल में जहाँ अनेक माणिक्य जैसे रत्न लटके हुए हैं, वहाँ मनरूपी भौंरा प्रभु के चरण-कमलों में प्रेम से लिपट जाता है। उस अवस्था में पहुँचकर ब्रह्म के प्रकाश की जगमगाती ज्योति में जीव के सभी कर्म जल जाते हैं तथा उसके भरम और भय दूर हो जाते हैं, कर्मों के दुःख और मन के भय मिट जाते हैं; कलियुग की सब मैल साफ़ हो जाती है और मन निर्मल हो जाता है। आत्मा अपने अंतर में सच्चे नाम को देखकर उसके स्पर्श से पवित्र बनकर सुख के सागर परमात्मा में समाकर सच्ची शोभा प्राप्त करती है।

8

कर्म

कर्म का अटल नियम

जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है। कर्म के अटल नियम के अनुसार, पुण्य करनेवाला सुख प्राप्त करता है जबकि पाप करनेवाला दुःख भोगता है। माता-पिता या भाई-बंधु – कोई भी हमें कर्मों के दुःखद परिणाम से बचा नहीं सकता। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि और देवता तक को कर्मों का हिसाब चुकाना पड़ता है।

यह शरीर पिछले पुण्यों और पाप-कर्मों के मिश्रण से ही बना है। यदि हम सतगुरु की शरण लेकर उनके उपदेश के अनुसार शब्द यानी नाम की कमाई नहीं करते तो हमें बार-बार संसार में जन्म लेकर दुःख-सुख का भोग करना पड़ेगा और कर्मों का यह सिलसिला कभी समाप्त नहीं होगा।

मन के प्रभाव में आकर ही जीव अज्ञानवश पुण्य या पाप-कर्म करता है। मन छिपकर पाप-कर्म करने के लिए हमें उकसाता है और हम यह भूल जाते हैं कि घट-घट वासी परमात्मा सदा हमारे अंदर बैठा सब कुछ देख रहा है। उससे कुछ भी छिपाया नहीं जा सकता। जब हम सतगुरु से प्राप्त ज्ञान की तलवार लेकर जाग खड़े होते हैं, तब मन हमें इधर-उधर भटका नहीं सकता। सजग जीव नाम की कमाई से प्राप्त ज्ञान की तलवार से कर्म के बंधन को काटकर इस दुःख-सुख के संसार को पार कर जाता है:

जो जस करे सो पावे सोई। यह संसार जात सब रोई॥[1]

जस=जैसा।

जो जैसा करता है, वह वैसा ही प्राप्त करता है। कर्मों के कारण ही संसार में सभी को रोना पड़ता है।

जैसन कर्म तैसन सो पावे॥ मातु पिता कोइ काम न आवे॥[2]

जैसन=जैसे; **तैसन**=वैसे।

जिसके जैसे कर्म होते हैं, वह वैसा ही फल पाता है। माता-पिता भी उसके किसी काम नहीं आ सकते।

कर्मे जीव मलीन जो कीन्हा। सत्त बिना ब्रह्म भौ छीना॥
पारस प्रेम से मइल कटाई। सतगुर सनदि खोजो चितलाई॥[3]

कर्मे=कर्मों ने; **मलीन**=मैला; **सत्त**=नाम; **छीना**=धूमिल; **मइल**=मैल; **चितलाई**=मन लगाकर।

कर्मों के कारण ही जीव मैला हो गया है। सच्चे नाम के बिना अंतर में स्थित परमात्मा भी धुँधला पड़ गया है और नज़र नहीं आता। हमारी सारी मैल सतगुरु के प्रेमरूपी पारस के द्वारा समाप्त हो सकती है। इसलिए हमें मन लगाकर सतगुरु की खोज करनी चाहिए।

काया करम कहं थापिया, पाप पुन्य जेहि साथ।
सतगुर मत नहि जानहि, सोइ परा जम हाथ॥[4]

काया=शरीर; **थापिया**=स्थापित करना, निर्माण करना; **जेहि**=जिसके; **परा**=पड़े; **जम**=यम।

कर्मों के अनुसार ही शरीर बनते हैं जिनमें पाप और पुण्य दोनों शामिल हैं। सतगुरु के चरणों की शरण लिए बिना इन कर्मों के कारण हमें यमराज के पास जाना पड़ता है।

पाप पुन्य मन कारन अहई। दुख सुख भोग दुवो एह करई॥
पुन्य के फल सुख होए शरीरा। पाप के फल कठिन दुख पीरा॥
पाप पुन के कर्म यह, उलटि पलटि भव आय।
सतगुरु ज्ञान बिचारहु, अमर लोक के जाय॥[5]

कारन=कारण; **अहई**=हैं; **दुवो**=दोनों; **पीरा**=पीड़ा; **भव**=संसार; **अमर लोक**=अविनाशी सतलोक को।

मन ही हमसे पाप और पुण्य कराता है। इसके कारण हम दुःख और सुख – दोनों का भोग करते हैं। पुण्यों के फल से शरीर को सुख मिलता है, जबकि पापों के कारण कठिन दुःख और पीड़ा को भोगना पड़ता है। इन पाप और पुण्य कर्मों के कारण ही जीव अनेक योनियों में भटकते हुए संसार में घूमता-फिरता रहता है। इसलिए हमें सतगुरु के दिए सच्चे ज्ञान के अनुसार अभ्यास करना चाहिए ताकि हम अविनाशी सतलोक को जा सकें।

बोवहिं कांट बिखै कै मूला। अवसर परे भया तिरसूला॥
अवसर परे पीछे पछताई। बिखि बोवै तेहिं बिखि लपटाई॥[6]

बोवहिं कांट=काँटे बोना; **बिखै कै**=विष के; **परे**=आने पर, बाद में; **भया तिरसूला**=त्रिशूल, अत्यंत कष्टकारक बन गया; **बिखि**=विष; **लपटाई**=लिपटता है।

यदि हम विषरूपी विषयों के कारण दूसरों के लिए काँटा बोते हैं तो समय पाकर वही हमारे लिए घोर कष्टकारक बन जाता है और बाद में हमें ही पछताना पड़ता है, क्योंकि जो विष बोता है उसे तो विष ही लिपटता है।

खून करे मद मासु जो खाई। चौरासी जिव जन्मै जाई॥
खून करै खून सो पावै। वोएल के वोएल ताहि भरमावै॥
वोएल बिना कोइ जाए ना पावै। कर्म डंड फेरि ताहि भरमावै॥

कहें दरिया नाहिं बांचिही, बिनु दीए कर्म डंड।
कहां भागि जीव जाइहो, सात दीप नव खंड॥

तीनि लोक जाकरि ठकुराई। वोएल दीन्ह तीनहु जग आई॥...
राम क्रिस्न लै कवन कहावै। करे खून वोएल सो पावै॥[7]

खून करे=हत्या करना; **मद**=मदिरा; **चौरासी**=चौरासी लाख योनियों वाली रचना; **वोएल**=बोया हुआ, किए हुए कर्म; **भरमावै**=भटकना; **डंड**=दंड, फल, भुगतान; **ताहि**=उस जीव को; **बांचिही**=बच सकता; **जाकरि**=जिनकी; **ठकुराई**=प्रभुत्व, राज्य, अधीन होना; **तीनहु**=तीनों – त्रिदेव, ब्रह्मा, विष्णु, शिव; **कवन कहावै**=किसे कह सकते हैं?

जो जीव हत्या करता है और मांस-मदिरा का सेवन करता है, वह चौरासी लाख योनियों के संसार में बार-बार जन्म लेता रहता है। यदि कोई किसी का ख़ून करता है तो वह भी उसका ख़ून करेगा। इस प्रकार जीव जैसा बीज बोता है वैसा ही बदले में पाने के लिए भटकता है। अपने किए हुए कर्मों का भुगतान किए बिना कोई भी इस संसार से जा नहीं सकता। कर्म का फल उसे संसार में भटकाता रहता है। कर्मों का भुगतान देने से कोई भी जीव नहीं बच सकता, भले ही कोई सात द्वीप और नौ खंडों वाली इस संपूर्ण रचना में कहीं भी भागकर क्यों न चला जाए। स्थूल, सूक्ष्म और कारण रचनावाली यह संपूर्ण त्रिलोकी ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अधीन है, उन्होंने भी अपने कर्मों का भुगतान दिया है। राम और कृष्ण से बढ़कर किसे कह सकते हैं! उन्हें भी किसी की हत्या करने के बदले में वैसा ही फल प्राप्त हुआ है।

विधि लिखनी कैसे लिख लीन्हा। कैसे अंक लिलाटै दीन्हा॥
जन्म मरन धन धाम संयोगा। रोग दोष औ बिपति बियोगा॥
सुर नर मुनी यही गुन ज्ञाता। जो फल लिखा सो देहिं बिधाता॥[8]

विधि=भावी, ब्रह्मा, विधाता; **लिखनी**=प्रारब्ध, होनी; **अंक**=निशान, लेख; **लिलाटै**=ललाट, मस्तक; **धाम**=घर; **संयोगा**=मिलना, मिलाप; **औ**=और; **बिपति**=विपत्ति; **सुर**=देवता; **नर**=मनुष्य।

विधाता ने हमारी प्रारब्ध को कैसे लिख दिया? उन्होंने हमारे भविष्य के लेख किस प्रकार हमारे मस्तक में लिखे? गुणी-ज्ञानी देवता, मनुष्य और मुनिजन सभी यही बताते हैं कि जन्म, मृत्यु, धन, घर, मिलाप, रोग, दोष, विपत्ति और वियोग – जो भी हमारे कर्मों के अनुसार निर्धारित होता है, विधाता हमें वही फल देता है।

आया काहां जायेगा काहां, तहकीक तारीक के कीजिये रे।
नेकी बदी दोये दर खड़े, कदम समुझ के दीजिये रे॥
दलक पेखो खलक देखो, पलक में प्रेम के पीजिये रे।
कहे 'दरिया' बहर कहर, दोजक के बीच ना भीजिये रे॥[9]

तहकीक=सचाई की खोज; **तारीक**=अज्ञान; **नेकी बदी**=भला और बुरा कर्म; **दलक**=गुदड़ी; **खलक**=दुनिया; **प्रेम के**=प्रेम को; **बहर कहर**=विपत्ति का सागर; **दोजक**=नरक; **भीजिये**=भीगना, डूबना।

मनुष्य कहाँ से आया और कहाँ जाएगा – अज्ञान से निकलकर हमें इस सचाई की खोज करनी चाहिए। अंत में हमारे अपने किए हुए अच्छे और बुरे कर्म हमारे सामने खड़े हो जाते हैं, अत: संसार में सोच-समझकर ही क़दम रखना चाहिए। यदि हम फटी पुरानी गुदड़ी पहनते हैं तो इस दिखावे को तो केवल दुनिया देखती है। पर हमें तो अपने अंतर में अपनी आँख से प्रभु-प्रेम के रस को पीना है, जिससे अंत में विपत्तियों के सागर यानी नरक में न डूबना पड़े।

अन्तर्यामी तुम जाननिहार हो, जानि छपावत सो चतुराई।
जाहि ते कर्म छपावत हो, सो तो देखत है घट ही घट छाई॥

आनि मिलो कर जोरि भले, ना तो आवत काल विशाल चढ़ाई।
'दरिया' दिल देखि विचार कहा, एक मज्जन नाम से कर्म कटाई॥[10]

छपावत=छिपाना; **घट...छाई**=हृदयरूपी घर में निवास बनाकर; **आनि मिलो**=आकर मिलो; **कर जोरि**=हाथ जोड़कर; **मज्जन नाम**=नाम के सरोवर में स्नान करने से।

हे प्रभु! यह जानते हुए भी कि आप सब कुछ जानते हो, जीव चतुराई-पूर्वक आप से अपनी करतूतें छिपाता फिरता है। जिस प्रभु से हम अपने कर्म छिपाते फिरते हैं, वह प्रभु तो हमारे हृदय के अंदर ही अपना निवास बनाकर सब कुछ देखता रहता है। दरिया साहिब कहते हैं कि अभी भी प्रभु रूप सतगुरु के पास आकर मिलो, नहीं तो तुझ पर काल का भारी आक्रमण होने जा रहा है। आप कहते हैं कि मैंने यह सोच-विचारकर कहा है कि प्रभु के नाम के सरोवर में स्नान करने से सारे कर्मों की मैल नष्ट हो जाती है।

संतो साहब दोष न दीजै, कै करनी अपने संग लीजै।
गढ़ भीतर गढ़ पति राजा, वह चाहे आपन सभ काजा॥
जब गढ़पति अंते जाई, तब गढ़ लिन्हों मन मत आई।
कलि कर्म काम का खोटा, यह बाँधु कर्म का मोटा॥
जब कर्म भया सिर भारा, तब बूड़ि मुआ मझधारा।
यह यम जगाति का झेला, इन्ह से कौन करेगा मेला॥
जब ज्ञान खरग ले जागा, तब काटु कर्म का धागा।
गढ़ पर जागत रहु निसि बारा, दशो खिर्की भौ रखवारा॥
जब जागत भै गो भोरा, तब कैसे मुसे गढ़ चोरा।
जब जानत जानत जाना, गगन गढ़ सेत निसाना॥
निसि बासर गढ़ पर गाजा, तब भयो छत्रपति राजा।
तब जीति सके नहिं कोई, सब हुकुम भीतर होई॥
तब छूटे फंद बिकारा, कहें 'दरिया' सत शब्द विचारा॥[11]

कै करनी=अपनी की हुई करनी को; **गढ़**=शरीररूपी क़िला; **गढ़ पति**=क़िले का स्वामी आत्मा; **आपन**=अपने; **काजा**=काम; **अंते जाई**=दूसरी जगह जाता है, शरीर से बाहर दूसरे विषयों में लग जाता है; **कलि**=कलियुग; **मोटा**=गठरी; **बूड़ि**=डूबना; **मझधारा**=बीच धारा में; **यम जगाति**=कर वसूलनेवाले यमदूत; **मेला**=सामना; **ज्ञान खरग**=ज्ञानरूपी तलवार; **जागा**=सचेत हो गया; **कर्म...धागा**=कर्म के बंधन; **निसि बारा**=रात-दिन; **दशो खिर्की**=दोनों आँखों के मध्य दसवीं खिड़की अर्थात् तीसरा तिल; **रखवारा**=रखवाली; **भै**=हो गया; **भोरा**=भूलना, असावधान होना; **मुसे**=चोरी करना; **गगन गढ़**=क़िले के आकाश में; **सेत निसाना**=श्वेत पताका; **गाजा**=गर्जना; **छत्रपति राजा**=सबको जीतकर सब पर राज करनेवाला छत्रपति शासक; **फंद बिकारा**=व्यर्थ के बंधन।

हे संतो! हमें परमात्मा को दोष नहीं देना चाहिए, क्योंकि हम संसार में जो भोगते हैं, अपनी की हुई करनी के कारण ही भोगते हैं। शरीररूपी क़िले के अंदर इस क़िले का स्वामी आत्मारूपी राजा है जो अपने सारे काम साध लेना चाहता है। लेकिन जब आत्मारूपी राजा का ध्यान अंतर न रहकर बाहर के दूसरे विषयों में लग जाता है तो इस क़िले पर मन की मति आकर अपना अधिकार जमा लेती है, जिसके कारण जीव कलियुग के प्रभाव से काम-वासनारूपी बुरे कर्म करता है और कर्मों की गठरी अपने साथ बाँध लेता है। इस प्रकार जब उसके सिर पर कर्मों का भारी बोझ हो जाता है तो वह संसाररूपी सागर की बीच धारा में डूब मरता है। फिर कर्मों के अनुसार प्रत्येक जीव को कर वसूलनेवाले यमदूतों द्वारा दिए गए कष्टों को झेलना पड़ता है। बुरे कर्मों की गठड़ी सिर पर होने के कारण इन यमदूतों का सामना भला कौन करेगा? जब जीवात्मा सतगुरु से ज्ञानरूपी तलवार लेकर सचेत हो जाती है तो उस तलवार से कर्मों के सारे बंधन कट जाते हैं। तब जीव शरीररूपी क़िले पर रात-दिन जागता रहता है और इस क़िले के नौ द्वारों से ऊपर उठकर दसवीं खिड़की अर्थात् तीसरे तिल में अपने ध्यान को केंद्रित करके रखवाली करने लगता है। इस प्रकार

जब वह जाग जाता है और कभी असावधान नहीं होता, तब भला कोई चोर इस शरीररूपी क़िले में कैसे चोरी कर सकता है? जीवात्मा क़िले में प्रवेश करके खोज करते-करते वहाँ आकाश में उस स्थान पर पहुँच जाती है जहाँ आंतरिक आकाश के क़िले की श्वेत पताका लहरा रही होती है। जब उस क़िले पर पहुँचकर जीवात्मा ने रात-दिन शब्द की निरंतर गर्जना में लिव लगाए रखी तो वह क़िले को जीतकर छत्रपति शासक बन गई।* तब कोई भी उस पर विजय नहीं पा सकता, अंतर में सभी इसकी आज्ञा में रहते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि इस प्रकार शब्द के अभ्यास द्वारा जीव के सारे व्यर्थ के बंधन छूट जाते हैं।

बुरे कर्मों का भयानक परिणाम

लोक-परलोक का पूरा हाल जाननेवाले संत दुष्कर्मों के भयानक परिणाम की ओर हमारा ध्यान दिलाकर हमें उनसे बचे रहने के लिए चेतावनी देते हैं। सतगुरु की शरण लिए बिना सभी जीवों को मरने के बाद धर्मराय के दरबार में अपने कर्मों का हिसाब देने के लिए जाना पड़ता है तथा उन्हें अपने कर्मानुसार अनेक योनियों में जन्म लेकर सुख-दुःख भोगना पड़ता है। पापियों के सिर पर कोड़ों की मार पड़ती है और उन्हें निर्दयता-पूर्वक तप्त शिला पर तपाया जाता है। जो लोग दिखावटी वेष-भूषा बनाकर साधु बनने का ढोंग करते हैं और दूसरों को ठगते फिरते हैं, उन्हें बहुत कड़ी सज़ा भुगतनी पड़ती है।

पाप-कर्म करते समय हम उसके परिणाम का ख़याल नहीं करते। जीवों की हत्या करना, उनका मांस खाना, झूठ बोलना, चोरी-ठगी से दूसरों का धन अपहरण करना आदि घोर दुष्कर्म हैं। अनेक उपायों से इकट्ठी की गई सारी धन-संपत्ति यहीं रह जाती है और यमदूत पापियों को घसीटते हुए यमराज के पास ले जाते हैं। मृत्यु के बाद आत्मा के

* श्वेत पताका और गर्जना से दरिया साहिब का आशय शब्द मे निहित प्रकाश और धुन से है।

गिड़गिड़ाने और दया की भीख माँगने पर यमदूत क्रोधित होकर उसे और भी बेरहमी से पीटते हैं। सतगुरु की शरण लेकर परमात्मा की भक्ति किए बिना यमराज से छुटकारा पाना संभव नहीं है।

टेरि टेरि बहु बचन कहि, बहु बिधि कहेव पुकार।
धर्मराय कागद देखा, दीहें कोड़न की मार॥[12]

टेरि टेरि=ऊँची आवाज़ देकर, ज़ोर से; **बहु बचन**=बहुत-सी बातें; **कागद**=हिसाब; **कोड़न**=कोड़ों की।

दरिया साहिब कहते हैं कि मैं बार-बार अनेक प्रकार से ऊँची आवाज़ देकर कहता हूँ कि यमराज सारे जीवों के कर्मों का हिसाब देखता है और बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप उन पर कोड़ों की मार पड़ती है।

कागज परा हजूर में, बेबाहा के हाथ।
कहां भागि जीव जाइहो, लगा पियादा साथ॥
तपत शिला पर डारिया, डरतेही परा चिक्कार।
गुनहगार के सिर पर, दिजै कोरा की मार॥
कागा कपुता काछीया, धरे हंस का भेस।
विवरन नहिं नीर छीर का, जम धरि पकरि केस॥[13]

परा=पड़ा; **हजूर में**=सामने, समक्ष; **पियादा**=यमदूत; **तपत शिला**=तपती हुई चट्टान; **डारिया**=डाल दिया, फेंक दिया; **चिक्कार**=चीख़ने लगा; **कोरा...मार**=कोड़ों की मार; **कागा कपुता**=कौवे जैसा गंदगी का सेवन करनेवाला दुराचारी; **काछीया**=दिखावटी वेश बनाया; **धरे**=धारण करना; **हंस**=पवित्रात्मा, महात्मा; **भेस**=भेष; **विवरन...का**=पानी और दूध को अलग-अलग कर उन्हें पहचानने की शक्ति नहीं है, बुरे और भले कर्मों की पहचान नहीं है; **धरि**=पकड़कर; **केस**=बाल।

मृत्यु के बाद यमराज के सामने जीव के कर्मों का हिसाब रखा जाता है और वह ख़ुद उसकी जाँच करता है। यमदूत जीव के साथ लगे रहते हैं; ऐसे में जीव भागकर आख़िर जा कहाँ सकता है? उसके बुरे कर्मों के अनुसार सज़ा देते हुए यमदूत उसे आग से तपती हुई गर्म चट्टान पर फेंक देते हैं जिसके डर से वह चीख़ उठता है। उसके अपराधों के लिए यमदूत उसके सिर पर कोड़े मारते हैं। ऐसे दुराचारी लोग जो दुनिया में कौवे की तरह गंदगी का सेवन करते हैं और महात्मा बनने का ढोंग धरते हैं, यम उन्हें बालों से पकड़कर खींचते हैं।

जेहि नहिं सतगुरु शब्द समाई। देखो परतक्ष काल गमि पाई॥
इमि करि जग में धरे शरीरा। वह नहिं जानत पर के पीरा॥[14]

समाई=प्रवेश, समा जाना; **काल...पाई**=काल का प्रवेश हो जाता है; **धरे**=धारण करता है; **पर...पीरा**=दूसरों का कष्ट।

जो सतगुरु के बताए शब्द में नहीं समा जाता, उसके अंतर में तो प्रत्यक्ष काल का प्रवेश हो जाता है। जो दूसरों के कष्ट को नहीं जानता अर्थात् पर-पीड़ा को अनुभव नहीं करता, वह तो बार-बार संसार में शरीर धारण करता रहता है।

अब तुम टेढ़े टेढ़े चलता।
साधु द्रोह एह मोह माया बसि जमके धक्के परता॥
नहिं बूझे तौ फेरि बूझेगा अघ पातख में भीना।
काल जाल तेरो सिर पर फीरे बाझि गया जल मीना॥
मीन मासु एह काया पोखै जीव घात करि खावै।
दूर बेदर्दी दरद कहां है बांधा जमपुर जावै॥
बहु बिधि माल बिरानी हरिया पैसा लाख बटोरे।
जाकर माल ते छीनि लीन्हौ घैंचन लागे कोरे॥
झूठी बात मुठी में राखे सांच सुने दुरि जावै।

हरि के दूत फिरहि हरकारा मरकट बांधि ले जावै॥
रे मन मूरख निगम साषी है सुनि ले सतगुर बानी।
कहें दरिया धन धन वोए प्रानी जिन्हि एह गुरमत ठानी॥[15]

बसि=वश होकर; **जमके**=यम के; **धक्के परता**=धक्के पड़ते हैं; **बूझे**=समझता; **फेरि**=बाद में; **अघ पातख**=पाप और दुष्कर्म; **भीना**=भीगा हुआ, डूबा हुआ; **फीरे**=फिरना, चक्कर लगाना; **बाझि गया**=फँस गया; **मीना**=मछली; **काया पोखै**=शरीर का पोषण करते हैं; **जीव घात**=जीव-हत्या; **दूर बेदर्दी**=निर्दयी! तुम दूर हटो; **दरद...है**=तुममें हमदर्दी (दूसरों के कष्ट को देखकर सहानुभूति) कहाँ है? **माल बिरानी**=दूसरों का धन; **हरिया**=हर लेना; **बटोरे**=इकट्ठा करना; **जाकर**=जिसका; **छीनि लीन्हौ**=छीन लिया; **घैंचन**=खींचना या पीटना; **कोरे**=कोड़े; **मुठी में राखे**=(मुहावरा) मन में रखना; **दुरि जावै**=दूर भागते हैं; **हरकारा**=संदेश पहुँचानेवाले; **निगम...है**=वेद गवाह हैं; **वोए**=वे।

अभी तो तू टेढ़ी चाल चलता है पर याद रख कि जो जीव साधुओं का विरोध करते और जीवन भर संसार के मोह और माया में फँसे रहते हैं, उन्हें मृत्यु के बाद यम के धक्के खाने पड़ते हैं। पापों और दुष्कर्मों में डूबे हुए जीव अगर अभी नहीं समझे तो फिर बाद में इस बात को ज़रूर समझेंगे, क्योंकि उनके सिर पर काल फंदा लिए चक्कर लगा रहा है और वे इस जाल में जल की मछली की तरह फँस गए हैं। जो मांस-मछली का सेवन करके अपने शरीर को पालते हैं तथा जीवों की हत्या करके उन्हें खाते हैं, वे इतने बेदर्द बन जाते हैं कि उनमें दूसरों के कष्टों के प्रति ज़रा भी सहानुभूति नहीं रहती। ऐसे बेदर्दी को यह कहकर फटकारा जाता है, 'ऐ निर्दयी! तुम दूर हटो।' फिर ऐसे जीव यमदूतों के द्वारा यमपुरी में बाँधे जाते हैं। लोग अनेक तरीक़ों से दूसरों का धन हरकर लाखों रुपये जोड़ते हैं। परंतु याद रखो, तुम जिनको धोखे से लूटते हो, वे ही एक दिन तुम पर कोड़े बरसाएँगे। फिर जीव को यमदूत भी घसीटते हुए कोड़े

मारते हैं। जो सदा झूठ बोला करते हैं तथा सच सुनकर दूर भागते हैं, उनकी हरकतों को सदा चारों ओर फिरते रहनेवाले काल भगवान् के दूत देखते रहते हैं। वे उन्हें वैसे ही बाँधकर ले जाते हैं जैसे बंदर को शिकारी बाँधकर ले जाता है। ऐ मन! वेद इन बातों के गवाह हैं। अत: तू सतगुरु के बचनों को सुनकर, उन पर अमल कर। सचमुच ऐसे जीव धन्य हैं जो गुरु के बताए नाम के इस मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलते हैं।

चलो सिताब देवानखाना से आया जम जरूरे॥
कागज साफ करो तुम अपना बाकी है भरिपूरे॥
का तुम खाया खरचा जमे मुंढे गरब गरूरे॥
अबरिक बार छुटे नहिं पैहो टुटिहैं चाबुक चूरे॥
बिनती करे सुनो जमदूतौं तुम ते बनी निमेरे॥
किछु किछु काज तुम्हारे सरिहौं करिहौं भक्ति सबेरे॥
एतना सुनि कोपे जमदूते मुस्टकन्हि मारि करेरे॥
चले सिताब ताहाँ ले पहुँचे चित्रगुप्त के डेरे॥
छूटा महल खजाना घोरा बहुरि कन्हौ नहिं फेरे॥
सीर धुनि धुनि रानी रोवे चाकर बहुत घनेरे॥
जो कछु अमल कमाया जग में पाया दरब दरेरे॥
कहें दरिया छुटा जग दावा भक्ति बिना जम चेरे॥[16]

सिताब=तुरंत, झटपट; **देवानखाना**=यमपुरी; **जम जरूरे**=यमदूत ज़रूरी फ़रमान लेकर आया है; **बाकी...भरिपूरे**=जो कुछ काम बाक़ी है और जो कुछ पूरा किया है; **खाया...जमे**=खाया, ख़र्च किया और जमा किया; **मुंढे**=मूढ़, मूर्ख; **गरब गरूरे**=बड़े भारी घमंड में चूर; **अबरिक बार**=इस बार; **पैहो**=पाओगे; **टुटिहैं**=टूट जाएँगे; **चाबुक चूरे**=तुम्हारी इतनी पिटाई होगी कि चाबुक टूटकर चूर हो जाएगा; **निमेरे**=मुक्त करना, छूटना; **सबेरे**=तुरंत; **एतना**=इतना; **कोपे**=क्रोधित हो गए; **मुस्टकन्हि... करेरे**=ज़ोर-ज़ोर से मुक्के मारने लगे; **चित्रगुप्त...डेरे**=गुप्त रूप से

हर जीव के कर्मों का लेखा-जोखा रखनेवाले यमराज के लिपिक, चित्रगुप्त के दरबार में; **घोरा**=घोड़ा; **बहुरि**=फिर; **कन्हौ...फेरे**=गर्दन घुमाकर नहीं देखा; **धुनि धुनि**=पटक-पटककर; **चाकर**=नौकर; **बहुत घनेरे**=बहुत-से; **अमल**=साधन; **पाया...दरेरे**=धक्के खाकर जो धन प्राप्त किया था; **दावा**=अधिकार; **जम चेरे**=यमराज के ग़ुलाम।

जब मृत्यु का समय आता है, यमपुरी से यमदूत जीव के लिए ज़रूरी फ़रमान लेकर आते हैं कि चलो, जल्दी करो! वे उससे कहते हैं कि तुम अपना हिसाब-किताब स्पष्ट करो कि तुमने कितना काम पूरा किया है और कितना अभी बाक़ी है। भारी घमंड में चूर ऐ मूर्ख! बताओ कि अपनी पूँजी में से तुमने कितना खाया, ख़र्च किया और जमा किया। तुम इस बार छूट नहीं पाओगे, भले ही हमारा चाबुक तुम्हें मारते-मारते टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाए। जीव प्रार्थना करता है कि हे यमदूतो, तुम मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हारे काम आऊँगा और अभी से भक्ति करूँगा। इतनी बात सुनकर यमदूत क्रोधित हो जाते हैं और उसे ज़ोर-ज़ोर से मुक्के मारने लगते हैं। वे झटपट उसे यमराज के लिपिक, चित्रगुप्त के दरबार में ले जाते हैं जो गुप्त रूप से हर जीव के कर्मों का लेखा-जोखा रखता है। इस प्रकार उसका महल, ख़ज़ाना और घोड़े – सभी कुछ पीछे छूट जाता है। वह तो गर्दन घुमाकर पीछे देख भी नहीं सकता। उसकी मृत्यु पर उसकी रानी और बहुत-से नौकर-चाकर सिर पटक-पटककर रोते हैं। उसने जो सुख-साधन संसार में इकट्ठे किए थे और धोखाधड़ी से जो धन प्राप्त किया था, उन सब पर उसका अधिकार छूट जाता है। परमात्मा की भक्ति के बिना उसे यमराज का ग़ुलाम बनना पड़ता है।

तीरथ औ ब्रत से पाप जावै नहिं दूरि धंधा करे कर्म बंधा।
भक्ति से चूकिया भौन में भूकिया ज्ञान ते हूकिया नैन अंधा।
लटकि बादुर हुआ पटकि जम मारिया चरन भौ चारिया चरख नाधा।
उलटि औ पलटि एह कलपि कर काटिया बांटिया भौन में वोएल संधा।

नाहर नागा हुआ जंगल में भागिया आगि लगाए के जारि खंधा।
तहुं नहिं बांचिया कर्म ते नाचिया खैंचि कर बान भरी ताहि रंधा।
मरकट मुठी हुआ कर्म काला करे लोभ में डारिया सोइ धंधा।
कहे दरिया येह लच्छ चौरासिया फांसिया काल ने प्रान कंधा॥[17]

जावै नहिं=जाते नहीं, दूर नहीं होते; **दूरि...करे**=दूर-दूर जाकर धंधे में लगता है; **कर्म बंधा**=कर्मों में बँधता है; **चूकिया**=चूकने पर; **भौन**=घरों में, योनियों में; **भूकिया**=भौंकता फिरता है; **हूकिया**=हुकना, निशाना चूकना, ख़ाली रह जाना; **बादुर**=चमगादड़; **चरन...चारिया**=चौपाया बैल बना; **चरख नाधा**=रहट में जोता गया; **उलटि...पलटि**=उलट-पलटकर; **कलपि कर**=रो-पीटकर; **बांटिया**=बाँटना; **संधा**=साथ लगा रहता है; **नाहर...हुआ**=शेर के समान नागा (नंगा रहनेवाला साधु) बना; **खंधा**=धूनी जलाने के लिए लकड़ी के कुंदे यानी मोटे टुकड़े-टुकड़े; **तहुं**=वहाँ; **रंधा**=नष्ट करना, बरबाद करना; **कर्म...करे**=बुरे कर्म करता है; **लोभ...डारिया**=लोभ में फँसाना; **धंधा**=कर्म; **लच्छ...फांसिया**=चौरासी लाख योनियों का फंदा; **प्रान कंधा**=प्राणों का नाश किया।

तीर्थ और व्रत करने से हमारे पाप नष्ट नहीं होते, फिर भी लोग दूर-दूर जाकर ऐसे धंधों में लगकर कर्मों से बँधते हैं। मनुष्य-जन्म में परमात्मा की भक्ति से चूकने के कारण निचली योनियों में जन्म लेकर व्यर्थ ही जीवन बरबाद करते हैं। परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लक्ष्य से चूकने के कारण हम आँखों से अंधे बने रहते हैं। अपने बुरे कर्मों के कारण हमें चमगादड़ बनकर उलटा लटकना पड़ता है और यमदूतों की मार सहनी पड़ती है। फिर संसार में चौपाये बैल के रूप में जन्म मिलता है, जहाँ हमें रहट घुमाने के लिए जोता जाता है। उलट-पलटकर अनेक योनियों में रो-पीटकर हमारा जीवन बीतता है। एक योनि से दूसरी योनि में जाने पर हम एक-दूसरे से अपने किए हुए कर्मों का हिसाब चुकाने में लगे रहते हैं। यदि शेर के समान नागा (नंगा रहनेवाला साधु) बनकर (संसार को छोड़) जंगल को भागते

हैं तो वहाँ लकड़ी के कुंदे की धूनी जलाकर बैठ जाते हैं। पर वहाँ भी हम अपने कर्मों से बच नहीं पाते। कर्म हमें नचाते ही रहते हैं और हम काल से नहीं बच सकते। काल हमें अपने बाणों से बरबाद कर देता है। जैसे बंदर अपनी मुट्ठी कसकर बाँधने के कारण तंग मुँह वाले बर्तन में अपने हाथ फँसा लेता है, वैसे ही हम भी सांसारिक विषयों में आसक्त होकर बुरे कर्म करते हैं और संसार में फँसे रहते हैं। हम वे ही कर्म करते हैं जो हमें और अधिक संसार के लोभ में फँसाते हैं। इस प्रकार काल इस चौरासी लाख योनियों के फंदे में हमारे प्राणों का नाश किया करता है।

जन्म जन्म कर्म कीन्हों सोई संग लागा।
देह धरि-धरि मरि जइबे रे अभागा॥
मीन मांसु काया पोखे कबहीं न नागा।
जहां जहां खून कीन्हों सोई करिहें दागा॥
गुरु के ना ज्ञान तोहीं झूठी बातें पागा।
मोहकमें गांठी बांधे माया संग जागा॥
चोरनी के संग बसे साधु संग त्यागा।
कहें दरिया दिल कुमति बिरागा॥[18]

देह...धरि=बार-बार शरीर धारण करके; **मरि जइबे**=मर जाओगे; **अभागा**=भाग्यहीन; **मीन**=मछली; **काया पोखे**=शरीर का पोषण करता है; **कबहीं...नागा**=कभी भी नागा नहीं पड़ता; **खून कीन्हों**=हत्या की; **सोई**=वही; **दागा**=धोखा; **तोहीं**=तुझे; **पागा**=रमा हुआ; **मोहकमें**=पशुओं को बाँधने के लिए मुँह के ऊपर लगाई जानेवाली रस्सी की मोहरी से; **गांठी बांधे**=मज़बूत गाँठ बाँधकर; **चोरनी**=माया; **कुमति बिरागा**=कुबुद्धि से पगला गया।

प्रत्येक जन्म में हम जो कर्म करते हैं, वे हमारे साथ लगे रहते हैं और हम अभागे जीव उन कर्मों के अनुसार बार-बार शरीर धारण करके मर जाते हैं। यदि हम

मांस-मछली खाकर अपने शरीर का पोषण करते हैं और कभी एक दिन का भी नागा नहीं होने देते तो हमने जहाँ-जहाँ जीवों की हत्या की होती है, वे सभी जीव कर्म-फल के नियम के अनुसार हमसे भी वैसा ही धोखा करते हैं। हमें गुरु के बताए नाम-मार्ग का ज्ञान नहीं है, बल्कि हम तो झूठी बातों में रमे हुए हैं। हम तो माया के साथ ऐसी मज़बूत गाँठ बाँधकर बँधे हुए हैं जैसे पशु मोहरी से बँधा होता है। हम साधुओं के सत्संग में नहीं जाते; माया के ही साथ रहते हैं। इस प्रकार हम अपनी कुबुद्धि के कारण पागल ही बने हुए हैं।

कर्मों के विनाश की युक्ति

अनंत काल से अनेक जीवन धारण कर हम कर्म करते आ रहे हैं। इस प्रकार हमनें कर्मों का पहाड़ खड़ा कर लिया है। कर्मों के इस पहाड़ को केवल सतगुरु के दिए ज्ञान की छेनी से ही काटा जा सकता है।

जीव कर्मों के सघन वन के बीच पड़ा हुआ है जिसकी अनेक झाड़ियाँ और लताएँ कपट के काँटों से भरी हुई हैं। सतगुरु की दी ज्ञानरूपी कुल्हाड़ी से ही इन सब को काटकर साफ़ किया जा सकता है। यह ज्ञान सतगुरु के दिए हुए नाम यानी शब्द-धुन के अभ्यास से उत्पन्न होता है। संत-सतगुरु का दिया हुआ नाम कभी भी व्यर्थ नहीं जाता।

सतगुरु के नाम की शीतलता कर्मों के ताप को मिटा देती है और आत्मा निर्मल होकर दिव्य प्रकाश और मधुर शब्द-धुन से भरे आंतरिक मंडलों में चली जाती है। आत्मा का अपना प्रकाश सोलह सूर्यों के बराबर हो जाता है। इस प्रकार सतगुरु की दया और शब्द की साधना द्वारा आत्मा आंतरिक गगन के अलौकिक सुखों का अनुभव करते हुए काल की सीमा को पार कर अपने अनुपम आनंद धाम में पहुँच जाती है:

मंजन मैलि जो जात है, सज्जन जन की रीति।
अघपातक जरि जायेगा, कर सतगुरु से प्रीति॥
कर्म पहाड़ यह ना टरे, टारेगा कोई संत।
ग्यान छेनी से काटिये, यह सतगुरु का मंत॥

कपट काटि कंटा काटेव, काटि बेइलि औ पात।
ग्यान कुल्हाड़ी कर्म बन, काटियाँ सभ गात॥[19]

मंजन=स्नान; **जात है**=जाती है, नष्ट होती है; **अघपातक**=पाप और दुष्कर्म; **जरि जायेगा**=जल जाएँगे; **कर्म पहाड़**=कर्मरूपी पहाड़; **टरे**=टलना, हिलना; **ग्यान छेनी**=ज्ञानरूपी छेनी; **मंत**=सलाह, मत, ज्ञान; **कपट**=झूठ और फ़रेब; **कंटा**=काँटे; **बेइलि**=लता; **पात**=पत्ते; **गात**=शरीर।

सज्जन पुरुषों को मालूम है कि जैसे स्नान करने से शरीर की बाहरी मैल उतरती है, उसी प्रकार सतगुरु से प्रेम करने से हमारी पापों की मैल नष्ट हो जाती है। यदि हम अपने बल-बूते से कर्मों के पहाड़ को टालना चाहें तो यह हिलता भी नहीं। इसे संत ही टाल सकते हैं। सतगुरु हमें उपदेश देते हैं कि उनसे ज्ञानरूपी छेनी प्राप्त करके इस पहाड़ को काटना चाहिए। हमें पहले झूठ और फ़रेब के काँटे काटने हैं, फिर कर्मरूपी वन की लताएँ और पत्ते काटने हैं। इस प्रकार सतगुरु से प्राप्त ज्ञानरूपी कुल्हाड़ी से हमारे कर्मों का वन साफ़ हो सकता है।

सतगुरु आप छोड़ाइया, छूटे शबद के साथ।
कहे दरिया तब बाँचिहों, ग्यान रतन लियो हाथ॥[20]

छोड़ाइया=छुड़ाया; **तब बाँचिहों**=तब बच सकते हैं।

सतगुरु स्वयं हमसे शब्द का अभ्यास करवाकर हमें कर्मों के बंधन से छुड़ा लेते हैं। कर्मों के बोझ से तभी बचा जा सकता है यदि हम सतगुरु से ज्ञानरूपी रत्न को हाथ में लेते हैं।

मति मराल गति संत है, छेक सके नहिं कोय।
भवसागर जीत जाइहो, यह मृथा नहिं होय॥[21]

मराल=हंस; **छेक**=रोकना; **मृथा**=झूठ।

संतों की गति हंस के समान होती है। वे अंतर के आकाश में निर्बाध (बिना किसी बाधा या रुकावट के) उड़ते हैं, उन्हें कोई भी नहीं रोक सकता। इस प्रकार वे संसार-सागर को जीतकर उससे पार चले जाते हैं; यह बात कभी झूठ नहीं हो सकती।

काटि कर्म सत सब्द से, मिले गहिर गुर ग्यान।
भरम करम सभ नासि के, भवो अमरपुर धाम॥[22]

सत=सच्चा; **गहिर**=गहरा; **नासि के**=नष्ट करके; **भवो**=हो गया अर्थात् पहुँच गए; **अमरपुर**=सतलोक।

यदि हमें गुरु से गहरे ज्ञान की प्राप्ति हो जाए, तो हम सच्चे शब्द के अभ्यास द्वारा अपने कर्मों को काट सकते हैं। इस प्रकार हम संसार के सभी भ्रमों और कर्मों को नष्ट करके अमर धाम सतलोक को पहुँच सकते हैं।

नाम निर्बान ते कर्म कलि विषि छूटे,
खुले कपाट मद मोह टारा।
काल के फाँस सभ काट कतल किया,
ज्ञान गुरु खर्ग सो काट यारा॥
अनुराग बैराग छिये छेद बिरह भेद,
सतवर्ग सतनाम तुम समुझ प्यारा।
होहु आवरण सभ कर्म करदा छूटे,
खुले मूल दृष्टि पर अगम डेरा॥
काया के अग्र जहां अगम झलकत रहे,
झरत झरि गगन सभ फहम तेरा।
चित्त चतुरंग जहाँ ज्योति जगमग बरे,
झार चकमक चित समुझ हेरा॥
तहाँ षोडस प्रकास है उदित उजियार,
भौ ब्रह्म भरिपूर मुख बैन टेरा।

कहे 'दरिया' तुम झार प्रचार ले,
लेहु होशियार नहिं काल घेरा॥[23]

निर्बान=मुक्ति; **किलि विषि**=मैल; **कपाट**=अंतर के परदे और किवाड़; **मद**=अहंकार, घमंड; **टारा**=दूर होना; **फाँस**=फंदा; **कतल**=नष्ट करना; **ज्ञान...खर्ग**=गुरु की ज्ञानरूपी तलवार; **यारा**=ऐ दोस्त; **छेद बिरह**=विरह को नष्ट करना; **सतवर्ग**=सर्वोपरि; **कर्म करदा**=कामरूपी मलिनता, कलंक; **अगम डेरा**=जहाँ जाया नहीं जा सकता, वहाँ निवास करना; **अग्र**=आगे, परे; **झरत...गगन**=आकाश से अमृत की वर्षा होती है; **फहम**=ज्ञान, समझ; **चतुरंग**=चारों ओर; **बरे**=जले; **झार**=झाड़कर; **समुझ हेरा**=समझकर देखो; **षोडस प्रकास**=सोलह सूर्य के समान प्रकाश; **उजियार भौ**=उजाला, प्रकाश हो गया; **बैन टेरा**=शब्द की टेर, धुन; **झार प्रचार**=जाँच-पड़ताल।

मुक्ति देनेवाले नाम से कर्मों की मैल छूट जाती है तथा अंतर के परदे और किवाड़ खुल जाते हैं जिससे हमारा अहंकार और मोह दूर हो जाता है। यदि सतगुरु के ज्ञान की तलवार से काटा जाए तो काल के सभी फंदों को नष्ट किया जा सकता है। दरिया साहिब कहते हैं कि ऐ दोस्त! तू सर्वोपरि सतनाम के भेद को समझ। इसके अनुराग से और विषयों के वैराग्य से ही अपने प्रियतम परमात्मा से दूर हुई आत्मा की विरह की वेदना को नष्ट किया जा सकता है। शब्द के अभ्यास की युक्ति से सुशोभित होने पर कामरूपी मलिनताएँ छूट जाती हैं और अपने मूल स्रोत को देखने की सूक्ष्म दृष्टि खुल जाती है, जिससे तू अगम सतलोक में जाकर निवास पा सकेगा। शब्द के अभ्यास द्वारा ही वहाँ का ज्ञान हो सकता है जहाँ स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से आगे अगम परमात्मा का प्रकाश झलकता रहता है और आकाश से अमृत की वर्षा होती रहती है। वहीं आत्मारूपी चित्र के चारों ओर जगमगाती हुई ज्योति जल रही है। नामरूपी चकमक पत्थर से आत्मा को झाड़कर ध्यान से देखो।

वहाँ सोलह सूर्य के उगने के उजियाले के बराबर आत्मा का प्रकाश है। आगे परमात्मा अपने पूर्ण रूप में प्रकट है और उससे शब्द की धुन निकल रही है। दरिया साहिब कहते हैं कि तू अच्छी तरह से जाँच-पड़ताल करके सावधान होकर शब्द के अभ्यास में लग जा, नहीं तो तुझे काल अवश्य ही घेर लेगा।

जान जन जगत में काट कलि कर्म,
निःकर्म होय पास सत शरण आई।
गवन करु गगन में भवन परिचय करो,
रहत उन्मुनि रस अमिय पाई॥
खोल कुंज कमल जहाँ भँवर बास में,
काल के त्रास नहिं पास आई।
गहो तुम झार प्रचार मुख टेर यह,
होहु होशियार नहिं काल खाई॥
काल दल मलित भव बान सन्धान ते,
भया प्रतिपाल जिन्ह शब्द पाई।
रहो ठहराय अविचल में जान के,
गहो निर्बान पद भजो भाई॥
जमी आसमान का यह सत बन्धान है,
गहो सत शब्द सुरति पार पाई।
कहे 'दरिया' यह ग्यान गुरु गहि रहै,
करो गमि अगम दिव्य दृष्टि लाई॥[24]

निःकर्म=निष्कर्म, कर्म रहित; **सत शरण**=सतगुरु की शरण; **भवन... करो**=हवा के समान चंचल मन को पहचानो; **उन्मुनि**=ध्यान का अंतर्मुख होना; **रस अमिय**=अमृत रस; **कुंज**=लता मंडप; **त्रास**=कष्ट; **काल दल**=काल की सेना; **मलित भव**=समाप्त हो गई; **बान सन्धान**=बाण का निशाना लगाना; **भया प्रतिपाल**=सँभाल हो गई; **निर्बान पद**=मुक्ति पद;

जमी=ज़मीन; **बन्धान**=बाँधनेवाला; **गहो...शब्द**=सच्चे शब्द को पकड़कर; **ग्यान...रहै**=गुरु के ज्ञान को पकड़े रहे; **गमि**=जाना।

सांसारिक कामनाओं को त्यागकर सतगुरु की शरण में आओ। संसार के तुम्हारे पाप कर्म कट जाएँगे और तुम कर्मों से रहित हो जाओगे। पवन के समान चंचल मन को पहचानने के लिए अपने आंतरिक आकाश में प्रवेश करो। वहाँ नामरूपी अमृत का रस पाकर मन अंतर्मुख ध्यान में मग्न हो जाता है। जब अंतर में स्थित कमलों की फुलवारी में कमल खिल जाते हैं तथा आत्मारूपी भौंरा उनकी सुगंध में मग्न हो जाता है, तब काल का कोई डर उसके पास नहीं आ पाता। आंतरिक आकाश से जो टेर या शब्द-धुन आ रही है उसे तुम सावधान होकर दृढ़ता से पकड़े रहो, नहीं तो काल तुम्हें अपना ग्रास बना लेगा। जब शब्द का भेद प्राप्त हो जाता है तो शब्दरूपी बाण का निशाना लगाते ही काल की सेना पस्त हो जाती है। जिन्हें भी शब्द की प्राप्ति होती है उनकी सँभाल अवश्य होती है। इसलिए इस अचल शब्द को भली-भाँति पहचानकर उसमें अपने ध्यान को स्थिर करो। तभी निर्वाण-पद यानी मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसलिए तुम शब्द का भजन करो। धरती से आसमान तक सब कुछ सच्चे शब्द के सहारे बँधा है और इसी सच्चे शब्द को पकड़कर आत्मा संसार से पार जाती है। इसलिए दरिया साहिब कहते हैं कि हमें गुरु के ज्ञान को पकड़े रहना चाहिए जिससे प्राप्त दिव्य-दृष्टि के द्वारा हम अगम परमात्मा तक पहुँच सकते हैं।

जाके एंव गगन झरि लागी।
बिना घटा घन बरिसन लागा सुरति सुखमना जागी॥
अजपा जाप जपे निसु बासर रहे जक्त से बागी।
मूल अकह में तत्तु बिचारो सोइ सादा जन भागी॥
अस्टदल कमल झरोखा जहवां नाम बिमल रस पागी।
तिल भरि चौकी दानो दरवाजा ताहि खोजु अनुरागी॥

जोरे जोरे सब्द बनावे राग गावे सो रागी।
अलख लखे कोइ पलक बिचारे सोई संत बैरागी॥
थकित भए मन गीत कबीते भौ बिष्या कहं त्यागी।
सब्द सजीवन पारस परसे सितल किया तन आगी॥
इत उत कहे काम नहिं आवे सार सब्द लेहु मांगी।
कहें दरिया सतगुर की महिमा मेटा कर्म का दागी॥[25]

एंव=इस प्रकार; **घटा**=बादलों का समूह; **घन**=बादल; **बरिसन लागा**=बरसने लगा; **सुरति**=आत्मा की अंतर में शब्द-धुन को सुनने की शक्ति; **अजपा जाप**=निरंतर सुमिरन चलते रहने की अवस्था; **निसु बासर**=रात-दिन; **बागी**=अनासक्त; **मूल अकह**=वह लोक जो आत्मा का मूल धाम है तथा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता; **अस्टदल कमल**=पारब्रह्म में प्राप्त होनेवाला आठ पँखुड़ियों वाला कमल; **बिमल**=निर्मल; **पागी**=मग्न होना; **तिल**=तीसरा तिल; **चौकी**=चौकीदारी करना, ध्यान लगाना; **दानो दरवाजा**=दाने के समान सूक्ष्म दरवाज़ा; **अनुरागी**=प्रेमी; **जोरे जोरे**=जोड़-जोड़कर; **सब्द बनावे**=वर्णात्मक शब्दों से बनाते है; **अलख**=परमात्मा; **लखे**=देखे; **गीत कबीते**=गाने और कविताएँ, शब्द-धुन से आशय है; **भौ**=हो गया; **बिष्या**=विषय; **सब्द सजीवन**=मृतक को जीवन देनेवाला शब्द; **सितल**=शीतल, शांत।

जिसके अंतर के आकाश में इस प्रकार अमृत की झड़ी लग जाती है कि बिना बादलों के वर्षा होने लगती है, सुषुम्ना में पहुँचकर जिसके अंतर में शब्द को सुनने की शक्ति पूर्ण रूप से जाग्रत हो जाती है, जिसके अंतर में अजपा जाप चलने लगता है अर्थात् जो रात-दिन अपने आप निरंतर चलते रहनेवाले सुमिरन की अवस्था में पहुँच जाता है और जो संसार से अनासक्त हो जाता है; उस सौभाग्यशाली भक्त को आत्मा के उस मूल अकह धाम का पता चल जाता है और वह वहाँ के मूल तत्त्व के ध्यान में मग्न रहता है। वह भाग्यशाली भक्त पारब्रह्म में स्थित, अष्टदल कमल

में पहुँचकर नाम के निर्मल रस में पग जाता है। यहाँ पर पहुँचने के लिए अनुरागी जीव, पहले दाने के समान सूक्ष्म दरवाज़े या तीसरे तिल की खोजकर उसमें प्रवेश करता है। अभ्यासी को पहले प्रेमपूर्वक उसी की खोज करनी चाहिए। जो वर्णात्मक शब्दों को जोड़कर बनाए गए रागों को गाते हैं, उन्हें रागी कहा जाता है (विरागी या संत नहीं)। जो कोई भी इन भौतिक आँखों से दिखाई न देनेवाले परमात्मा को देख लेता है और आंतरिक पलक को उघारकर अंतर का अनुभव प्राप्त कर लेता है, उसे ही संसार से अनासक्त संत कहते हैं। जब साधक का मन बाहर के गीतों और कविताओं को सुनते-सुनते थक जाता है, उसका जी भर जाता है, तब वह सांसारिक विषय-वासनाओं को त्याग देता है। मृतक को जीवन देने की क्षमता रखनेवाले शब्दरूपी पारस के स्पर्श से ही उसकी जलन शांत हो पाती है। इसलिए यहाँ-वहाँ किसी से कुछ कहने या माँगने से कोई बात नहीं बनती। केवल सार शब्द को ही सतगुरु से माँगो। दरिया साहिब कहते हैं कि यह केवल सतगुरु की ही महिमा है कि वह कर्मरूपी मैल का दाग़ मिटा देते हैं।

9

शाकाहार

जीव-हिंसा का महापाप

किसी भी जीव का वध करना घोर पाप है। धर्म के नाम पर जीवों का वध करना तो और भी अधिक घृणित कार्य है। जीवों का वध करनेवाला नरक में जाता है और निर्मम यमराज उसे बहुत ही कठोर दंड देता है।

जैसे हमें अपनी जान प्यारी है, वैसे ही दूसरे जीवों को भी अपनी जान प्यारी होती है। इसलिए सभी जीवों को अपने ही समान समझते हुए हमें कभी किसी जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए। अपने बच्चे को कष्ट में देखकर हमें घोर पीड़ा होती है, पर दूसरे जीवों के बच्चों को हम बेहिचक और बेरहमी से मारते हैं। जो दूसरे जीवों के बच्चों को गला घोंटकर या फाँसी लगाकर मारता है, उसे स्वयं नि:संतान मरना पड़ता है। कर्म का यह अटल नियम है कि जो दूसरों का ख़ून करता है, उसका स्वयं ख़ून होता है; जो जिसे मारता है, उसी के हाथों उसे स्वयं मरना पड़ता है।

कुछ ऐसे भी अंधविश्वासी हैं जो गोहत्या को तो पाप समझते हैं, पर देवी-देवता पर भैंसों का बलिदान चढ़ाना पुण्य मानते हैं। जब गाय और भैंस, दोनों के हाड़, चाम, मांस, दही और दूध एक जैसे हैं तो उनमें इस प्रकार का भेदभाव भला कैसे किया जा सकता है? जिस धर्म में जीव-दया ही नहीं है, उसे भला धर्म कैसे कह सकते हैं? दया और परोपकार के बिना कोई पुण्य-कर्म कैसे हो सकता है? दया और परोपकार ही हमें स्वर्ग में ले जाते हैं और निर्दयता-पूर्वक जीवों को मारनेवाले को नरक में जाना पड़ता है।

यदि हम किसी को मारना ही चाहते हैं तो हमें ज्ञान की तलवार लेकर काम, क्रोध आदि पाँच विकारों और पच्चीस प्रकृतियों को मारना चाहिए, जिससे हम सच्चे अर्थ में धार्मिक बन सकते हैं:

एक जीव के वधते, महा पाप प्रवेश।
त्रियदेवा वध होते हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश॥[1]

त्रियदेवा=तीन देव – ब्रह्मा, विष्णु, महेश; **वध**=हत्या।

यदि हम किसी एक जीव की भी हत्या करते हैं तो हम महापाप के भागी हो जाते हैं, क्योंकि किसी का वध करने से उसके शरीर में स्थित ब्रह्मा, विष्णु और महेश – इन तीनों देवताओं का वध होता है।

ऐ बेदर्दी दरद करु, परआतम नहिं घात।
घात किये नाहिं बांचि हो, बाधे यमपुर जात॥[2]

बेदर्दी=निर्दयी; **दरद**=दर्द; **परआतम**=दूसरे जीव; **घात**=हत्या करना, मारना; **बांचि हो**=बचना; **जात**=जाता है।

हमें निर्दयी न बनकर दूसरे जीवों के दर्द के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए और कभी भी किसी दूसरे जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए। यदि हम किसी जीव की हत्या करते हैं तो यमदूतों से नहीं बच सकते, वे हमें दंड देने के लिए अवश्य ही बाँधकर यमपुरी ले जाएँगे।

मति कर जोर जुलुम जगमाहीं। निज स्वारथ रत एह भल नाहीं॥
भूले जीव बधन जनि करहू। बोल कुबोल जानि परिहरहू॥

जस पियार जिव आपनो, तस जीव सभै पियार।
जानहिं संत सुबुद्धि जन, जाके विमल बिचार॥

निज जिव सम सभ जिव जग माहीं। जानहिं साधु ग्यान जेहि पाहीं॥
मति करु खून पिबै जनि दारू। गर्ब गरूरि दूरि करि डारू॥[3]

मति कर=मत करो; **जोर जुलुम**=बलपूर्वक किया गया अत्याचार; **जगमाहीं**=संसार में; **निज**=अपना; **रत**=लीन; **भल**=अच्छा; **भूले**=भूलकर भी; **जीव बधन**=जीव-हत्या करना; **जनि**=मत, न; **कुबोल**=बुरा वचन, बुरी बात; **परिहरहू**=त्यागना, छोड़ना; **जस**=जैसा; **सुबुद्धि जन**=अच्छी बुद्धिवाले; **जाके**=जिनके; **विमल**=निर्मल; **जेहि पाहीं**=जिनके पास; **खून**=हत्या; **पिबै...दारू**=शराब न पीओ; **गर्ब गरूरि**=बहुत अधिक घमंड; **करि डारू**=कर डालो।

संसार में केवल अपने ही स्वार्थ में लीन रहना अच्छी बात नहीं। किसी भी जीव पर बलपूर्वक अत्याचार नहीं करना चाहिए। यह अच्छा नहीं है। भूलकर भी जीव-हत्या नहीं करनी चाहिए। बुरे वचन या कड़वी लगनेवाली बात को विचारपूर्वक त्याग देना चाहिए। सुबुद्धि और निर्मल विचारों वाले संतजन जानते हैं कि जैसे हमें अपनी जान प्यारी है, वैसे ही सभी प्राणियों को अपनी जान प्यारी होती है। जिन साधुओं को सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे इस तथ्य को जान जाते हैं कि संसार में सभी जीव हमारे जैसे ही हैं। इसलिए हमें अपने को बड़ा समझने के घमंड को दूर कर देना चाहिए। किसी जीव की हत्या कभी न करो और दारू या शराब कभी न पीओ।

आपु सुत का दुख देखे, दरद घनेरो होय।
अजया सुत कहे मारिया, महा कल्पना होय॥[4]

आपु...का=अपने पुत्र का; **घनेरो**=अत्यधिक, घोर; **अजया सुत**=बकरी का बच्चा; **कल्पना**=दुःख उठाना।

अपने पुत्र का दुःख देखकर तो हमें घोर पीड़ा होती है, लेकिन बकरी के बच्चे को हम बेरहमी के साथ मारते हैं। इसके फलस्वरूप हमें अत्यधिक दुःख उठाने पड़ेंगे।

जीव बधन राधन करे, साधन भैरो भूत।
जन्म तुम्हारा मृथा है, श्वान सूकर का पूत॥[5]

जीव बधन=जीव-हत्या; **राधन**=आराधना करना; **साधन**=निमित्त; **भैरो**=भैरव, भयानक, वाममार्गी साधनाएँ; **मृथा**=बेकार, व्यर्थ; **श्वान**=कुत्ता; **सूकर**=सूअर; **पूत**=पुत्र, बच्चा।

दरिया साहिब बलि चढ़ाने को बुरा कहते हुए कड़े शब्दों में कहते हैं कि भयानक भूतों को ख़ुश करने के लिए जीव-हत्या करके उनकी आराधना करना जीवन को व्यर्थ गँवाना है और कुत्ते तथा सूअर के बच्चों की तरह गंदगी का जीवन जीना है।

पढ़ि कुरान फाजिल हुआ, हाफिज की ऐसी बात।
सांच बिना मैला हुआ, जीव कुरबानी खात॥[6]

कुरान=इस्लाम धर्म का पवित्र ग्रंथ-क़ुरान शरीफ़; **फाजिल**=बहुत बड़ा विद्वान; **हाफिज**=बचाव करनेवाला, जिसे पूरा क़ुरान कंठस्थ हो; **सांच**=सच नाम; **मैला**=अपवित्र; **जीव कुरबानी**=बकरीद के दिन ख़ुदा के निमित्त पशु-बलि।

भले ही तुम क़ुरान शरीफ़ को पढ़कर बहुत बड़े विद्वान बन जाओ या पूरा क़ुरान शरीफ़ कंठस्थ कर लो, परंतु यदि तुम्हें सच्चे नाम की प्राप्ति नहीं हुई और पशुओं की बलि देकर उनका मांस खाते हो तो तुम अपवित्र ही हो।

जीव कर घात धर्म कथि आनी। किमि करि लंघिहो भौजल पानी॥[7]

घात=हत्या; **धर्म कथि**=धर्म कहना; **किमि करि**=किस प्रकार; **लंघिहो**=लाँघना, पार करना; **भौजल**=संसार-सागर।

यदि तुम जीव-हत्या को धर्म कहते हो तो फिर इस संसार-सागर को किस प्रकार पार कर सकोगे?

मारी मारी करे जीव घाता। अन्त काल ताके उत्पाता॥
फाँसी लाए जीव जो मारा। बंस बीज ताको खैकारा॥[8]

घाता=हत्या; **ताके**=उसके, उनके; **उत्पाता**=विपत्ति; **बंस**=वंश; **खैकारा**=क्षय होना, नष्ट होना।

जो जीवों को मारते हैं, उनकी हत्या करते हैं, अंत समय में काल उनके लिए विपत्ति लेकर आता है। जो फाँसी लगाकर जीव को मारते हैं उनके वंश का बीज नाश हो जाता है।

गाय के हत्या कहे, महिषी कहे अशुद्ध।
एक हाड़ एक चाम है, एक दहि एक दूध॥[9]

के=की; **महिषी**=भैंस; **चाम**=चमड़ा।

कुछ लोग गाय को पवित्र मानकर उसे मारने को हत्या कहते हैं और भैंस को अपवित्र कहते हैं, हालाँकि दोनों की हड्डियाँ और मांस एक-सा है। दोनों का दूध एक जैसा है और उसका दही भी एक जैसा ही होता है।

दया बिना क्या धर्म बखाना। बिना दया किमि गुण पहिचाना॥
हरनी गउवा एके जाया। रुधिर एक गुण दुजा ना आया॥...
अजया मारि मांस मुख दिएऊ। सो द्विज जन्म अकारथ किएऊ॥[10]

बखाना=कहना; **किमि**=कैसे; **गुण**=सद्गुण; **हरनी**=मृगी; **गउवा**=गाय; **जाया**=संतान; **रुधिर**=ख़ून; **अजया**=बकरी; **द्विज**=ब्राह्मण; **अकारथ**=व्यर्थ।

जिसमें जीव-दया नहीं वह धर्म की क्या चर्चा करता है? जीव-दया के बिना किसी को गुणवान या धर्मात्मा के रूप में कैसे जाना जा सकता है? चाहे बच्चा हिरनी का हो या गाय का हो, दोनों का जन्म एक ही तरह से होता है – रक्त तो सबका एक जैसा ही है, उसमें कोई भेद नहीं है। ऐसे में एक की हत्या करना पवित्र और दूसरे की हत्या करना अपवित्र कैसे हो सकता है! जो ब्राह्मण बकरी को मारकर उसके मांस को मुँह में डालता है, उसका ब्राह्मण होना व्यर्थ है। उसने अपने जन्म को व्यर्थ ही गँवा दिया।

जहां दया तहां धरम है, जहां लोभ तहां पाप।
जाके हृदय साच है, तहां बसे वोय आप॥[11]

तहां=वहाँ; **लोभ**=लालच; **साच**=सत्य, नाम; **वोय आप**=वह परमात्मा स्वयं।

जहाँ पर दया-भाव है, वहीं सच्चा धर्म है। जहाँ लालच है, वहाँ पाप होते हैं। जिसके हृदय में नामरूपी सत्य निवास करता है, वहाँ वह परमात्मा स्वयं निवास करता है।

खून खराब एहि मंह भूला। दोजक द्वार जीव सो भूला॥
पकरि जीव खून करि खाई। सो सिताब दोजक के जाई॥...
नेकी बदी हाथ सो पावै। दरदबंद के भिस्ति बतावै॥...
मंजिल अगम मरम नहिं पावै। करे खून दोजक के जावै॥
पढ़े किताब करे सएतानी। पिवै सराब खून खाए बखानी॥[12]

खून खराब=ख़ून-ख़राबा, हत्या, मार-काट आदि; **एहि मंह**=इसी में; **दोजक**=नरक; **पकरि**=पकड़कर; **सिताब**=जल्दी; **के जाई**=को जाते हैं; **नेकी बदी**=अच्छाई-बुराई; **दरदबंद**=दर्द के प्रति सहानुभूति रखनेवाले, दयालु;

भिस्ति=स्वर्ग; **बतावै**=बात बताते हैं; **मरम**=भेद, रहस्य; **सएतानी**=शैतानी; **सराब**=शराब; **बखानी**=स्वाद का बखान (प्रशंसा) करके।

जो खून-ख़राबा (हत्या, मार-काट आदि) में भूले हुए हैं, वे नरक के द्वार पर पहुँचेंगे। जो जीवों को पकड़कर उनकी हत्या करके उन्हें खाते हैं, वे जल्दी ही नरक में जाते हैं। जीव की अपनी अच्छी या बुरी करनी उसे हाथों-हाथ प्राप्त होती है। जीवों के दर्द के प्रति सहानुभूति रखनेवाले के लिए स्वर्ग जाने की बात बताई जाती है, पर जो जीवों की हत्या करते हैं वे तो नरक को जाते हैं। जो पवित्र पुस्तकें पढ़ने के बावजूद शैतान का-सा व्यवहार करते हैं और शराब पीते हैं तथा वध किए हुए जीव को उसके स्वाद की तारीफ़ करके खाते हैं, उन्हें परमात्मा के अगम धाम का रहस्य पता नहीं चलता।

जौं तोहि खून सांच मन भावा। करहु खून हम तुमहिं बतावा॥

ग्यान खरग द्रिढ़ कर गहो, कामादिक भट मारि।
पांच पचीसहिं जीति कै, करम भरम सभ झारि॥[13]

तोहि=तुझे; **खून**=ख़ून-ख़राबा, हत्या करना; **सांच**=सचमुच; **भावा**=अच्छा लगता है; **ग्यान खरग**=ज्ञानरूपी तलवार; **द्रिढ़**=मज़बूती से; **गहो**=पकड़ो; **कामादिक**=काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार; **भट**=योद्धा; **पांच**=पाँच इंद्रियाँ; **पचीसहिं**=मनुष्य-शरीर की रचना करनेवाले पाँच तत्त्वों में से प्रत्येक के पाँच-पाँच व्यक्त रूपों को पच्चीस प्रकृतियाँ कहते हैं; **जीति कै**=जीतकर; **सभ झारि**=सभी को त्यागकर।

दरिया साहिब कहते हैं कि यदि तुम्हें सचमुच किसी की हत्या करने या उसे मारने में मज़ा आता है तो हम तुम्हें बताते हैं कि तुम किसको मारो। तुम ज्ञानरूपी तलवार को मज़बूती के साथ पकड़ो और उसके द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को मार डालो। फिर पाँचों इंद्रियों और

पच्चीस प्रकृतियों पर विजय प्राप्त करके सभी प्रकार के कर्मों और भ्रमों से छुटकारा पा जाओ।

जीव का दर्द बिनु बंदगी बादि है दया बिनु मुक्ति नहिं नर्क खानी।
हक हराम पहचान के खाइए दया और धर्म के बूझु प्रानी।
हिंदु मुसलमान दोए दीन सरहद बना असल अलाह सतपुर्ष मानी।
कहें दरिया तुम पीर पर्चे करि गुरु के ज्ञान में अकिलि आनी।[14]

बादि=व्यर्थ; **खानी**=खान; **हक**=अधिकार; **हराम**=वर्जित वस्तु; **के**=को; **बूझु**=पहचानो; **दीन सरहद**=धर्म की मर्यादा; **अलाह**=अल्लाह; **पीर**... **करि**=सतगुरु को पहचानकर; **अकिलि आनी**=समझ प्राप्त करो।

यदि हमारे हृदय में प्राणियों के प्रति दया-भाव नहीं है तो हमारी सारी आराधना व्यर्थ है। दया-भाव न होना नरक की योनि में जाना है, ऐसे व्यक्ति को मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। कौन-सी वस्तु हमारी हक़-हलाल की कमाई की है और कौन-सी छल-कपट की है, इस बात को परखकर हमें खाना और बरतना चाहिए तथा दया और असली धर्म को पहचानना चाहिए। सांसारिक रीति से हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों की अपनी-अपनी मर्यादा बनी हुई है, परंतु असल में अल्लाह तो सत्पुरुष है। दरिया साहिब कहते हैं कि तुम सतगुरु की पहचान कर उनके ज्ञान द्वारा सच्ची समझ प्राप्त करो।

बेद कितेब कोरान गीता पढ़े जीव का दरद नहिं कबहिं आने।
जीव का दरद फुरमान साईं किया सोई दरबेस जो कहा माने।
जोर से जीव जो पकरि जबह करे बांधि जबरील हजूर आने।
करे इनसाफ सब साफ कागज हुआ दोजक के जार कहु कवन ठाने।
पंडित मोलना ताहां कवन बातें करे परा जिव कस्ट जमदूत ताने।
खून का खून एह वोएल दिए बना कहें दरिया दिल समुझि आने।[15]

बेद=वेद, वेदों की संख्या चार है – ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद; **कितेब**=सामी धर्मों के चार ग्रंथ – यहूदियों के ज़बूर और तौरेत, ईसाइयों की बाइबल तथा मुसलमानों का क़ुरान शरीफ़; **कोरान**=इस्लाम धर्म का पवित्र ग्रंथ–क़ुरान शरीफ़; **फुरमान...किया**=परमात्मा ने आदेश दिया; **दरबेस**=फ़क़ीर, महात्मा; **पकरि**=पकड़कर; **जबह करे**=गला काटकर जान लेता है; **जबरील**=यमदूत; **हजूर**=सामने; **दोजक...जार**=नरक जाने का काम; **कहु**=कहो तो; **कवन**=कौन; **मोलना**=मौलाना – इस्लामी सिद्धांतों का पंडित; **ताहां**=वहाँ, यमपुरी में; **परा**=पड़ा; **खून**=जीव–हत्या करना या मारना; **समुझि आने**=समझ लो।

कुछ लोग वेद, कतेब, क़ुरान शरीफ़ और गीता आदि धर्म–ग्रंथों को पढ़ने के बावजूद कभी भी जीवों के प्रति दया–भाव अपने मन में नहीं लाते। सभी जीवों का दर्द समझने का आदेश स्वयं परमात्मा ने दिया है और सच्चा महात्मा वही है जो परमात्मा की कही इस बात को मानता है। जीव को ज़ोर–ज़बरदस्ती से पकड़कर जो उसका गला काटकर जान लेता है, उसे यमदूत बाँधकर यमराज के सामने लेकर आते हैं। यमराज उसके कर्मों के अनुसार हिसाब करके न्याय करता है। इस प्रकार जीव–हत्या करके नरक जाने का काम भला कोई क्यों करे? वहाँ यमराज के सामने पंडित या मौलाना, जीव की सहायता के लिए कौन सी बात कर सकते हैं? वहाँ पर जीव अपने ऊपर तने हुए यमदूतों के द्वारा दिए जा रहे कष्टों में पड़ा रहता है। जीव को मारने के बदले में उस जीव द्वारा मारे जाने का नियम बना हुआ है। इसकी समझ हमें अपने हृदय में लानी चाहिए।

मियां जी काजी चतुर सेयाना।
जाहि गाय से अमृत चुवतु है, ताहि मारि के खाना॥
पकड़े जइहो यमपुर वासी, तुमके के फुरमाना॥[16]

मियां जी=मुसलमान के लिए सम्मानसूचक संबोधन; **काजी**=मुस्लिम न्यायाध्यक्ष, यहाँ पर आशय कर्मों के अनुसार न्याय करनेवाले यमराज से है; **चुवतु है**=टपकता है, प्राप्त होता है; **ताहि**=उसे; **तुमके**=तुम्हें; **फुरमाना**=कहना।

ऐ भाइयो! वह यमराजरूपी न्यायाधीश अत्यंत कुशल और समझदार है। तुम उस गाय को मारकर खा जाते हो जिससे दूधरूपी अमृत प्राप्त होता है। तुम्हें ऐसा करने के लिए किसने हुक्म फ़रमाया है? इस कर्म के फलस्वरूप तुम यमदूतों के द्वारा पकड़े जाओगे तथा यमपुरी में निवास करोगे।

जीव के दरद कीजे जानि।
आपुने में आपु देखो साल की पहचानि॥
पांव में जब कांट चूभेव चिहुकि दीन्हौ रोय।
ऐसही पर दरद जानो जन्म बादी खोय॥
हीत बालक जानि आपन हरखि हीए लाय।
औरि का जब खाल घैंचो परा आगे आय॥
औरि का जब दूख देखे खुसी बहुत आनन्द।
उलटि परा तासु ऊपर ऐसही दुख दंद॥
गरब ते येह गरद मिलिगौ दरद बीना काल।
गौ बध का परा सिर पर अजब है जमजाल॥
सत्त सब्द नकीब है एह नेक कहना बात।
कहें दरिया दरद ऐसा चिन्हो सीतल तात॥[17]

दरद कीजे=दया–भाव रखिए; **जानि**=समझ–बूझकर; **साल**=पीड़ा; **चूभेव**=चुभना; **चिहुकि**=चीत्कार कर, चीख़कर; **पर दरद**=पर–पीड़ा; **बादी**=व्यर्थ; **हीत**=लिए, प्रसन्न; **हरखि**=ख़ुशी से; **हीए लाय**=हृदय या छाती से लगाना; **औरि का**=दूसरे की; **खाल घैंचो**=चमड़ा खींचना;

परा...आय=नतीजा सामने आ गया; **दुख दंद**=दुःख और मानसिक परेशानी; **गरब**=घमंड; **गरद**=धूल; **बीना**=बिना; **गौ**=गाय; **सत्त सब्द**=सच्चा शब्द; **नकीब**=चारण जो राजा की सवारी के आगे-आगे उसका गुणगान करता हुआ चलता है; **नेक**=अच्छी, भली, भलाई की; **चिन्हो**=पहचानो; **सीतल तात**=सुख-दुःख।

हमें समझ-बूझकर जीवों के प्रति दया-भाव रखना चाहिए। हमें दूसरे जीवों की पीड़ा को अपने आप पर घटाकर पीड़ा की पहचान कर लेनी चाहिए (अपने आप को वैसी ही पीड़ा होने की कल्पना कर)। जब कभी हमारे पाँव में काँटा चुभता है तो हम चीख़कर रो पड़ते हैं। इसी प्रकार हमें दूसरों की पीड़ा को भी समझना चाहिए, अन्यथा हम अपने जन्म को व्यर्थ ही खो देंगे। अपने बच्चे को प्रसन्न जानकर हम उसे ख़ुशी से अपनी छाती से लगा लेते हैं, जबकि दूसरे के बच्चे को मारकर उसकी खाल खींचते हैं! इस कर्म का नतीजा हमारे सामने आ जाता है। यदि हमें दूसरों को दुःखी देखकर बहुत ख़ुशी होती है तो इसके परिणामस्वरूप वैसे ही दुःख और मानसिक परेशानी की हालत उलटकर हम पर भी आ जाती है। अपने घमंड के कारण जीव धूल में मिल जाता है; काल कठोर या निर्दयी होकर सज़ा देता है। गाय का वध करने का फल जीव के सिर पर आ पड़ता है; काल का अनोखा फंदा है। सच्चा शब्द आत्मा की आंतरिक यात्रा की राह घोषित करनेवाला है, जिसकी प्राप्ति के लिए हमें जीवों के प्रति भलाई की बात कहनी चाहिए। दरिया साहिब कहते हैं कि जीवों के ऐसे दर्द को समझते हुए हमें सबके सुख-दुःख को पहचानना चाहिए।

मांस, मछली, शराब आदि का निषेध

संत शाकाहारी भोजन करने पर ज़ोर देते हैं और मांस, मछली, शराब आदि को अपवित्र मानकर इनका निषेध करते हैं। पारमार्थिक साधना के लिए वे शाकाहार को अत्यंत आवश्यक मानते हैं।

जो मांस-मछली खाते और उनकी गंध से प्रसन्न होते हैं, वे काग और बगुले जैसे हैं और उन्हें इन्हीं की योनियों में जन्म लेना पड़ता है। मांस-मछली खानेवाला यदि ब्राह्मण भी हो, तब भी उसे नरक में ही जाना पड़ता है। ऐसे ब्राह्मण का जनेऊ पहनना या चंदन लगाना बिल्कुल व्यर्थ है। उसके आगे सिर झुकाने या उसकी आशीष लेने से पुण्य का नाश होता है। कुछ लोग अपने को गुरु नानक और कबीर साहिब जैसे महान् संतों का अनुयायी बताते हुए भी मांस-मछली खाते हैं। यह तो सचमुच ही घोर अनर्थ है!

सभी प्राणियों में आत्मा का निवास है। इसलिए किसी भी प्राणी का मांस खाना आत्मघातक है, पर काल चाहता है कि हम मांस-मछली खाकर आसानी से उसके चंगुल में फँसें। इसी लिए वह मांस-मछली को हमारे लिए सुलभ बनाए रखता है। अनाड़ी जीव इस संबंध में संतों की चेतावनी पर ध्यान नहीं देते और उलटे संतों और उनके सेवकों की निंदा करते तथा उनसे द्रोह करते हैं, पर इससे उनका अपना ही अनिष्ट होता है और वे भवसागर में ग़ोते खाते रहते हैं।

संत शराब, गाँजा, भाँग, अफ़ीम आदि मादक पदार्थों का भी सख़्त निषेध करते हैं, क्योंकि इनसे हमारी बुद्धि भ्रष्ट होती है और हमारे अंदर बुरे विचार उत्पन्न होते हैं। इनके बदले वे हमें नाम का अमृत पिलाते हैं, जिसे पीकर हम सदा के लिए आनंद मग्न हो जाते हैं और प्रेमपूर्वक अपने प्रियतम से जा मिलते हैं:

मीन मांस मदिरा कर संगा। अहे अपावन पाप उतंगा॥
फल औ फूल अंकुर जत अहई। यह सुख संत सदा गुण कहई॥[18]

मीन=मछली; **अपावन**=अपवित्र; **पाप उतंगा**=बड़ा भारी पाप, घोर पाप; **अंकुर...अहई**=अंकुर से उत्पन्न जितनी चीज़ें हैं।

मांस, मछली और शराब का सेवन करना घोर पाप है और यह हमें अपवित्र कर देता है। फल, फूल और अंकुर से उत्पन्न होनेवाली जितनी

भी साग-सब्ज़ियाँ तथा अन्न हैं, ये सुखकारक हैं। संत सदा से इनका गुणगान करते आए हैं।

मीन मांस बारून पीवे, जीवे जगत में हीन।
महा कल्पना कष्ट है, दुनिया गयो औ दीन॥[19]

मीन=मछली; **बारून**=शराब; **हीन**=निम्न; **महा कल्पना**=घोर दुःख उठाना; **दीन**=धर्म, परमार्थ।

जो भी कोई मांस, मछली खाता है तथा शराब का सेवन करता है, वह संसार में निम्न बनकर जीता है। उसे घोर कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसके तो दुनिया और दीन अर्थात् स्वार्थ और परमार्थ – दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

भव जल में में सभ काग है, अव बग बाउर अंध।
मीन मांसु कह खातु है, ढूंढ़त वाकी गंध॥[20]

भव जल=संसार-सागर; **काग**=कौवे के समान गंदगी खानेवाले; **बग बाउर**=मूर्ख, बुरा बगुला; **मीन**=मछली।

दरिया साहिब कहते हैं कि इस संसार में जो मछली और मांस खाते हैं तथा उसी की गंध ढूँढ़ते हैं, वे सभी जीव इस संसार-सागर में कौवे और ढोंगी बगुले के समान गंदगी खानेवाले और अंधे हैं।

बग बाउर निकट ना जावे। मीन मांसु रसना जो पावे॥
तेजे बिकार बिगिंध बिरोगा। निरलेप निर्मल होय योगा॥[21]

बग बाउर=मूर्ख बगुला; **तेजे**=त्यागे; **बिकार**=दूषित; **बिगिंध**=दुर्गंध-युक्त; **बिरोगा**=दुःखदायी; **निरलेप**=निर्लेप।

बगुले के समान ढोंगी लोगों के निकट नहीं जाना चाहिए जो अपनी जीभ से मांस-मछली का स्वाद लेते रहते हैं। इन दूषित, दुर्गंध-युक्त और

दुःखदायी पदार्थों को त्यागने और निर्मल परमार्थ की साधना में लगने से जीव निर्लिप्त हो जाते हैं।

मीन मांसु जो खातु है, सो तो जाति चंडाल।
सीपट काग की जन्म पावे, फेरि भरमावे काल॥[22]

चंडाल=जो मृतक जानवरों की चमड़ी उतारते हैं; **सीपट**=सिलपट, चौपट या सत्यानाश करनेवाला।

जो मांस-मछली खाते हैं, वास्तव में वे पतित हैं। ऐसे व्यक्ति निचली योनियों में जन्म प्राप्त कर, अपना सत्यानाश करते हैं। इस प्रकार काल उन्हें फिर संसार में भटका देता है।

अति चतुर चित गर्व शरीरा। पर जीव घात जानु नहिं पीरा॥
मीन मांसु मदिरा करु पाना। साधु संगत सुनि मुँदे काना॥...
विषय वास रसि वसि मुख बानी। बुड़ि मुवे भव सो अभिमानी॥[23]

चतुर चित=चतुर हृदय; **पर...घात**=दूसरे जीवों की हत्या; **पीरा**=पीड़ा, दर्द; **मीन**=मछली; **मदिरा**=शराब; **पाना**=पीना; **मुँदे काना**=कान बंद कर लेना; **विषय...रसि**=विषय-वासनाओं का रस; **वसि**=वश में; **बुड़ि मुवे**=डूब मरे; **भव**=संसार-सागर; **सो**=वे, ऐसे।

जो लोग अत्यंत चतुर चित्त वाले हैं, अपने शरीर का अहंकार करते हैं, दूसरे जीवों की हत्या करते हैं और उनके दर्द को नहीं जानते; जो मछली और मांस खाते हैं तथा शराब का सेवन करते हैं, लेकिन साधुओं के सत्संग को सुनते ही अपने कान बंद कर देते हैं; जो विषय-वासनाओं के रस के वश में हैं और जिनके मुख से उन्हीं की बातें निकलती हैं; ऐसे घमंडी लोग संसार-सागर में डूब मरते हैं।

सर्ब मांस जो खातु है, परनारी से नेह।
भक्ति भाव नहिं जानहीं, फेरि फेरि धरिहें देह॥
सर्ब मांस बिप्र जो खाई। जन्म अनेक सो नरकहि जाई॥
मांस अहारी द्विज लागे पाँया। चौसठि जन्म नरक घट छाया॥
मीन खाय द्विज अछत डारा। सकल महातम होय खैकारा॥
मीन खाय कन्या दे दाना। जन्म अनेग श्वान के थाना॥
मीन खाय द्विज करु असनाना। खर के जन्म फेरि होय निदाना॥
मीन खाय जल अर्ध शरीरा। कौआ जन्म गेंडुकी के तीरा॥[24]

सर्ब=सबका; **परनारी**=पराई स्त्री; **नेह**=प्रेम; **धरिहें**=धारण करते हैं; **बिप्र**=ब्राह्मण; **मांस अहारी**= मांस खानेवाले; **लागे पाँया**=चरणों में सिर झुकाता है; **नरक घट**=नरक की योनि; **छाया**=अँधेरा; **मीन**=मछली; **अछत डारा**=आशीर्वाद के रूप में चावल शरीर पर डालता है; **महातम**=व्रत, तीर्थ-स्नान, पूजन आदि का पुण्य-फल; **खैकारा**=नष्ट; **दाना**=दान; **श्वान...थाना**=कुत्ते की योनि में; **असनाना**=स्नान; **खर**=गधा; **निदाना**=अंत में; **जल...शरीरा**=आधा शरीर पानी में डुबोकर तपस्या करने की विधि; **गेंडुकी**=गंडक नदी; **तीरा**=तट या किनारा।

जो सब जीवों का मांस खाते हैं, पराई स्त्री से प्रेम करते हैं तथा जिन्हें परमात्मा की भक्ति और प्रेम के बारे में कुछ भी पता नहीं है, ऐसे लोग संसार में बार-बार शरीर धारण करते हैं। मांस-मछली आदि निकृष्ट वस्तुओं का सेवन करनेवाले लोगों के विषय में ऊपर वाणी में विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है।

मीन खाए जो द्विज की नारी। जंगल में के होखे बिलारी॥

आमिख भोजन द्विज खात है, क्षत्री देहि अशीष।
तेहि ऐगुण के कारने, अजगर जन्म पचीस॥[25]

द्विज=ब्राह्मण; **नारी**=स्त्री; **होखे**=होना, बनना; **बिलारी**=बिल्ली; **आमिख**=मांस; **ऐगुण**=अवगुण।

मांस-मछली आदि निकृष्ट वस्तुओं का सेवन करनेवाले लोगों के विषय में ऊपर वाणी में विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है।

विषय प्रीति रसना रस जीका। देही अशीष वचन सभ फीका॥
नौ गुण कांध तिलक रचि लीन्हा। नेम धर्म मिथ्या सभ कीन्हा॥[26]

रसना रस=जीभ का स्वाद; **जीका**=मन का; **फीका**=नीरस, निरर्थक; **नौ... कांध**=नौ सूतों वाला जनेऊ कंधे पर; **नेम**=नियम, धार्मिक क्रियाओं का पालन, पतंजलि के योग-शास्त्र के अनुसार नियम पाँच हैं—शौच (स्वच्छता), संतोष, तप, स्वाध्याय (धर्म-ग्रंथों का अध्ययन), ईश्वर प्रणिधान (अपने आप को प्रभु की मौज पर छोड़ देना); **मिथ्या**=झूठा, व्यर्थ।

जिनकी विषयों से प्रीति है और जिनके मन का झुकाव जीभ के स्वाद की ओर है, उनके द्वारा कहे गए आशीष-रूप वचन निरर्थक हैं। इसी प्रकार नौ सूतों वाला जनेऊ कंधे पर डालकर माथे पर तिलक बनाना तथा धार्मिक नियमों का पालन करना भी व्यर्थ है।

मासु मछरी ब्राम्हन जो खाई। अंतकाल फेरि जम घर जाई॥
सो नहिं बाचै कवनि टपाई। परै नरक चौरासी जाई॥[27]

मछरी=मछली; **जम घर**=यमपुरी; **बाचै**=बचते; **कवनि**=किसी भी; **परै**=पड़ते हैं; **चौरासी**=चौरासी लाख योनियाँ।

जो ब्राह्मण मांस-मछली खाते हैं, वे अंत समय में यमपुरी को जाते हैं। वे किसी भी उपाय से नहीं बच सकते और वे मरकर नरकों और चौरासी लाख योनियों में पड़ते हैं।

नानक औ कबीर है, कहहि आपनों पंथ।
मांस सगौती खात हैं, यह सब बात अकंथ॥[28]

सगौती=बकरे का मांस; **अकंथ**=अकथनीय।

कुछ लोग कहते हैं कि वे गुरु नानक और कबीर साहिब के पंथ को मानते हैं, पर वे बकरे और अन्य जीवों का मांस खाते हैं। उनका यह कर्म तो ऐसा है कि इसे ज़बान पर लाना भी ठीक नहीं है।

रूखी रोटी खात पैगम्बर, वह भी खुदा से डरते।
चरब कबाब चखा नहिं कबहीं, जीव जबह नहिं करते॥[29]

चरब=तीख़ा; **कबाब**=पका हुआ मांस; **जीव जबह**=गला काटकर जीव-हत्या करना।

जो पैग़ंबर ख़ुद ख़ुदा का रूप होते हैं, वे भी रूखी रोटी खाते हैं। वे कभी तीखे और पकाए हुए मांस को नहीं चखते और न ही जीवों का गला काटकर उनकी हत्या करते हैं।

सुनहु युधिष्ठिर परम सनेही। सर्व मांस है मीन की देही॥[30]

सनेही=प्रेमी; **मीन की देही**=मीन की योनि।

मेरे परम प्यारे युधिष्ठिर, सुनो! मछली सभी प्रकार का मांस खाती है। इसलिए मछली की देही में सभी प्रकार के मांस सम्मिलित हैं।

नेम कहां जब मीनहिं खावै। ज्ञान कहां जब भांग बुकावै॥[31]

मछली खाने पर धार्मिक नियम कहाँ रह जाते हैं? अर्थात् मछली खानेवाले के कोई नियम नहीं रह जाते। जब भाँग पीते हैं तो परमात्मा का सच्चा ज्ञान कहाँ? अर्थात् इनसे सच्चा ज्ञान नष्ट हो जाता है।

ताल मृदंग समाज न एको पान अफीम मति खावहु रे जी।
निशा हराम जहाँ लगि देखो ताके संग मति आनहु रे जी॥[32]

ताल...समाज=गाने-बजानेवालों की मंडली; **निशा**=नशा; **हराम**=अपवित्र, ख़राब; **जहाँ लगि**=जहाँ तक; **ताके**=उसके।

दरिया साहिब हमें सचेत करते हुए कहते हैं कि गाने-बजानेवालों की मंडली में न जाओ और पान, अफ़ीम इत्यादि नशों का सेवन न करो। जहाँ कहीं भी अपवित्र नशे का सेवन होता देखो, वहाँ के लोगों की संगति में न पड़ो।

मीन मांस रसना पर दीवे। अमी बिसारि बारुन कहँ पीवे॥...
मदिरा मद कुमति भरि गयऊ। साधु संगति की निन्दा कियेऊ॥[33]

दीवे=(दिवै) देना; **अमी**=अमृत; **बिसारि**=छोड़कर; **बारुन**=शराब; **मदिरा**=शराब; **मद**=नशा; **भरि गयऊ**=भर गई।

जो लोग अपनी जीभ से मांस-मछली का मज़ा लेते हैं और नामरूपी अमृत को छोड़कर शराब का सेवन करते हैं, उनके अंदर शराब के नशे से ऐसी कुबुद्धि भर जाती है कि वे साधुओं के सत्संग की भी निंदा करने लगते हैं।

संत द्रोह नर करहीं उपाधी। परे सो भव जल सिन्धु अगाधी॥[34]

द्रोह=बुराई या वैर करना; **उपाधी**=उपद्रव, कष्ट पहुँचाना; **परे**=पड़े; **भव जल सिन्धु**=संसार-सागर; **अगाधी**=अथाह।

जो लोग संतों से वैर करके उपद्रव खड़ा करते हैं, वे अथाह संसार-सागर में पड़ते हैं।

तीनि लोक विनसन कहा, एह विनसन किमि बात।
आतम सकल शरीर है, मीन मांसु कहं खात॥[35]

तीनि लोक=त्रिलोकी—दूसरे रूहानी मंडल ब्रह्म तक की रचना, जिसमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण रचना आती है; **विनसन कहा**=क्यों विनष्ट हुआ।

यदि यह पूछा जाए कि तीनों लोकों का विनाश क्यों होता है तो यह कहा जा सकता है कि इनके विनाश होने की बात तो उचित ही है; क्योंकि जब सभी के शरीर के अंदर आत्मा है तो फिर लोग मछली और अन्य जानवरों का मांस क्यों खाते हैं? यही मांस-मछली का खाना तीनों लोकों के विनाश का कारण है।

काले या जग पालिया, पलक करे नहिं भोर।
मीन मांस पोषन दिया, घैंचि आपनी ओर॥[36]

काले=काल ने; **या**=इस; **पालिया**=पाला है; **पलक...भोर**=एक पल के लिए भी नहीं भुलाता, बेख़बर नहीं होता; **मीन**=मछली; **पोषन**=पोषण, खाने के लिए।

काल इस संसार को पालता है। वह एक पल के लिए भी कभी बेख़बर नहीं होता। वह जीवों को अपनी ओर खींचने के लिए उन्हें मांस-मछली का भोजन खाने के लिए देता है।

मति करु खून पिबै जनि दारू। गर्ब गरूरि दूरि करि डारू॥...
ज्यों तें चहसि मदिप संग बासा। आय पिवो मदमय बिनु कासा॥
लेहु प्रेम करि ढारि पिलावों। प्रीति रीति करि पियहिं मिलावों॥...
का माया मद पियहु दुकानी। तेजि अम्रित बिख अंचवहु जानी॥
पियहु नाम मद असल करारा। रहहु मस्त कल्पन्हि मतवारा॥[37]

जनि=मत, न; **दारू**=शराब; **गर्ब गरूरि**=बड़ा भारी घमंड; **डारू**=डालो; **तें**=तुम; **चहसि**=चाहते हो; **मदिप**=मदपी, शराब पीनेवाला, शराबी; **बासा**=निवास, रहना; **मदमय**=शराब; **कासा**=कड़वापन; **ढारि**=उँड़ेलकर;

पियहिं=प्रियतम परमात्मा से; **मद**=नशा; **पियहु**=पीते हो; **दुकानी**=दुकानों पर; **तेजि**=छोड़कर; **बिख**=विष; **अंचवहु**=पीते हो; **जानी**=जान-बूझकर; **नाम मद**=नामरूपी शराब; **करारा**=तेज़, विशुद्ध; **कल्पन्हि**=कल्प पर्यंत, एक हज़ार चतुर्युगी का एक कल्प माना जाता है।

न तो किसी जीव की हत्या करो और न शराब का ही सेवन करो। अपने अहंकार और अकड़ को दूर कर दो। यदि तुम शराब पीनेवालों के साथ रहना ही चाहते हो तो क्यों न संतों के पास आकर बिना किसी कड़वाहट के विशुद्ध शराब (नाम के अमृत) को पीओ। उनसे परमात्मा का प्रेम प्राप्त करके उनके हाथों से पिलाई जानेवाली सच्ची अमृतरूपी शराब पीनी चाहिए। इस प्रीति की रीति के द्वारा वे तुम्हें प्रियतम परमात्मा से मिलाप करा देंगे। तुम दुकानों पर जाकर माया का नशा क्यों करते फिरते हो? जान-बूझकर तुम अमृत को छोड़कर विष पी रहे हो। असली और विशुद्ध नामरूपी शराब को पीओ और कल्प पर्यंत नशे में मग्न होकर मस्त बने रहो।

जौं चाहसि मदपान, रहहु बेहोस भव सोग सै।
तेजि पाखंड अभिमान, नाम अमल मतवार रहो॥

महाप्रलै की डर नहिं आवै। जा कहं सतगुर ढारि पिलावै॥
बैठहिं साधु संत जेहि बारी। इयार मिलन की सो फुलवारी॥[38]

मदपान=शराब पीना; **भव सोग**=संसार के दुःख; **तेजि**=त्यागकर; **पाखंड**=दिखावा; **नाम अमल**=नाम का नशा; **मतवार**=मस्त, नशे में चूर; **ढारि**=ढाल; **बारी**=बाग़, घर; **इयार**=यार, प्रियतम परमात्मा; **फुलवारी**=फूलों की वाटिका।

यदि संसार के सारे दुःखों से बेख़बर होकर तू शराब पीना चाहता है, तो दिखावे और अहंकार को त्यागकर नाम के नशे में मस्त रह। जिसे सतगुरु

अपने हाथों से नाम का अमृत पिला देते हैं, उसे फिर महाप्रलय का भी डर नहीं रह जाता। जिस बाग़ में साधु-संत आकर बैठ जाते हैं, वह प्रियतम परमात्मा से मिलने की वाटिका बन जाती है।

कहर खोजता फिरै मेहर दिल में नहीं
बहर के बीच में गोता तुम खाएगा।
करता है खून एह पीवता है सराब को
सर्ब रोज बंदा तुम दोजक को जाएगा।
हक हराम पहचानि खावै नहीं
कर्म सैतान फिरि बहुरि पछताएगा।
कहें दरिया दिल देखु बिचारि के
लाल की लाली बिनु गर्द में समाएगा॥[39]

कहर=बला, आफ़त; **मेहर**=दयाभाव; **बहर**=संसाररूपी समुद्र; **खून**=हत्या; **बंदा**=मनुष्य; **दोजक**=नरक; **हक**=अधिकार; **हराम**=वर्जित; **सैतान**=शैतान का; **बहुरि**=फिर, बाद में; **लाल...लाली**=प्रियतम का प्रेम; **गर्द**=धूल।

यदि तू हृदय में जीवों के प्रति दयाभाव नहीं रखता तो तू स्वयं अपने लिए आफ़त खोजता फिर रहा है। ऐसी हालत में तू अवश्य ही संसाररूपी समुद्र में ग़ोता खाएगा। जीव-हत्या करता है और शराब पीता है तो तू अवश्य ही नरकों में जाएगा। जो इस बात की पहचान किए बिना कि कौन-सी चीज़ हमारी हक़-हलाल की कमाई की है और कौन-सी छल-कपट की है, सब कुछ खाता रहता है और शैतान जैसा कर्म करता है, वह बाद में पछताएगा। दरिया साहिब कहते हैं कि अपने हृदय में अच्छी तरह विचार करके देख तो तुझे पता चलेगा कि प्रियतम के प्रेम में रँगे बिना तू धूल में मिल जाएगा।

पंडित पढ़ि गुन भए बिलाई।
जौं मजार चूहा के पावे पकरि तुरंतहि खाई॥
जब अज्या की मूड़ी आई लड़िकन धुंध मचाई।
तनिक तनिक लड़िकन कर दीन्हैं सर्ब सगौती खाई॥
येह अचरज कहबे जोग नाहीं को ब्राह्मन को अहै कसाई।
दोबिधा करि करि दूनो मारहिं यह लहुरो वोह जेठे भाई॥
दुर्गा पाठ के घर घर बांचहिं गीता अरथ छपाई।
कहें दरिया तब कैद करेगा मारहिं मुसुक चढ़ाई॥[40]

गुन=गुण; **बिलाई**=कपटी; **मजार**=बिल्ली; **अज्या**=बकरी; **मूड़ी**=मुड़ी, बकरे को मारकर उसका मांस लाने से अभिप्राय है; **लड़िकन**=लड़कों ने; **धुंध मचाई**=ख़ुशी से उत्पात मचाना; **सगौती**=बकरे का मांस; **अचरज**=हैरानी; **को**=कौन; **अहै**=है; **लहुरो**=छोटा, लघु; **जेठे**=बड़ा, ज्येष्ठ; **बांचहिं**=पढ़कर सुनाना; **मुसुक**=कंधे और कोहनी को पीछे करके बाँधना।

जिस प्रकार बिल्ली को जब चूहा मिलता है तो वह तुरंत ही उसे पकड़कर खा जाती है, वैसे ही शास्त्रों को पढ़कर गुण प्राप्त करते ही पंडित कपटी बन गए हैं। जब उनके घर पर बकरे का मांस लाया जाता है तो बच्चे ख़ुशी से उत्पात मचाने लगते हैं। वे थोड़ा-थोड़ा उन्हें देकर सारा मांस स्वयं खा जाते हैं। यह हैरानी की बात है पर कहने योग्य नहीं कि कौन ब्राह्मण है और कौन क़साई, जबकि दुविधा या भ्रम में पड़े होने के कारण दोनों ही जीवों को मारते हैं। इनमें से यदि एक छोटा भाई है तो दूसरा बड़ा भाई। पंडित घर-घर में दुर्गा पाठ को पढ़कर सुनाते हैं, पर गीता का अर्थ छिपाते हैं, लेकिन जब कर्मों के कारण काल क़ैद करेगा तो वह बाहों को पीछे बाँधकर मारेगा।

जोगी तेजु निग्रह जोग।
ज्ञान भक्ति बिचारि देखो मीन मासु ना भोग॥
पिवो बारुन बुड़न चाहो बिखम सागर सोए।
कहर है दरियाव आगे बहुरि चलिहौ रोए॥...
ज्ञान आंकुस हाथ करि जंजीर जकरे बांधु।
पांच के परबोधि के तब ज्ञान सतगुर साधु॥...
जुक्ति जाने मुक्ति सोई मुक्ति सादा साथ।
कहें दरिया दरस कीजे परखि हीरा हाथ॥[41]

तेजु=छोड़ो; **निग्रह जोग**=हठ-योग; **मीन**=मछली; **भोग**=भोगना, सेवन करना; **बारुन**=शराब; **बुड़न**=डूबना; **बिखम सागर**=विकट, भयंकर समुद्र; **कहर**=बला, विपत्ति; **दरियाव**=समुद्र; **बहुरि**=फिर; **आंकुस**=अंकुश, हाथी को वश में करने के लिए प्रयुक्त होनेवाला लोहे का नुकीला टुकड़ा; **जंजीर...बांधु**=ज़ंजीर में मज़बूती के साथ बाँध; **पांच...के**=पाँच इंद्रियों को समझाकर शांत करके; **साधु**=साधना करना; **परखि**=परखना।

ऐ योगी! हठ-योग को त्याग। परमात्मा के सच्चे ज्ञान और भक्ति का विचार करके देख। इसके लिए मांस-मछली का सेवन नहीं करना चाहिए। शराब एक भयंकर समुद्र है, इसे पीकर तू ख़ुद इसमें डूबना चाहता है! इसके फलस्वरूप तुझे आगे विपत्तियों का सागर मिलेगा। तब तू वहाँ रोते हुए जाएगा। इसलिए गुरु के बताए सच्चे नाम के ज्ञान के अंकुश को अपने हाथ में लेकर अपने आप को संयम की ज़ंजीर से मज़बूती के साथ बाँधकर रख और पाँचों इंद्रियों को बोधकर (चिताकर) इन्हें शांत कर। इस प्रकार इन्हें नियंत्रण में रखते हुए तू सतगुरु की बताई साधना कर। जो परमात्मा से मिलने की इस युक्ति को जानता है, उसे ही मुक्ति प्राप्त होती है और वह मुक्त होकर सदा परमात्मा के साथ रहता है। दरिया साहिब कहते हैं कि सतगुरु के दिए नामरूपी हीरे को हाथ में लेकर इसकी परख कर, तभी तुझे परमात्मा का दर्शन होगा।

10

कर्मकांड और जातिवाद का खंडन

कर्मकांड, हठधर्म, मूर्ति पूजा तथा बनावटी वेष-भूषा की व्यर्थता

यह संसार काल के अधिकार में है। काल ने सत्पुरुष के नाम को गुप्त कर, जीवों को बहिर्मुखी साधनों में उलझा रखा है ताकि कोई भी जीव उसके जाल से निकल न सके। काल के जाल से निकलने के लिए बहिर्मुखी साधनों को छोड़कर अंतर्मुखी साधना को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। इसी लिए संत या सतगुरु बहिर्मुखी साधनों का ज़ोरदार खंडन करते हैं और परमात्मा से मिलने का सच्चा अंतर्मुखी साधन बतलाते हैं।

संसार में कर्मकांड के अनेक विधि-विधान प्रचलित हैं, अनेक प्रकार की धार्मिक वेष-भूषा धारण करने की परंपरा है और बहुत-से शरीर को कष्ट पहुँचानेवाले अभ्यास किए जाते हैं। पर कर्मकांड की सभी क्रियाएँ, जैसे तीर्थ, व्रत, बाहरी पूजा-पाठ, संध्या, तर्पण तथा घंटा और शंख बजाना, माला फेरना, नाचना-गाना, पत्थर, पानी और पोथी की पूजा करना आदि व्यर्थ हैं। इसी तरह तिलक और माला लगाना, गुदड़ी या नीले-पीले वस्त्र पहनना, त्रिशूल या त्रिदंड धारण करना, सिर मुँड़ाना या जटा रखना, शरीर में भस्म लगाना या कान फड़वाकर मणि-मुद्रा पहनना आदि केवल बाहरी प्रदर्शन या निरर्थक आडंबर हैं। इसी तरह पंचाग्नि में तपना, जल-शयन करना, उलटे मुख झूलना, नंगे रहना, मौन धारण करना आदि हठकर्म भी केवल अपने को नाहक़ सतानेवाले निष्फल साधन हैं।

काल के जाल से बचने के लिए हमारा इन बहिर्मुखी साधनों को त्यागकर सच्चे अंतर्मुखी साधन को अपनाना आवश्यक है। अपने ध्यान को बाहर से समेटकर अंतर में एकाग्र करने पर हमें बाहर की निर्जीव

मूर्ति के बदले परमात्मा की सजीव प्रेमपूर्ण मूर्ति का दर्शन होता है। संसार की प्रचलित प्रथा के अनुसार केवल बाहर से शिष्य का कान फूँक देने से काल नहीं भागता। एकमात्र सतगुरु की दी हुई शब्द-धुन के डर से ही काल भागता है। इसलिए सतगुरु के प्रति प्रेम-भक्ति उत्पन्न करके हमें उनकी बताई, आंतरिक युक्ति के द्वारा शब्द-धुन को पकड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। यही पारमार्थिक साधना का सार है।

देखहु पंडित की चतुराई। कर्मकांड सभ कथा सुनाई॥
कर्मे बूड़ि मुआ संसारा। सोई करम जग कीन्ह पसारा॥[1]

कर्मे=करमों के कारण; **बूड़ि मुआ**=डूब मरा; **कीन्ह**=किया; **पसारा**=विस्तार करना।

पंडितों की चतुराई तो देखो, वे कर्मकांड की ही सब कथा सुनाते हैं और इस प्रकार सभी को कर्मकांडी बनने की प्रेरणा देते हैं। वे संसार में उन्हीं कर्मों का प्रसार करते हैं जिनके कारण सारा संसार डूब मरा है।

चार वेद चतुरानन कीन्हा। जप तप संजम सब मिल लीन्हा॥

संध्या तर्पन कर्म बहु, मंत्र गायत्री लीन्ह।
आदि भेद नहिं जानहीं, जम से परिचय कीन्ह॥

बहु विधि बचन जक्त में भाखेऊ। पुरुष नाम गोप करि रखेऊ॥
आपहिं कर्ता धर्ता भयऊ। आपहिं काल आप गुन गयऊ॥...
जोग जाप अव मख पुराना। तीर्थ व्रत में सब अरुझाना॥[2]

चतुरानन=ब्रह्मा; **मिल लीन्हा**=सबने मिलकर धारण किया; **संध्या**=संध्या, हिंदू-धर्म में आम तौर पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय मंत्रों के जाप आदि के द्वारा संध्यावंदन किया जाता है। त्रिकाल संध्या करनेवाले लोग दोपहर में भी संध्या करते हैं; **तर्पन**=देवताओं, ऋषियों तथा पितरों को जलदान करना तर्पण कहलाता है; **गायत्री**=ब्रह्मा ने वेदों की रचना करने से पहले चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र की रचना की थी। वेदों को इसी मंत्र का विस्तार माना जाता है। इसी लिए गायत्री को वेद माता भी कहते हैं। गायत्री मंत्र के द्वारा संध्यावंदन आदि करने की परंपरा हिंदू-धर्म में है; **आदि भेद**=आदि काल से विद्यमान, परमात्मा का राज़; **पुरुष**=सत्पुरुष; **कर्ता**=निर्माण करनेवाला; **धर्ता**=धारण करनेवाला; **आप...गयऊ**=अपने गुण गाता है; **मख**=यज्ञ; **पुराना**=पुराण; **अरुझाना**=उलझे हुए हैं।

ब्रह्मा ने चार वेद बनाए और उनमें वर्णित जप, तप, संयम आदि को सभी ने मिलकर धारण किया। उन सभी ने संध्या, तर्पण आदि बहुत से कर्म और गायत्री मंत्र को अपनाया। परंतु सृष्टि की रचना के पहले से चले आ रहे परमात्मा का राज़ न जान पाने के कारण उन्हें यमराज के पास जाना पड़ा। काल की प्रेरणा से संसार में अनेक प्रकार की रचनाएँ बनीं, परंतु उनमें सत्पुरुष का नाम गुप्त रखा गया। वह स्वयं ही सृष्टि का निर्माण करनेवाला और उसे धारण करनेवाला बना बैठा रहा। वह स्वयं ही अपने गुण गाता है। उसने योग, जाप, यज्ञ और पुराणों में सभी को उलझा रखा है।

संझा तरपन करहु बनाई। कर्म अनेक कथा फैलाई॥
मूंदहिं आंख नाक धरि सोई। ज्यों बग ध्यान धरे नर लोई॥...
वेद गर्व ते पंडित भूला। चढ़ी चरख चौरासी झूला॥[3]

संझा=संध्या, हिंदू-धर्म में आम तौर पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय मंत्रों के जाप आदि के द्वारा संध्यावंदन किया जाता है। त्रिकाल संध्या करनेवाले लोग दोपहर में भी संध्या करते हैं; **तरपन**=देवताओं, ऋषियों तथा पितरों को जलदान करना तर्पण कहलाता है; **मूंदहिं**=बंद करते हैं; **धरि**=पकड़कर; **बग**=बगुला; **लोई**=लोग; **चरख**=चक्कर, चरखी; **चौरासी झूला**=चौरासी लाख योनियों का झूला।

पंडित लोग कहते हैं कि विधिपूर्वक संध्या, तर्पण करो। वे अनेक प्रकार के कर्म करने की बातें करते हैं। वे आँखें बंद करके और नाक पकड़कर बगुले की तरह ध्यान धारण करते हैं। वेदों के ज्ञाता पंडित होने के घमंड के कारण वे भूले रहते हैं और चौरासी लाख योनियों के झूले में चक्कर काटते रहते हैं।

वेद बाट यह हाट में, औ षट कर्म विराग।
आवागमन यह बीच में, नीच परा भौ दाग॥[4]

बाट=मार्ग; **हाट**=संसाररूपी बाज़ार; **षट कर्म**=स्नान, संध्या, पूजा, जप, तर्पण और होम; **विराग**=वैराग्य; **परा**=पड़ा; **भौ दाग**=संसार की तपन में।

इस संसाररूपी बाज़ार में वेद-मार्ग के अनुरूप स्नान, संध्या, पूजा आदि षट-कर्म और वैराग्य लेने का प्रचलन है, जिसके कारण अनाड़ी जीव आवागमन के बीच पड़कर संसार के दु:खों से तपता रहता है।

जब लगि पद नहिं उलटि समाना। पंडित पढ़े का वेद पुराना॥
वेदे अरुझि रहा संसारा। जाल मीन जीव करे अहारा॥[5]

जब लगि=जब तक; **पद**=जीव का अपना स्थान, आंतरिक मंडल; **समाना**=समाता; **का**=क्या; **वेदे**=वेदों में ही; **अरुझि रहा**=उलझा हुआ है; **मीन**=मछली; **अहारा**=आहार, भोजन।

जब तक जीव अपने ध्यान को बाहरी संसार से उलटकर आंतरिक मंडलों में नहीं ले जाता, तब तक वेदों और पुराणों को पढ़ने से क्या होगा? सारा संसार तो वेदों में ही उलझा हुआ है, जिसके कारण काल जीवरूपी मछली को अपने इस जाल में फँसाकर उसका आहार करता रहता है।

वेद है वार पार किमि जाई। अरुझि रहा कहिं ठौर ना पाई॥
माया मन यह जाल बनाई। अरुझे नर मुनि स्वारथ गाई॥[6]

वार=इस किनारे यानी भौतिक संसार में; **पार**=परमात्मा के पास; **किमि**=कैसे; **अरुझि**=उलझ; **ठौर**=ठिकाना।

वेद इस किनारे अर्थात् भौतिक संसार से संबंधित ज्ञान प्रदान करते हैं। उनसे प्राप्त ज्ञान के द्वारा जीव उस पार अर्थात् परमात्मा के पास नहीं जा सकता। वेदों में उलझे जीव को सच्चे लोक में कहीं कोई ठिकाना प्राप्त नहीं होता। मन और माया ने यह जाल रचा हुआ है जिसमें सभी मनुष्य और ऋषि-मुनि अपने स्वार्थ के कारण उलझकर रह गए हैं, न कि परमार्थ के कारण।

होम यज्ञ औ बहु बिधि कर्मा। पढ़ि पुरान दान करि धर्मा॥
कहीं जोग कहीं भोग बिलासा। कहीं उर्ध बाहु मौनि अकासा॥
कहीं धूर्म पान झुलहिं बहु भाँती। कहीं जल सैन साधि इमि राती॥
कहीं रेशम डोरी झुलूहा लाई। ठाढ़े निसु बासर रहि जाई॥
कहीं पंच अग्नि तन तप्त लगावै। कहीं भक्त भेष राम गुन गावै॥...
यहि भातिन मन सब अरुझाई। सतगुरु मत केहु गति नहिं पाई॥[7]

होम=हवन; **बहु बिधि**=अनेक प्रकार के; **बिलासा**=विलास; **उर्ध बाहु**=बाज़ू ऊपर उठाकर; **झुलहिं**=झूलना; **जल सैन**=पानी में खड़ा रहना; **साधि**=साधना करना; **इमि**=इस प्रकार; **राती**=लीन; **रेशम... झुलूहा**=रेशमी डोरियों वाला झूला लगाकर उस पर झूलना; **ठाढ़े**=खड़े; **निसु बासर**=रात-दिन; **पंच अग्नि**=अपने चारों ओर अग्नि जलाना तथा साथ ही ऊपर से सूर्य के ताप का सेवन करना; **अरुझाई**=उलझे हुए; **केहु**=किसी ने; **गति**=मार्ग।

मन के द्वारा भ्रमित लोग हवन, यज्ञ और ऐसे ही अनेक प्रकार के कर्म करते हैं। पुराणों को पढ़कर दान देते हैं तथा धर्म संबंधी कार्य करते हैं। लोग कहीं योग-साधना करते हैं तो कहीं भोग-विलास में ही संलिप्त

रहते हैं। कहीं बाहें ऊपर उठाकर मौन होकर आकाश की ओर देखते हुए कठिन तप करते हैं तो कहीं धूम्रपान करके नशे में अनेक प्रकार से झूलते हैं। कहीं जल में खड़े रहने की भक्ति में लीन रहते हैं तो कहीं रेशमी डोरियों वाला झूला लगाकर उस पर अनेक प्रकार से झूलते हैं। दिन-रात खड़े रहकर कठिन साधना करते हैं तो कहीं लोग अपने चारों ओर अग्नि जलाकर ऊपर से सूर्य के ताप का सेवन करते हैं और फिर कहीं दिखावे के भक्त बनकर राम का गुणगान करते फिरते हैं। इस प्रकार मन ने सभी को उलझा रखा है, इनमें से किसी ने भी सतगुरु के मत को धारणकर मुक्ति की प्राप्ति नहीं की।

पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बखाना। पत्थल पूजत फिरत भुलाना॥
मूरति हिरदै करो बखाना। तब तुम होइ बहु निर्मल ग्याना॥
जेहि कारन सठ तीरथ जाई। रतन पदारथ इंह वहि पाई॥[8]

पत्थल=पत्थर; **सठ**=मूर्ख; **इंह वहि**=यहीं पर, अपने अंतर में।

पंडित लोग वेदों और शास्त्रों को पढ़कर वेदों की महिमा का बखान करते हैं और पत्थर की मूर्ति की पूजा करते हुए दुनिया में भूले फिरते हैं। उसके स्थान पर अपने हृदय में स्थित परमात्मा की मूर्ति को पहचानो और उसकी महिमा का बखान करो। तभी तुम्हें परमात्मा का अत्यंत निर्मल ज्ञान प्राप्त होगा जिसे पाने के लिए लोग मूर्खतावश तीर्थों को जाते हैं; वह परमात्मारूपी रत्न यहीं इस शरीर के अंदर ही प्राप्त हो जाएगा।

आतम छोड़ि पाहन का पूजा। चक्षु बिहून ज्ञान बुझु दूजा॥...
धोखा दवरि पुजे सो अन्धा। कर्म अनेक काल ने बंधा॥[9]

आतम=स्वयं, अपने आप को; **पाहन**=पत्थर; **का**=क्या; **चक्षु बिहून**=बिना आँखों वाला; **बुझु**=समझते हैं; **दूजा**=दूसरा, अन्यत्र; **धोखा दवरि**=धोखे में पड़कर।

अपने आप को छोड़कर पत्थर को पूजने से क्या प्राप्त होगा? आंतरिक आँख से हीन जीव अपने अंतर में देखने के बजाय बाहर में दूसरे की पूजा करने को ज्ञान समझता है। वास्तव में धोखे में पड़कर जो अपने आप को छोड़कर अन्यत्र पूजा करता है, वह अंधा है। उसे तो काल ने अनेक प्रकार के कर्मों में फँसाकर बाँधा हुआ है।

पूजा पाहन षट् कर्म है, भटकत तीरथ अनेक।
पानी पाषाण मूरति पर्वत घने, यही तुम्हारी टेक॥
यह देवल में दरस है, परस प्रेम के घाट।
मूरति महल अनूप है, तेजु औगुन की बाट॥[10]

पाहन=पत्थर; **षट् कर्म**=स्नान, संध्या, पूजा, जप, तर्पण और होम; **पाषाण...घने**=पत्थर की बहुत-सी मूर्तियाँ; **टेक**=सहारा; **यह...में**=इसी शरीररूपी मंदिर में; **दरस**=दर्शन; **परस**=छूना, परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करना; **तेजु**=त्यागना; **बाट**=राह।

लोग परमात्मा को पाने के लिए पत्थर की मूर्तियों की पूजा और स्नान, संध्या, पूजा, जप, तर्पण तथा हवन – इन षट्-कर्मों को करते हुए अनेक तीर्थों में भटकते फिरते हैं। इस प्रकार तीर्थों के जल और पत्थर की बहुत-सी मूर्तियाँ ही उनकी टेक बनी हुई हैं। सच्चे प्रेम के घाट पर अर्थात् सच्चे प्रेम की साधना करने पर, परमात्मा के दर्शन इसी शरीररूपी मंदिर में हो सकते हैं। यदि हम अवगुणों के रास्ते को छोड़ दें तो हमें इस शरीररूपी महल में ही परमात्मा की अनुपम मूर्ति प्राप्त हो सकती है।

जाहि पूजे सो देवता, जो पुजे सो कौन।
बुद्धि जन भले विचारिऐ, बोलता भला की मौन॥[11]

जाहि=जिसको; **सो**=वह; **बुद्धि जन**=बुद्धिमान लोग।

जिसकी पूजा की जाती है उसे देवता होना चाहिए। परंतु संसार जिस अनबोलते की पूजा करता है, वह भला कौन है? बुद्धिमान लोग इस बात का अच्छी तरह निर्णय कर सकते हैं कि बोलते हुए की पूजा करनी चाहिए या फिर कभी न बोलनेवाले पत्थर की?

ना कछु बोलै ना कछु खाई। ताके पुजै मिलै का भाई॥
जो कोई पंडित होखै ग्यानी। भेद समुझि ले निरमल बानी॥[12]

ताके...भाई=भाई, उसकी पूजा करने से क्या मिलता है; **होखै**=होना, बनना; **निरमल बानी**=पवित्र शब्द-धुन।

जो मूर्ति न कुछ बोलती है और न ही कुछ खाती है, उसकी पूजा करने से भला क्या मिल सकता है? अगर कोई चाहता है कि वह परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके सच्चा पंडित बने तो उसे पवित्र शब्द-धुन का रहस्य जानना चाहिए।

झूठा तीर्थ व्रत है झूठा, झूठा सो जो धावे॥
जहां जाय तहं बोलू न वाणी, रोवत घर के आवे॥
तीर्थ गये कहु तीर्थ महातम, देवल देवी हाल को।
पत्थर पानी बात न पूछे पूछे न कुशल घर माल को॥[13]

झूठा=मिथ्या, जो सच न हो; **धावे**=दौड़ते फिरते हैं; **बोलू...वाणी**=कोई भी बात न करना; **घर...आवे**=घर को आते हैं; **महातम**=महिमा; **देवल**=देवालय, मंदिर; **हाल को**=क्या हाल?

तीर्थ-व्रत आदि साधनों से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए इन्हें झूठा कहा गया है। जो इन साधनों के पीछे भागते फिरते हैं, वे भी असत्य के पीछे भाग रहे हैं, इसलिए इन्हें भी झूठा ही कहना ठीक है। हम जहाँ भी तीर्थों में जाते हैं कोई भी मूर्ति कोई बात नहीं करती, निराश होकर

हमें रोते हुए घर वापस आना पड़ता है। इसलिए तीर्थों में जाने के लाभ के विषय में किसी के पूछने पर, उस तीर्थ की महिमा और मंदिरों के देवों तथा देवियों के हाल के बारे में क्या कहें? पत्थर की मूर्ति तथा नदी का पानी न तो हम से कोई बात करते हैं और न हमारे घर या सामान आदि का हालचाल ही पूछते हैं।

दूजा कर्त्ता जल के थापा। मोक्ष मुक्ति मेटहिं सब पापा॥
तातल शीतल होय मलीना। धूप तवै जल होखे छीना॥
बरिषे मेघ बहुत बढ़ियाई। ताके सब कर्त्ता ठहराई॥

अरुझे भेष अलेख सब, असी वरना के तीर।
सत्त शब्द चीन्हें बिना, फेरि फेरि धरे शरीर॥[14]

दूजा कर्त्ता=दूसरा परमात्मा; **जल...थापा**=पानी को मान लिया है; **तातल शीतल**=गर्म-ठंडा; **मलीना**=मटमैला; **तवै**=तपना, गर्मी; **होखे**=होता है; **छीना**=घटना; **बरिषे मेघ**=बादल बरसते हैं; **ताके**=उस पानी को; **भेष**=बाहरी दिखावा, बाहरी साधन; **अलेख**=असंख्य; **असी...तीर**=असी और वरुणा नदी, गंगा नदी के किनारे; **चीन्हें**=पहचाने; **फेरि फेरि**=बार-बार; **धरे**=धारण करते हैं।

लोगों ने अपनी अज्ञानता के कारण पानी को दूसरा परमात्मा मान रखा है। वे यह समझते हैं कि यह हमारे पापों को नष्ट करके हमें मुक्ति दिला सकता है। लोग पानी को परमात्मा मानते हैं, परंतु पानी तो स्वयं गर्म, ठंडा और मटमैला होता है, धूप की गर्मी से वह घट भी जाता है और जब बादल बरसते हैं तो पानी बहुत बढ़ जाता है (ऐसे में पानी परमात्मा कैसे हो सकता है?) फिर भी असंख्य वेषधारी साधु तथा अन्य लोग असी और वरुणा नदी के बीच बसी हुई काशी नगरी की गंगा नदी के तटों पर जल की पूजा करते हुए और अन्य बाहरी साधनों में फँसे हुए दीखते हैं। सच्चे शब्द को पहचाने बिना ऐसे लोग संसार में बार-बार शरीर धारण करते हैं।

तन के त्रास जो बहुत देखावै। पंच अगिनि में तनहिं जरावै॥
ऊरध मुख झूले दिन राती। जल के निकट सएन बहु भांती॥
पय पीवहिं फल करहिं अहारा। लंगा फिरे तन रहे उघारा॥
प्रगट भभूति भरी मुख छारा। काम क्रोध निस दिन बैपारा॥
म्रिगत्रिसुना मद माया ना त्यागे। अंतहु कपट बिखै रस लागे॥
पाखंड कर्म करहिं सभ जानी। ताते जीवन जन्म भव हानी॥...
बांधहि भेख कपट नहिं छूटा। कठिन काल तन भीतर लूटा॥[15]

तन...त्रास=शरीर के कष्ट; **पंच अगिनि**=अपने चारों ओर अग्नि जलाना तथा साथ ही ऊपर से सूर्य के ताप का सेवन करना; **तनहिं जरावै**=शरीर को जलाते हैं; **ऊरध मुख**=उलटे मुँह; **सएन**=शयन, सोना; **पय**=दूध; **अहारा**=आहार; **लंगा**=नंगा; **उघारा**=खुला; **भभूति**=भभूत, शरीर पर मली जानेवाली राख; **छारा**=राख; **निस दिन**=रात-दिन; **बैपारा**=व्यापार, संलग्न होना; **म्रिगत्रिसुना**=मृगतृष्णा; **मद माया**=माया का नशा; **अंतहु**=अंतर में, हृदय में; **बिखै रस**=विषयों का रस; **ताते**=जिससे; **भव**=संसार; **भेख**=दिखावा।

कुछ लोग परमात्मा से मिलाप करने के लिए अपने शरीर को बहुत-से कष्ट देते हैं। अपने चारों ओर अग्नि जलाकर ऊपर से सूर्य के ताप का सेवन करके इस पंचाग्नि में शरीर को जलाते हैं, दिन-रात उलटा मुँह करके झूलते हैं, बहुत समय तक लगातार जल में खड़े रहते हैं, अन्न का त्याग करके केवल दूध पीते हैं और फलाहार करते हैं, बिना वस्त्र के सदा नंगे फिरते हैं तथा दिखावे के लिए शरीर पर भभूत रमाते हैं और मुँह पर राख मलते हैं, परंतु रात-दिन काम-क्रोध में संलग्न रहते हैं। मन और माया की मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते हैं और जीवन के अंतिम समय तक उनके हृदय में कपट भरा रहता है तथा वे विषयों के रस में लीन रहते हैं। वे सारे काम केवल दिखावे के लिए करते हैं जिसके कारण संसार

में उनका यह जीवन और जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। बाहर से तो वे अनेक प्रकार से साधु का स्वाँग बनाते हैं पर अंतर में उनका कपट नहीं छूटता। इसलिए कठिन सज़ा देनेवाला काल उन्हें घोर कष्ट देता है और उन्हें अंदर से लूटकर उनका जीवन बरबाद कर देता है।

पाखंड सै प्रभु मिलै न काहू। कहौं सुभाव सांच पतियाहू॥[16]

काहू=किसी को; **सुभाव**=स्वभाव; **सांच**=सच्चा; **पतियाहू**=विश्वास करना।

दरिया साहिब कहते हैं कि मैं आपको प्रभु का स्वभाव बताता हूँ, आप विश्वास करें। वह किसी को भी बाहरी पाखंड करने से प्राप्त नहीं होते।

भेष भर्म है काल का, नाहीं संत का मंत।
काल नेमि जो रावणा, करत विगुरचन अंत॥[17]

मंत=मत; **काल नेमि**=कालनेमि नामक एक राक्षस, जिसने लंका में राम-रावण युद्ध के दौरान, शक्ति बाण लगने से मूर्छित पड़े लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी लाने के लिए जाते हुए हनुमान को छलपूर्वक, ब्राह्मण का वेश धारण करके रोकने की कोशिश की थी। परंतु बाद में भेद खुलने के कारण हनुमान ने उसे मार दिया था; **रावणा**=रावण, जिसने सीता-हरण के लिए तपस्वी का कपट रूप धारण किया था; **विगुरचन**=संकट में पड़ना।

बाहरी दिखावों की भक्ति काल का फैलाया हुआ भ्रामक मत है। यह संतों का मत नहीं है। दिखावे की भक्ति के कारण जीव अंत में उसी प्रकार संकट में पड़ता है जैसे कालनेमि और रावण पड़े थे।

परे बिराने हाथ में, जंगम जोगी सेख।
तिलक माला सोहावना, विविध बना है भेष॥[18]

परे=पड़े; **बिराने...में**=पराए, काल के हाथ में पड़ना, लूटा जाना; **जंगम**=शैव संप्रदाय के गुरु; **सेख**=शेख़, मुसलमानों के चारों वर्गों में से सबसे श्रेष्ठ वर्ग।

सुंदर तिलक और माला धारण करके अनेक प्रकार के वेश बनानेवाले पाखंडी साधु, योगी और शेख़, काल के हाथों लूट लिए जाते हैं।

का भौ भक्ति किये सिर भारी। का तुम प्रगट काया पखारी॥
का भौ फिरे दिगम्बर नंगा। का भौ उलटि आपु कंह टंगा॥
पानी रहे मच्छ औ दादुर। टाँगे रहे बने मँह गादुर॥
पसु पंछी नंगे नंगे सब खड़ा। रहा कुम्हार भस्म सो भरा॥[19]

का भौ=क्या हुआ; **सिर भारी**=बाहरी क्रियाओं के द्वारा की गई भक्ति से सिर पर कर्मों का भारी बोझ लेना; **काया पखारी**=शरीर धोना; **दिगम्बर नंगा**=जैन-मत की एक शाखा के साधु जो निर्वस्त्र रहते हैं; **टंगा**=लटकाना; **मच्छ...दादुर**=मछलियाँ और मेंढक; **टाँगे**=लटके; **बने...गादुर**=वन में चमगादड़; **भस्म...भरा**=राख से भरा हुआ।

बाहरी क्रियाओं के द्वारा की गई भक्ति से सिर पर कर्मों का भारी बोझ लेकर क्या होगा? शरीर को बाहर से तीर्थों के जल में धोने से क्या होगा? मछलियाँ और मेंढक जल में ही रहते हैं, पर इससे वे मुक्त तो नहीं हो जाते! दिगंबर बनकर निर्वस्त्र घूमने से क्या होगा? सभी पशु-पक्षी तो नंगे ही रहते हैं, वे तो मुक्त नहीं हो जाते! कठिन साधनाओं को करने के लिए अपने आप को उलटा लटकाने से क्या होगा, वन में चमगादड़ उलटे ही तो लटके रहते हैं! वे तो मुक्त नहीं हो जाते! कुम्हार अपने आवाँ से बरतन निकालने के कारण सारा दिन राख से भरा हुआ रहता है, परंतु इससे उसे मुक्ति तो प्राप्त नहीं हो जाती! इसी प्रकार अपने शरीर पर राख मलने से भी मुक्ति प्राप्त नहीं होगी।

कहिं बांधि जटा सिर जट रखे कहिं मोट गुदर को सीवता है।
कहिं खाकिया खाक बघंमरि है कहिं पांव उलटि के रीवता है।
कहिं मुदरा पेन्हि स्रवन सोभा कहिं साधि पवन के पीवता है।
एह झूलना दरिया साह कहा सतगुर बीना ध्रिग जीवता है॥[20]

मोट गुदर=मोटी गुदड़ी; **सीवता है**=सीता है; **खाकिया खाक**=मटमैली राख; **बघंमरि**=बाघ की खाल को वस्त्र के रूप में लपेटना; **रीवता है**=झूलता है; **मुदरा**=कुंडल; **पेन्हि**=पहनकर; **स्रवन सोभा**=कान की शोभा; **साधि**=साधना; **बीना**=बिना।

परमात्मा की भक्ति करने के लिए कहीं कोई सिर पर जटाएँ रखता है तो कहीं कोई मोटी गुदड़ी सिलकर पहनता है। कहीं कोई मटमैली राख अपने ऊपर मलता है या बाघ की खाल को वस्त्र के रूप में अपने शरीर पर लपेट लेता है, कहीं कोई उलटे पाँव झूलता रहता है तो कहीं कोई कुंडल पहनकर अपने कानों को सुशोभित करता है और कहीं कोई प्राणायाम की साधना करके लंबी साँस द्वारा वायु को पीता है। परंतु दरिया साहिब इस झूलने द्वारा कहते हैं कि यदि हमें सतगुरु प्राप्त नहीं हुए, तो संसार में हमारा जीवन धिक्कार है।

अरु त्यागत लोन अलोन जो खात है, कै तप तेजत सो गृहि नारी।
अरु काहे के डंड कमंडल लेत है, काहे के योग भये ब्रह्मचारी॥
अरु का गले कंथ जो पंथ के जोहत, का मनि मुन्द्रा कान के फारी।
'दरिया' जो कहे जब ज्ञान नहीं, अपने पै आप सो आप बिसारी॥[21]

लोन=नमक; **अलोन**=बिना नमक का खाना; **कै तप**=तपस्या के लिए; **तेजत**=त्याग करना; **डंड कमंडल**=डंडा और कमंडल; **काहे के**=किस लिए; **कंथ**=प्रियतम परमात्मा; **पंथ...जोहत**=राह देखना; **मनि मुन्द्रा**=मणियों की मुंदरियाँ; **फारी**=फाड़कर; **अपने...आप**=अपने आप के अंदर; **आप**=स्वयं; **बिसारी**=भुलाए हुए।

कुछ लोग नमक को छोड़कर बिना नमक का भोजन करते हैं और तपस्या करने के लिए अपनी पत्नी को भी छोड़ देते हैं। आख़िर किस लिए लोग हाथों में डंडा और कमंडल लेकर चलते हैं तथा योगी या ब्रह्मचारी बनते हैं? प्रियतम परमात्मा जो हमारे अंतर में हमें गले लगाने के लिए तैयार है, बाहर उसकी राह देखने से क्या लाभ होगा? अपने कानों को फाड़कर मणियों की मुंदरियाँ डाल देने से क्या होगा? जब तक हमें परमात्मा का सच्चा ज्ञान नहीं है, तब तक तो हम स्वयं ही अपने अंतर में स्थित परमात्मा को भुलाए हुए हैं।

कहीं गुर ज्ञान जो ध्यान धरे कहीं व्रत नेम पुजा बहु ठाने॥
कहिं तीरथ तीर जो नीर में मंजन देवल में कहिं देवि बखाने॥
कहिं काँवरि कान्ह करे सिव सिव कहिं जीव अम्रित में बिखि साने॥
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं बिच कांचु के महल में स्वान भुकाने॥[22]

धरे=धरते हैं; **नेम**=नियम; **तीर**=किनारा, घाट; **नीर...मंजन**=जल में स्नान; **देवल**=देवालय, मंदिर; **बखाने**=बखान या गुणगान करना; **काँवरि कान्ह**=बाँस की बनी हुई बहँगी जिसे कंधे पर रखकर लोग तीर्थयात्रा करते हैं; **सिव**=शिव; **बिखि**=विष; **साने**=मिलाना; **बिच**=बीच में; **स्वान**=कुत्ता; **भुकाने**=भौंकना।

संसार में कहीं लोग सांसारिक गुरुओं के दिए ज्ञान के अनुसार ध्यान धरते हैं, तो कहीं अनेक प्रकार से व्रत, नियम और पूजा करते हैं। कहीं वे तीर्थ में नदियों के घाट पर जल में स्नान करते हैं, कहीं मंदिर में देवी का गुणगान करते हैं और कहीं लोग कंधे पर काँवड़ रखकर शिव-शिव कहते हुए मंदिर को जाते हैं। इस प्रकार लोग अपने अंतर में स्थित नामरूपी अमृत में विषयों का विष मिलाते हैं। जब तक हमें परमात्मा का सच्चा ज्ञान नहीं है, तब तक इस नक़ली दिखावे की भक्ति में उलझे रहना वैसा ही है जैसे शीशे के घर में कुत्ता अपनी परछाईं को असली कुत्ता समझकर व्यर्थ में भौंकते-भौंकते परेशान होता रहता है।

का जलसयन साधे निसु ब्याकुल का धुम्रपान धुआं द्रिग राता।
का पंच अगिनी तनहिं जरावत का चढ़ि झूलि हिंडोलन्हि माता।
का तन खाक जटा फटकारत काहे के लिंग उघारत गाता।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं जमसासन सर्ब अचानक घाता॥[23]

जलसयन साधे=पानी में सोने की साधना करना; **निसु**=रात; **द्रिग राता**=आँखों में धुआँ भरना; **पंच अगिनी**=अपने चारों ओर अग्नि जलाना तथा साथ ही ऊपर से सूर्य के ताप का सेवन करना; **जरावत**=जलाते हैं; **हिंडोलन्हि**=हिंडोला, झूला; **माता**=नशे में चूर होना; **खाक**=मिट्टी, राख; **फटकारत**=फटकना, खुला छोड़ देना; **लिंग**=चिन्ह; **उघारत**=खुला छोड़ना; **गाता**=शरीर; **जमसासन**=यमराज के शासन में; **सर्ब**=सभी; **घाता**=घात करना।

रात भर लगातार व्याकुल बने हुए पानी में खड़े रहने से आख़िर क्या प्राप्त हो सकता है? धूम्रपान करने और धूनी का धुआँ आँखों में भरने से भी आख़िर क्या प्राप्त हो सकता है? इसी प्रकार अपने चारों ओर अग्नि जलाकर साथ ही ऊपर से सूर्य के ताप का सेवन करके शरीर को जलाने से और नशे में चूर होकर झूले में झूलने से क्या प्राप्त हो सकता है? शरीर पर राख मलने, जटाओं को खुला छोड़कर इन्हें फटकारने से भी क्या प्राप्त हो सकेगा? आख़िर लज्जा निवारण के लिए वस्त्र न पहन, अपने शरीर को नंगा छोड़ देने से भी क्या मिलेगा? परमात्मा के सच्चे ज्ञान के बिना यमराज के शासन में ही रहनेवाले सभी जीवों पर अचानक मृत्यु का आक्रमण होकर ही रहेगा।

संतो देखा ज्ञान बिचारी।
आपु सवारथ सभके मीठा परमारथ है भारी॥
पंडित ज्ञाता पोथी पढ़ि पढ़ि मांगहिं हाथ पसारी।
सर्बस लेइ मंदिल में डारहिं करम कांडि बिसतारी॥

काजी मोलना पढ़े कोराना करि ततबीर संवारी।
करि मुरीद दिल दर्द ना जाने नाहक गाय पछारी॥
बड़े ब्रह्म औ कांध जनेऊ अज्यासुत कहं मारी।
आनि सगवती भरि पेट खावहिं उन्ह बैकुंठ बिसारी॥
करि बैराग तिलक औ माला एता भेख भिखारी।
जटा बढ़ाए बघंमर वोढ़े उन भी बात बिगारी॥
माथ मुड़ाय घोटावहि नीके ग्रिहि त्यागहि औ नारी।
मन के कारन डींभ ना छूटा बोझ लिए सिर भारी॥
तपसी मौनी दूधा धारी ऐहु कलपना कारी।
पाखंड छुटे ना मिले गोपाला जन्म जुआ उन्हि हारी॥
बूड़े भेख अलेख स्वांग धरि बिरला सके संभारी।
कहें दरिया कोई जन सुधरे सतगुर गमी बिचारी॥[24]

मीठा=प्रिय; **ज्ञाता**=ज्ञानी; **हाथ पसारी**=हाथ फैलाकर; **सर्बस**=सब कुछ; **मंदिल**=घर; **डारहिं**=डालते हैं, भरते हैं; **करम कांडि**=कर्मकांड; **बिसतारी**=फैलाते हैं; **काजी**=इस्लाम धर्म के अनुसार धार्मिक विवादों का निर्णय करनेवाला व्यक्ति; **मोलना**=मौलाना–इस्लामी सिद्धांतों का पंडित; **कोराना**=इस्लाम धर्म का पवित्र ग्रंथ क़ुरान शरीफ़; **ततबीर**=उपाय; **मुरीद**=शिष्य; **नाहक**=व्यर्थ ही; **पछारी**=पछाड़ना, मारना; **ब्रह्म**=ब्राह्मण; **कांध**=कंधे पर; **अज्यासुत**=बकरी का बच्चा; **सगवती**=बकरे का मांस; **बघंमर**=बाघ की खाल; **वोढ़े**=ओढ़ना; **बिगारी**=बिगाड़ना; **माथ मुड़ाय**=सिर को मुँड़ाकर; **घोटावहि**=हजामत करवाते हैं; **नीके**=अच्छी तरह से; **ग्रिहि**=घर; **डींभ**=पाखंड; **दूधा धारी**=केवल दूध पीकर व्रत धारण करनेवाला; **ऐहु**=यह; **कलपना**=दुःख; **कारी**=कलुषित; **संभारी**=सँभलना; **गमी**=पहुँच, ज्ञान।

दरिया साहिब कहते हैं कि हे सज्जन पुरुषो! हमने ज्ञानपूर्वक विचार करके देखा है कि संसार में सभी को अपना स्वार्थ प्रिय है, जबकि परमार्थ उन्हें

बोझ लगता है। दुनिया में बहुत-से ऐसे पंडित और ज्ञानी हैं जो शास्त्रों को पढ़कर लोगों के आगे हाथ फैलाकर दान माँगते हैं। उनसे दान में मिले सब पदार्थों से अपना घर भरते हैं और इसी प्रकार कर्मकांड का जाल फैलाए रखते हैं। इस्लाम धर्म में क़ाज़ी और मौलाना क़ुरान शरीफ़ को पढ़कर लोगों को अनेक उपाय बताते हैं और उन्हें अपना शिष्य बना लेते हैं। लेकिन उनका हृदय फिर भी जीवों का दर्द नहीं समझ पाता। वे व्यर्थ में ही गाय को मारकर उस पर अत्याचार करते हैं। हिंदुओं में ब्राह्मण अपने आप को सबसे श्रेष्ठ कहते हैं। वे कंधे पर जनेऊ धारण करते हैं, लेकिन बकरी के बच्चे को मारते हैं और उसका मांस लाकर भरपेट खाते हैं। उस समय वे बैकुंठ को बिल्कुल भूल जाते हैं। कुछ लोग बैरागी बनकर अपने मस्तक पर तिलक और गले में माला धारण करते हैं, ये सभी वेशधारी वास्तव में भिखारी ही हैं। कुछ लोग सिर पर जटाएँ बढ़ाकर बाघ की खाल को अपने तन पर ओढ़ लेते हैं। ऐसे लोग तो परमार्थ की बात बिगाड़नेवाले ही हैं। कुछ लोग अपने सिर को मुँड़ाकर इसे अच्छी तरह उस्तरे से साफ़ करवाते रहते हैं तथा अपने घरबार और पत्नी को त्याग देते हैं। परंतु मन के अधीन होने के कारण वे भी पाखंड को नहीं छोड़ पाते, जिसके फलस्वरूप वे अपने सिर पर कर्मों का भारी बोझ लाद लेते हैं। इसी प्रकार कठिन तपस्या करना, मौन धारण करना और केवल दूध पीकर व्रत धारण करना भी कलुषित और दुःख देनेवाली साधना है। ऐसा करनेवाले पाखंड को छोड़ नहीं पाते और उन्हें परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। वे तो इस मनुष्य-जन्म को जुए की तरह हारकर ख़ाली हाथ चले जाते हैं। इस प्रकार बहुत-से भेषधारी दिखावे के लिए तरह-तरह के रूप धारण करके संसार-सागर में डूब गए, कोई विरला ही सँभल सका है। कोई विरला ही भक्त अपना परमार्थ सुधार सकता है जो सतगुरु के पास जाकर उनके दिए हुए ज्ञान के अनुसार अभ्यास करता है।

तेरी भक्ति हँसी न खेली।
तिलक माला से तरे ना कोई, काह बांधे ग्रीव सेली॥

नाचे काछे ताल बजावे, और चिकनी बहु बातें।
जैसा नाँचे तैसा कांछे, दुरि करहु बहु घातें॥
का भौ माथ मुड़ाये चिकने, क्या चिकुर सिर राखे॥
क्या मनी मुद्रा कान फराये, क्या मौनी मुँदि आँखे॥
का गुदरी अलफी के पेन्हे काह दिये सिर टोपी।
क्या मुख मुरली टेरी सुनावे, वृन्दावन बसु गोपी॥
कहा धतुरा भाँग बुकावे, मन मत भाव तरंगा।
क्या तीर्थ ब्रत के धावे, काह पखारत अंगा॥...
रहे सम्भारे चले बिचारे, निर्मल पद कह राता।
संशय सागर दूरि करि योगी, कहें 'दरिया' सत बाता॥[25]

तेरी=आपकी, परमात्मा की; **काह**=क्या; **ग्रीव**=गले में; **सेली**=कंठी, गोरखपंथियों के द्वारा गले में पहना जानेवाला काला धागा; **काछे**=वेष बनाता है; **घातें**=दाँव-पेंच; **का भौ**=क्या होगा; **चिकुर**=केश, बाल; **मनी मुद्रा**=मणियों की मुँदरी; **फराये**=फड़वाकर; **मुँदि**=मूँदना; **गुदरी**=फटे-पुराने कपड़ों को सीकर बनाया गया ओढ़ना; **अलफी**=फ़क़ीरों के द्वारा पहना जानेवाला चोग़ा; **पेन्हे**=पहने; **बुकावे**=महीन पीसा हुआ चूर्ण या बुक्की खाना; **पखारत**=धोना; **अंगा**=शरीर; **सम्भारे**=सँभाले; **बिचारे**=विचार करके; **निर्मल पद**=परमात्मा का निर्मल धाम; **राता**=लीन होना; **संशय सागर**=संशयरूपी समुद्र; **सत बाता**=सच्ची बात।

हे परमात्मा! आपकी भक्ति करना कोई हँसी-खेल का काम नहीं है। तिलक लगाने और माला धारण करने से कोई भी संसार-सागर को पार नहीं कर सकता। इसी प्रकार परमात्मा को पाने के लिए गले में कंठी या काला धागा डालने से भला क्या हासिल होगा? परमात्मा की भक्ति करने के लिए लोग वेष बनाकर ढोलक की ताल पर नाचते-गाते फिरते हैं और बहुत-सी चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं, परंतु वास्तव में इस संसार में जो जैसा वेष

बनाता है वैसा ही नाचता फिरता है अर्थात् जो जैसा आचरण करता है, उसे वैसा ही फल भोगने के लिए संसार में नाचना पड़ता है। इसलिए हमें इन सारे दाँव-पेंचों को छोड़ देना चाहिए। सिर मुँड़ाकर चिकना कर देने या सिर पर बाल रखने से भी क्या होगा? कानों को फड़वाकर उनमें मणियों की मुंदरियाँ डालने या मौन धारण करके आँखें मूँदकर बैठ जाने से भी क्या होगा? फटे-पुराने कपड़ों को सीकर बनाई गई गुदड़ी, फ़क़ीरों का चोग़ा या सिर पर टोपी पहनने से भी आख़िर क्या होगा? जिस प्रकार वृंदावन में गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ रासलीला करती थीं, उसी प्रकार मुरली बजाकर दुनिया के नर-नारियों को रिझाने से क्या होगा? भाँग के महीन पीसे हुए चूर्ण की बुक्की या धतूरा खाकर मन की भावनाओं की लहरों में बह जाने से क्या लाभ होगा? तीर्थ-व्रत करने और पवित्र नदियों, सरोवरों आदि में शरीर को धोने से क्या प्राप्त होगा? जो संसार में सोच-विचारकर रहता है, सँभलकर चलता है और अपने आप को शब्द साधना में लगाए रखता है, वह परमात्मा के निर्मल धाम में लीन हो जाता है। दरिया साहिब परमार्थ की सच्ची बात बताते हुए कहते हैं कि सच्चा योगी बनने के लिए तो हमें अपने हृदय के संशयरूपी समुद्र को दूर करना आवश्यक है।

आतम तेजि पूजे जड़ पाहन, प्रेम सी मूरति है घट माहीं।
वेद विचार आचार चतुर दिश, खोजत है इहईं सब आहीं॥
ब्राह्मण कहावत ब्रह्म न चिन्हत, नव गुण तीन तिलक दे जाहीं।
'दरिया' जो कहे पर दीक्षत हो, कान फूंके कहीं काल पराहीं॥[26]

आतम=अपना आप; **तेजि**=छोड़कर; **जड़ पाहन**=बेजान पत्थर; **घट माहीं**=शरीर के अंदर; **आचार**=आचरण करना; **चतुर दिश**=चारों ओर; **इहईं**=यहीं पर, इसी शरीर में; **आहीं**=है; **चिन्हत**=पहचानते; **नव गुण**=नौ सूतों वाला जनेऊ; **तीन तिलक**=त्रिपुंड – तीन आड़ी रेखाओं का तिलक; **पर**=दूसरे; **दीक्षत है**=दीक्षा देते हैं, शिष्य बनाते हैं; **पराहीं**=भागना।

परमात्मा की प्रेमपूर्ण मूर्ति हमारे शरीर के अंदर है, लेकिन अपने अंतर में स्थित उस परमात्मा को छोड़कर लोग बेजान पत्थरों को पूजते हैं। वेदों पर विचार करने और उनके अनुसार आचरण करने की बात कहनेवाले लोग, बाहर में चारों ओर परमात्मा की तलाश करते हैं, जबकि वह परमात्मा और उसका बनाया सब कुछ इसी शरीर में है। वास्तव में जो ब्रह्म की पहचान रखता है, वही ब्राह्मण है। पर आजकल वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं जो केवल नौ सूतों वाला जनेऊ पहनते तथा त्रिपुंड तिलक लगाते हैं। वे अपने अंतर में स्थित ब्रह्म को नहीं पहचानते, फिर भी वे दूसरों के कान में मंत्र फूँककर उन्हें दीक्षा देते हैं! पर भला कान फूँकने से कहीं काल भाग सकता है?

पंडित घट-घट बोलनिहारा।
अनबोले से कैसे बनिहें, शब्दहिं करो विचारा॥
पाहन काटि मूरति जो किन्हों, को तुम काटनि हारा।
हाथ पाँव तुम सभे बनाया, बोलता बिना नकारा॥
तासो विनय करो कर जोरे, तुम मेरो करतारा।
वोय मौनी तुम बोलनिहारा, भलि मति गई तुम्हारा॥
अजया सुत चढ़ावहु तापर, रक्षा करहु हमारा।
पर सुत मारि पुत्र के कारन, करम चढ़ा सिर भारा॥
जीव मारन को धर्म कहतु हो, अधरम का संसारा।
वेद पुरान पढ़ा तुम पंडित, करि दोविधा जीव मारा॥
ऐसे बूड़ि मुवे भवसागर, फेरि पशुआ अवतारा।
कहें 'दरिया' जेहिं दया दरद नहिं, परे नर्क के धारा॥[27]

घट=शरीर; **अनबोले**=बिना बोले; **पाहन**=पत्थर; **काटनि हारा**=काटनेवाले; **बोलता...नकारा**=न बोल पाने के कारण वह व्यर्थ है; **कर जोरे**=हाथ जोड़कर; **करतारा**=ईश्वर; **मति गई**=बुद्धि मारी गई; **अजया सुत**=बकरी का बच्चा; **चढ़ावहु**=बलि चढ़ाना; **तापर**=उस मूर्ति पर; **पर सुत**=दूसरे का बच्चा; **पुत्र...कारन**=अपने पुत्र की रक्षा के लिए; **अधरम...संसारा**=तो फिर संसार में अधर्म क्या है; **दोविधा**=दुविधा, अज्ञान; **बूड़ि मुवे**=डूब मरा; **भवसागर**=संसार-सागर; **पशुआ अवतारा**=पशु के रूप में जन्म लेना; **दरद**=दर्द; **परे**=पड़ा।

परमात्मा प्रत्येक मनुष्य के अंदर शब्द-धुन के रूप में बोल रहा है। वह उस पत्थर की मूर्ति से कैसे प्राप्त हो सकता है जो बोल भी नहीं पाती? इसलिए हमें शब्द की साधना करनी चाहिए। पत्थर को काटकर उसकी मूर्ति बनाई गई है। पर कुछ विचार तो कीजिए कि पत्थर को काटनेवाला है कौन? मूर्ति के हाथ, पाँव आदि सभी अंग बनाए गए हैं, परंतु वह मूर्ति बोल तो सकती नहीं, अत: व्यर्थ ही है। लोग हाथ जोड़कर उस मूर्ति से प्रार्थना करते हैं कि वही मूर्ति हमारा ईश्वर है। वह बोल नहीं सकती, बेज़ुबान है, जबकि हम बोलनेवाले होकर उसे अपना ईश्वर कहते हैं, हमारी बुद्धि को आख़िर हो क्या गया है? हम उस मूर्ति पर बकरी के बच्चे को बलि के रूप में चढ़ाते हैं और उससे प्रार्थना करते हैं कि वह मूर्ति हमारी रक्षा करे। जब हम अपने पुत्र की रक्षा के लिए दूसरे के पुत्र की बलि देते हैं तो हमारे सिर पर तो पाप-कर्मों का भारी बोझ चढ़ जाता है। यदि हम इस प्रकार की गई जीव-हत्या को धर्म कहते हैं तो फिर संसार में अधर्म क्या है? हे पंडित! तूने वेद पुराण तो पढ़ा, पर धर्म और अधर्म की पहचान न कर सका और दुविधा में पड़कर जीव-हत्या कर डाली। इसी प्रकार भ्रम में पड़कर सभी जीव संसार-सागर में डूब मरते हैं और अंत में पशु के रूप में जन्म लेते हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि जो जीवों के दर्द को अनुभव नहीं कर सकता, वह अवश्य ही नरक की धारा में जाकर पड़ता है।

पत्थर पानी देवा देई धर्म दाया नाहिं।
पूजहु पाहन पंडित होई के बूड़ि गयो भव माहिं॥
अजहुं मूरख मुर्ति तेजहु या में कर्त्ता नाहिं।
यह तो पाहन काटि काढ़ेव जइहो केकरी बाहिं॥[28]

देवा=देवता; **देई**=देवी; **दाया**=दया-भाव; **बूड़ि गयो**=डूब गए; **भव**=संसार; **अजहुं**=अब भी; **तेजहु**=छोड़ दो; **या में**=इसमें; **कर्त्ता**=परमात्मा; **काढ़ेव**=गढ़ी गई है; **जइहो**=जाएँगे; **केकरी बाहिं**=किसकी बाँह पकड़कर?

दरिया साहिब कहते हैं कि हे पंडित! पत्थर, पानी और देवी-देवता के प्रति तुम्हारी श्रद्धा है, परंतु सच्ची धर्म-भावना अर्थात् मन में जीव-मात्र के प्रति दया-भाव नहीं है। पंडित होकर भी तुम पत्थरों की पूजा करते हो जिससे तुम संसार-सागर में डूबते हो। अपनी मूर्खता को समझते हुए अब भी मूर्ति-पूजन को छोड़ो, इस मूर्ति में संसार का कर्ता परमात्मा नहीं है। इसे तो स्वयं मनुष्य ने ही पत्थर को काटकर, आँख, मुख, नाक आदि गढ़कर तैयार किया है, यह निर्जीव मूर्ति हमें संसार-सागर से पार नहीं ले जा सकती। यदि तुम इसी की पूजा करते रहे तो फिर किसकी बाँह पकड़कर संसार-सागर से पार जाओगे?

कोटिन दान जो पुन्य करे, औ कोटिन तीर्थ में रटना।
कोटिन वेद पुराण सुने, औ कोटिन जाप जपे रसना॥
कोटिन तप जो दर्प करे, औ फिरे उघार तेजे बसना।
संत से नेह ना नाम निःअक्षर, कहु मूल बिना कैसे तरना॥[29]

कोटिन=करोड़ों; **रटना**=पाठ-कीर्तन; **रसना**=जीभ; **दर्प**=घमंड; **उघार**=नग्न; **तेजे बसना**=कपड़े त्यागकर; **नेह**=प्रेम; **नाम...मूल**=धुनात्मक नाम जो सबका मूल तत्त्व है।

भले ही कोई करोड़ों दान-पुण्य कर ले, करोड़ों तीर्थों की यात्रा कर ले, करोड़ों ही पाठ-कीर्तन आदि कर ले, करोड़ों वेद-पुराण आदि धर्म-पुस्तकों को सुन ले, अपनी जीभ से करोड़ों जाप कर ले, करोड़ों तप करने का घमंड करे या कपड़े त्यागकर नंगा फिरे, फिर भी इन सब के बावजूद,

संतों के प्रति प्रेम और सब जीवों के मूल तत्त्व धुनात्मक नाम के बिना संसार-सागर को कैसे पार किया जा सकता है?

जाति और धर्म के निरर्थक झगड़े

जाति-पाँति और धर्म का नाता केवल हमारे शरीर से है। शरीर के नष्ट होने पर न किसी की कोई जाति होती है और न कोई धर्म होता है। यह शरीर और दुनिया के सभी साज-सामान माया के पुतले हैं जो कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाते हैं। केवल हमारी आत्मा ही अविनाशी सत्ता है जो परमात्मा की अंश है और जो जाति-पाँति या धर्म के भेदभाव से परे है। इसलिए किसी जाति या परिवार में जन्म लेने से ही कोई ऊँचा या नीचा नहीं हो जाता। अपने आचरण और ज्ञान के आधार पर ही कोई ऊँचा या नीचा होता है। जिस पर सतगुरु की कृपा है, जो शब्द-धुन से जुड़ा हुआ है और जिसे सत्पुरुष का ज्ञान है, वही ऊँचा है और जो जीव हिंसा करता है, मांस, मछली, शराब और पर-स्त्री का सेवन करता है, संत की निंदा करता है और ज्ञान से दूर रहता है, वही नीचा है।

शारीरिक दृष्टि से भी सभी मनुष्य एक-समान हैं। जैसे कुम्हार एक ही मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बनाता है, वैसे ही परमात्मा भी एक ही प्रकार के तत्त्वों से सभी मनुष्यों की रचना करता है। सभी मनुष्य एक ही तरह जन्म लेते हैं, सबके हाड़, चाम, मांस और ख़ून एक ही जैसे हैं, सभी एक ही धरती पर रहते हैं और सब में एक ही परमात्मा का वास है। इसलिए हिंदू और मुसलमान तथा पंडित और मौलाना का भेद खड़ा कर, आपस में झगड़ा करना बिल्कुल मूर्खतापूर्ण और निरर्थक है।

केवल सतगुरु के दिए हुए नाम यानी शब्द-धुन से ही सभी जीव पवित्र होते हैं और सतगुरु नाम का भेद देने में जाति या धर्म का विचार नहीं करते। परमात्मा की भी कोई जाति या धर्म नहीं है और वह जाति या धर्म के भेदभाव से दूर रहनेवालों पर ही प्रसन्न होता है:

जाति बरन कुल देह कर नाता। मुए परा झरि तरिवर पाता॥
काया माया सकल पसारा। बिलग बिहरि होए रहहु निनारा॥[30]

बरन=वर्ण, समाज को गुण-कर्म के विभाग के अनुसार चार वर्णों में बाँटा गया है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; **देह कर**=शरीर का; **नाता**=संबंध; **परा**=पड़ा; **झरि**=झड़कर; **तरिवर पाता**=वृक्ष से पत्ता; **काया**=शरीर; **सकल**=सारा; **पसारा**=विस्तार; **बिलग**=अलग होकर; **बिहरि**=इधर-उधर भटकना, अनासक्त होना; **निनारा**=न्यारा, दूर।

जाति, वर्ण और कुल का संबंध शरीर से है। मरने पर मनुष्य झड़े हुए पत्ते के समान बेकार हो जाता है और शरीर तथा संसार का सारा विस्तार माया के द्वारा किया गया है। अत: मनुष्य को इससे अलग तथा अनासक्त होकर दूर रहना चाहिए।

जाति पांति कुल कपड़ा, एह तो है दिन चार।
ज्यों आवे त्यों जायेगा, हाथ जुआरि झार॥[31]

दिन चार=थोड़े दिनों का; **हाथ...झार**=जैसे सब कुछ हारकर जुआरी ख़ाली हाथ जाता है।

जाति-पाँति या कुल-परिवार केवल बाहरी पोशाक या पहनावा है जो थोड़े ही दिनों के लिए है। जीव जिस प्रकार ख़ाली हाथ इस संसार में जन्म लेता है, उसी प्रकार ख़ाली हाथ चला भी जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे सब कुछ हारकर जुआरी ख़ाली हाथ जाता है।

ब्राह्मन क्षत्री वैश्य है, शूद्र समेता जाति।
अविगति जीव पहचानिया, नहिं काहु की पांति॥[32]

अविगति=अविनाशी, परमात्मा; **पांति**=समूह, वर्ग।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सहित सभी जातियों में से जिस जीव ने अविनाशी परमात्मा को पहचान लिया, वह फिर किसी भी जाति-पाँति या वर्ग में नहीं आता, बल्कि परमात्मा का ही रूप हो जाता है।

जाति जाति सभ जाति कहि, अजाति जाति सो भिन्न।
नहिं ब्राह्मन रजपूत है, वैश्य शूद्र का चिन्ह॥[33]

अजाति=जिसकी कोई जाति न हो, परमात्मा; **रजपूत**=राजपूत।

वैसे तो सभी लोग जाति की बात कहते हैं, परंतु परमात्मा की कोई जाति नहीं है। वह सभी जातियों से अलग है। वह न तो ब्राह्मण या राजपूत है और न उसमें वैश्य या शूद्र जातियों की ही कोई निशानी है।

नीच ऊँच कर कबन बखाना। आदि अंत है ब्रह्म अमाना॥[34]

कबन=किसे; **बखाना**=कहना; **आदि**=आरंभ; **अमाना**=असीम।

इस सृष्टि में आरंभ से अंत तक सर्वत्र असीम ब्रह्म ही व्याप्त है, ऐसे में ऊँचा या नीचा किसे कहा जा सकता है?

जाति पांति नाहिं पूछिए, पूछहुं निर्मल ग्यान।
संत की जाति अजाति है, जिन्हि पायो पद निर्बान॥[35]

पांति=समूह; **अजाति**=जिसकी कोई जाति न हो, परमात्मा; **पायो**=प्राप्त कर ली है; **पद निर्बान**=मुक्ति की अवस्था।

संतों से यह नहीं पूछना चाहिए कि वे किस जाति या समूह के हैं, बल्कि उनसे केवल परमात्मा का निर्मल ज्ञान ही पूछना चाहिए। संत मुक्ति की प्राप्ति कर, परमात्मा से मिलकर परमात्मा का रूप हो चुके होते हैं। उनकी कोई जाति नहीं होती।

जाति पांति कछुवो नहिं अहई। बड़ा सोइ साहब गुन गहई॥
सूपच से कह कवन है नीचा। बाजेवो घंट सभ से भौ ऊँचा॥
क्रिस्नु आपु परदच्छिन कीन्हा। धन धन साधु अमर पद चीन्हा॥[36]

कछुवो=कुछ भी; **अहई**=है; **साहब...गहई**=परमात्मा के गुण ग्रहण करता है अर्थात् भक्ति करके परमात्मा का रूप बन जाता है; **सूपच**=सुपच, चांडाल; **कवन**=कौन; **बाजेवो**=बजा; **भौ**=हो गए, बन गए; **परदच्छिन कीन्हा**=प्रदक्षिणा करना, परिक्रमा करना; **अमर पद**=परमात्मा का अविनाशी धाम।

वास्तव में जाति-पाँति कुछ भी नहीं है। बड़ा तो केवल वही है जो परमात्मा की भक्ति करके परमात्मा का रूप बन जाता है। सामाजिक तौर पर चांडाल जाति से संबंध रखनेवाले सुपच (श्वपच) से निम्न जाति और कौन हो सकती है? परंतु युधिष्ठिर के द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ के सफलता-पूर्वक संपन्न होने का सूचक घंटा, आकाश में तब तक नहीं बजा था जब तक कि उन्होंने सुपच को बुलाकर भोजन नहीं कराया। सुपच के द्वारा भोजन करने पर ही आकाश में घंटा बजा था और वे अछूत कहलानेवाली जाति से संबंध रखनेवाले संत, सबसे श्रेष्ठ सिद्ध हुए थे। श्रीकृष्ण जी ने भी स्वयं उनकी प्रदक्षिणा की थी। धन्य हैं वे साधु जिन्होंने परमात्मा का अविनाशी धाम प्राप्त कर लिया है।

बड़ा सोइ जेहि साहब नेवाजहि सतपुर्ख कँह जानीउ रे जी।
पंडित पढ़ि पढ़ि वेद विचारहीं रहनी गहनि है भारीउ जी॥[37]

नेवाजहि=कृपा करना; **रहनी**=आचरण; **गहनि**=ग्रहण करना, बनाना; **भारीउ**=भारी, कठिन।

श्रेष्ठ वही है जिस पर परमात्मा कृपा करता है तथा जो उस सत्पुरुष को जान लेता है। पंडित वेदों को पढ़कर उन पर अनेक प्रकार से विचार करते हैं, परंतु वैसी रहनी (आचरण) बनाना बहुत कठिन है।

मलेछ सोई मुख मदिरा भरई। मलेछ सोई पर तीरिया हरई॥
मलेछ सोई मीन मासु जो खावे॥ मलेछ सोई जेहि ज्ञान ना भावे॥
मलेछ सोई संत निन्दा करई। मलेछ सोई जो नरकहिं परई॥
मलेछ सोई भूत पूजा करई। खंसी बकरा जीव सभ मरई॥[38]

मलेछ=म्लेच्छ-अनार्य, आर्यों के आचरण का पालन न करनेवाला, निम्न; **सोई**=वह; **मदिरा**=शराब; **पर तीरिया**=पराई स्त्री; **हरई**=हरण करके ले जाना; **मीन**=मछली; **भावे**=अच्छा लगना; **परई**=पड़ता है।

निम्न वह है जो अपने मुख से शराब का सेवन करता है और पराई स्त्री का हरण करता है। निम्न वह है जो मांस-मछली खाता है और जिसे परमात्मा का ज्ञान अच्छा नहीं लगता। मलेच्छ वह है जो संतों की निंदा करता है और इसके फलस्वरूप नरकों में पड़ता है। निम्न वह है जो भूत-प्रेतों की पूजा करता है और बकरा-बकरी आदि जीवों का वध करता है।

हिन्दु तुरुक तुम्ह दुई कहई। एके ब्रह्म दुनो में लहई॥[39]

तुरुक=मुसलमान; **दुई**=दो; **कहई**=कहते हो, कहा जाता है; **दुनो**=हिंदू और मुसलमान।

तुम हिंदू और मुसलमान को दो कहते हो जबकि दोनों में कोई दूसरा परमात्मा नहीं है।

को हिंदू को तुरुक कहाई। एके ब्रम्ह मोसल्लम भाई॥
मटी एक बरतन बहुतेरा। अलख ब्रम्ह तेहि भीतर डेरा।[40]

को=कौन; **कहाई**=कहलाता है; **ब्रम्ह मोसल्लम**=सब में, समूचे संसार में; **मटी**=मिट्टी; **बहुतेरा**=बहुत-से; **अलख**=आँखों से दिखाई न देनेवाला; **तेहि**=उनके; **डेरा**=निवास।

कौन हिंदू है और कौन मुसलमान कहलाता है? परमात्मा सब में अखंडित रूप में एक ही है। संसार में विभिन्न धर्मों से संबंधित लोग ऐसे ही हैं जैसे एक ही मिट्टी से बने हुए बहुत-से बर्तन हों। सबके अंतर में इन आँखों से दिखाई न देनेवाला वह एक ही ब्रह्म निवास करता है।

हिंदु तुरक हम एके जाना। जो एह मानै सब्द निसाना॥
सभै जीव साहब कर अहई। बूझि विचारि ग्यान एह कहई॥
जो दाफा मह आवै जानी। तासै भरम केहु जनि मानी॥[41]

निसाना=चिह्न, नगाड़ा, धुन; **साहब...अहई**=परमात्मा के हैं; **दाफा**=संतों का मत; **जानी**=समझकर; **भरम**=भेद; **केहु**=कोई, किसी को; **जनि**=मत, न।

जो कोई भी शब्द-धुन को मानता है, वह चाहे हिंदू है या मुसलमान, संतों की दृष्टि में एक समान है। संत सोच-विचारकर यह बात कहते हैं कि सभी जीव परमात्मा के हैं। अत: जो कोई भी संतों के मत में आ जाता है, उससे किसी को भी कोई भेदभाव नहीं रखना चाहिए।

हिंदु तुरुक सब जीव हमारा। समुझि सार भाखा टकसारा॥
सिरे जाम औ है सिर खूला। छापा सनदि दुनहुं के मूला।[42]

समुझि सार=सार तत्त्व को समझकर; **भाखा**=कहा, बताया; **टकसारा**=सिक्का ढालने की जगह, वह स्थान या मत जहाँ संत परमार्थ की प्रामाणिक शिक्षा प्रदान करते हैं; **सिरे जाम**=टोपी या पगड़ी से सिर को ढकना; **छापा सनदि**=परमात्मा से अधिकार प्राप्त संत द्वारा नाम की प्रामाणिक मोहर लगाना; **दुनहुं**=दोनों; **मूला**=मूल वस्तु।

दरिया साहिब कहते हैं कि हिंदू-मुसलमान सभी एक ही परमात्मा के जीव हैं। इस सार तत्त्व को समझकर मैंने इन दोनों को असली परमार्थ की प्रामाणिक शिक्षा प्रदान की अर्थात् उन्हें अपने मत का भेद बताया है।

यह मार्ग सभी के लिए है। चाहे कोई टोपी या पगड़ी पहननेवाला हो या खुले सिरवाला, दोनों के लिए परमात्मा से अधिकार प्राप्त संत द्वारा लगाई गई नाम की प्रामाणिक मुहर ही मूल वस्तु है।

हिंदू तूरुक दुनों भुलाना। दूनो बादि बिबादि बिलाना॥[43]

तूरुक=मुसलमान; **दुनों**=दोनों; **बादि**=व्यर्थ; **बिबादि**=विवाद, झगड़ा; **बिलाना**=नष्ट होना।

हिंदू और मुसलमान दोनों ही परमार्थ के असली मार्ग को भूले हुए हैं और आपस के व्यर्थ के विवाद में पड़कर नष्ट हो रहे हैं।

काफिर कहे मलेच्छ है, यह बातन में बात।
हिन्दू तुरुक के पक्ष में, वादिहिं जन्म गंवात॥[44]

काफिर=ख़ुदा और क़ुरान को न माननेवाला, नास्तिक; **यह**=हिंदू; **बात**=विवाद; **पक्ष**=पहचान; **वादिहिं**=व्यर्थ।

मुसलमान हिंदुओं को काफ़िर कहते हैं जबकि हिंदू उन्हें मलेच्छ कहते हैं। इन्हीं बातों को लेकर इन दोनों में विवाद है। दोनों ही हिंदू-मुसलमान की पहचान को लेकर आपस में लड़ते हुए व्यर्थ ही जन्म गँवा देते हैं।

ब्राह्मण सोई जो ब्रह्महि चीन्हा। ध्यान लगाय रहे लौ लीन्हा॥
क्रोध मोह तृष्णा नहिं होई। पंडित नाम सदा है सोई॥[45]

चीन्हा=पहचानना; **लौ लीन्हा**=लिव लगाकर; **सोई**=वही।

जो अपने अंतर में स्थित ब्रह्म को पहचानकर उसके ध्यान में लिव लगाए रहता है, वही सच्चा ब्राह्मण है। जिसे क्रोध, मोह और तृष्णा नहीं है, उसी का नाम पंडित है।

ब्रह्म न चिन्हहि ब्राह्मन जाती। ब्रह्म चिन्हहिं तौं होहीं अजाती॥
अपने ब्रह्म अवरिको आना। ताते जम के हाथ बिकाना॥[46]

चिन्हहि=पहचानते; **होहीं**=हो जाता है; **अजाती**=जाति की सीमा से परे; **ताते**=ऐसा समझने से।

बहुत-से लोग ब्राह्मण जाति में जन्म लेने के बावजूद अपने अंतर में स्थित ब्रह्म को नहीं पहचानते। जो ब्रह्म को पहचानकर उसका रूप हो जाता है, फिर वह तो जाति की सीमा से ही परे (अजाति) हो जाता है। जाति के भ्रम में पड़कर जो लोग यह समझते हैं कि हम ही ब्रह्म के रूप हैं, हमारे अतिरिक्त दूसरे लोग कोई और ही हैं, तो उन्हें अवश्य ही यमराज का ग़ुलाम बनना पड़ेगा।

मोलना सो जो मनहिं बिचारा। हक हराम करे निरुआरा॥
खून खराब कबहिं नहिं करई। नेकी बंदगी निस दिन धरई॥
पाक होए पाक में भीना। असल अलाह ताहि को चीन्हा॥
बेबाहा जो नाम बखाना। बेकीमति सिफ्ति जो जाना॥
असल नाम पाक है सोई। बेबाहा नाम सत्त है सोई॥[47]

मोलना=मौलाना-इस्लामी सिद्धांतों का विद्वान्; **हक हराम**=किस चीज़ पर हमारा अधिकार है और क्या वर्जित है; **निरुआरा**=सुलझाना; **खून खराब**=ख़ून-ख़राबा, रक्तपात; **नेकी**=अच्छाई; **बंदगी**=आराधना; **निस दिन**=दिन-रात; **धरई**=पकड़े रहना; **पाक होए**=पवित्र होकर; **पाक...भीना**=पवित्र (परमात्मा) में मिल जाता है; **असल**=वास्तविक; **अलाह**=परमात्मा; **ताहि को**=उसी को; **बेबाहा**=अनमोल परमात्मा; **बेकीमति**=अमूल्य; **सिफ्ति**=गुण।

सच्चा मौलाना वही है जो मन में विचार करके यह विवाद सुलझा ले कि हक़-हलाल की कमाई और छल-कपट की कमाई में अंतर क्या है तथा

जो कभी भी जीवों का रक्तपात न करे और दिन-रात अच्छाई के मार्ग पर चलते हुए प्रभु की आराधना में लगा रहे। इस प्रकार पवित्र होकर जो पवित्र परमात्मा में मिल जाए और जो वास्तविक परमात्मा को पहचान ले तथा जो अमूल्य गुणों वाले परमात्मा के नाम की महिमा को जान जाए, वही वास्तव में मौलाना है; क्योंकि नाम ही पवित्र परमात्मा है और वह अनमोल नाम ही सत्य है।

सतगुर जाति पांति नहिं लीजै। जाति खोजै तेहि पातक दीजै॥
कहौं सब्द सुनो सतबानी। सतगुर बिना करिहैं जम हानी॥[48]

पातक=पाप; **सतबानी**=सच्ची बात; **करिहैं**=कर देता है; **जम**=यम; **हानी**=बरबादी।

सतगुरु की जाति-पाँति नहीं देखनी चाहिए। जो जाति के आधार पर सतगुरु की खोज करता है उसे पाप लगता है। सतगुरु शब्द का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि सच्ची वाणी अर्थात् शब्द-धुन को सुनो। सतगुरु के बिना यम जीव को बरबाद कर देता है।

जाति पाँति कुल देह कर नाता इया में मति कोइ भूलहु रे जी।
भरम करम तजि सतगुर आसा एक तत्तु चित जानहु रे जी॥
नाहीं कोइ आन सभै मँह आपै हिंदु तुरुक जनि आनहु रे जी।
दया दरद बसै जेहि अंदर तासो भरम न आनहु रे जी॥[49]

देह कर=शरीर का; **नाता**=रिश्ता; **इया में**=इसमें; **एक तत्तु**=एक शब्द; **आन**=अन्य, पराया; **सभै मँह**=सब में; **आपै**=स्वयं परमात्मा; **तुरुक**=मुसलमान; **जनि...रे**=न आने देना; **दरद**=हमदर्द, सहानुभूति।

किसी को भी जाति-पाँति, कुल और शरीर के रिश्तों में नहीं भूलना चाहिए। संसार के भ्रम और बहिर्मुखी कर्मों को छोड़कर अपने हृदय में

एक सतगुरु की ही आशा रखनी चाहिए और अपने चित्त को उनके बताए एक शब्द में लगाना चाहिए। सभी जीवों में एक ही परमात्मा निवास करता है, कोई भी पराया नहीं है; इसलिए हिंदू-मुसलमान का भेदभाव कभी भी मन में नहीं आने देना चाहिए। जिसके हृदय में जीव-मात्र के प्रति दया की भावना और उनके कष्टों के प्रति सहानुभूति है, उसके प्रति अपने मन में किसी प्रकार के भेदभाव या संदेह की भावना नहीं आने देनी चाहिए।

बेद पढ़े का एह गुन पंडित।
एक ब्रह्म सकल घट भाषत अब कहिए किमि खंडित।
ब्राह्मण छत्री बैस सुद्र सभ हिंदु तुरुक किमि कहिए।
मटी एक नाना बिधि बासन एक जिमी पर रहिए।
एके जल पुरइनि है एके एके पांवरि बहु भांती।
एके कंवल भंवर है एके को कहि जाति अजाती।
एके अस्ति मेद है एके तचा तीनि गुन लागा।
एके रंग रुधिर है एके एके आतमा जागा।
एके भूख प्यास है एके एके दुख सुख ब्यापा।
एके दया धर्म है एके एके पुन्य औ पापा।
एके कलम कागद है एके एके कोरान पुराना।
कहें दरिया जब दोबिधा तेजिहौ तब प्रभु को मन माना॥[50]

एह=यह; **सकल घट**=सबके शरीर में; **भाषत**=प्रकाशित है, बोलता है (शब्द-धुन के रूप में); **किमि**=कैसे; **खंडित**=जातियों आदि में बँटा हुआ; **बैस**=वैश्य; **सुद्र**=शूद्र; **तुरुक**=मुसलमान; **मटी**=मिट्टी; **नाना बिधि**=अनेक प्रकार से; **बासन**=बर्तन; **जिमी**=ज़मीन; **पुरइनि**=कमल; **पांवरि**=पँखुड़ी; **बहु भांती**=अनेक प्रकार से; **कंवल**=कमल; **को**=कौन; **जाति**=उच्च जाति; **अजाती**=हीन जाति; **अस्ति**=हड्डी; **मेद**=चर्बी; **तचा**=त्वचा, चमड़ी; **तीनि...लागा**=सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों से सबका शरीर बना है; **रुधिर**=ख़ून; **जागा**=जाग्रत, चेतन;

ब्यापा=व्याप्त होता है; **कागद**=काग़ज़; **कोरान पुराना**=क़ुरान और पुराण; **दोबिधा**=दुविधा, द्वैत; **तेजिहौ**=त्यागना; **मन माना**=मन मान जाता है।

वेदों को पढ़ने का यही वास्तविक गुण है कि हम समझ लें कि एक ही परमात्मा सभी के अंतर में प्रकाशित है यानी अखंडित परमात्मा शब्द-धुन के रूप में सबके शरीर में स्थित है। अत: उसे जातियों आदि में बँटा हुआ अर्थात् खंडित कैसे कहा जा सकता है? उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या हिंदू-मुसलमान कैसे कहा जा सकता है? जैसे एक ही मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बनाए जाते हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्य एक ही परमात्मा के बनाए हुए हैं तथा सभी एक ही भूमि पर रहते हैं। आंतरिक सरोवर का जल एक है, उसमें कमल एक है और उस एक ही कमल की पँखुड़ियाँ अनेक प्रकार से खिली हुई हैं। जब यह आंतरिक कमल और आत्मारूपी भौंरा भी सभी में एक समान होता है तो ऐसे में किसे उच्च जाति का और किसे हीन जाति का कहें? सबके शरीर में हड्डी, चर्बी और चमड़ी एक-सी ही है तथा सबका शरीर सत्व, रजस् और तमस्—इन तीन गुणों से ही बना है। सभी का रंग-रूप एक है, रक्त एक ही प्रकार का है और सभी में एक-सी ही चेतन आत्मा है। सभी को भूख-प्यास भी एक-सी ही लगती है तथा सभी को दु:ख-सुख का अनुभव भी एक-सा ही होता है। सभी के लिए जीव-दया का धर्म भी एक ही है, सभी के लिए पाप और पुण्य एक-सा है तथा उनका फल भी एक-सा ही प्राप्त होता है। एक ही जैसी क़लम से एक समान काग़ज़ पर क़ुरान शरीफ़ और पुराणों की रचना हुई है तथा ये दोनों तत्त्वत: भी एक ही हैं। दरिया साहिब कहते हैं कि परमात्मा तभी तुम पर प्रसन्न होगा जब तुम द्वैत-भाव अर्थात् भेदभाव की भावना को त्यागकर सर्वत्र एक परमात्मा का अनुभव करने लगोगे।

पंडित तेजहु संसे सूला।
एकै ब्रह्म सकल घट भीतर सत्त पुर्ख हहिं मूला।
माता के रुधिर पिता के नीरा काया सिर्जि बनाई।

हिंदु तुर्क दुइ कर्म लगाया एक राह दे आई।
जब तुम होते माता गर्भ में राम जनेऊ दीन्हा।
जो फुरमान खोदाई होते गर्भ सुंनती कीन्हा।
आदिहि एक अंत फिरि एके बीचे गया सो फाटी।
इन्ह पकरि के कान्ह छेदाया उन्हि छूरा सो काटी।
एक हिंदू वोह तुरुक कहिये दूनों सगै भाई।
वोए हिंदुइनि वोए तुरुकिनि कैसे सो ना कहो समुझाई।
एक घाट पिवे सभ पानी सूघट भरि के आना।
नदिया एक धार बहुतेरी जलहिं में जल समाना।
का तुम पन्डित बेद पढ़त हौ तेजहु एह खट कर्मा।
हिंदू तुरुक से वोह नहिं राजी एह पाखंड नहि धर्मा।
पूर्व जाव तौ हिन्दु बखाने पछिम तुर्क की पांती।
कहें दरिया वोए हिन्दु तुर्क नहिं साहब जाति अजाती॥[51]

तेजहु=त्यागना; **संसे सूला**=संशय (भेद-भाव) की चुभन; **हहिं**=है; **मूला**=आदि-स्रोत; **नीरा**=जलरूपी वीर्य; **काया**=शरीर; **सिर्जि बनाई**=निर्माण किया गया; **फुरमान खोदाई**=ख़ुदा का दिया हुआ हुक्म; **सुंनती**=सुन्नत, ख़तना करना; **आदिहि**=शुरू में; **अंत**=मृत्यु; **बीचे**=बीच में ही; **गया...फाटी**=वे अलग-अलग हो जाते हैं; **इन्ह**=हिंदुओं ने; **पकरि के**=पकड़कर; **छेदाया**=बींधना; **उन्हि**=मुसलमानों ने; **सो**=के साथ; **वोए**=वह; **सूघट**=सुंदर घड़ा; **बहुतेरी**=अनेक; **समाना**=समा जाना; **का**=क्या; **तेजहु**=छोड़ दो; **खट कर्मा**=षट् कर्म स्नान, संध्या, पूजा, जप, तर्पण और हवन; **पांती**=पंक्ति, समूह; **साहब**=परमात्मा; **जाति अजाती**=उच्च और निम्न जाति।

हे पंडित! भेदभावरूपी संशय की चुभन को त्यागो। सभी के शरीर में एक ही परमात्मा का निवास है और सबका आदि-स्रोत भी वही एक सत्पुरुष है। माता के रक्त और पिता के जलरूपी वीर्य से शरीर का निर्माण हुआ है।

पर तुमने तो हिंदू-मुसलमान के कर्मों में भेद लगा रखा है। दोनों ही अपनी माता के गर्भ से एक ही राह से आए हैं। यदि तुम सचमुच जन्म से ही श्रेष्ठ ब्राह्मण होते तो परमात्मा ने माता के गर्भ में ही तुम्हें जनेऊ दे दिया होता, पर क्या ऐसा हुआ? यदि धार्मिक आधार पर विभक्त करने का हुक्म ख़ुदा का दिया हुआ होता तो मुसलमान होने की निशानी सुन्नत (ख़तना करना), उस द्वारा गर्भ में ही कर दिया गया होता। संसार में आने पर शुरू में सभी मनुष्य एक-से होते हैं, जीवन के अंत में मृत्यु होने पर भी सभी का अंत एक-सा ही होता है, केवल जीवन के बीच में ही धर्म आदि के आधार पर उन्हें एक-दूसरे से अलग कर दिया जाता है। हिंदू अपने बच्चे को पकड़कर अपने धर्म की निशानी के रूप में उसके कान बींध लेते हैं, जबकि मुसलमान तेज़धार छुरी से अपने बच्चों की सुन्नत कर लेते हैं। ऐसा करने मात्र से एक हिंदू और दूसरा मुसलमान कैसे हो गया, इसे कोई भी समझाकर क्यों नहीं बताता? वास्तव में सभी एक ही आंतरिक घाट का पानी पीते हैं जो उनके सुंदर आंतरिक घट में भरकर आता है। संसार में अलग-अलग जातियों और धर्मों के लोग एक ही नदी की अनेक धाराओं की तरह हैं। लेकिन अंत में जल की सभी धाराएँ वापस पानी में ही मिलकर उसका रूप हो जाती हैं। तुम पंडित होकर वेदों को क्या पढ़ते हो? इनके मर्म को तो समझो। स्नान, संध्या, पूजा, जप, तर्पण और हवन – इन बहिर्मुखी षट्-कर्मों को छोड़ो। ये सभी बाहरी धर्म तो दिखावा मात्र हैं, ये सच्चे धर्म नहीं हैं, परमात्मा हिंदू और मुसलमान के भेदभाव से प्रसन्न नहीं होता। यदि हम पूजा के लिए पूर्व की ओर मुख करते हैं तो हमें हिंदू कहा जाता है, जबकि पश्चिम की ओर मुख करने पर मुसलमान कहा जाता है। लेकिन वह परमात्मा तो न हिंदू है और न मुसलमान है; परमात्मा तो अजाति है, जिसकी कोई जाति नहीं है अर्थात् वह जाति से परे है।